रामायण का आचार-दर्शन

रामायण का आचार-दर्शन

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

भारतीय ज्ञानपीठ

आधारभूमि

ल्मीकीय रामायण का अनेक बार पढने के पश्चात् भी कुछ दिनो पूर्व प्रसग वशात् उसके पृष्ठ पलटने की आवश्यकता हुइ। युद्ध-काण्ड म रावण आर विभीषण चर्चा के प्रसग मे निम्नलिखित श्लोको ने मन और मस्तिष्क को कुछ क्षणो के ए अपने मे बाध लिया

यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दव ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथा नार्येषु सौहृदमूव ॥
यथा शरदि मेघाना सिचतामपि गर्जताम्
न भवत्यम्बु सक्लेदस्तथा नार्येषु सौहृदम् ॥
यथा मधुकरस्तर्पाद् रस विन्दन्न तिष्ठति।
तथा त्वमपि तत्रव तथा नार्येषु सोहृदम् ॥
यथा मधुकरस्तर्पाद् काशपुष्प पिबन्नपि।
रस-मात्र न विन्देत तथा नार्येषु सोहृदम् ॥
यथा पूर्व गज स्नात्वागृह्य हस्तेन वै रज ।
दूषयत्यात्मनो देह तथा नार्येषु सौहृदम् ॥–वा रा 6 16 11 15

रावण का अनार्यो के हृदय मे सहृदयता के अभाव की बात इतनी अधिक टकती थी कि वह अपने भाइ को भी इस स्थिति म देखना सहन नही कर सका। नार्यो की गुणहीनता का रावण ने कभी आदर नही किया। उसके पश्चात् द्ध काण्ड म ही कतिपय अन्य प्रसगा पर भी दृष्टि पडी। रावण वध के अवसर र राक्षस स्त्रियॉ 'हा। आयपुत्र' कहकर विलखती रही थीं। तथा विभीषण ने कहा ॥

गत सेतु सुनीताना गतो धर्मस्य विग्रह ।
गत सत्त्वस्य सक्षेप सुहत्ताना गतिर्गता ॥
आदित्य पतितो भूमा मग्नस्तमसि चन्द्रमा।
चित्रभानु पशान्तार्चि र्व्यवसायो निरुद्यम ॥
अस्मिन् निपतिते गीरे भूमा शस्त्रभृता वरे। –वा रा 6 109 6 7

शस्त्रधारियो म श्रेष्ठ रावण के धराशायी होने पर नीति पर चलनेवाला की मर्यादा टूट गयी धर्म का मूर्तिमान विग्रह चला गया सत्त्व सग्रह का स्थान नष्ट हो गया शस्त्र सचालन म कुशल वीरो का सहारा चला गया सूर्य पृथ्वी पर गिर पडा चन्द्रमा अंधेर में डूब गया प्रज्वलित आग बुझ गयी और सारा उत्साह निरर्थक हो गया।

उपर्युक्त प्रसग इस तथ्य के प्रति सकेत करने के लिए पर्याप्त थे कि रावण निश्चित रूप से आर्य परम्परा का था आर राम रावण युद्ध के विषय म सामान्यतया जो विचार प्रकट किया जाता है कि वह देवताओ आर राक्षसो के बीच का युद्ध था भ्रान्तिपूर्ण और निर्मूल है। रावण के पितामह पुलस्त्य को ब्रह्मा का पुत्र लिखा गया ह आर उसके पिता विश्रवा को सर्वत्र ही मुनि के रूप म ही स्वीकार किया गया ह। इस प्रकार ब्रह्मा क वंश म उत्पन्न एक मुनि क पुत्र का राक्षस मानन का कोई आचित्य भी नहीं। इन्हीं विचारो के परिणामस्वरूप पूरी 'रामायण' के समक्ष एक प्रश्नचिह्न लग गया।

इन समस्त प्रसगो ने रामायण को पुन पढने के लिए प्रेरित किया। न तो मैने वाल्मीकीय रामायण की एतिहासिकता अथवा काल्पनिकता म ही उलझना आवश्यक समझा आर न उसके प्रक्षिप्त अशो की छानबीन करने की ही आवश्यकता समझी। उसके काल्पनिक काव्य होन अथवा उसम प्रक्षिप्त अशो के जोड़े जाने पर भी यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि रचनाकार ने किसी विशिष्ट उद्देश्य से ही उसकी रचना की होगी तथा प्रक्षिप्त अशो क रचयिताओ न भी उन्हीं आस्थाओ को सुदृढ करने अथवा पूर्व प्रतिपत्तियो को ओर अधिक प्रेरणास्पद बनाने क उद्देश्य से ही अपने प्रयास किये होगे।

वर्तमान म रामायण जिस रूप म उपलब्ध हे निस्सन्देह उसकी रचना राम के प्रति आस्था उत्पन्न करने एव रावण तथा उसके सहयोगियो अनुयायियो, वशधरो आदि के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न करन क उद्देश्य स ही की गयी थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरित्र आचरण एव धर्म मर्यादाओ को ही आधार भूमि क रूप म ग्रहण किया गया है। यह तो निश्चित ही हे कि किसी भी व्यक्ति को लगातार देवता अथवा राक्षस कहे जाने मात्र से उसकी उस रूप म मान्यता सम्भव नहीं होती। समाज की दृष्टि सदैव उसके आचरण एव क्रिया व्यापारों पर केन्द्रित रहती है। आचार्यो का निराकार निर्गुण ब्रह्म के भी गुणधर्मो का सम्यक् विवेचन करन के लिए विवश होना पडा है अन्यथा उसकी प्रतिष्ठापना भी सम्भव नहीं होती। इस दशा म स्वभावत यह प्रश्न उपस्थित होता हे कि राम रावण तथा रामायण क अन्य पात्रो क धर्म आचरण और क्रिया व्यापार का स्वरूप क्या रहा था। रामायणकार ने अपन पात्रो म ऐसे कोन स गुणधर्मो का आरोप किया हे जो एक के प्रति श्रद्धा आर दूसरे के प्रति घृणा उत्पन्न करन म सहायक हुए ह। यही विचार प्रस्तुत पुस्तक का आधार है।

'' स्वय को रामायण पात्रा के आचार धर्म के अध्ययन तक ही सीमित रखा है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस अध्ययन मे मने वाल्मीकीय रामायण की ऐतिहासिकता अथवा प्रक्षिप्त अशो के झमेले म न उलझकर उसे यथावत् प्रमाण के रूप म स्वीकार किया है। रामकथा पात्रो के चरित्र एव आचार का अध्ययन करते समय प्राय रामचरितमानस योगवासिष्ठ अध्यात्म रामायण तथा अन्य रामकाव्या के सन्दर्भ भी प्रमाणरूप मे प्रस्तुत किये जाते ह किन्तु वाल्मीकि आर तुलसीदास के विचारा मान्यताओ आर विश्वासो मे इतना जबरदस्त अन्तर रहा ह कि एक ही सन्दर्भ म दोना को समान रूप से प्रमाण मानना सगत नहीं। वाल्मीकीय रामायण ओर रामचरितमानस के कथा प्रसगा म भले ही थोडा अन्तर रहा हो किन्तु वाल्मीकि ओर तुलसीदास ने राम कथा क पात्रा म अपनी आस्थाओ के अनुरूप जिस प्रकार आचार आर गुणधर्मो का आरोप किया है इससे उन पात्रो के रूप पूणतया परिवर्तित ओर भिन्न हो गये हे। स्मार्त धर्म वर्णाश्रम धर्मव्यवस्था ब्राह्मणा की वरिष्ठता तथा अवतारवाद म तुलसीदासजी की इतनी जवरदस्त आस्था थी कि उन्हाने रामचरितमानस के पात्रा को नि शेषतया अपने विश्वासा के अनुरूप नये साँचे म ढाल दिया। रामचरितमानस के पात्र वाल्मीकीय रामायण के पात्रा से आचार धर्म की दृष्टि से सर्वथा भिन्न ह। यह अन्तर केवल राम लक्ष्मण ओर हनुमान जसे पात्रा के चरित्रा मे ही नही प्रत्युत रावण आदि विपक्ष के पात्रो मे भी उत्पन्न कर दिया गया हे। इसी प्रकार यदि जनाचार्य द्वारा लिखित पउमचरित अथवा वाद्ध परम्परा के दशरथ जातक' को लिया जाय तो इन पात्रा के आचार धर्म कुछ दूसरे ही प्रकार के दिखाई देते ह। तात्पर्य यह कि समस्त रचनाकारो ने पात्रा को अपनी आस्थाआ आर विश्वासा के अनुरूप ही चित्रित किया हे आर इस प्रकार वास्तविक तथ्या तक पहुँचना सरल नही। रामकथा की दृष्टि से वाल्मीकीय रामायण ही प्राचीनतम ग्रन्थ है। अतएव उसी को प्रमाण मानना अधिक तर्कसगत प्रतीत होता ह। इसी कारण (वाल्मीकीय) रामायण पात्रा का आचार धर्म ही अध्ययन की दृष्टि से युक्तिसगत विषय प्रतीत हुआ। रामकथा विषयक अन्य ग्रन्थो को सन्दर्भ रूप ग्रहण न करने स एक लाभ यह भी हुआ कि कम स-कम रामायण पात्रा का आचार दर्शन स्पष्ट हो सका हे।

यहा यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि म स्वय राम क प्रति पूर्णरीत्या आस्थावान हूँ। यह आस्था रामचरितमानस के राम अथवा योगवासिष्ठ के राम क प्रति ही हा सक्ती है। अन्य किसी राम-काव्य क राम को ऐसा रूप प्राप्त ही नहीं हो सका जिसके प्रति लागा के मन मे श्रद्धा की भावना उत्पन्न हा सके। जन मानस मे राम तथा रामकथा के पात्रा के प्रति सामान्यतया जो धारणा विद्यमान है उसे किंचित् भी आघात पहुँचाना मेरे लिए अभीष्ट नही तथापि मेरे अध्ययन से श्रद्धान्वित सहृदय व्यक्तिया के हृदय को ठेस लग सकती है। उनसे मेरा विनम्र

निवदन है कि वह मेरी दृष्टि म कलुष की आशका न करे। मेरा प्रयास केवल इस विषय क अध्ययन तक ही सीमित है कि रामायण के अनुसार ही वाल्मीकीय रामायण के पात्र किस प्रकार के आचार धर्म का अनुसरण करते रहे ह और उनके आचार का स्वरूप क्या रहा है। प्रस्तुत अध्ययन म मैने पात्रों को अपनी आस्था क अनुरूप चित्रित करने की लेशमात्र भी चेष्टा नहीं की आर उनकी आचार-मान्यताओं को ठीक उसी रूप मे लिखा गया हे जैसा रामायण म मिलता हे। इस कारण यद्यपि उद्धरणा की सख्या अधिक हो गयी किन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से यह आवश्यक था।

अध्ययन के लिए गीता प्रस गारखपुर स प्रकाशित श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' प्रथम भाग द्वितीय सस्करण स 2024 और द्वितीय भाग द्वितीय सस्करण स 2025 को लिया गया ह। अतएव सन्दर्भ के लिए पाठक कृपया इन्हीं सस्करणो को देखने का कष्ट करे।

—अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

भोपाल
वसन्त पचमी
वि स 2054

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

अनुक्रम

सुर, असुर, राक्षस, दैत्य, दानव आदि जातियो का वास्तविक स्वरूप

रामायण पात्रो के आचार धर्म का सम्यक् अध्ययन करते समय सर्वप्रथम देवता, अवतार राक्षस, निशाचर दैत्य वानर ऋक्ष आदि शब्द मस्तिष्क म उभरकर ऊपर आ जाते ह। राम को विष्णु का अवतार मान लिया गया है। इसी प्रकार लक्ष्मण का शेषावतार हनुमान को वायुपुत्र सीता को अयोनिजा लक्ष्मीस्वरूपा मानकर इन सबको देवताओ की श्रेणी म सम्मिलित कर दिया गया हे। राम के सहयोगी ऋक्षो और वानरो को यद्यपि देवत्व प्राप्त नहीं हो सका तथापि उनकी भी गणना श्रेष्ठ वर्गो म ही की जाती हे। हनुमान को तो अब देवत्व भी प्राप्त हो चुका ह और उनके मन्त्रो स्तोत्रो की भी रचना की जा चुकी ह। इसके विपरीत रावण कुम्भकर्ण मेघनाद ताटका शूर्पणखा आदि को भयावह नरभक्षी राक्षसो की श्रेणी मे डाल दिया गया हे। इन स्थापनाओ का परिणाम यह हुआ कि राम रावण-युद्ध को देवताओ और राक्षसो के बीच का युद्ध माना जाता है। आधुनिक विचारशील चिन्तको की मान्यता म कुछ अन्तर उत्पन्न हुआ ओर उन्होने इसे आर्यो ओर अनार्यो के बीच का युद्ध निरूपित किया। इस दृष्टि स सर्वप्रथम इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है कि इन जातियो तथा पात्रो की वास्तविक स्थिति क्या रही ह।

अवतारवाद की कल्पना का प्रारम्भ मुख्यतया मार्कण्डय पुराणान्तर्गत दुर्गा सप्तशती तथा श्रीमद्भगवद्गीता' के उन अशो से होता हे जिनम कहा गया हे कि जब दानवो राक्षसो के द्वारा सत्पुरुषो को पीडा पहुँचायी जाती ह धर्म का ह्रास होता ह और अधम तथा अनाचार की वृद्धि होती हे उस समय देवतारि राक्षसो का संहार करने तथा धर्म की स्थापना के लिए म अवतार ग्रहण करता हूँ।[1] विभिन्न

1 इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥
—दुर्गा सप्तशती
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
— श्रीमद्भगवद्गीता

अवतारो की कल्पना के साथ ही उनको गीता की अभ्युक्ति 'सम्भवामि युगे युगे' के आधार पर कृतयुग, त्रेता, द्वापर आदि युगो के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। गीता की अभ्युक्तियां 'सृजाम्यहम्' तथा 'सम्भवामि' स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा कही गयी हैं। अतएव स्वाभाविक रूप से इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि सर्वप्रथम श्रीकृष्ण को ही अवतार के रूप में मान्य किया गया है। इसके पश्चात् ही पुराणकारो तथा धार्मिक वाङ्मय के प्रणेताओ ने अन्य अवतारो की कल्पना की। अवतार निर्धारण की परम्परा जब आगे बढ़ी तब राम को भी अवतारो में मान लिया गया। इसके मूल में राम के प्रति लोगो की आस्था तो रही ही है, कृष्ण का वाक्य 'राम शस्त्रभृतामहम्' ने भी पर्याप्त सहारा दिया।

यह भी उल्लेखनीय है कि अवतारत्व की धारणा का विष्णु के साथ सम्बद्ध होने की स्थिति में ही समादर किया गया है। किसी भी अन्य शक्ति अथवा देवता के अवतार ग्रहण करने को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। युधिष्ठिर को धर्म का अवतार मानने पर भी विष्णु के अवतारो के समान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकी। रामायण में दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के अवसर पर समस्त देवताओ की उपस्थिति तथा उनके द्वारा विष्णु से दशरथ के पुत्र रूप मे अवतरित होने की प्रार्थना का उल्लेख है। विष्णु द्वारा देवताओ की प्रार्थना स्वीकार की गयी। इसी प्रसंग में प्राजापत्य पुरुष के प्रकट होने और दशरथ को खीर पात्र देने का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार राम को विष्णु के अवतार के रूप में ही प्रतिष्ठापित किया गया है। वानरो और ऋक्षो ने युद्ध में राम की सहायता की थी। रामायण के अनुसार ब्रह्मा की प्रेरणा से देवताओ ने ही ऋक्षो और वानर यूथपतियो को राम की सहायता के लिए उत्पन्न किया था। इस प्रकार राम को विष्णु का अवतार मानकर रामपक्ष के प्रायः समस्त पात्रो को देवता-वर्ग के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है।

रामपक्ष विषयक उपर्युक्त वर्णन के विपरीत रावणादि की उत्पत्ति का उल्लेख करते समय उनको राक्षस निरूपित किया गया है। सुमाली-कन्या केकसी को मुनिवर-श्रेष्ठ प्रजापति-कुलोद्भव विश्रवा ने पत्नी रूप मे स्वीकार किया था। केकसी विश्रवा के पास उस समय पहुँची जब वह सायंकाल का अग्निहोत्र कर रहे थे। अतएव गर्भाधान करते समय भी उन्होने केकसी से कहा कि तुम इस दारुण वेला में मेरे पास आयी हो इसलिए तुम्हारे पुत्र क्रूर स्वभाव और भयंकर शरीरधारी होगे। विश्रवा के वाक्य में ही यह भी स्पष्ट कहा गया है कि तुम क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसो को उत्पन्न करोगी।[1] रामजन्म के समय देवताओ द्वारा आकाश से पुष्पो की वर्षा, गन्धर्वो-अप्सराओ के नृत्य आदि का उल्लेख है और रावणजन्म के अवसर पर

1 वाल्मीकि रामायण 7 9 22 23 (उत्तरकाण्ड नवम अध्याय श्लोक 22 23)

गीदड़िया के चीखने, रुधिर की वर्षा होने भयकर आँधी चलने आर अन्य अमागलिक सकता का वर्णन किया गया ह।

उपयुक्त सन्दर्भो से स्पष्ट है कि राम रावण दोना पक्षा के पात्रों के जन्म आदि का वणन इस रूप म ही किया गया ह कि एक पक्ष देव-वर्ग के रूप मे आर दूसरा पक्ष राक्षस-वर्ग के रूप म उभरकर सामने आता है ओर इस प्रकार राम रावण-युद्ध को देवताओ ओर राक्षसा के बीच लड़े गये युद्ध के रूप म ही प्रस्तुत किया गया है। रामायण की यह मान्यता समाज मे लगातार पोषित होती रही आर लागा की आस्था सुदृढ होती गयी। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस के द्वारा इस आस्था को चरम उत्कर्ष तक पहुँचा दिया। रामचरितमानस मे एक ओर राम को पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप म इस प्रकार चित्रित किया गया है कि ब्रह्मा विष्णु महेश सभी उनक समक्ष श्रद्धानवत होकर शीश झुकाते ह और दूसरी ओर रावण कुम्भकर्ण आदि का ऐसा भयावह चित्र प्रस्तुत किया गया कि उनकी कल्पना से भी डर लगने लगता है।

उपर्युक्त मान्यताएँ सहज ही इस प्रश्न को जन्म देती ह कि क्या राम रावण-युद्ध सचमुच ही देवताओ आर राक्षसा के बीच का सघर्ष था आर देवता तथा राक्षस कोन थे? इस विषय पर विभिन्न विद्वाना द्वारा पर्याप्त लिखा जा चुका हे अतएव यहाँ पर मात्र उतना लिखना ही समीचीन होगा जो रामायण पात्रो के आचार धर्म के अध्ययन म सहायक हो।

सस्कृत कोशकारो ने देव सुर आदितेय अदितिनन्दन आदित्य देवत और देव शब्द को समानार्थी अथात् देवता का पर्याय माना है। इसी प्रकार असुर दैत्य दैतेय दनुज दानव दितिसुत का एक ही वर्ग का पर्याय माना गया हे। रक्षस् (रक्षासि) की विद्याधरादिका क साथ देवयोनि म गणना की गयी है आर राक्षस क्रव्याद रात्रिचर यातुधान को अलग एक वर्ग मे रखा गया है। इससे प्रतीत होता ह कि असुर दैत्य दानवा की एक अलग जाति रही हे जो रक्षस् तथा राक्षसो की जाति परम्परा से सर्वथा भिन्न थी। कालान्तर मे रक्षस् ओर राक्षस का भेद समाप्त हुआ आर धीरे धीरे असुर दैत्य दानव रक्षस् और राक्षस सब को एक ही जाति का मान लिया गया। देवताओ के लिए 'दानवारि ओर असुरा के लिए सुरद्विप शब्द का भी प्रयोग किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता ह कि देवताओ ओर असुरो दानवा के बीच परस्पर विरोध तथा विद्वेष की भावना बहुत पहले से विद्यमान रही है। यह भी उल्लेखनीय है कि राक्षसा के लिए पुण्यजन शब्द का भी प्रयाग किया जाता रहा है। अब राक्षसा के लिए इस शब्द का प्रयाग प्राय समाप्त हो चुका हे तथा उनको पुण्य जन के रूप म मानने का विश्वास भी जाता रहा। इन्द्रारि शब्द राक्षसा के लिए नही वरन् असुरा

के लिए प्रयुक्त किया गया है और असुरों को ही शुक्रशिष्य कहा गया है। इस आधार पर यह माना जाता है कि असुर वर्ग के लोग इन्द्र और इन्द्र की परम्परा के विरोधी रहे हैं तथा वे शुक्र के नेतृत्व में लगातार इन्द्र के विरुद्ध विद्रोह करते रहे।

यद्यपि विगत अनेक वर्षों से साहित्य और इतिहास ग्रन्थों में 'आर्य' शब्द का इसी रूप में प्रयोग किया जा रहा है मानो वह मानवों की कोई विशेष जाति रही हो किन्तु प्रामाणिक रूप से इसे एक तथ्य के रूप में स्वीकार करना सरल नहीं। इसी प्रकार इस बात के तो थोड़े बहुत प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि आर्यों का संघर्ष दस्यु और असुरों से हुआ था किन्तु ये दस्यु और असुर कौन थे इसके भी सुनिश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होते। आर्य जाति के सम्बन्ध में डॉ. सम्पूर्णानन्द ने लिखा है

वे लोग किसी पृथक् और विशेष उपजाति के थे इसका कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु निश्चय ही वे ऐसे लोग थे जिनको भौगोलिक कारणों ने एक साथ डाल दिया था। इस प्रकार उनमें कुछ विशेष विश्वासों का, रहन सहन के प्रकारों का उदय हुआ था। सभी आर्यों की संस्कृति एक समान थी ऐसा नहीं माना जा सकता है।[1]

मानवों का जो समुदाय अपने को आर्य मानता था उसकी सर्वप्रथम उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि वह 'इन्द्र' की संस्था के प्रति अटूट आस्थावान था। ऐसा प्रतीत होता है कि 'दस्यु' जाति के लोग 'इन्द्र' पद के विरुद्ध थे और आर्यों के इन्द्र को किंचित् भी महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं थे। ऋग्वेद में अगणित मन्त्र ऐसे मिलते हैं जिनमें इन्द्र को दस्युओं का विध्वंस करने के लिए प्रार्थनाओं के द्वारा प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है। इस समय तक 'असुरों' की कोई अलग जाति अथवा वर्ग स्थापित नहीं हुआ था तथा देव और असुर समानार्थक थे। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के पचपनवें सूक्त में देवताओं के असुरत्व का वर्णन किया गया है। देवों के लिए 'असुर' शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है तथा इन्द्र के असुरत्व की महिमा का वर्णन भी प्राप्त होता है। वरुण को भी असुर कहा गया है। हरिवंशपुराण की कथा के अनुसार श्रीकृष्ण का असुरराज वरुण से युद्ध हुआ था।

वैदिक आर्य इन्द्र को तो सर्वोपरि मानते ही थे इसके अतिरिक्त सूर्य, मित्र, अग्नि, वरुण, यम आदि को भी वे देवता के रूप में स्वीकार करते थे। धीरे धीरे कालान्तर में आर्यों में ही एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हो गया जिसने 'दस्युओं' के समान इन्द्र के पद को और उसकी महत्ता को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इन्हीं लोगों को प्रारम्भ में 'इन्द्रारि' के नाम से कहा गया है। इन्द्र को इन लोगों के साथ अनेक बार भयंकर युद्ध करने पड़े थे। इन संघर्षों और विरोधों के होते हुए भी दोनों वर्गों का पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ था। यह तथ्य उन कथाओं

---

1 हिन्दू देव परिवार का विकास।

स प्रमाणित होता है जिनके अनुसार देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती का विवाह असुर गुरु शुक्राचार्य के साथ हुआ था अथवा स्वय इन्द्र ने ही पुलाम दत्य की कन्या शची के साथ विवाह किया था। स्वय रावण के पिता विश्रवा की दो पत्नियो का उल्लेख है। विश्रवा की एक पत्नी रामायण के ही पात्र भरद्वाज ऋषि की कन्या थी आर दूसरी पत्नी ककसी सुमाली राक्षस की कन्या थी। अर्थात् विश्रवा का विवाह एक ऋषि-कन्या आर एक राक्षस कन्या के साथ हुआ था। उपर्युक्त दो चार वेवाहिक सम्बन्ध दोनो वर्गो के बीच बढती हुई दरार को पाटने म किंचित् भी सहायक नहीं हुए। इन्द्र पद क विरुद्ध सघप लगातार बढता ही चला गया।

ऋग्वेद म स्पष्टतया दो प्रकार की प्रार्थनाएँ मिलती है। एक प्रकार उन प्रार्थनाओ का हे जिनमे आर्यो के नि शेष वर्ग को अलग मानकर केवल दस्युओ के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए उनके विनाश की कामना की गयी ह। धीरे धीरे जव आर्यो के एक वर्ग ने भी अपनी पूरी शक्ति के साथ इन्द्र के विरुद्ध सघर्ष छड दिया तव इन्द्र के पक्षधर आर्यो ने उनको भी अपना शत्रु घोषित कर दिया। दोनो पक्षों म अनक बार भयकर युद्ध भी हुए आर अनक युद्धो म इन्द्र के पक्षधर आर्यो का विपक्षियो से पराजित भी होना पडा। इस सघर्ष का सबसे पहला परिणाम यह हुआ कि दस्युओ और विरोधी आर्यो को एक श्रेणी मे मान लिया गया। ऋग्वेद मे ही दूसरे इस प्रकार के मन्त्र उपलब्ध हैं जिनमे इन्द्र से दस्युओ आर शत्रु आर्यो--दोनों के विनाश की प्रार्थना की गयी है। दूसरे वर्ग के कुछ मन्त्र यहा उद्धृत किये जा रह हैं

1 अयम् एमि विचाकशद विचिन्वन दासम् आर्यम्।
(दास आर आय के बीच विभेद करता हुआ में आ रहा हूँ।)
—10 86 19

2 त्वम् तान इन्द्र उभयान् अमित्रान् दासा वृत्राणि आर्या च शूर वधीर।
(हे इन्द्र तुम हमारे इन दास और आर्य शत्रुओ को नष्ट कर दो।)
—6 33 3

3 हतो वृत्राणि आर्या हतो दासानि सत्पती हतो विश्वा अपद्विप ।
(सत्पुरुषो क अधिपति हे इन्द्र हमारे आर्य शत्रुओ का सहार करो। हमारे दास शत्रुओ का सहार करो। उन सबको नष्ट कर दो जो हमस घृणा करते है।)
—6 60 6

4 दासा च वृत्रा हतम् आर्याणि।
(हमारे आर्य आर दास शत्रुओं का वध करो।)
—7 83 1

5 यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुत अदेव इन्द्र युधये चिकेतति।
(जो भी अदेव दास या आर्य हमसे युद्ध करने के लिए आए उनको हम पराजित करे।)
—10 38 3

हुए थे। सुरसा और कद्रू के पुत्र नाग कहे जाते है। राक्षसा को खसा और पिशाचा को क्रोधवशा का पुत्र कहा जाता है। कश्यप और उनकी पत्नियों को प्रतीक मानकर यद्यपि उनका दार्शनिक विवेचन भी प्राप्त होता है तथापि प्रसगवश पौराणिक अर्थ ही यहाँ ग्रहण किया गया है। कश्यप की पत्नियाँ सगी बहिनें थीं किन्तु उनके मन में सौतियाडाह की इतनी जबर्दस्त भावना विद्यमान थी कि उन्होंने अपने पुत्रों अर्थात् सौतेले भाइयों में शत्रुता की ऐसी भावना उत्पन्न कर दी कि वह जन्म-जन्मान्तर और युग-युगों तक भी समाप्त नहीं हो सकी। विनता और कद्रू ने निहायत ही बेवकूफी की शर्त को लेकर अपने पुत्रों को एक-दूसरे का प्राणान्तक शत्रु बना दिया था। पश्चात्काल में विनता पुत्रों ने अदिति पुत्रों का साथ दिया और कद्रू के पुत्र दिति पुत्रों के साथ हो गये। समुद्र मन्थन के अवसर पर अदिति के पुत्रों ने दिति और दनु के पुत्रों को लगातार धोखा दिया। यद्यपि दोनों पूर्ण सहयोग की भावना के साथ इस महत् कार्य में प्रवृत्त हुए थे और दिति पुत्रों ने वासुकि की ज्वालोपम फूत्कारों को सहते हुए पूरी शक्ति और ईमानदारी के साथ सहयोग किया फिर भी मन्थन के परिणामस्वरूप उत्पन्न रत्नों में से एक भी रत्न उन बेचारों के हाथ नहीं लग सका। चन्द्रमा ऐरावत उच्चैश्रवा सुरभि सुरा लक्ष्मी—सभी को अदिति-पुत्रों ने हथिया लिया। धन्वन्तरि जब अमृतकलश लेकर प्रकट हुए तो उसकी एक भी बूँद दिति पुत्रों को नहीं दी गयी। इस स्थिति में दिति पुत्रों का क्रोध भड़कना स्वाभाविक ही था।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भी देवताओं और दैत्यों ने पूर्ण सद्भावना के साथ ही समुद्र मन्थन का निर्णय लिया था। रामायण के अनुसार ही दैत्यों ने वरुण-कन्या 'सुरा' को ग्रहण करना अस्वीकार किया था और अदिति पुत्रों ने ही उसे ग्रहण किया। सुरा को ग्रहण न करने के कारण ही दिति पुत्रों को असुर कहा गया और देवताओं ने सुरा ग्रहण की थी इसलिए उनकी 'सुर' संज्ञा हुई।[1]

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में एक अन्य कथा का भी उल्लेख किया गया है। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने समुद्रगत जल की सृष्टि करके उसकी रक्षा के लिए अनेक जन्तुओं को उत्पन्न किया। जन्तुओं ने उत्पन्न होकर स्रष्टा ब्रह्माजी के समक्ष निवेदन किया कि हम क्या करें। ब्रह्माजी ने उनको यत्नपूर्वक जल की रक्षा करने का आदेश दिया। उनमें से कुछ ने 'हम इसकी रक्षा करेंगे' इस प्रकार का वचन दिया। अन्य जन्तुओं ने उसका यजन (पूजन) करने का वचन दिया था। रक्षा करने का वचन

---

1 दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्।
अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम् ॥
असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः।
हृष्टाः प्रमुदिताः आसन् वारुणी-ग्रहणात् सुराः ॥—वा रा 1 45 36 38

दनेवाले जन्तु राक्षस और यजन (पूजा) करने का वचन देनेवाले यक्षा क नाम से प्रसिद्ध हुए।[1]

इस प्रकार की और भी अनक कथाए महाभारत पुराण आदि प्राचीन साहित्य म उपलब्ध ह। इन सबसे एक निष्कर्ष निश्चय ही निकलता है कि प्राचीनकाल मे देवताओं असुरा दैत्या अथवा राक्षसा म और उनके पूर्वजो मे भ्रातृवत् सहज स्नेह की भावना विद्यमान थी।

समय समय पर होनेवाली समुद्र मन्थन अथवा विनता ओर कद्रू के बीच की शर्त जसी घटनाओ ने ही दोना के बीच विद्वेष की भावना उत्पन्न कर दी थी। राक्षसा दत्या दानवा और असुर माने जानेवाले सभी पात्रा क पूर्वज अतर्क्य रूप से विशुद्ध आर्य परम्परा के महर्षि रहे ह। अदिति दिति ओर दनु के पति अर्थात् दव दैत्य ओर दानवा क पिता कश्यप आर्य परम्परा के महर्षि और साक्षात् ब्रह्मा के ही वशज रह ह। रावण के पितामह महर्षि पुलस्त्य और पिता मुनि विश्रवा को दत्य दानव अथवा राक्षस मानने का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। वेदा तथा अन्य ग्रन्थो मे उपलब्ध सन्दर्भो के अनुसार दस्युओ को विश्वामित्र की सन्तान कहा गया।[2] किन्तु विश्वामित्र को दस्यु अथवा आर्येतर मानने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। देवा और असुरा अथवा दत्य दानवो राक्षसा क बीच सघर्ष की कथाओ का इस बात का प्रमाण मानना किसी भी दशा म सगत नही कि इनमे से किसी की भी आर्येतर कोई अलग जाति रही होगी। दैत्यो और राक्षसा के भयकर आकार या शरीर की कल्पनाए पुराणा ओर महाकाव्यो के रचयिताओ ने बाद म जबर्दस्ती अपनी रचनाओ म काव्य सौष्ठव उत्पन्न करने क लिए जोड दी थीं।

अब वाल्मीकि रामायण क सन्दर्भो को ही प्रमाण मानकर इस बात की पुष्टि की जाएगी कि रामायण का कोई भी पात्र अनार्य परम्परा का नहीं रहा ह। पुस्तक के प्रारम्भ म ही रावण के विषय म कुछ सन्दर्भ उद्धृत किये जा चुके ह। वह निश्चय ही इस प्रकार चामत्कारिक ह कि एक क्षण के लिए रावण का राक्षसत्व विस्मृत हो जाता ह। रावण क लिए आर्य आर्यपुत्र जसे शब्दा का प्रयोग तो अनेक स्थला पर हुआ ही है स्वय विभीषण उसको मूर्तिमान धर्म क रूप में स्वीकार करता था।[3] उल्लेखनीय ह कि 'रामो विग्रहवान् धर्म' की उक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है और इस स्थिति

---

1 प्रजापतिस्तु तान् सर्वान् प्रत्याह प्रहसन्निव। आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानवा ॥
रक्षाम इति तत्रान्यैर्यक्षाम इति चा परै। भुङ्क्षिताभुङ्क्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत ॥
रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु व। यक्षाम इति यैरुक्त यक्षा एव भवन्तु व ॥
—वा रा 7 4 11 13

2 वैश्वामित्रा दस्यूनाम् भूयिष्ठा —ऐतरेय ब्राह्मण

3 गत मनु मुनीनानां गतो धर्मस्य विग्रह।
गत सत्त्वस्य स ग्रह सुरस्तानां गतिर्गता ॥ —वा रा 6 109 6

म रावण के लिए वह भी विभीपण के शब्दा म धर्मस्य विग्रह कहा जाना कम आश्चर्यजनक नहीं। पता नहीं कि लोग इस प्रकार की पंक्तियों का उल्टा सीधा अर्थ लगाने की चूक कैसे कर गये।

रामायण पात्रा का धर्म और आचरण सम्बन्धी विवेचन आगे के अध्यायो म किया गया है। यहाँ केवल विभिन्न पात्रा के आर्य अथवा अनार्य होने के प्रति संकेत किया जा रहा है। युद्ध म राम के बाणो से घायल रावण अचेत होकर गिर पडा था। रावण का हितकामी सारथी उसको इस अवस्था म देखकर उसका रथ रणभूमि स दूर लंका के किसी सुरक्षित स्थान पर लौटा ले गया। चेतना लौटने पर जब रावण को ज्ञान हुआ कि उसका रथ संग्रामभूमि म नहीं है तो उसने अपने सारथी को फटकारकर कहा था— अरे अनार्य तूने आज मेरे चिरकाल से उपार्जित यश पराक्रम आदि पर पानी फेर दिया।"[1] रावण के द्वारा इस प्रकार अनार्य कहे जाने पर सारथी का क्रोध भडक उठा था। उसने उत्तर म कहा था—न तो मै डरा हुआ हूँ और न मेरा विवेक ही नष्ट हुआ है। मेरा आपके प्रति स्नेह भी कम नहीं हुआ और म कृतघ्न भी नही हूँ। आपके हित की इच्छा से ही मने यह किया है। इस पर भी आप ओछे और अनार्य पुरुषो की भाँति मुझ पर दोषारोपण कर रहे हैं यह किसी भी दशा में उचित नहीं।[2] युद्ध भूमि से भाग आना रावण की दृष्टि म अनार्यो की परम्परा थी जिसे वह पसन्द नहीं करता था। सारथी म भी आर्यो के गुण स्नेह सद्भाव, कृतज्ञता स्वामी हित-कामना आदि विद्यमान थे। इसीलिए उसे रावण द्वारा अनार्य कहा जाना सह्य नहीं हुआ। स्पष्ट ही रावण ही नहीं रावण का सारथी भी आर्य परम्परा का था।

विभीषण का आचार-व्यवहार रावण को अच्छा नहीं लगा था। भ्रातृस्नेह तथा सौहार्द का अभाव रावण अनार्यो का लक्षण मानता था और इसी आधार पर उसने विभीषण की भर्त्सना भी की थी। मेघनाद भी विभीषण को आर्य नही मानता था। युद्ध भूमि म वानरो को सम्बोधित करते हुए मेघनाद ने कहा था कि सुग्रीव वेदेही राम-लक्ष्मण आदि सबको तो म वध कर ही डालूँगा उस अनार्य विभीषण को भी

---

1 त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम्।
यशो वीर्य च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशित॥ —वा रा 6 104 5

2 न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभि ।
न प्रमत्तो न नि स्नेहो विस्मृता न च सत्क्रिया ॥
मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षिता।
स्नेह प्रसन्न-मनसा हितमित्यप्रिय कृतम् ॥
नास्मिन्नर्थे महाराज त्व मा प्रिय हिते रतम्।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ —वा रा 6 104 11 13

र डालूँगा।[1] भाइयो से विरोध करते हुए विभीषण ने कुल के विनाश का जो र्ग अपनाया था रावणादि की दृष्टि म वह आर्यो की परम्परा के अनुकूल नही ।

राम वनवास की घटना से क्षुब्ध होकर भरत तथा अन्य पात्रो ने केकयी को र बार अनार्या कहकर सम्बोधित किया ह।[2] राम मारीच सघर्ष मे राम की सहायता रने के लिए सीता ने जब लक्ष्मण को जाने के लिए प्रेरित किया और लक्ष्मण ने स छल कहते हुए जाने की अनिच्छा प्रकट की तब सीता ने भी लक्ष्मण को अनार्य हा था।[3]

अशोक वाटिका मे रावण द्वारा नियुक्त राक्षसियो ने सीता को भी डराते धमकाते ए अनार्या कहा था।[4] यह सब देखकर त्रिजटा ने उन राक्षसियो को अनार्या कहकर टकारा था।

उपुर्यक्त प्रसग प्रथमत इस बात के प्रति इगित करते हैं कि आर्यो ओर अनार्यो े विषय मे गोरे-काले वर्ण ऊँची चपटी नाक पतले मोटे वाल वडी छोटी आँख म्बे ठिगने कद विषयक जो धारणाएँ प्रचलित की गयी ह वह निराधार ओर ग्रान्तिमूलक ह। दूसरी बात यह कि प्राचीनकाल मे लोग गाली गलोज के अर्थ मे ाय अनार्य शब्द का ही प्रयोग करते रहे हे। केकेयी को अनार्यामार्यरूपिणी कहा

---

1 सुग्रीवस्य च रामस्य यन्निमित्तमिहागता ।
ता वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यत ॥
इमा हत्वा ततो राम लक्ष्मण त्वा च वानर।
सुग्रीव च वधिष्यामि त चानार्य विभीषणम् ॥ —वा रा 6 81 26 7

2 तन्प्रिय अनार्याया वचन दारुणोदयम्।
श्रुत्वा गतव्यथो राम कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥ —वा रा 2 19 19
वहन्त कि तुलमि मा नियुज्य धुरि माहिते।
अनार्ये कृत्यमारब्ध कि न पूर्वमुपारुध ॥ —वा रा 2 56 14
वन्दित्वा चरणौ रामो विसज्ञस्य पितुस्तदा।
कैकेय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युति ॥ —वा रा 2 19 28
क्रोधनामकृतप्रज्ञा दृप्ता सुभगमानिनीम्।
ऐश्वर्यकामा कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् ॥ —वा रा 2 92 26

3 अनार्यकरुणारम्भ नृशस कुलपासन।
अह तव प्रिय मन्ये रामस्य व्यसन महत् ॥ —वा रा 3 45 22

4 अदान्नी तवानार्ये सीते पापविनिश्चये। —वा रा 5 27 3

5 सीता ततभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सतर्जिता तदा।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥
आत्मान खादतानार्या न सीता भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टा स्नुषा दशरथस्य च ॥ —वा रा 5 27 4-5

गया है। इसका तात्पर्य यही है कि आयत्व का सम्बन्ध न तो जाति या वर्ण विशेष से रहा है और न शरीर के बाह्य आकार प्रकार से ही उसका कोई सम्बन्ध है अपितु उसका सीधा सम्बन्ध अन्त प्रवृत्तियो से ही रहा। रामायण मे ही कुछ ऐसे प्रसग उपलब्ध हो जाते है जिनके आधार पर आर्य धर्म लक्षणो की झलक देखी जा सकती है।

वाली को ऋक्षरजस का क्षेत्रज पुत्र—इन्द्र का पुत्र कहा गया तथा उसको और उसकी पत्नी तारा—दोनो को ही आर्य कहा गया।[1] ज्ञातव्य है कि इन्द्र आर्यो के सबसे बडे देवता के रूप मे प्रतिष्ठित रहे है। उसके पुत्र को अनार्य मानने की कोई सगति नही भले ही स्वय राम ने किसी कारणवश उसका वध किया हो। जिस प्रकार विभीषण ने रावण के लिए गता धर्मस्य विग्रह कहकर पश्चात्ताप किया था उसी प्रकार वालि वध के पश्चात् सुग्रीव ने विलाप करते हुए कहा था कि वाली ने अपने जीवनभर भ्रातृभाव और आर्यभाव का पूर्णरीत्या निर्वाह करते हुए धर्म की रक्षा की थी। तारा राम की सहायता करनेवाले और अपने उपचार के द्वारा लक्ष्मण की जीवन रक्षा करनवाले सुषेण की पुत्री थी। यह भी सकेत दिया जा चुका है कि रामायण के अनुसार ऋक्षो और वानरो को स्वय देवताओ ने ही उत्पन्न किया था। इस प्रकार इन सबको किसी आर्येतर परम्परा का मानने का कोई आधार नही।

कुम्भकर्ण के साथ युद्ध करते हुए वानरो के होश उड गये थे। अत्यन्त भयभीत होकर अपनी जान बचाने के लिए वे सुरक्षित स्थानो पर भागकर छिपने लगे थे। यह देखकर अगद बेहद परेशानी मे उलझ गये। उन्होने वानरो को सम्बोधित करते हुए कहा था कि ऊँचे और महान् कुलो मे उत्पन्न होने पर भी इस प्रकार भयभीत होकर भागना उचित नही। यदि तुम भय के कारण पराक्रम छोडकर युद्धभूमि से भाग जाओगे तो निश्चय ही अनार्य समझे जाओगे।[2] तात्पर्य यह कि इनमे से कोई भी अनार्य नहीं था।

इन्द्रजित् के द्वारा लक्ष्मण के घायल किये जाने पर राम को अत्यन्त दु ख हुआ था। उन्होने उस समय यह अनुभव किया कि उनके स्वय के कारण ही लक्ष्मण का

---

1 सुप्तेति पुनरुत्थाय आर्यपुत्रेति वादिनी।
रुरोद सा पति दृष्ट्वा सवीत मृत्युदामभि ॥ —वा रा 4 19 27
भ्रातृत्वमार्यभावश्च धर्मश्चानेन रक्षित ।
मया क्रोधश्च कामश्च कपित्व च प्रदर्शितम् ॥ —वा रा 4 24 12
तस्येन्द्र कल्पस्य दुरासदस्य महानुभावस्य समीपमार्या।
आर्तातितूर्ण व्यसन प्रपन्ना जगाम तारा परिविह्वलन्ती। —वा रा 4 24 29

2 कुलेषु जाता सर्वेऽस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु च।
क्व गच्छत भयत्रस्ता प्राकृता हरयो यथा।
अनार्या खलु यद् भीतास्त्यक्त्वा वीर्य प्रधावत। —वा रा 6 66 21

इस प्रकार की विपत्तिया म उलझ जाना पडा था। स्वय अपन कृत्या पर परिताप करत हुए राम ने भी अपने-आपको अनार्य कहकर स्वय की भर्त्सना की थी।[1] ये सभी प्रकरण इसी तथ्य के प्रमाण ह कि रामायण के पात्रा का भले ही प्रसगवश एक दूसर ने अनार्य कहा हा किन्तु यह सभी पात्र आर्यपरम्परा क ही अनुयायी थे।

राम को अयाध्या लाटा लाने के लिए भरत क साथ ब्राह्मण शिरोमणि महर्षि जावालि भी चित्रकूट पहुच थ। राम को उन्हाने एसे धर्म सिद्धान्ता का उपदेश दिया था जो वैदिक परम्परा के सर्वथा विपरीत थ। धैर्य आर पूरी सहानुभूति के साथ सुनने के पश्चात् राम ने उनका उत्तर देते हुए कहा था कि उनके विचार यद्यपि कर्तव्य-जसे दिखाई देते ह किन्तु वास्तव म वह अनुसरणीय नहीं। इसी स्थल पर अनार्य के लक्षणा के प्रति इगित करते हुए राम ने कहा ह कि बाहर से पवित्र दिखाई देन पर भी भीतर से अपवित्र उत्तम लक्षणा स युक्त प्रतीत होने पर भी शुभ गुणा से रहित तथा शीलवान दिखाइ दने पर भी वास्तव म दु शील व्यक्ति ही आर्य रूप म अनार्य होता है।[2] कैकयी क लिए प्रयुक्त शब्द अनार्यामार्यरूपिणी भी कैकयी की जाति वश परम्परा आदि क प्रति नही प्रत्युत उसक आचरण व्यवहार को दृष्टिगत रखत हुए ही लिखा गया ह। युद्धभूमि से भागना आय परम्परा के विपरीत रहा है। इस सिद्धान्त को राम रावण अगद सभी स्वीकारत ह।

उपर्युक्त सन्दर्भ उसी बात की पुष्टि करत ह कि राम रावण युद्ध अथवा रामायण मे वर्णित युद्ध आर्यो आर अनार्यो अथवा देवता आर राक्षसा क बीच नही लडे गये थ वरन् वे सभी युद्ध आर्य नरेशा के बीच हुए सघर्ष रहे ह।

---

1 धिड मा दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसी।
लक्ष्मण पतित शेते शरतल्पे गतासुवत्। —वा रा 6 49 12
स्पष्टवधुजनो नित्य मा च नित्यमनुव्रत ।
इमामद्यगतोऽवस्था ममानार्यस्य दुर्नयै । —वा रा 6 49 18

2 अनार्यस्त्वार्यसस्थान शौचाद्धीनस्तथाशुचि ।
लक्षण्यवल्लक्षण्यो दु शील शीलवान् इव। —वा रा 2 109 5

विभिन्न जातियो की आचार-मान्यताएँ

प्रथम अध्याय म सकेत किया जा चुका है कि यद्यपि वर्तमान मे राक्षस ओर दानवा का एक ही वर्ग म मान लिया जाता ह किन्तु यह दोना अलग-अलग वर्ग के रह हं। पूरे साहित्य म इन दोनो का इस प्रकार सम्मिश्रण कर दिया गया है कि आज यह कहना भी सरल नही कि दानव अथवा देत्य सस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ क्या रही थी। रामायण के अनुसार कबन्ध मूलत दितिपुत्र अर्थात् देत्य परम्परा का था[1] किन्तु स्थूलशिरा महर्षि के शाप के कारण उस राक्षस बन जाना पडा था। कबन्ध न ही राम को सुग्रीव से मत्री स्थापित करने का परामर्श दिया था। किसी देत्य का शापवश राक्षस बन जाने का तात्पर्य यही हा सकता ह कि दत्य आर राक्षसा के दो भिन्न वर्ग रहे ह। युद्धभूमि मे रावण पुत्र अतिकाय का परिचय देते हुए विभीषण ने भी कहा था कि अतिकाय ने देवता आर दानवा को सकडो बार पराजित किया ह। यक्षा को भी मार भगाया हे किन्तु उसने राक्षसा की सदेव रक्षा की है।[2] युद्ध म मघनाद के मारे जाने पर देवता आर दानवा ने एक साथ मिल-जुलकर हर्ष मनाया था।[3]

पहल कुछ एस उद्धरण दिये जा चुके ह जिनके अनुसार दवता दानव राक्षस सभी एक पक्ति मे दिखाई देते ह किन्तु उपर्युक्त सन्दर्भो स कुछ ऐसा आभास हाता हे कि परवर्तीकाल म राक्षसो आर दानवो म शत्रुता की भावना उत्पन्न हो गयी थी। मघनाद वध पर देवता आर दानवा का मिल-जुलकर हर्ष मनाना इस बात के प्रति इगित करता है कि राक्षसा स शत्रुता हो जान की स्थिति मे दानवा का देवताआ के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

---

1 दनुर्नाम दित पुत्र शापाद् राक्षसता गत ।
आख्यातस्तेन सुग्रीव समर्थो वानराधिप ॥ –वा रा 4 4 15

2 एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिता ।
रक्षितानि च रक्षासि यक्षाश्चापि निपूदिता ॥ –वा रा 6 71.33

3 शुद्धा आपो नयश्चैव जम्पुर्देव-दानवा ।
आजग्मु पतिते तस्मिन् सर्वलोकभयावह ॥
ऊचुश्च सहितास्तुष्टा देव-गन्धर्व दानवा ।
विज्वरा शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ॥ –वा रा 6 90 87 88

कर्तव्य का विचार करता है अकेला ही धर्म में मन लगाता है और अकेला ही सब काम करता है उसे मध्यम श्रेणी का पुरुष कहा जाता है। जो गुण-दोष का विचार न करते हुए देव को न मानते हुए केवल हठपूर्वक कार्य करता है, उसे अधम पुरुष माना जाता है।[1] इस प्रकार वह वर्ण धर्म की अपेक्षा आचरण को ही अधिक महत्त्व देता था। पूरी रामायण में केवल एक स्थल पर ही इस आशय का उल्लेख प्राप्त होता है कि राक्षस ब्राह्मणों का भी सम्मान करते थे। जब प्रहस्त रावण की आज्ञा से राक्षसों की विशाल सेना को लेकर युद्धभूमि के लिए चला था तो उसकी सेना के राक्षसों ने ब्राह्मणों को नमस्कार किया था।[2] मात्र इस सन्दर्भ के आधार पर यह मानना किसी भी प्रकार उचित नहीं होगा कि राक्षस वर्ण धर्म को स्वीकार करते थे अथवा ब्राह्मणों के प्रति उनमें श्रद्धा थी और उनको वे समाज के श्रेष्ठ वर्ग के रूप में मानते थे।

ब्राह्मणों की श्रेष्ठता अथवा उनके पूजनीय होने का प्रतिपादन केवल राम चरित्र से जुड़े हुए सन्दर्भों के आधार पर ही किया जा सकता है। अन्यथा ऋत्विजों ऋषियों याज्ञिकों का अनेक स्थलों पर उल्लेख किये जाने पर भी यह प्रमाणित नहीं होता कि ब्राह्मण के रूप में समाज का कोई वर्ग प्रतिष्ठित हो चुका था। राम अवश्य ही प्राय ब्राह्मणों के समक्ष नत मस्तक उनके आशीष के अभिलाषी दिखाई देते हैं। लक्ष्मण के पूरे चरित्र में कहीं भी इस बात का सकेत नहीं मिलता कि वह भी राम के समान ब्राह्मणों के प्रति आस्थावान रहे हों। अगले अध्यायों में लक्ष्मण के आचार धर्म की जो समीक्षा प्रस्तुत की गयी है उससे यह भी स्पष्ट है कि वे ब्राह्मण धर्म के जबर्दस्त विरोधी थे। दशरथ के सन्दर्भ में केवल एक स्थान पर यह प्रसग प्राप्त होता है कि उन्होंने यज्ञ करने के उद्देश्य से ब्राह्मणों को बुलाया था। अश्वमेध की तैयारी के समय उन्होंने सुमन्त्र को आदेश दिया था कि वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाया जाए। किन्तु

---

1 त्रिविधा पुरुषा लोके उत्तमाधम मध्यमा ।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषां वदाम्यहम् ॥
मन्त्रिभिर्हि सयुक्त समर्थैर्मन्त्रनिर्णये।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाधिकै ॥
सहितो मन्त्रयित्वा य कर्मारम्भान् प्रवर्तयत्।
दैवे च कुरुते यत्न तमाहु पुरुषोत्तमम् ॥
एकोऽर्थं विमृशत्को धर्मे प्रकुरुते मन ।
एक कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यम नरम् ॥
गुणदोषा न निश्चित्य त्यक्त्वा दैव व्यपाश्रयम्।
करिष्यामीति य कार्यमुपेक्षेत् स नराधम ॥ —वा रा 6 6 6 10

2 हुताशन तर्पयता ब्राह्मणाश्च नमस्यताम्।
आज्य गन्धप्रतिवह सुरभिर्मारुतो ववौ ॥ —वा रा 6 57 2

यहाँ यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि 'ब्राह्मण' शब्द का प्रयोग 'वेद पारगान्' 'ब्रह्मवादिन' जैसे विशेषणों के साथ ही किया गया है। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि उस समय तक वेदज्ञ पुरुष ही ब्राह्मण कहे जाते रहे होंगे। यदि शम्बूक वध की कथा को छोड़ दिया जाय तो रामायण में ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का स्पष्टतया कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

रामायण-काल में वर्ण व्यवस्था के बीज पड़ चुके थे और राम उसके समर्थक भी दिखाई देते हैं किन्तु रावण को यदि राक्षसों का प्रतिनिधि मान लिया जाय तो यह सहज ही कहा जा सकता है कि राक्षसों ने जाति व्यवस्था का प्रारम्भ से ही विरोध किया था। कुम्भकर्ण, मेघनाद अथवा किसी भी राक्षस के चरित्र में जाति व्यवस्था के प्रति आस्था का प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत रावण ने स्पष्ट शब्दों में जाति-व्यवस्था की कड़ी आलोचना की है। विभीषण द्वारा विरोध किये जाने की अवस्था में रावण द्वारा जाति-व्यवस्था की निन्दा का यद्यपि दूसरे अर्थों में लिया जा सकता है किन्तु 'ज्ञाति' शब्द का प्रयोग इसी तथ्य को व्यंजित करता है कि रावण के शब्दों में जाति-व्यवस्था का विरोध ही प्रकट किया गया है। रावण के अनुसार सजातीय पुरुषों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना नहीं रहती और ईर्ष्या द्वेष की भावना उत्पन्न हो जाती है। किसी के विपत्तियों में उलझ जाने की अवस्था में सजातीय पुरुषों को सबसे अधिक प्रसन्नता होती है। सजातीय बन्धुओं को जातिगत समस्त रहस्यों और क्रिया व्यापारों का पूरा पूरा बोध होता है अतएव विश्वासघात भी उन्हीं के द्वारा किया जाता है।[1]

यह संकेत किया जा चुका है कि आश्रमधर्म की स्थिति भी रामायणकाल में अस्पष्ट ही थी। ब्रह्मचर्य और सन्यास आश्रम का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। परवर्तीकाल में स्मार्त धर्म के द्वारा गृहस्थों के लिए जो व्यवस्थाएँ दी गयी हैं उनका प्रायः सर्वत्र ही उल्लेख किया गया है। इन व्यवस्थाओं का पालन एवं अनुसरण सभी

---

1 जानामि शील ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥
प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥
नित्यमन्योन्य-संहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद् भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः ॥
विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥ —वा रा 6 16 3 5 7 10

पशा द्वारा समान रूप से किया जाता रहा है। रावण के यहाँ पूजा जाप होम या आदि नियमानुसार किये जाते थे। उसके भवन में नित्य ही पूजा होम और अर्चना होता रहता था किन्तु सभी राक्षस वानप्रस्थ आश्रम-व्यवस्था के जबरदस्त विरोधी रहे हैं। रावण आदि राक्षसों द्वारा दीर्घकाल तक उग्र एवं अत्यन्त कष्टकर तपस्या किये जाने के अगणित उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु एक भी उल्लेख ऐसा प्राप्त नहीं होता जहाँ किसी भी राक्षस के द्वारा अपनी पत्नी के साथ तापसी का जीवन व्यतीत करने का वर्णन किया गया हो। दूसरी ओर ऋषि और मुनियों के वर्णन प्रायः ही उनकी पत्नियों के साथ किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो राक्षसों को या तो गृहस्थ-जीवन की व्यवस्था स्वीकार थी अथवा वे पत्नी परित्याग कर निःशेषतया तापस जीवन बिताने के पक्षधर थे। वन में विराध ने जब राम-लक्ष्मण को जटा चीर धारण किये हुए सीता के साथ देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा था। उसे राम लक्ष्मण के धर्माचरण पर सन्देह हुआ था और उसने सीता को अपनी गोद में उठाकर यही कहा था कि "तुम दोनों एक ओर तो जटा और चीर धारण किये हो और दूसरी ओर धनुष बाण तथा तलवार भी धारण किये हो। तपस्वियों का वेश धारण करने पर भी स्त्री के साथ रह रहे हो। यह परस्पर विरोधी जीवन किस प्रकार बिताया जा रहा है?"[1] विराध के अनुसार या तो जटा चीर धारण कर पूर्णतया तापस जीवन ही धर्मानुकूल है अथवा शस्त्र धारण करते हुए गृहस्थ जीवन-यापन ही विहित है। राम को ऐसी विरोधपूर्ण जीवन अपनाने के कारण उसने पाखण्डी समझा था और उनपर आक्रमण किया था। उसने राम लक्ष्मण को ऋषियों और मुनियों की धर्म परम्परा को कलंकित करनेवाला कहा था।

वाली राम के प्रति पूर्ण आस्थावान रहा है। तारा ने जब उसे युद्ध करने से रोका था तब उसने यही उत्तर दिया था कि धर्म के अनुसार आचरणशील राम किसी भी दशा में प्रतिकूल आचरण नहीं करेंगे। किन्तु राम द्वारा छलपूर्वक वध किये जाने पर उसने कहा था कि जब तक मैंने आपको नहीं देखा था तब तक मैं मानता था कि तुम इस प्रकार कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करोगे किन्तु आज मुझे मालूम हुआ कि तुम केवल दिखाने के लिए धार्मिक पुरुषों जैसा वेश बनाये हुए हो। तुमने साधु पुरुषों का वेष बना रखा है किन्तु वास्तव में पापी और अधर्मी हो। तुमने धर्म के साधन भूत चिह्न जटा वल्कल आदि धारण कर रखे हैं किन्तु तुम्हारे कर्म अत्यन्त क्रूर हैं।

---

1 अङ्कनाऽऽदाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत्।
युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिपाणिनौ ॥
कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ॥ —वा रा 3 2 10 12

शरभग मुनि क आश्रम म एकत्र ऋषि मुनिया ने राम से राक्षसा के अत्याचार की शिकायत की थी। इस अवसर पर भी मुनिया ने यही कहा था कि राक्षसा द्वारा वानप्रस्थ महात्माआ के समुदाय का सहार किया जा रहा हे।[1] लक्ष्मण के द्वारा निरुपित किये जान के पश्चात् शूर्पणखा ने अपने भाई खर के समीप जाकर उसे राम लक्ष्मण का जो परिचय दिया था वह विशेष रूप से द्रष्टव्य हे। उसने खर को बताया था कि वन मं अत्यन्त सुकुमार रूपवान ओर बलशाली दो तरुण आये हुए ह। य दोना वल्कल वस्त्र ओर मृगचर्म धारण किये हुए ह, जितेन्द्रिय ह आर फलफूल ही उनका भोजन हे। यद्यपि य इस प्रकार का तापस जीवन व्यतीत करते ह किन्तु उनके साथ एक रूपवती तरुणी भी हे। इस विचित्र आर विरोधी स्थिति को देखकर तथा राम लक्ष्मण के द्वारा उसके प्रति किय गय व्यवहार को ध्यान मे रखकर शूर्पणखा ने कहा था—म इस बात को समझने मे असमर्थ हूँ कि वे दोना दवता है अथवा दानव ह।[2] शूर्पणखा की इन बातो को सुनकर खर को राम लक्ष्मण ओर सीता तीनो क आचरण पर सन्देह हुआ था आर उसन अपने सहयोगी चोदह राक्षसा को आदश दिया था कि दण्डकारण्य मे दा ऐसे व्यक्ति घुस आये हें जो एक ओर चीर आर मृगचर्म धारण करते हैं ओर दूसरी आर शस्त्रधारी ह तथा एक युवती को भी साथ लिये ह उनको मार डाला जाय।[3] मेघनाद न भी कदाचित् ऐसे ही कारणा को लक्ष्य करके कहा था राम-लक्ष्मण व्यर्थ ही मिथ्याचारी की भाँति तपस्वी वेश धारण किये घूम रहे हे।[4] उपर्युक्त उद्धरण इसी बात क प्रति सकेत करते हे कि राक्षस के रूप म माना जानेवाला वर्ण वानप्रस्थ व्यवस्था का विरोधी था।

उपलब्ध वर्णनो से यह स्पष्ट हे कि राजधर्म का रूप स्थिर हो चुका था ओर

---

1 सोऽय ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद् राम राक्षसैर्हन्यत भृशम् ॥ —वा रा 3 6 15

2 तरुणौ रूपसम्पन्नो सुकुमारो महाबलो।
पुण्डरीक विशालाक्षौ चीर-कृष्णाजिनाम्बरौ ॥
फल मूलाशनी दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्ता भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ ॥
गन्धर्वराजप्रतिमा पार्थिव-व्यञ्जनान्वितौ।
दवौ वा दानवावेतो न तर्कयितुमुत्सहे ॥
तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा ॥ —वा रा 3 19 14 17

3 मानुपा शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्य घोर प्रमदया सह ॥
तौ हत्वा ता च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ। —वा रा 3 19 22 23

4 अद्य हत्वा रण यौ तौ मिथ्याप्रव्रजिता वने।
जय पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणेधिकम् ॥ —वा रा 6 8 17

सभी पक्ष उस परम्परा के अनुवर्ती थे। राम भरत वाली रावण खर शूर्पणखा सभी पात्र एक समान स्थापित मान्यताओं को ही स्वीकार करते हे। रावण ने अपने राज्य म गुप्तचरो की नियुक्ति नहीं की थी इस कारण शूर्पणखा आर मारीच दोना के द्वारा उसकी कडी आलोचना की गयी है। राम रावण और वाली के सवाद स्थला पर एक के द्वारा दूसरे की आलोचना की गयी ह आर जिस प्रकार राम का आरोप रहा है कि रावण ओर वाली धर्म को नही जानते उसी प्रकार वाली ओर रावण ने भी राम पर खुले रूप से आरोप लगाया है कि वह धर्म की मर्यादाओ से अनभिज्ञ थे अथवा उनका पालन नही करते थे।

इन स्थला पर विरोधी धार्मिक मान्यताओ अथवा राजधर्म सिद्धान्ता का कोई सकेत नही। तात्पर्य यह कि राजधर्म विषयक मान्यताएँ सभी पक्षा की प्राय एक ही थी।

राम की राजधर्म विपयक मान्यताएँ अलग से प्रस्तुत की जा रही हे। लक्ष्मण अपने जीवन म यद्यपि राम के अनन्य श्रद्धा के साथ अनुयायी रहे किन्तु यह निर्विवाद ह कि राम क आचार व्यवहार आर सिद्धान्ता का उन्हाने कभी समर्थन नही किया। लक्ष्मण क आचार सिद्धान्तो को भी अलग से ही लिखा गया है।

राक्षसा की परम्परा म शूर्पणखा तक को राजधर्म का अच्छा ज्ञान था। जन स्थान म खर के साथ वह ऐसे ही आवारागर्दी क लिए नही रही थी। प्रभावसम्पन्ना क रूप म वह पूर दण्डकारण्य क्षेत्र म विचरण करती थी। लक्ष्मण द्वारा विरूपित किये जान तथा खर-दूषण आदि क परास्त होने के पश्चात् रावण के समीप जाकर उसने राजधर्म की पूरी समीक्षा की है। दण्डकारण्य म राम ओर लक्ष्मण ने अपना निवास बना लिया था इसकी रावण का खबर तक नहीं लगी थी। इसी प्रकार रावण तक इस बात की भी खबर नही पहुँच सकी थी कि खर दूषण त्रिशिरा तथा जन स्थान मे नियुक्त राक्षस राम के विरुद्ध युद्ध म मार जा चुक थ। इसका कारण यही था कि रावण ने अपन राज्य मे राज्य की सीमाओ पर कही भी गुप्तचर नियुक्त नहीं किय थे। शूपणखा ने रावण की इस विषय म आलोचना की है ओर कहा था कि जा राजा राज्य की देखभाल के लिए गुप्तचरा को नियुक्त नहीं करता उसका राजा बना रहना सम्भव नहीं होता। उस राज्य की प्रजा स्वय ही राजा को असावधान समझ कर हटा देती ह। गुप्तचर नियुक्त न करने के कारण रावण की तीव्र भर्त्सना करने के साथ ही शूर्पणखा न कहा था कि जो राजा निम्नश्रेणी के भोगा मे आसक्त हा स्वेच्छाचारी आर लोभी हा जाता ह समय पर अपने कार्यो का सम्पादन नहीं करता ह प्रजा का जिसका दर्शन दुर्लभ हो जाता ह अभिमानी आर क्रोधी हाता ह वह शीघ्र ही नष्ट हा जाता ह। शूर्पणखा के अनुसार कामिनी आदि भोगा के प्रति अनासक्ति सीमा-सुरक्षा क प्रति सतर्कता राज्य विपयक आवश्यक बाता की पूर्ण जानकारी गुप्तचर-कोष आर नीति की सुरक्षा लोभ आर प्रमादहीनता विनम्रता

सवको-अनुचरो को समुचित वेतन प्रदान करना, निरभिमान, कर्तव्याकर्तव्य का विवेक, कृतज्ञता इन्द्रियजय देशकाल का यथार्थ ज्ञान राजाओ के विशेष गुण है। शूर्पणखा यह मानती थी कि रावण म उपर्युक्त राजोचित गुणो का अभाव रहा है अतएव उसने पूरे आक्रोश के साथ कहा था कि रावण तुम्हारी बुद्धि दूषित है, तुम राजोचित गुणो से वंचित हो इसलिए तुम्हारा राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

रावण का मानना था कि राजा अग्नि इन्द्र सोम यम और वरुण का स्वरूप होता है और उनके गुण-प्रताप पराक्रम, सौम्यता दण्ड और प्रसाद-राजा मे स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहते है। वह केवल अपने स्वार्थ को नहीं प्रत्युत पुर और सैन्यहित का भी पूरा ध्यान रखता था। रावण इतना अधिक जनवादी था कि जरा-जरा सी बात पर मन्त्रियो से परामर्श लेने के लिए बैठ जाता था। उसमे यह दोष अवश्य दिखाई देता है कि मन्त्रियो के सत्परामर्श को अपनी हठवादिता के कारण उसने कभी स्वीकार नहीं किया किन्तु सैद्धान्तिक रूप से मन्त्रियो के साथ विचार विमर्श उसका मानो स्वभाव रहा। आचार्य गुरु और वृद्धो की सेवा को राजनीति की शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम मानता था। शुक और सारण ने राम की सैन्य शक्ति का अनुमान लगाकर जब रावण को उसका परिचय दिया तो उसने उन दोनो को फटकारते हुए कहा था कि तुम लोगो ने आचार्य गुरु और वृद्धो की सेवा का कोई लाभ अर्जित नही किया क्योंकि तुम लोग राजनीति के सार को प्राप्त नही कर सके।

कुम्भकर्ण ने भी राजोचित गुणो का सदैव समादर किया है। रावण द्वारा जब उसको सीताहरण की बात बताई गयी तो उसका उसने अनुमोदन नहीं किया था। उसने कहा था "तुमको इस विषय मे पहले ही परामर्श लेना चाहिए था। जो राजा सब राजकार्य न्यायपूर्वक करता है उसे अपने कृत्यो पर कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। उसने यह भी कहा कि लोक-मर्यादा और शास्त्रनीति के प्रतिकूल कर्मो के परिणाम अपवित्र अभिचारिक यज्ञो मे होम गये हविष्य की भाति अवाछनीय परिणामो के जनक होते है। जो व्यक्ति पहले करने योग्य कार्य को पीछे और पीछे करनेवाले कार्य को पहले करता है वह नीति-अनीति को नहीं जानता। जो राजा सचिवो के साथ विचार करके क्षय वृद्धि और स्थान रूप से उपलक्षित साम दान और दण्ड के पाँच प्रकार-कार्य को प्रारम्भ करने का उपाय पुरुष और द्रव्य रूप सम्पत्ति, देशकाल विपत्ति को टालने का उपाय कार्यसिद्धि का उपाय-प्रयोग म लाता है वही उत्तम नीतिमार्ग पर विद्यमान है।[1] कुम्भकर्ण धर्म अर्थ और काम तीनो म धर्म को ही श्रेयस्कर मानता था और राजा द्वारा धर्म के अनुसरण का ही पक्षधर था।[2] महोदर ने जब रावण का समर्थन किया था तब भी कुम्भकर्ण ने यही कहा था, तुम जैसे

1 वा रा 0 6378 2 वा रा 6 639 10

चापलूसो ने राजा की हॉं में हॉं मिलाकर सब काम चौपट कर दिया है। रावण का पुत्र अतिशय पराक्रम में किसी प्रकार कम नहीं था तथापि उसने कभी किसी ऐसे योद्धा को नही मारा जो उसके साथ युद्ध न कर रहा हो।

वाली ने जिन राजोचित गुणो एव राजधर्म के प्रति सकेत किया है उनको विस्तार से लिखे जाने की आवश्यकता स्वीकार करते हुए उनको आगे लिखा गया है। यहा इतना सकेत करना आवश्यक है कि वाली के अनुसार इन्द्रिय निग्रह सयम क्षमा धर्म सत्य पराक्रम और अपराधियो को दण्ड देना राजा के गुण होते है। निरपराध को दण्ड देना राजधर्म का उल्लघन है। राजा के लिए आवश्यक है कि वह नीति विनय दण्ड और अनुग्रह का पूर्ण विवेक के साथ उपयोग करे।

दुन्दुभि जसा दैत्य भी इस बात को मानता था कि मधुपान से मत्त युद्ध से भागे हुए अस्त्ररहित दुर्बल स्त्रियो से घिरे हुए पुरुष का वध करना भ्रूण हत्या के समान पापाचार है।

रामायण मे नारी की स्थिति निश्चय ही ऐसी दिखाई देती है मानो उस काल तक नारी की प्रतिष्ठा और मर्यादा को सभी पक्षो ने एक मत से स्वीकार नही किया था। रावण द्वारा नारी के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार किया जाता रहा है उसे वह धर्म के अनुकूल ही मानता था। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी को समाज मे प्रतिष्ठा रामायणकाल के बहुत समय पश्चात् ही कभी प्राप्त हुई होगी।

ताटका वध के लिए राम को प्रेरित करते हुए विश्वामित्र ने कहा था कि यदि राजपुत्र को चारो वर्णो के हित के लिए स्त्री हत्या करना पडे तो उससे मुँह नहीं मोडना चाहिए।[1] भरत की मान्यता इसके विपरीत दिखाई देती है। शत्रुघ्न ने आवेश मे आकर जब मन्थरा को बुरी तरह से निर्दयतापूर्वक घसीटकर मार डालने का उपक्रम किया। तब भरत ने उन्हे मना करते हुए कहा था कि स्त्रियॉं सभी के लिए अवध्य होनी है।[2] राम ने यद्यपि विश्वामित्र के निर्देश से ताटका का वध किया था किन्तु वह स्त्री-वध के कदाचित् समर्थक नहीं थे। शूर्पणखा ने राम के सम्बन्ध मे रावण को यही बतलाया था कि स्त्री वध के भय के कारण ही राम ने उसे केवल अपमानित करके भगा दिया है।[3]

रामायण मे सुमित्रा माण्डवी श्रुतिकीर्ति का मात्र नामोल्लेख ही किया गया है। दशरथ भरत अथवा शत्रुघ्न के जीवन मे इनका कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता। दशरथ की कोसल्या सुमित्रा और कैकेयी के अतिरिक्त साढे तीन सौ रानियों का उल्लेख प्राप्त होता है। रावण के राजमहलो मे भी स्त्रियो की कमी नहीं थी। राम के पश्चात् ही कदाचित् बहुविवाह की प्रथा समाप्त हुई होगी। नारी के साथ बलात्कार को निन्दनीय समझा जाने लगा था किन्तु उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ था जो

---

1 वा रा 1 5 17 2 वा रा 7 8 21 3 वा रा 3 34 12

पश्चात् काल म स्मात धर्म व्यवस्था क द्वारा न्यिा गया ह। दशरथ न राम का युवराज बनाने के पूर्व अपनी किसी भी रानी स परामर्श तक लना उचित नही समझा। वाली ने तारा क आर रावण ने मन्दादरी के परामर्श का व्यर्थ की बकवास मानकर अनसुना कर दिया था। नारी का किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। स्वय राम इसी नीति क समथक रहे ह कि गुरुजना का पुत्रा और स्त्रिया पर पूरा अधिकार हाना ह आर वे उनको चाहे जसी आज्ञा दे सकत ह।[1] सन्तति पर भी उसका अधिकार नही होता था। वाली की पत्नी तारा पूणतया आर्यो द्वारा प्रतिपादित धर्म को ही मानती थी किन्तु वालि वध क पश्चात् जब अगद का प्रश्न उपस्थित हुआ तब उसने यही कहा था कि न ता म वानरा के राज्य की स्वामिनी हू ओर न मुझे अगद के लिए ही कुछ करने का अधिकार ह। पुत्र का वास्तविक अभिभावक पिता ही हाता ह माता नहीं हाती।[2] वसिष्ठ ने अवश्य ककेयी को फटकारत हुए कहा था कि राम के वन गमन पर सीता राज्य सिहासन पर बठकर राज्य का पालन करेगी किन्तु उनकी यह वात सभी प्रकार स अनसुनी ही रह गयी थी।

रावण के सम्बन्ध म परस्त्री हरण के आरोप बार बार दुहराय गय ह आर वेदवती से लेकर सीता हरण तक की घटनाएँ उसक साथ जुडी हुई ह। कुम्भकण के जीवन की किसी ऐसी घटना का उल्लेख रामायण म प्राप्त नही होता जो उसके द्वारा परस्त्री हरण की पुष्टि कर सके। इसके पश्चात् भी राम को कुम्भकण का परिचय देते हुए विभीषण ने उस पर परस्त्री हरण का आरोप लगाया ह। मारीच द्वारा रावण की सीता हरण के लिए निन्दा की गयी है आर किसी राक्षस के द्वारा इसका समर्थन नही किया गया। हनुमान लका म चारा ओर घूमते फिरे थे आर वहाँ के प्रासादा म उनको अनेक स्त्रिया भी दिखाई दी थी। उनको न कोई स्त्री अपहृता के रूप म रोती चीखती ही मिली थी और न एसी दिखाई दी जिसका आचरण धर्म प्रतिकूल प्रतीत हुआ हो। वे सच्चारिणी की भाँति अपने पतिया के साथ ही सोती मिली।[3] उनके स्वभाव ओर मनावृत्तिया मे किसी प्रकार की विकृति नही थी।[4] प्राय सभी धर्मपरायण ओर पति सेवा मे तत्पर थी।[5] प्रहस्त ने रावण को परामर्श दिया था कि सीता को लाटा दना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रकार रावण के मन्त्री सुपार्श्व ने रावण को सीता का वध करने से इस कारण राका था कि नारी का वध करना अधर्म है।

रावण के ऊपर प्राय सभी के द्वारा परस्त्री हरण का दोप लगाया गया हे आर प्राप्त सन्दर्भो के अनुसार उसक राजप्रासाद म स्त्रियो की सख्या सीमित नही दिखाई

---

1 वा रा 2 101 18 2 वा रा 4 21 14 15
3 स्वपन्ति नार्य पतिभि सुवृता। —वा रा 5 5 9
4 ततो वरार्हं सुविशुद्धभावास्तेषा स्त्रियस्तत्र महानुभावा —वा रा 5 5 17
5 अन्या पुनर्हर्म्यतलोपविष्टास्तत्र प्रियाङ्केषु सुखोपविष्टा।
भर्तु परा धर्मपरा निविष्टा ददर्श धीमान् मदनोपविष्टा। —वा रा 5 .. 19

देता। यह सब कुछ हाते हुए भी हनुमान ने जा कुछ वहाँ दखा उसकी उपेक्षा करना भी न्यायसगत नही हागा। यद्यपि वहाँ राजर्षियां ब्राह्मणा दत्या गन्धर्वो आर राक्षसा *की अनक स्त्रियाँ रतिश्रम से थकी हुई सो रही थी* किन्तु *हनुमान न स्वय उस बात* का अनुभव किया था कि वे सभी काम क वश होकर स्वच्छापूर्वक रावण की पत्निया वन गयी थीं। रावण के राजमहल म हनुमान ने एसी एक भी स्त्री नही देखी जिसे रावण वल पराक्रमसम्पन्न हाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक हर लाया था। वे सब रावण क अलाकिक गुणो पर मुग्ध हाकर ही उसकी आर माना खिची चली आयी थी आर उनक मन म रावण के अतिरिक्त किसी भी अन्य पुरुष के प्रति लशमात्र भी अनुराग नही था।[1]

पूरी रामायण म दा सन्दर्भ ऐसे उपलब्ध हाते ह जिनम से एक के अनुसार नारिया का वलपूर्वक अपहरण राक्षसा का धर्मविहित आचरण रहा है। यह बात अशाक वाटिका म रावण द्वारा सीता से कही गयी ह।[2] इसी प्रकार सीता को अशोक वाटिका मे पहुँचाने स पूर्व रावण द्वारा उनको अनेक प्रकार से फुसलाने का प्रयास किया गया ह। इस अवसर पर भी रावण ने सीता से कहा था कि धर्म लोप की तुम्हारी आशका व्यर्थ है क्योंकि इस प्रकार स्थापित सम्बन्ध आयधर्म के अनुकूल ही ह।[3] इन दो सन्दर्भो क अतिरिक्त किसी भी अवसर पर किसी राक्षस अथवा रामायण क अन्य पात्र क द्वारा परस्त्री गमन अथवा नारी क अपहरण का धर्म के नाम पर समर्थन नही किया गया।

रामायण म इस आशय के सन्दर्भ उपलब्ध नहीं हाते जिनके आधार पर यह माना जा सक कि नारी का पूजनीया अथवा समादरणीया माना जाता था। नारी के प्रति किसी भी पात्र के हृदय मे सम्मान की भावना दिखाई नही देती। राम वनगमन क समय कोसल्या न प्रयास किया था कि राम दशरथ आर कक्यी के आदेश की अवमानना कर अयोध्या म कोसल्या की सेवा करते रहे। वह नारी को पुरुष के समकक्ष ही मानती थी आर इसी मान्यता क बल पर उन्हाने राम से कहा था कि जस गारव के कारण राजा दशरथ तुम्हारे लिए पूज्य है उसी प्रकार मे भी तुम्हारी पूजनीया हूँ। म तुमका वन जान की आज्ञा नही देती।[4] किन्तु कोसल्या की मान्यताआ क विपरीत राम माता की अपक्षा पिता को ही अधिक महत्त्व देते थे। *उन्हाने कण्डु मुनि आर सगरपुत्रा का उदाहरण दिया आर अन्त मे परशुराम का प्रमाण* प्रस्तुत किया आर कहा कि पिता की आज्ञा का पालन करते हुए परशुराम ने अपनी माता रेणुका की हत्या कर डाली थी। राम ने माता की आज्ञा की अवहेलना कर पिता की आज्ञा क पालन को धर्म माना था।[5] रावण ता किसी नारी के सामने

---

1 वा रा 5 9 68 70 2 वा रा 5 20 5 3 वा रा 3 55 34 4 वा रा 2 21 25
5 वा रा 2 21 30 35 37

नत-मस्तक हाकर प्रणाम करना भी अपमानजनक मानता था। उसन सीता स स्पष्ट शब्दो म कहा था कि वह किसी स्त्री क समक्ष सिर झुकाकर प्रणाम करने के लिए भी तयार नही। नारी की नियति पति सेवा म अपना जीवन होम देन तक सीमित रही ह आर रामायण क सभी नारी पात्रा का यही जीवन रहा है।

पतिव्रत धर्म की महत्ता का प्राय सभी पात्रा द्वारा स्वीकार किया गया ह। अनसूया कासल्या आर सीता न पातिव्रत धर्म को नारी के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूण माना है। अन्य पात्रा ने भी उसका पूरी निष्ठा के साथ समर्थन किया ह। पति की तुलना म पुत्र की महत्ता का सर्वथा अस्वीकार ही किया गया ह। कासल्या न जब सीता का पति सेवा का उपदेश दिया ता सीता ने कहा था कि व पति के महत्त्व का पहल से जानती ह। जिस प्रकार विना तार के वीणा नहीं बजती बिना पहिय का रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार स्त्री सा बेटा की माँ हान पर भी पति के बिना सुखी नही रह सकती।[1]

रामायण म नारी को रक्षणीया ही अधिक माना गया ह। चित्रकूट म भरत स राम न प्रश्न किया था कि तुम्हार द्वारा तुम्हारी स्त्रियाँ सुरक्षित रहती ह अथवा नहीं।[2] जटायु ने रावण स यही कहा था कि जिस प्रकार पराये पुरुष से अपनी स्त्री की रक्षा की जाती है उसी प्रकार दूसरा की स्त्रियो की भी रक्षा की जानी चाहिए।

स्मार्त धम के व्यवस्थापका द्वारा नारी म जिन प्रकृत दोपा की परिकल्पना की गयी ह उन्ह रामायण क पात्र पहले ही स्वीकार करते है। कोसल्या साध्वी और दुष्ट स्वभाव की स्त्रिया का अलग-अलग मानती ह। सीता को उपदश दते समय उन्होने दुष्ट स्त्रिया क स्वभाव की विवेचना करते हुए कहा था कि जा स्त्रिया अपने पति के द्वारा सम्मानित हाकर भी सकट म पड़ने पर उसका आदर नहीं करती असती कहलाती ह। असती स्त्रिया का यह स्वभाव होता हे कि वे पहले तो पति के द्वारा यथेष्ट सुख भोगती ह परतु जब वह थोड़ी सी भी विपत्ति म पड जाता है तब उस पर दापारोपण कर उसका साथ छोड दती ह। असती स्त्रियाँ सदेव झूठ बालनेवाली विकृत चप्टा करनेवाली दुप्ट पुरुपा से ससर्ग रखनवाली पापपूर्ण विचारावाली आर छाटी सा बात पर पति के प्रतिकूल आचरण करनवाली होती ह। दुष्टा स्त्रिया का स्वभाव इतना अधिक कलुपित होता ह कि उत्तम कुल उपकार विद्या आभूपण कुछ भी उनको वश म नहीं कर सकता। कासल्या क प्रसग मे सती आर असती क रूप म वर्गभेद करक नारी की गरिमा की रक्षा करने का कुछ प्रयास किया गया ह किन्तु अन्य पात्रा ने उसके प्रकृतिगत दोपा को स्पष्ट शब्दो म स्वीकार किया ह। महर्पि अगस्त्य न राम से सीता का विशेप ध्यान रखने के विपय म उपदेश दत हुए कहा था कि सृष्टि के आदिकाल स ही नारियो का प्राय यही स्वभाव रहा है

---

1 वा रा 2 39 29 2 वा रा 2 100 49

कि यदि पति धनसम्पन्न स्वस्थ एव सुखी ह तभी वेक वे उसके प्रति प्रम भाव रखती ह किन्तु अन्यथा अवस्था म उसका परित्याग कर देती ह। महपि अगस्त्य नारिया म विद्युत् सी चपलता तथा शस्त्रा सी तीक्ष्णता को स्वीकार करत थ। मारीच वध के अवसर पर जब सीता क अनुरोध का अस्वीकार करते हुए लक्ष्मण ने राम के पास जाने की अनिच्छा प्रकट की थी आर जब सीता ने लक्ष्मण स कुछ कटु वाक्य कहे थ ता लक्ष्मण न भी यही कहा था कि इस प्रकार की अनुचित आर प्रतिकूल बात कहना स्त्रिया क लिए आश्चयजनक नही क्याकि नारी का स्वभाव ही इस प्रकार का हाना ह। लक्ष्मण क अनुसार स्त्रियाँ विनय आदि गुणा स रहित चचल कठोर स्वभाव तथा परिवार म कलह उत्पन्न करनवाला हाती ह। राम स्वय स्त्रिया पर विश्वास करन के समर्थक नही रहे। उन्हाने भरत स प्रश्न किया था कि तुम अपनी स्त्रिया पर अधिक विश्वास करते हुए उनका गापनीय बात बताने की भूल तो नही कर बठत हा?

पर पुरुष का स्पर्श नारी के लिए अधर्म माना जाता था। सीता इस सिद्धान्त क प्रति इतनी अधिक निष्ठावान थी कि उन्हाने रावण के यहा बन्दिनी रहकर सभी प्रकार की यातनाआ का सहन करना स्वीकार किया था किन्तु हनुमान के कधे पर बठकर राम क पास लाटना स्वीकार नही किया। हनुमान भी इस धर्म व्यवस्था के समथक थ अतएव उन्हान भी सीता की बात को सहज ही मान लिया था। दूसरे की स्त्री का दखना भी धर्म प्रतिकूल माना जाता था। लक्ष्मण ने सीता क साथ इतनी लम्बी अवधि व्यतीत करन पर भी उनका मुख नही दखा था। इसी प्रकार लक्ष्मण जब सुग्रीव क पास उस समझाने के लिए उसक राजमहल म गय ता परस्त्री-दर्शन क अधर्म से बचन क लिए वह बाहर ही खडे रह। जब तारा न उनको आकर समझाया तभी उन्हान महल क भीतर प्रवेश किया था। इसी प्रकार हनुमान को भी रावण क महला म स्त्रिया को दखकर धर्म नष्ट हो जाने का भय हुआ था।

सुर आर असुर अथवा राक्षस नाम स अभिहित वर्गो म एक उल्लखनीय अन्तर उपास्य का दिखाई दता ह। असुर इन्द्र के विराधी रहे परन्तु उनका उपास्य कान था इसका स्पष्ट सकेत करना कठिन है। राक्षस वर्ग क प्राय सभी व्यक्ति ब्रह्मा का ही अपना उपास्य मानत रहे ह। उस वर्ग म विष्णु का किचित् भी महत्त्व प्राप्त नहा। यद्यपि पुराणा म ब्रह्मा क पूजाच्युत हान क अनेक सन्दर्भ प्राप्त हाते ह तथापि इस विषय म अभी गम्भीर शाध की पर्याप्त गुजायश ह कि राक्षसा ने ब्रह्मा का अपना उपास्य किन कारणा स बनाया था आर वह कान स कारण ह जिनका आधार मानकर ब्रह्मा का उस पद स च्युत कर दिया गया। कलाश पतन स दव जाने पर रावण न यद्यपि शिव का ही प्रसन्न किया था किन्तु विभिन्न प्रमाणा क आधार पर उस ब्रह्मा का भक्त हा माना जाएगा। ताटका के पिता सुकेतु ने ब्रह्मा की तपस्या करके ही पुत्री ताटका का प्राप्त किया था। विराध भी ब्रह्मा का ही उपासक था।

मेघनाद ने इन्द्र को ब्रह्मा के समझाने पर ही मुक्त किया था। मेघनाद को निकुम्भिला का उपासक भी कहा जाता है किन्तु रामायण के सन्दर्भो से निकुम्भिला का अर्थ स्पष्ट नही होता।[1] वस्तुत उपासना और धर्म राक्षसो के आचार का एक विशिष्ट अग रहा है।

कालान्तर म आर्यो के सुर पक्ष ने वैदिक मार्ग से किचित् हटकर स्मार्त व्यवस्था को अपना लिया था तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप अपने नित्य कर्मो मे भी सशोधन कर लिया था किन्तु रामायणकाल तक राक्षसो न वैदिक मार्ग स हटना स्वीकार नही किया। रामायण म वसिष्ठ को यज्ञकर्ताओ म नही अपितु जप करनेवालो म श्रेष्ठ माना गया है। कौसल्या प्राय ही देवता के समक्ष हाथ जोडकर बैठी दिखाई देती है। राम का जीवन भी वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञ यागादि से इतना अधिक नही जुडा रहा जितना स्मार्त धर्म और वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था स दिखाई देता है। इसके विपरीत रावणादि राक्षस पूरी तरह वैदिक यज्ञ याग आदि का ही अनुसरण करते रहे।

रावण के भवन म नित्य शखनाद पूजा होम होते रहते थे। अशोक वाटिका म निवास करनेवाले सभी राक्षसो के घरो म प्रतिदिन प्रात काल वेदज्ञ याज्ञिको द्वारा वेद पाठ करने का अपरिहार्य नियम था। श्राद्धादिक प्रेत कार्यो म भी रावण की आस्था कम नही थी। इन्द्रजित् के मारे जाने पर उसने शोक प्रकट करते हुए कहा था कि धर्म व्यवस्था के अनुसार मेरी मृत्यु पहले होनी चाहिए थी ताकि मेरा पुत्र मेरे प्रेत कार्य सम्पन्न कर सकता किन्तु यह धर्मविरुद्ध कार्य हो रहा है कि अब पिता पुत्र के प्रेत कार्यो को सम्पन्न करेगा। उग्र तपस्या के सम्बन्ध म भी रावण स्वय को राम की अपेक्षा आगे मानता था। अशोक वाटिका मे सीता स उसने स्पष्ट शब्दो में कहा था कि राम धन पराक्रम और यश म ही नही वरन् तपस्या की दृष्टि से भी उसकी समानता नही कर सकते। स्वय हनुमान ने यह स्वीकार किया है कि रावण न केवल धर्म और तपस्या के द्वारा ही ऐश्वर्य अर्जित किया था। विभीषण ने रावण को धर्मज्ञ तो कहा ही है वे उसको धर्म का विग्रह ही मानते रहे। विभीषण के ही शब्दो म रावण ने अपने जीवनभर याचको को भरपूर दान दिया भृत्यो का भरण पोषण किया और मित्रो की आर्थिक सहायता की। वह पूरी तरह निष्ठा के साथ अग्निहोत्री महातपस्वी वेदान्तवेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मो में ही लगा रहा था।

कुम्भकर्ण भी यज्ञ यागादि के प्रति पूर्ण आस्थावान था। वह यज्ञ की पवित्रता के प्रति सावधान था और मानता था कि यज्ञ कार्य पूरी पवित्रता के साथ सम्पन्न किया जाना चाहिए। अपवित्र आभिचारिक यज्ञ मे डाला गया हविष्य निरर्थक होता है। मेघनाद का तो पूरा जीवन ही यज्ञ-यागादि करते हुए व्यतीत हुआ था। उसने

---

1 निकुम्भिला शब्द का प्रयोग किसी स्थान-विशेष के लिए किया गया है।

कृष्णाजिन के अतिरिक्त दूसरा वस्त्र पहना ही नहीं और शिखाधारी बनकर सदैव हाथ म कमण्डल लिये घूमता रहा। अपने छाट से जीवन मे उसन अग्निष्टोम अश्वमेध आदि सात यन कर डाल थे। वर प्राप्ति के लिए उसन माहेश्वर यन किया था। यन विनान का वह प्रकाण्ड पण्डित था आर राक्षसो के अभ्युदय क लिए भी उसन मात्र विधिपूर्वक यन करने का मार्ग अपनाया था। निकुम्भिला म उसक द्वारा किये गये यज्ञ कर्म को देखकर सभी लोग काप गये थे। प्रतिदिन भूत वलि उसका नियम था आर इसको पूरा किये बिना वह कभी युद्धभूमि मे नही उतरा। मेघनाद के हवन आर अग्निपूजा के रामायण म इतने अधिक सन्दर्भ उपलब्ध होते ह मानो इसक अतिरिक्त उसका कोई काम ही न रहा हो। रामायण म उसे महात्मा ओर समाहितात्मा कहा गया हे। कदाचित् अपने इन्ही गुणा के कारण उसने विभीषण से कहा था कि तुम धर्म को कलकित करते हा आर राम लक्ष्मण के सम्बन्ध म भी कहा था कि वे व्यर्थ ही मिथ्याचारी की भाँति तपस्वी का वेष धारण किये घूमते रहते ह। रावण का दूसरा पुत्र अतिकाय भी वेद शास्त्रो का प्रकाण्ड पण्डित था और रावण का मातामह माल्यवान सिद्धान्त आर व्यवहार दोना दृष्टियो से यह मानता था कि धर्म ही शक्ति वृद्धि का मूल हे अधर्म से शक्ति का ह्रास हा जाता है। माल्यवान क अनुसार देवताओ ने धर्म का आश्रय लेकर अपनी शक्ति म वृद्धि की थी आर रावण ने अधर्म के द्वारा अपनी शक्ति क्षीण कर ली थी।

रावण आदि क वेदशास्त्रविद् होन तथा यज्ञ यागादि के प्रति श्रद्धावान होन पर भी विश्वामित्र तथा अन्य ऋषियो के द्वारा उनको यज्ञ विध्वस का अपराधी कहा गया ह। अतएव यह प्रश्न भी विचारणीय हे कि इस प्रकार क परस्पर विरोधी विचारो का आधार क्या रहा ह। रावण कुम्भकर्ण मेघनाद आदि का एक ओर वैदिक कर्मकाण्ड तथा यनविधान क प्रति इतना अधिक श्रद्धावान बताया गया कि वह उनके जीवन का अभिन्न अग जेसा रहा ओर दूसरी ओर उनको यन विध्वसक ऋषिहन्ता धर्मनाशक कहा जाकर मरवा डाला गया। यह एक ऐसा प्रश्न ह जिसका उत्तर खोजने की दिशा म अभी तक प्रयास किया ही नही गया। ऋषियो ने राक्षसो के विरुद्ध यन विध्वस की शिकायतो क ढेर लगा दिये किन्तु इसका प्रमाण खोजना सरल नही कि किस राक्षस द्वारा कब कहा अथवा किस ऋषि के यज्ञ म विघ्न उपस्थित किया गया। राम आर लक्ष्मण यन यागादि के प्रति अधिक आस्थावान दिखाई नही देते ओर वह वनवास की पूरी अवधि म कवल नैमित्तिक नियमो का ही पालन करते रहे। न उनके द्वारा कोई यन विधि सम्पन्न ही की गयी और न राक्षसो को उसम बाधा डालने का अवसर ही मिला। इसके विपरीत राम आर विभीषण ने लक्ष्मण के द्वारा ही इन्द्रजित् क हवन आर पूजा कार्य म बाधा उपस्थित कर दी थी।

ऋषियो द्वारा राक्षसो के विरुद्ध लगातार शिकायते की जाती रही ह ओर राम ने भी उन शिकायतो को यथावत् दुहराया हे। रावण के लिए 'उच्छतार च धर्माणा

यन विघ्नकर, त्रिदशारि मुनीन्द्रघ्न जसे अनेक शब्दा का प्रयोग किया गया हे। खर दूषण क सम्बन्ध म यह शिकायत की गयी हे कि यज्ञ के समय वे ऋषिया की यन वेदी पर रुधिर आर मास की वर्षा कर दिया करते थे। इन सव वातो का इतन जार स प्रचारित किया गया ह कि दूसरा पक्ष हमारे विचार आर चिन्तन की परिधि स पूर्णतया वाहर हा गया। इस स्थिति म विस्मृत आर अछूते सन्दर्भो की ओर विचारका का ध्यान आकृष्ट करना असमीचीन नहीं।

रामायण म सर्वप्रथम दशरथ द्वारा किये गये अश्वमेध यन के समय देवताओ द्वारा विष्णु से अवतार ग्रहण करने का अनुरोध करते हुए रावण के विरुद्ध शिकायतो का उल्लेख किया गया हे। इस स्थल पर देवताओ ने कहा ह कि रावण न तीना लोको के प्राणिया का परेशान कर रखा ह। वह दुष्टात्मा ऊँची स्थिति म पहुँचे हुए व्यक्तिया स द्वेष करन लगता ह ओर इन्द्र को परास्त करने का अभिलाषी हे। वह ऋषिया यक्षा गन्धर्वो ब्राह्मणा आर असुरा को कष्ट देता हे आर उनका अपमान करता हे। इन्ही शिकायतो के आधार पर देवताओ न रावण का वध करने के लिए विष्णु से अनुराध किया था। विश्वामित्र ने दशरथ से राम को माँगते हुए कहा था कि मारीच आर सुवाहु ने उनकी यन वदी पर रुधिर ओर मास की वषा कर दी थी। यहाँ विश्वामित्र के द्वारा मारीच ओर सुवाहु दोना को वलवान आर सुशिक्षित कहा गया ह। लक्ष्मण क अनुसार भी मारीच ने कपटवेष धारण कर अनेक राजाओ को मार डाला था। उल्लखनीय ह कि मारीच किसी राक्षस का नही ताटका यक्षिणी का पुत्र था। उसे महात्मा मारीच आर वाक्यविशारद कहा गया हे। मारीच कृष्ण मृगचर्म का धारण कर जटा-जटधारी नियताहार होकर एक तपस्वी की भांति आश्रम म रहा करता था। उग्र तपस्या करके ही उसने वरदान प्राप्त किया था। रावण द्वारा राम का विराध किय जाने का उसने विरोध किया था ओर रावण से कहा था कि तुम विभीषण आदि सभी धर्मात्मा मन्त्रिया के साथ सलाह करके अपन कर्तव्य का निश्चय करा। अपने आर श्रीराम के गुण-दोषा पर सम्यक् रीति से विचार करके दोना की शक्तिया को समझो आर उसके पश्चात् ही कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करना हितकर हागा। जो लाग आचार विचार से शुद्ध ह ओर निष्पाप ह वे भी पापियो के सम्पर्क म आने से नष्ट हा जाते ह। परस्त्री ससर्ग का मारीच सवसे वडा पाप मानता था। मारीच न स्वय को ऋषि मासभक्षी कहा हे। उसने यह तो स्वीकार किया ह कि वह विश्वामित्र की वेदी की तरफ दोडा था किन्तु विश्वामित्र का आरोप ह कि उसन यन वदी पर रक्त आर मास भी फेंका था।

रावण के सम्बन्ध म सकेत किया जा चुका है कि वह वेद और वेदिक कर्मकाण्ड के प्रति पूरी तरह निष्ठावान था। वह विधिपूर्वक ब्रह्मचय व्रत का पालन करते हुए वेदा का अध्ययन कर गुरुकुल से स्नातक होकर निकला था। जब वह सीता का

वध करने के लिए उद्यत हुआ तो उसके शुद्ध आचारवाले बुद्धिमान् मन्त्री सुपार्श्व ने उससे कहा था कि वेदविद् और गुरुकुल के स्नातक होकर भी तुम एक स्त्री का वध जैसा धर्म विरुद्ध कार्य किस प्रकार करना चाहते हो? सुपार्श्व की बात सुनकर ही रावण सीता वध के विचार को त्यागकर अपने महल में लौट आया था। रावण विभीषण और कुम्भकर्ण तीनों भाइयों ने अपने जीवन के प्रारम्भ में ही जो वन-आश्रम में उग्र तपस्या की थी रावण ने उस आश्रम में दस सहस्र वर्ष तक निरन्तर उपवास किया था और प्रत्येक सहस्र वर्ष के पूर्ण होने पर अपना एक मस्तक काटकर होम देता था। इसी प्रकार कुम्भकर्ण ने भी इन्द्रियजयी होकर दस सहस्र वर्ष तक पचाग्नि और भयङ्कर जाड़े के दिनों में भी जल के भीतर वीरासनबद्ध रहकर तपस्या की थी। जिस रावण में स्वयं अपना मस्तक काटकर होम कर देने की सीमा तक निष्ठा विद्यमान थी उसी को यज्ञविघ्नकर कहना कुछ अटपटा सा प्रतीत होता है। शिव को प्रसन्न करने के लिए भी रावण ने एक सहस्र वर्ष तक सामवेद के मन्त्रों से स्तवन किया था। रावण के इस आचार और कर्मविधि को दृष्टिगत रखकर ही विश्वामित्र ने दशरथ से कहा था कि रावण स्वयं यज्ञ में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं करता वरन् उसकी प्रेरणा से मारीच और सुबाहु विघ्न उपस्थित करते हैं। ऋषियों के प्रति रावण की इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उनके वचनों को वह कभी मिथ्या नहीं मानता था। ऋषियों को रावण के विरुद्ध केवल एक ही शिकायत रही थी। वह शिकायत यह थी कि उसने नन्दन वन में क्रीडा करते हुए ऋषियों गन्धर्वों और अप्सराओं को जमीन पर लाकर खड़ा कर दिया था। यह सब होते हुए भी राम के अनुसार रावण न तो धर्म को जानता था न सदाचार को समझता था और न कुल मर्यादा का ही ध्यान रखता था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार राम ने रावण को धर्माचरण से अनभिज्ञ कहा है उसी प्रकार रावण भी राम को धर्म-त्यागी अधर्मात्मा मानता था। उसने मारीच से कहा था कि दशरथ ने क्रुद्ध होकर राम को पत्नी सहित घर से निकाल दिया है। राम शीलरहित क्रूर स्वभाव मूर्ख लोभी अजितेन्द्रिय त्यक्तधर्मा अधर्मात्मा और समस्त प्राणियों का अहित करने में लगे हुए हैं। उन्होंने बिना किसी वैर विरोध के केवल अपने बल का आश्रय लेकर मेरी बहिन शूर्पणखा को विरूपित कर दिया है अतएव मैं भी उनकी पत्नी का बलपूर्वक अपहरण करूँगा। रावण पुत्र अक्षयकुमार के सम्बन्ध में स्वयं हनुमान ने यह स्वीकार किया है कि वह अपने गुण-कर्मों के कारण नागों यक्षों और मुनियों के द्वारा भी पूजित रहा था।

रावण द्वारा नन्दन वन में क्रीडारत ऋषियों को जमीन पर लाये जाने का सन्दर्भ उद्धृत किया जा चुका है। यह भी संकेत किया जा चुका है कि राक्षस वानप्रस्थ आश्रम-व्यवस्था अर्थात् स्त्री के साथ अरण्य निवास के विरोधी थे। चित्रकूट में राम

के सीता सहित निवास करने पर वहाँ क ऋषि-मुनि अपने वृद्ध कुलपति के साथ चित्रकूट छाडकर चल गए थे। राम के द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर उन्हाने कहा था कि जब स तुम सीता के साथ यहा रहने लगे हो तब से राक्षसों के उपद्रव म वृद्धि हुई हे। इसी प्रसग म उन ऋषिया ने यह भी कहा था कि राक्षस अज्ञात रूप से आश्रमा मे आ जाते ह आर अल्पज्ञ तथा असावधान तापसो का विनाश करते हुए सानन्द विचरण करत ह। अत्रि के आश्रम म एकत्र ऋषि मुनिया न भी राम से यही कहा था कि इस महारण्य म राक्षस तथा हिंस्र जन्तु उन तपस्विया और ब्रह्मचारिया का खा जाते हैं जा उनका अपवित्र तथा असावधान अवस्था मे मिलत हैं।

उपर्युक्त आधारा पर निम्नलिखित निष्कर्ष उभरकर ऊपर आ जाते ह—

राक्षस स्वय वेदविद् आर यज्ञ यागादि तथा वैदिक कर्मकाण्ड को स्वीकार करते हुए उसका अनुसरण करते थे। वर्णाश्रम विशेषतया वानप्रस्थ आश्रम-व्यवस्था के विराधी थे। केवल उन्ही ऋषि मुनिया को परेशान करते थ जो अल्पज्ञ अपवित्र रहकर यज्ञ आदि करते अथवा निष्ठाविहीन हाते हुए भी असावधानीपूर्वक यज्ञ करने का प्रदर्शन करते थे।

रामायणकाल तक आते-आते धर्म व्यवस्था का रूप प्राय बदल चुका था। वैदिक धर्म क स्थान पर स्मार्त धर्म व्यवस्था का अधिक प्रतिष्ठा दी जाने लगी थी। इन्द्र वैदिक देव परिवार के वरिष्ठतम देवता रहे ह किन्तु कालान्तर म इन्द्र की सत्ता का मूलाच्छेद करने का किस प्रकार प्रयत्न किया जाता रहा उसका सकेत किया जा चुका ह। अनेक ऋषियो ने भी इन्द्र को क्रुद्ध होकर शाप देन और उस नीचे गिरान म कभी सकोच नही किया। विश्वामित्र भी कदाचित् इन्द्र की सत्ता आर उसके अधिकारा मे परिवर्तन के समर्थक थे। इसी कारण उन्हाने अपन विचारो के अनुरूप दूसरे इन्द्र की प्रतिष्ठापना का सकल्प लिया था। महर्षि गोतम ने भी इन्द्र को अण्डकोषविहीन कर नपुसक बना दिया था। इन्द्र क अतिरिक्त अन्य वैदिक देवताआ की प्रतिष्ठा भी समाप्तप्राय हा चुकी थी। अग्नि को देवता के रूप म जो प्रतिष्ठा वैदिक धर्म म प्राप्त ह वह रामायणकाल म नही रही थी। उसे प्राय साक्षी के रूप म ही स्वीकार किया जाता रहा ह। विष्णु को केवल एक पक्ष द्वारा मान्यता प्राप्त थी। असुर अथवा राक्षस विष्णु के स्थान पर प्रजापति ब्रह्मा का ही सर्वोपरि मानते रहे थ। मरुत्, वरुण कुबेर यम नासत्य आदि अन्य वैदिक देवताआ का रामायणकाल म पता तक नही चलता। रावण को तो इन सबका इतना बडा विराधी चित्रित किया गया है कि उसने इनको जीतकर कारागृह म डाल दिया था। यदि रावण अथवा राक्षस वर्ग को छाड भी दिया जाय तो भी राम लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान विभीषण कासल्या सीता जनक वसिष्ठ आदि किसी के द्वारा भी उपर्युक्त वैदिक देवताआ को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। विश्वामित्र भरद्वाज आर हनुमान में

करनी चाहिए। यही सनातन धर्म है। सीता का भी उन्होने गुरुजनो की सेवा का उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था पिता की सेवा करना कल्याण प्राप्ति का जैसा प्रबल साधन है वैसा न सत्य है न दान है न मान है न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही है। गुरुजनो की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग धन धान्य विद्या पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नहीं है। माता पिता की सेवा मे लगे रहनेवाले महात्मा पुरुष देवलोक गन्धर्वलोक ब्रह्मलोक गोलोक तथा अन्य लोको को सहज ही प्राप्त कर लेते है। इसलिए मै पिता की आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ क्योकि यही सनातन धर्म है। विश्वामित्र भी पिता की आज्ञा पालन को सबसे बडा धर्म मानते थे। शुन शेप की रक्षा करने के लिए जब विश्वामित्र के पुत्रो ने उनकी आज्ञा मानने से इनकार किया तो उसे अधर्म मानकर उन्होने अपने पुत्रो को ही शाप दे दिया था। यह भी उल्लेखनीय है कि राम एक ओर पिता की आज्ञा पालन को धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण अग मानते है और दूसरी ओर उन्होने दशरथ के द्वारा महर्षि जाबालि को अपना याजक नियुक्त किये जाने की निन्दा भी की है। जाबालि की मान्यताओ से राम यद्यपि सहमत नही थे किन्तु जाबालि की नियुक्ति दशरथ के द्वारा की गयी थी और राम को इस प्रसग मे दशरथ की निन्दा करने मे तनिक भी सकोच नही हुआ। बाली के प्रश्नो का उत्तर देते हुए राम ने उस पर आरोप लगाया था कि उसने सुग्रीव की पत्नी रुमा का जो उसकी पुत्रवधू के समान है कामवश उपयोग किया और इस प्रकार उसने सनातन धर्म का परित्याग किया। उपर्युक्त उद्धरणो के अनुसार माता पिता अथवा गुरुजनो की सेवा उनकी आज्ञापालन तथा छोटे भाई की पत्नी और पुत्रवधू के साथ साथ काम भावना से रहित सद्व्यवहार सनातन धर्म के प्रमुख स्तम्भ है। हनुमान के समुद्र पार करने के अवसर पर मैनाक ने समुद्र के प्रतिनिधि रूप मे उनको रोककर उनका स्वागत करना चाहा था। उस समय मैनाक ने भी सनातन धर्म की दुहाई देते हुए कहा था कि यदि किसी व्यक्ति ने अपना उपकार किया हो तो उसका प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। महर्षि विश्वामित्र ने राम को ताटका वध के लिए प्रेरित करते हुए भी सनातन धर्म की दुहाई दी थी। उन्होने कहा था कि तुम गौ ब्राह्मण का हित करने के लिए उसका वध कर डालो। स्त्री हत्या का विचार करके इस कार्य से घृणा नही करना चाहिए क्योकि चारो वर्णो के हित के लिए यदि किसी राजपुत्र को स्त्री की हत्या भी करनी पडे तो वह धर्मानुकूल ही है। यही सनातन धर्म है। भरत कदाचित् विश्वामित्र की इस मान्यता से सहमत नहीं रहे। कैकेयी को पापकारिणी मानते हुए भी उसको मार डालना उन्होने इसी कारण उचित नही समझा क्योकि वे धर्मबन्धन मे बँधे हुए थे। धर्म और अधर्म को जानते हुए उन्होने मातृवध रूपी लोकनिन्दित कर्म को करना धर्मानुकूल नही माना। इसी सन्दर्भ मे विराध का उल्लेख भी आवश्यक है। मृत्यु के पूर्व विराध ने राम से अनुरोध किया था कि आप मेरे शरीर को इस जगल मे दफना कर (गड्ढे मे गाढकर)

कुशलतापूर्वक शरभग ऋषि के आश्रम म चले जाइए। राक्षसो के शवो का गाडना ही सनातन धर्म है। अधिकाश स्थलो पर केवल धर्म शब्द का प्रयोग किया गया ह। इसके अतिरिक्त पुण्य पाप उचित-अनुचित कहकर तथा स्वर्ग नरक का सन्दर्भ देकर भी सत् और असत् कर्म अथवा धर्म-अधर्म के प्रति सकेत किया गया है। रावण आदि राक्षस अथवा विरोधी पात्रो ने भी धर्म की दुहाई देकर अथवा उचित-अनुचित कहकर धर्म व्यवस्थाओ को प्रकट किया है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम के साथ वन जाने की अनुमति देते हुए कहा था कि ज्येष्ठ का अनुगमन करना ही धर्म ह। कैकेयी सत्य का सबसे अधिक महत्व देती थी। राम को वन जाने के लिए आज्ञा देने हेतु दशरथ को प्रेरित करते हए उसने लगातार यही कहा कि तुमको सत्य की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। राम से भी उसने यही कहा था कि ऐसा कार्य किया जाना चाहिए जिससे राजा दशरथ के सत्य की रक्षा हो सके क्योकि सत्य का पालन ही धर्म ह। दशरथ के मन्त्री सिद्धार्थ ने राम के निष्कासन को धर्मविरुद्ध माना था और कहा था कि राम के समान सदाचारी पुत्र का निष्कासन धर्म के प्रतिकूल है। रावण की मान्यता थी कि निष्कारण किसी को कष्ट देना धर्म का उल्लघन ह। अतिथि के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार को भी रावण ने धर्म कहा है। राम ने जब रावण को त्यक्तधर्मा और अधर्मात्मा कहा तो उसने राम को शीलरहित कर्कश तीक्ष्ण मूर्ख लोभी अजितेन्द्रिय और प्राणियो के अहित म तत्पर बताया। इसी स्थल पर रावण ने यह भी कहा कि राम ने बिना किसी पूर्व द्वेष के ही केवल बल का आश्रय लेकर मेरी बहिन को विरूपित कर दिया ह। तात्पर्य यह कि शील साम्यता सरलता विवेक निर्लोभ इन्द्रियजय और सर्वप्राणी हित को रावण धर्म मानता रहा है। कुशनाभ क्षमा को सबसे अधिक महत्व देते थे। वायु ने कुशनाभ की पुत्रियो के साथ अभद्र व्यवहार किया था किन्तु पुत्रियो ने वायु को क्षमादान दिया। इस पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कुशनाभ ने कहा था कि स्त्री पुरुष सभी के लिए क्षमा ही आभूषण है। क्षमा ही दान ह क्षमा ही सत्य ह क्षमा ही यज्ञ ह क्षमा ही यश है और क्षमा ही धर्म है। यह समस्त विश्व क्षमा पर ही टिका हुआ ह। कुशनाभ की पुत्रियाँ पिता की आज्ञा के बिना स्वय अपने लिए किसी को पति के रूप म वरण करना अधर्म मानती थी। जटायु के अनुसार परस्त्री हरण और हनुमान के अनुसार सोती हुई स्त्रियो को देखना भी अधर्म है। विराध तपस्वी का स्त्री के साथ रहना अधर्म मानता था।

उपर्युक्त थोडे से सन्दर्भ मात्र इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किये गये ह जिससे रामायणकालीन धर्म-व्यवस्था का स्वरूप स्पष्ट हो सके। राम से लेकर रावण तक छोटे-बडे सभी पात्र उपर्युक्त धार्मिक मान्यताओ को समान रूप से स्वीकार करते रहे ह। यदि विरोधी मान्यताओ पर दृष्टि डाली जाय तो स्थूल रूप म केवल दो ही प्रसग ऐसे दिखाई देते ह। प्रथमत रावण परस्त्री-अपहरण और परायी स्त्री से सम्बन्ध

स्थापित करना आय धम और राक्षम धर्म क अनुकूल मानता था। इस मान्यता को रामायण का कोई भी दूसरा पात्र स्वीकार करता दिखाई नहीं देता। वरन् इसके विपरीत मारीच विभीषण कुम्भकर्ण प्रहस्त सुपार्श्व आदि राक्षसो न और मन्दोदरी ने रावण के इस कृत्य को धर्म के प्रतिकूल ही कहा। तात्पर्य यह कि राक्षसों की धार्मिक मान्यताओ क अनुसार भी परस्त्री हरण धर्मविहित नही माना गया। अतएव यह स्पष्ट नही होता कि रावण की मान्यता का आधार क्या रहा ह। इसी प्रकार विराध क अतिरिक्त किसी भी राक्षस पात्र क द्वारा शव गाड़न की परम्परा का सकेत नहा किया गया किन्तु विराध न इसे सनातन धम का अग माना। प्राय सभी पात्र स्थापित धार्मिक मान्यताओ का समान रूप स अनुसरण करत रह ह। मन्दोदरी और तारा सीता और अनसूया क समान ही पातिव्रत धर्म की महत्ता को स्वीकार करती थी। कुम्भकर्ण मेघनाद अक्षयकुमार और अतिकाय न कभी रावण की आज्ञा का उल्लघन नहीं किया।

नारी धम सुहृदय धर्म गृहस्थ धर्म वानप्रस्थ धर्म आदि का भी रामायण म उल्लेख किया गया ह तथापि यह सब सनातन धर्म के ही अग माने गये। इससे सर्वथा अलग क्षात्रधर्म का जिस रूप म उल्लेख किया गया है उसस ऐसा प्रतीत होता ह कि उस काल म सनातन धर्म और क्षात्रधर्म की अलग-अलग समानान्तर मान्यताएँ रही ह। राम ने धर्म अथवा सनातन धर्म-व्यवस्था का मान्य करते हुए क्षात्रधर्म की स्पष्ट शब्दो म भर्त्सना की ह। सबस पहले जब लक्ष्मण ने राम के वनगमन का विरोध करत हुए दशरथ के प्रति आक्रोश प्रकट किया था और कहा था कि दशरथ और कैकेयी का कैद कर राज्य पर अधिकार कर लना चाहिए तब राम ने इसे क्षात्रधर्म बताकर इसे स्वीकार करन स इनकार किया था। राम न लक्ष्मण को समझाते हुए कहा था कि ससार म धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है अतएव तुम केवल क्षात्रधर्म का अवलम्बन करनेवाली बुद्धि का परित्याग कर धर्म का आश्रय ग्रहण करो। राम के अनुसार राजा लोग केवल इसीलिए राज्य का पालन करते हे कि किसी भी कार्य म उनके मन की इच्छा पूर्ति म बाधा उपस्थित न की जा सक। महर्षि जाबालि का उत्तर देते हुए राम न और भी स्पष्ट शब्दो म कहा था कि क्षात्रधर्म बाह्य रूप से धर्मयुक्त दिखाई देने पर भी वस्तुत अधर्म रूप होता ह और केवल नीच क्रूर लोभी तथा पापाचारी पुरुष ही इसका अनुसरण करते है। इस प्रकार भर्त्सना करते हुए राम ने क्षात्रधर्म का परित्याग करने की भी प्रतिज्ञा की थी।

राम विशेष रूप से धम प्रचार के लिए ही निकले थे और उन्होने यह भी सकेत किया हे कि भरत न ही राजा के रूप म उनको धर्म का प्रचार करने की आज्ञा दी थी। राम के अतिरिक्त दूसरे अनेक राजाओ को भी भरत की ओर से धर्म प्रचार की आज्ञा दी गयी थी। इससे यह भी स्पष्ट ह कि रामायणकाल तक सनातन धर्म अथवा स्मार्त धम पूरी तरह प्रतिष्ठित नही हो सका था और क्षात्रधर्म की महत्ता

अपक्षाकृत अधिक वनी हुई थी। क्षात्रधम के स्थान पर सनातन धम का प्रतिष्ठापित करना ही राम का उद्देश्य रहा है। परवर्तीकाल म स्मार्त धर्म के आचार्यो ने क्षात्रधर्म अथवा राजधर्म का भी स्मार्त धर्म का अग वना लिया। यही कारण ह कि स्मृति ग्रन्थो म समाज के अन्य वर्गो और राजधर्मो की समान रूप से व्याख्या की गयी है।

महर्षि वसिष्ठ का ब्रह्मवेद आर क्षात्रवेद दोना पर समान अधिकार था। विश्वामित्र न क्षात्रधम क अनुसार ही दीर्घकाल तक राज्य किया था। अन्त म वसिष्ठ स पराभूत हाने पर तपस्या के लिए प्रस्थान करने क पूर्व अपन पुत्र का राज्याधिकार सापते समय भी उन्हाने उसको धर्म के अनुसार नहीं वरन् क्षात्रधर्म के अनुसार राज्य करने का निर्देश दिया था। मिथिलानरश जनक धर्म के ज्ञाता हाने पर भी क्षत्रियोचित कर्म मे तत्पर रहते हुए न्यायपूर्वक राज्य का शासन करते थे।

क्षात्रधर्म अथवा राजधर्म का रामायण म विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया ह। राम रावण वाली मारीच शूर्पणखा भरत लक्ष्मण सीता सभी ने राजधर्म के सिद्धान्तो की समीक्षा की है। राम के राजधम विपयक सिद्धान्त विशेप रूप से भरत का राजनीति का उपदश दने के प्रसग म द्रष्टव्य ह। इसके अनुसार राजा का शस्त्र ज्ञानसम्पन्न आचार्यो का समादर करत हुए शूरवीर शास्त्रज्ञ जितेन्द्रिय कुलीन एसे व्यक्तियो को ही मन्त्री पद पर नियुक्त करना चाहिए जो राजा की मन्त्रणा को सर्वथा गुप्त वनाये रह। राजा का किसी गूढ विपय पर न ता अकले ही निर्णय लेना चाहिए आर न इतने अधिक व्यक्तियो से परामर्श लेना चाहिए कि उसकी खवर शत्रु तक पहुच जाय। सनातन धर्म के अनुसार रात्रि क अन्तिम प्रहर म धर्म चिन्तन तथा सन्ध्या वन्दन की व्यवस्था रही है किन्तु राजधर्म क अनुसार राजा को इस समय अर्थसिद्धि के विपय म विचार करना चाहिए। राजा के भावी कार्यक्रमो का ज्ञान यदि लागो को पहले से हो जाता ह तो उसम अनेक अवरोध उत्पन्न हो जाते ह। सकडो सहस्रो मूर्खो को अपने पास रखने के बजाय एक विद्वान् पण्डित को पास रखना ही श्रेयस्कर है क्योंकि अर्थसकट के समय वही सहायक होता है। सभी लोगो को उनकी योग्यता क अनुसार ही कार्य पर नियुक्त किया जाना चाहिए। कठोर दण्ड अथवा अधिक कराधान से भी प्रजा राजा आर मन्त्रियो की विरोधी वन जाती ह। एसे राजनैतिक व्यक्ति को जो विश्वासी भृत्यो को फोडने मे लगा रहता है मरवा डालना ही राजा के लिए न्यायोचित है।

सदा सन्तुष्ट रहनेवाले शूरवीर धीर बुद्धिमान् कुलीन अपने प्रति अनुराग रखनेवाले व्यक्ति को ही सेनापति वनाया जाना चाहिए आर प्रमुख योद्धाओ क शौर्य की परीक्षा कर उनका सम्मान के द्वारा सदा सन्तुष्ट रखना राजा का कर्तव्य ह। सैनिको का वेतन तथा भत्ता यदि समय पर नही दिया जाता ह तो वे अपने स्वामी के प्रति कुपित हो जाते है। अपने ही देश के निवासी, विद्वान्, कुशल प्रतिभावान व्यक्ति

को राजदूत बनाना श्रेयस्कर है तथा शत्रुपक्ष के मन्त्री पुरोहित सेनापति आदि अठारह तीर्थों एवं अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थों की गुप्तचरों द्वारा जाँच पड़ताल की जाती रहनी चाहिए। जिन शत्रुओं को राज्य से निष्कासित कर दिया जाय उनको दुर्बल समझ लेना कभी भी खतरा उत्पन्न कर सकता है। कृषि और पशुपालन से जीविका अर्जित करनेवालों पर देश की उन्नति निर्भर होती है अतएव उनसे राजा को प्रीतिपात्र होना चाहिए। राजा को अपनी स्त्रियों पर विश्वास करते हुए कभी भी उनको गुप्त बात नहीं बतलानी चाहिए। राजा का इस प्रकार का व्यवहार अपनाना चाहिए जिससे उसके कर्मचारी निर्भय होकर उसके सामने भी न आ सकें और भय के मारे सदा दूर रहने का भी प्रयास न करें। आय अधिक और व्यय कम होना चाहिए। झूठी शिकायत पर किसी को दण्डित करना अथवा दण्डनीय अपराधी को धन के लाभ से निर्दोष छोड़ देना राजा के लिए हितकर नहीं। निरपराध होने पर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है उनके आँसू राजा का नाश कर देते हैं। नास्तिकता असत्य क्रोध प्रमाद दीर्घसूत्रता ज्ञानियों का संग आलस्य इन्द्रियविकार राजकार्यों के सम्बन्ध में अकेले विचार करना मूर्खों से परामर्श निश्चित कार्य का शीघ्र प्रारम्भ न करना गुप्त मन्त्रणा को प्रकट कर देना माङ्गलिक कार्यों की उपेक्षा तथा शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण कर देना राजा के चौदह दोष हैं। राजा को इन दोषों का परित्याग कर राजोचित गुणों को ही अपनाना चाहिए।

राजाज्ञा पालन के प्रति भी राम सदा सावधान थे। उनके अनुसार राजा की अवस्था (आयु) महत्त्वहीन होती है और राजा यदि आयु में छोटा भी हो तो भी उसकी आज्ञा का सावधानीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। सुमन्त्र के द्वारा कौसल्या को सन्देश भेजते हुए उन्होंने कहलाया था कि भरत के प्रति ठीक वैसा ही व्यवहार करती रहना जैसा राजा के प्रति किया जाता है। राजा यदि छोटी आयु का भी हो तो भी वह आदरणीय होता है।

भरत धर्म के प्रति अधिक आस्थावान थे। उनके अनुसार राज्य के अधिकारी क्षत्रिय को ही क्षात्रधर्म का अनुसरण न्यायोचित है तथा जिसे धर्मतः राज्याधिकार प्राप्त नहीं उसे क्षात्रधर्म के अनुसरण का भी अधिकार नहीं होता। धर्म को भविष्य में फल देनेवाला अनिश्चित परिणामी मानकर क्षत्रिय के लिए प्रत्यक्ष सुख के साधनभूत प्रजापालन रूप धर्म को ही उन्होंने अधिक कल्याणकर कहा।

वाली राजधर्म के पालन के प्रति विशेष सावधान था। इन्द्रिय निग्रह संयम क्षमा धर्म धैर्य पराक्रम तथा अपराधियों को दण्ड देना वह राजा के गुण मानता था। किसी निरपराध को दण्डित करना वाली के अनुसार राजा के लिए उचित नहीं। यदि एक राजा किसी दूसरे के साथ युद्ध में उलझा हुआ है तो अन्य राजा को उस पर आक्रमण करना क्षात्रधर्म के विरुद्ध है। राजाओं को केवल भूमि सोना चाँदी की प्राप्ति के लिए युद्ध करना चाहिए।

लक्ष्मण क्षात्रधर्म के प्रति इतने अधिक आस्थावान थे कि वे प्रत्येक अवस्था म मात्र उसी का अनुसरण श्रेयस्कर मानते रहे। उन्होने अपनी मान्यताओ के प्रति अडिग रहत हुए राम के द्वारा प्रतिपादित धर्म का विरोध करने मे कभी सकोच नहीं किया। देवऋण पितृऋण ऋषिऋण का ढोंग और ढकोसला मानत हुए व कवल बाण आर तूणीर के ऋण को स्वीकार करते थे। इसी प्रकार देवलोक, विष्णुलोक आदि को व्यर्थ मानकर उन्होंने सदव वीरलोक प्राप्ति की परवाह की। लक्ष्मण के आचार विचार भी क्षात्रधर्म के ही अनुकूल थे अतएव इनका सम्यक् विवेचन अलग ही किया गया ह।

शूर्पणखा भी राजधर्म से पूर्णतया अनभिज्ञ थी यद्यपि उसकी मान्यताएँ विस्तार क साथ व्यक्त नही हो सकी हे तथापि रावण के पास जाकर उसन रावण को सीमा प्रान्त पर गुप्तचर नियुक्त न करन क कारण जो खरी खोटी सुनायी ह वह उसके राजधर्मविद् हान का प्रमाण है। इसके साथ ही उसने रावण को फटकारते हुए कहा ह कि जो राजा निम्न श्रेणी क भोगा में आसक्त हो स्वेच्छाचारी आर लोभी हो जाता है उसे मरघट की आग के समान हेय मानकर प्रजा उसका सम्मान करना छाड देती ह। जो राजा ठीक समय पर अपने कार्या का सम्पादन नही करता हे, वह राज्य क साथ ही नष्ट हो जाता है। राजा का कर्तव्य है कि वह पूर्ण सावधानी क साथ अपने सीमा प्रान्ता की रक्षा करे। गुप्तचरो कोष और नीति पर राजा का पूण नियन्त्रण हाना चाहिए। जो राजा कठोरतापूर्ण वर्ताव करता अथवा अपने तीखे स्वभाव का परिचय देता है सेवको को बहुत कम वेतन देता ह प्रमाद आर गर्व स भरा रहता है उसक सकट म पडन पर भी प्रजा उसका साथ नही देती। अभिमानी और क्रोधी राजा को अवसर पाकर उसके आत्मीय जन ही मार डालत हे। शूर्पणखा के अनुसार प्रजा कवल उसी राजा का समादर करती ह, जा सदा सावधान रहत हुए कृतज्ञ इन्द्रियजयी आर धर्मपरायण रहकर राजकार्यो की जानकारी रखता आर उनको पूरा करता है। शूर्पणखा का राजधर्म सदाचार सिद्धान्तो स विरहित नहीं रहा।

रावण यद्यपि राजधर्म का पण्डित रहा ह तथापि उसके मन म राजोचित गुणो के प्रति आग्रह कम ही दिखाई दता है। उसकी दृष्टि राजा के कर्तव्या पर नही प्रत्युत अधिकारा पर ही अधिक केन्द्रित रही हैं। प्रत्येक क्षण उसे इस बात की रह रहकर याद आती रही ह कि वह अपने युग का सबसे अधिक पराक्रमी और प्रतिभाशाली राजा है। छोटी छोटी-सी बात पर उसने अपने मन्त्रियो आर सेनापतिया से परामर्श अवश्य लिया किन्तु यदि किसी ने भी उसकी बात का जरा भी विरोध किया तो उस वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सका। उस समय उसका राजोचित गर्व उभरकर ऊपर आ जाता था आर अपनी राजप्रभुता तथा पराक्रम का भय दिखाकर उसको समर्थन देने क लिए मजबूर कर दता था। स्थूल रूप म उसका व्यावहारिक सिद्धान्त यही रहा है कि प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति को मन्त्रिया का सेनापतिया का अथवा राजा

क हितपिया का भी प्रत्यक्ष दशा म राजा की बात बिना किसी तर्क वितर्क के माननी ही चाहिए। मारीच न जब राम क विरुद्ध रावण की सहायता करने का विरोध किया तब रावण न यही कहा था कि प्रत्येक अवस्था म राजा का सम्मान आर पूजन ही करना चाहिए। राजा क प्रतिकूल चलनेवाला पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता। मघनाद का युद्ध क लिए भेजत समय भी उसन कहा था कि यद्यपि स्नह की दृष्टि स तुमको युद्ध म भजना उचित नहीं ह किन्तु मरा यह विचार राजनीति आर क्षात्र धम के अनुकूल ह।

स्वर्ग-नरक पाप पुण्य कर्म परिणाम आर जन्मान्तर ही सनातन धर्म क आधारभूत सत्य ह। कर्मवाद और जन्मान्तर के सिद्धान्त को यदि अलग रख दिया जाय तो भारतीय सनातन धर्म का विशाल भवन बालू की दीवार की भाँति ढह जाता ह। रामायण के सभी पात्र कम-परिणाम क प्रति अविचलित रूप से आस्थावान है। दव क प्रति भी किसी की आस्था कम नहीं रही।

राम ही रामायण काव्य के नायक है। अतएव उनके द्वारा समर्थित धर्म—सनातन धर्म अथवा स्मृति धर्म का ही विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। स्मार्त धर्म क आचार्यो ने जो व्यवस्थाएँ दी है उनका विरोध कवल लक्ष्मण के द्वारा किया गया है। कुछ पात्र धर्म-व्यवस्थाओ क प्रति निरपेक्ष आर तटस्थ भी दिखाई देते ह। इनका सम्यक् विवेचन अगले अध्यायो म किया गया है।

सिद्धान्तहीन दशरथ की बहानेबाजी

इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न अज के पुत्र महाराजा दशरथ क बाल्यकाल के सम्बन्ध मे सामग्री का सवथा अभाव ही है। उनके द्वारा अनजाने मुनिकुमार की हत्या हो जाने के प्रसग म यह उल्लेख अवश्य मिलता हे कि अज के जीवनकाल मे जब दशरथ केवल राजकुमार थे उसी समय उनकी ख्याति एक कुशल धनुर्धर के रूप म फेल गयी थी। उनको शस्त्रशिक्षा किस गुरु से प्राप्त हुई थी इसका कोई उल्लेख न होने पर भी यह लिखा गया ह कि सभी लाग उनको शब्दवेधी बाण चलाने मे कुशल मानते थे। उस समय दशरथ अविवाहित थे ओर ऋतुआ के उद्दीपन से उनके मन मे विकार उत्पन्न हो जाते थे। उन्होने स्वय स्वीकार किया ह कि इस स्थिति मे वह अजितेन्द्रिय के समान व्यवहार करते थ। शिकार खेलने का कदाचित् उनको शौक था इसलिए वर्षा क प्रभावा से मस्त हाकर वे सरयू के तट पर शिकार खेलने के लिए निकल पडते थे। हाथी के शिकार के धोखे मे उन्होने एक मुनिकुमार की हत्या कर दी थी।

उपर्युक्त घटना के अतिरिक्त दशरथ के युवराजकाल का कोई वर्णन रामायण म नहीं किया गया। अज के पश्चात् अयोध्या का राज्यभार ग्रहण करने पर उन्होने राज्य व्यवस्था म उल्लेखनीय सुधार किये थे। इस समय अयोध्या बारह योजन लम्बाई और तीन योजन चोडाई के विस्तार म बसी हुई थी। राजमार्ग पर प्रतिदिन छिडकाव के साथ फूल बिखेर दिये जात थे। पुरी की सुरक्षा के लिए प्राचीर बडे-बडे फाटक आर विशेष यन्त्रा एव अस्त्र शस्त्रा की भी व्यवस्था की गयी थी। नगरी के चारा आर उद्यान ओर बगीचे लगाये गय थे तथा नागरिका के आमाद प्रमोद के लिए नाट्य सस्थाआ की भी स्थापना की गयी थी। गगनचुम्बी प्रासादो एव विविध कूटागारा स युक्त उस समय की अयोध्या की तुलना अमरावती से की गयी है। दशरथ के राज्य म ऐसा एक भी परिवार नहीं था जिसके पास पर्याप्त मात्रा म उत्कृष्ट वस्तुओं का सग्रह न हा जिसके धर्म अर्थ और काममय पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हो अथवा जिसके पास गाय भैस घोडे आर धन धान्य का अभाव हो। दशरथ ने काम्बोज आर वाह्लीक देश में उत्पन्न घोडे सिन्धु नदी के निकट उत्पन्न दरियाई घाड विन्ध्य आर हिमालय प्रदेश में उत्पन्न हाथिया तथा अनेक अन्य देशा म उत्पन्न पशुआ को अपने यहा एकत्र कर अयोध्या नाम सार्थक किया था।

दशरथ ने राज्य संचालन में परामर्श और सहयोग देने के लिए धृष्टि जयन्त विजय सुराष्ट्र राष्ट्रवर्द्धन अकोप धर्मपाल और सुमन्त्र को मन्त्री पद पर नियुक्त कर मन्त्रि परिषद् का गठन किया था। इनमें से सुमन्त्र अर्थशास्त्र और पुराणों के विशेषज्ञ थे। इसके अतिरिक्त वसिष्ठपुत्र सुयज्ञ जाबालि कश्यप गौतम दीर्घायु, मार्कण्डेय और कात्यायन को भी मन्त्रि परिषद् में सम्मिलित किया गया था। यह मन्त्री राजा के याज्ञिक के रूप में भी कार्य करते थे। वसिष्ठ और वामदेव राजा के वरिष्ठ पुरोहित थे। पुरोहित और मन्त्रियों के परामर्श से ही राज्य का संचालन होता था और ये सभी धर्म-व्यवस्था एवं न्याय नियमों का पूरा ध्यान रखते थे।

पास पड़ोस तथा अनेक दूरवर्ती राजाओं से दशरथ के अच्छे मैत्री सम्बन्ध थे। अंग देश के राजा और काशीनरेश से दशरथ की घनिष्ठ मित्रता थी। मिथिलानरेश जनक के साथ भी दशरथ का पुराना सम्बन्ध बताया गया है किन्तु राम विवाह के पूर्व यह सम्बन्ध कब और किस रूप में स्थापित हुआ इसका कोई संकेत नहीं। केकयनरेश से दशरथ का सीधा सम्बन्ध था। कोसलनरेश मगधनरेश सिन्धु सौवीर और सुराष्ट्र तथा दक्षिण के अनेक राजाओं से भी दशरथ के अच्छे सम्बन्ध थे। इन सब राजाओं को दशरथ ने अपने यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया था। पंचवटी के मार्ग में जब राम की भेंट जटायु से हुई थी तब जटायु ने भी स्वयं को दशरथ का पुराना मित्र बताया था। दशरथ के शत्रु राजाओं का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु राम को माँगने के लिए जब विश्वामित्र दशरथ के पास पहुँचे थे तो उन्होंने अवश्य यह प्रश्न किया था कि आपके राज्य की सीमा के निकट रहनेवाले शत्रु राजा आपके समक्ष नतमस्तक होते हैं अथवा नहीं? यहाँ स्पष्ट नहीं कि शत्रु राजा कहकर किसके प्रति संकेत किया गया है। सम्भव है यह प्रश्न औपचारिकतावश ही किया गया हो। रावण के बल पराक्रम से दशरथ पहले से ही भली भाँति परिचित थे। विश्वामित्र से चर्चा करते हुए उन्होंने स्वयं स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया है कि मैं रावण के समक्ष युद्ध में नहीं ठहर सकता। उन्होंने यह भी कहा कि देवता दानव गन्धर्व यक्ष गरुड और नाग कोई भी रावण का वेग सहने में समर्थ नहीं है। मैं अपनी सेना और पुत्रों के साथ रहकर भी उससे तथा उसके सैनिकों से युद्ध करने में असमर्थ हूँ।

दशरथ के मित्र और शत्रु राजाओं के प्रति संकेत होने पर भी न तो दशरथ द्वारा किसी शत्रु राज्य पर आक्रमण कर उसे जीतने का ही कोई उल्लेख है और न उनके समय में उनके तथा किसी राजा के बीच संघर्ष का ही वर्णन है। कैकेयी और मन्थरा की बातचीत के प्रसंग में दशरथ द्वारा देवासुर संग्राम में भाग लेने की घटना का उल्लेख किया गया है। दण्डकारण्य में ही वैजयन्तनरेश शम्बर ने युद्ध में सभी देवताओं को परास्त कर दिया था और इन्द्र के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ दिया था। दशरथ ने भी उस युद्ध में देवताओं के पक्ष में युद्ध किया था। इस युद्ध के संक्षिप्त वर्णन

म दशरथ के पराक्रमी होन का कोई पता नहीं लगता। विचित्रता यह ह कि इतने वडे देवासुर सग्राम म भी वह ककयी का अपना सारथी बनाकर अपन साथ लिवा ले गये थ। युद्ध म उनके द्वारा किसी विपक्षी के पराजित होने का कोई उल्लेख नहीं वरन् शम्बर के सनिको ने अस्त्र प्रहार क द्वारा उनके शरीर का क्षत विक्षत 'शकलीवृत' करके छाड़ दिया था। घायल और वहोशी की हालत में ककेयी उनको युद्ध स्थल से दूर सुरक्षित स्थान पर लिवा ले गयी थी और इस प्रकार उनके प्राणो की रक्षा की थी। दशरथ की दूसरी मुठभेड राम विवाह के पश्चात् मिथिला स अयोध्या लाटते समय मार्ग म परशुराम स हुई थी। परशुराम का देखते ही दशरथ के होश उड गय थ। उनके मुख पर विषाद छा गया था आर हाथ जोडकर वडे ही आर्तभाव से उन्हाने परशुराम से अपने पुत्रा को अभय दान देने की याचना की थी। इनके अतिरिक्त रामायण म ऐसी किसी भी घटना का उल्लेख नही जो दशरथ को पराक्रमी सिद्ध कर सके।

कोसल्या सुमित्रा आर केकेयी क अतिरिक्त दशरथ के साढ तीन सा रानियाँ होने का उल्लेख ह। यह उल्लेख मुख्य रूप स दो स्थला पर किया गया ह। दशरथ ने राम के वनगमन के पूर्व सुमन्त्र को आज्ञा दी थी कि राजमहल म मरी जो भी स्त्रिया ह उन सबको बुला लाआ। म उन सबके साथ राम का देखना चाहता हूँ। सुमन्त्र के द्वारा दशरथ का सन्देश पाकर साढे तीन सौ स्त्रियाँ उनके पास भवन म पहुँची थीं। यहाँ दशरथ द्वारा 'मामका दारान्' शब्द का प्रयाग किया गया ह। इसके पश्चात् राम न जब कासल्या स विदा माँगी थी तब उन्हाने अन्य साढे तीन सा माताआ स भी क्षमा मागते हुए वनगमन की अनुमति ली थी। इनके सम्बन्ध मे इसस अधिक आर कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं।

ककयी के साथ विवाह के विषय म अनुबन्ध का उल्लेख रामायण मे स्पष्ट ह। सबस पहल मन्थरा न ही ककेयी को उस अनुबन्ध का स्मरण कराते हुए कहा था कि दशरथ अनुबन्ध की उपेक्षा कर झूठी सान्त्वना देते हुए तुमको सुखा से वचित कर रहे ह। राम को भी इस अनुबन्ध की तथा देवासुर सग्राम क अवसर पर दशरथ द्वारा ककयी को वरदान दिये जाने की जानकारी थी। भरत ने जब राम स अयोध्या लाट चलन क लिए विशेष आग्रह किया था तो राम ने उत्तर देते हुए बताया था कि पिताजी का जब तुम्हारी माता के साथ विवाह हुआ था उसी समय उन्होने तुम्हार मातामह स राज्य शुल्क देने की शर्त स्वीकार की थी। मन्थरा आर राम के अतिरिक्त इस अनुबन्ध का ज्ञान अन्य किसी को था अथवा नही इसका काई सकेत नहीं। अनुबन्ध को देखत हुए यह तो मानना ही पडेगा कि केकयी के साथ दशरथ का विवाह सबस अन्त म हुआ था किन्तु इस प्रकार की शर्त को स्वीकार करने की उनकी विवशता स्पष्ट नहीं। यदि कौसल्या सुमित्रा आर अन्य साढे तीन सौ रानिया के हाते हुए भी दशरथ सन्तानहीन थे, तो इस अनुबन्ध की आवश्यकता ही नही

थी अन्यथा केकयी के रूप के प्रति उनकी आसक्ति को असम्भावित मानना कठिन होगा।

दशरथ का प्राय ही सत्यव्रती सत्यसन्ध सत्यप्रतिज्ञ आदि विशेषणो के साथ लिखा गया हे आर यह कहा जाता हे कि सत्य की रक्षा के लिए ही उन्हाने अपने प्राणो की आहुति दी थी। रामायण के प्रसगो से कही भी इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती कि वह सत्य के प्रति किचित् भी आग्रहशील रहे थे। वे सहज ही वचनबद्ध अवश्य होते रहे ह किन्तु जब भी प्रतिज्ञा पूर्ति का समय उपस्थित हुआ वे सदैव उससे विचलित होते रहे। सर्वथा विवश होकर ही उन्हाने अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन किया हे। विश्वामित्र के पहुँचने पर पहले उन्हाने उनका हृदय से सत्कार किया और उनके आगमन का उद्देश्य पूछते हुए कहा था कि कार्यसिद्धि के विषय म सन्देह नही करना चाहिए। आप जो भी आज्ञा दगे उसका पालन किया जाएगा। इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होने क पश्चात् जब विश्वामित्र ने राम को भेज देने का अनुरोध किया तो शोक आर माह से अभिभूत होकर उन्होने अपना विवेक खो दिया था। पहले ता उन्हाने राम को न भेजने के लिए पचास बहाने किये और फिर स्पष्ट शब्दा म उत्तर द दिया कि राम को नही दूँगा। वसिष्ठ ने ही उनको समझाते हुए कहा था कि आपको धर्म का परित्याग नही करना चाहिए। प्रतिज्ञा करके भी जो वचन का पालन नहीं करता उसके यज्ञ यागादि सभी इष्ट फला का नाश हो जाता है। इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा समझाने पर ही उन्होने विश्वामित्र के साथ राम को भेजना स्वीकार किया था।

दशरथ के सत्यव्रती होने का दूसरा परीक्षाकाल ककेयी को वरदान देने के समय उपस्थित हुआ था। ककेयी के साथ वैवाहिक अनुबन्ध का उल्लेख किया जा चुका ह। यद्यपि दशरथ ने कैकेयी के साथ पूर्ण वदिक पद्धति से विवाह किया था किन्तु राम को युवराज बनाने का निर्णय लेने और उसे कार्यान्वित करते समय उन्होने उस अनुबन्ध की जरा भी परवाह नहीं की। भरत शत्रुघ्न को मिथिला से विवाहोपरान्त लौटने के तुरन्त पश्चात् ही मामा के यहाँ भेज दिया गया था। यह भी विचारणीय है कि विवाह के तुरन्त पश्चात् भरत शत्रुघ्न को भेजते हुए दशरथ ने माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय म कुछ भी सोचने विचारने की आवश्यकता नहीं समझी। बेचारी इन नव विवाहिता वहुओ को अपने पतियो स अलग रहते हुए पूरे बारह वर्ष का समय बिता दना पड़ा था। बारह वर्ष तक दशरथ को न भरत शत्रुघ्न का ही स्मरण आया आर न उनका निष्कारण ही पति वियोग का दण्ड सहते हुए अपनी बहुओ पर ही कुछ दया आयी। मन्त्रियो को अपने अभीष्ट से अवगत कराते हुए दूसरे दिन प्रात काल ही उन्हाने राम का युवराज बनाने का निश्चय किया था। दशरथ के मन में कदाचित् इस बात का भय बना हुआ था कि राम के पक्ष का समर्थन करनेवाले सभासद अनुबन्ध विषयक जानकारी होने पर कहीं अपने समर्थन को वापस न ले

ल। उन्हाने 'प्राणिया की बुद्धि चचल होती हे' कहकर अपने भय को व्यक्त भी किया हे। राम से उन्हाने यह भी स्पष्ट शब्दा म कहा था कि जब तक भरत इस नगर से बाहर अपने मामा के यहाँ है, तब तक ही तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत होता ह। अनुबन्ध का इस प्रकार उल्लघन करना दशरथ के सत्यव्रती होने को असिद्ध कर देता ह।

शम्बर के विरुद्ध युद्ध म प्राण-रक्षा के पुरस्कार स्वरूप दशरथ द्वारा कैकेयी को दो वरदान दिय जाने की घटना का उल्लेख वाल्मीकि ने किया ह। इसका ज्ञान दशरथ ओर ककेयी को तो था ही ककेयी ने अपनी विश्वासपात्र दासी मन्थरा को भी इस घटना से अवगत करा दिया था। राम को भी इस विषय की पूरी जानकरी थी यह उनकी भरत के साथ हुई बातचीत स स्पष्ट हे। इसक पश्चात् ककेयी के कोप-भवन म उसका प्रसन्न करने के उद्देश्य स दशरथ न पुन बार-बार सोगन्ध खाते हुए राम की भा शपथ लत हुए वचन दिया था कि जो कुछ भी उसे अभीष्ट होगा वह निश्चय ही पूरा किया जाएगा। इस अवसर पर दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करन की बात बार-बार दुहरान म कोई कमी नही की। केकेयी सम्भवत दशरथ के स्वभाव ओर उनके चरित्र से भली भाँति अवगत थी आर इसी कारण उसे दशरथ की सौगन्धा आर प्रतिज्ञाआ पर कोई विश्वास नहीं हुआ था। इसके लिए उसन देवताओ को साक्षी बनाया था। यह अश विशेषत उद्धरणीय है—

यथा क्रमेण शपसे वर मम ददासि च।
तच्छृण्वन्तु त्रयस्त्रिशद् देवा सन्द्रपुरागमा ॥
चन्द्रादित्या नभश्चव ग्रहा रात्र्यहनी दिश।
जगच्च पृथिवी चेय सगन्धर्वा सराक्षसा ॥
निशाचराणि भूतानि गृहेषु गृहदेवता।
यानि चान्यानि भूतानि जानीयुर्भाषित तव ॥
सत्यसन्धो महातेजा धर्मज्ञ सत्यवाक्शुचि।
वर मम ददात्येष सर्वे शृण्वन्तु देवता ॥ —वा रा 2 11 13-16

—राजन्! आप जिस प्रकार क्रमश शपथ खाकर मुझ वर देने को उद्यत हुए हैं उसे इन्द्र आदि ततीस देवता सुन ल। चन्द्रमा सूय आकाश ग्रह रात दिन दिशाएँ जगत्, पृथ्वी गन्धर्व राक्षस निशाचर गृहदवता तथा अन्य सभी प्राणी आपके कथन का जान लें। सत्यसन्ध महातेज धर्मज्ञ सत्यवादी मुझ वर दे रहे हैं—सब दवता भी इस सुन लें।

इसके पश्चात् ही ककेयी ने भरत का राज्याभिषेक आर राम का निष्कासन वर क रूप में माँगा था। अपनी अभीष्ट वशाभिलाषा का प्रकट करने के साथ ही उसन बार-बार दशरथ से कहा था कि आपको सत्यप्रतिज्ञ बनकर सत्य क द्वारा ही अपने

कुल शील की रक्षा करना चाहिए। दशरथ के कैकयी की बात सुनते ही होश उड़ गये थे और उन्होंने जब राम के निष्कासन के स्थान पर कुछ और माँगने के लिए कैकयी से अनुराध किया था तब भी कैकयी ने सत्य की ओर ही उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा था—

> *यदि दत्वा वरो राजन् पुन प्रत्यनुतप्यसे।*
> *धार्मिकत्व कथ वीर पृथिव्या कथयिष्यसि ॥*
> *यदा समेता वहवस्त्वया राजर्षय सह।*
> *कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र कि प्रतिवक्ष्यसि ॥*
> *यस्या प्रसादे जीवामि या च मामभ्यपालयत्।*
> *तस्या कृता मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यसि ॥* —वा रा 2 12 39-41

—राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर उनके लिए पश्चात्ताप करते हैं तो इस पृथिवी पर आप अपनी धार्मिकता का ढिंढोरा किस प्रकार पीट सकेंगे। हे धर्मज्ञ जब अनेक राजर्षियों के एकत्र होने पर उनसे आप इस विषय की चर्चा करेंगे तो उन्हें क्या उत्तर देंगे? क्या आप यह कहेंगे कि जिस कैकेयी के प्रसाद से मैं जीवित बचा हुआ हूँ तथा जिसने मेरी रक्षा की है उसी के प्रति अपनी प्रतिज्ञा को मैंने झूठा कर दिया है?

कैकयी को उत्तर देते हुए दशरथ ने सैकड़ों प्रकार के तर्क उपस्थित किये थे। उनकी बातों में राम के प्रति स्नेह प्रकट हुआ उन्होंने राम की और उनके गुणों की लगातार प्रशंसा भी की तथा राम जैसे धर्मज्ञ सच्चरित्र एव प्रजाप्रिय राजकुमार को वनगमन के लिए निष्कासित करने के परिणामस्वरूप प्रजा द्वारा की जानेवाली विगर्हणा के प्रति भी सकेत किया किन्तु इसके सम्बन्ध में कुछ कहा ही नहीं कि अनुबन्ध का उल्लघन करते हुए पूर्वप्रदत्त वचनों के पालन से वे विमुख क्यों हो रहे थे? वे कैकयी के समक्ष हाथ जोड़कर पैरों पर पड़कर गिड़गिड़ाते रहे। किन्तु कैकेयी ने उनको बराबर सत्य का पालन करने के लिए प्रेरित किया। कैकयी के अनुसार सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है। यदि आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है तो सत्य का ही अनुसरण कीजिए। यह सबकुछ सुनने के बाद भी दशरथ ने स्पष्ट शब्दों में न ते करिष्यामि वच कहकर कैकयी की बात मानने से इनकार कर दिया था। सुमन्त्र के द्वारा बुलाये जाने पर जब राम कैकेयी के सामने [illegible] तो उसने राम से भी दशरथ के सम्बन्ध में कहा था कि इन्होंने पहले तो [illegible] हुए मुझे मुँहमाँगा वरदान दे दिया और अब गँवारों की भाँति उस[illegible] रहे हैं।[1] दशरथ कैकेयी की सब बातों को सुनते रहे किन्तु न[illegible] से प्रतिकार

ही किया और न स्वय के सत्यनिष्ठ होने के पक्ष मे ही कोई तर्क प्रस्तुत किया। अचेत होकर गिर पडना ही उनका पुरुषार्थ था। उन्होने राम से यह भी कहा था कि कैकेयी को दिये हुए वर के कारण मुझ मोहग्रस्त को तुम कैद करके स्वय अयोध्या के राजा बन जाओ।[1] स्थिति का भली भाँति अध्ययन कर जब राम ने वन जाना स्वीकार किया तो अवश्य दशरथ ने कहा था—तुम मुझ सत्यवादी अपानृत्य बनाने के लिए, वन जाने के लिए जो उद्यत हुए हो यह आश्चर्य का विषय नहीं। यह भी विशेषत उल्लेखनीय है कि जिस कैकेयी के साथ दशरथ ने अग्नि को साक्षी बनाकर वैदिक मन्त्रो का उच्चारण करते हुए विवाह किया था उसी को भरत के सहित त्यागने के लिए वे तैयार हो गये थे।

दशरथ के विषय मे प्राय कहा जाता है कि उन्होने सत्य की रक्षा के लिए प्राणो की आहुति दी थी किन्तु उनको सत्यवादी बनाने का पूरा श्रेय कैकेयी और राम को ही रहा है। वे स्वय अपनी प्रतिज्ञाओ को सदैव झुठलाते रहे। अनुबन्धपूर्वक वैदिक मन्त्रो के द्वारा कैकेयी के साथ विवाह करने पर भी पहले तो उन्होने अनुबन्ध तोडा और फिर कैकेयी का भी परित्याग कर दिया। इसके अतिरिक्त जब कैकेयी को वर देने का अवसर उपस्थित हुआ तब उन्होने स्पष्टतया न तो अपने पूर्व वचनो को स्वीकार ही किया और न उनके निर्वाह के प्रति ही उनके मन मे कोई उत्साह रहा था। वे लगातार कैकेयी को ही दूसरी दिशा मे मोडने का उपक्रम करते रहे थे। किसी भी विषय मे प्रतिज्ञा कर बैठना और उससे मुकर जाना उनका सामान्य आचार रहा है। रामायण मे कोई ऐसा प्रसग मिलता ही नही है जो उन्हे अतर्क्य रूप से सत्यनिष्ठ प्रमाणित कर सके।

दशरथ आचार धर्म की अपेक्षा यज्ञ क्रियाओ के प्रति ही अधिक निष्ठावान रहे। पुत्र की अभिलाषापूर्ति के लिए उन्होने अश्वमेध यज्ञ करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय समझा था और ऋषि शृग ने अथर्वशिरस् मन्त्रो के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराया था। भरत ने चित्रकूट पहुँचकर जब राम से भेट की थी तब राम ने दशरथ के विषय मे प्रश्न करते हुए कहा था कि धर्म पर अटल रहनेवाले सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ जिन्होंने राजसूय और अश्वमेध यज्ञो का अनुष्ठान किया है कुशल तो है? भरत ने भी अपने उत्तर मे दशरथ के यज्ञकर्ता होने की पुष्टि की है और कहा है कि यज्ञो के कर्ता महाराज दशरथ का स्वर्गवास हो चुका है। राम को युवराज बनाने के पूर्व उनसे मन्त्रणा करते हुए दशरथ ने अपने द्वारा सैकडों यज्ञ करने का सकेत किया है। उन्होने कहा है कि मैने यथेष्ट सुखो का उपभोग करते हुए अन्नदान तथा दक्षिणाओं से युक्त सैकडो यज्ञ कर डाले है।[2]

---

1 वा रा 2 34 26 2 वा रा 2 4 12

कैकेयी द्वारा इतना कष्ट दिये जाने पर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है—

नूनमनागत काले देहा च्यवति जीवितम्।
कस्यचित् क्लिश्यमानस्य मृत्युमम न विद्यते॥ —2.12.5

जहाँ तक धर्म व्यवस्थाओं का सम्बन्ध है दशरथ के जीवन की अन्य कोई ऐसी घटना नहीं दिखायी गयी जिसके आधार पर उनकी धर्म अथवा आचार विषयक आस्थाओं का अध्ययन किया जा सके। कैकेयी से वार्तालाप के प्रसंग में दशरथ को राजधर्मवित् लिखा गया है। यह तो असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि रामायण-काल में क्षात्रधर्म के जो सिद्धान्त प्रचलित थे उसका दशरथ द्वारा अनुसरण किये जाने के विषय में अधिक कुछ लिखा ही नहीं गया। उनके नगर की प्रबन्ध व्यवस्था जिस प्रकार की थी उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी लिखा जा चुका है। उस काल में ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकार सौंपने की क्षात्रधर्म के अनुसार व्यवस्था रही है। दशरथ ने राम को युवराज बनाने का जो निर्णय लिया था वह इस व्यवस्था के अनुकूल था। किन्तु रामायण में जिस प्रकार इस घटना का वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि दशरथ ने राम के गुणों पर मुग्ध होकर तथा उनके प्रति मन में अत्यधिक स्नेह भावना होने के कारण ही यह निर्णय लिया था। अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग में सबसे पहले राम के गुणों का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् दूसरे तथा अन्य सर्गों में जहाँ भी दशरथ के निर्णय तथा उनके द्वारा मन्त्रियों आदि के साथ परामर्श किये जाने का वर्णन है एक भी स्थल पर इसका संकेत नहीं है कि दशरथ ने राम को सबसे बड़ा होने के कारण युवराज बनाने का निश्चय किया था। राम से भी उन्होंने यही कहा था कि तुम्हारे गुणों के कारण ही तुमको युवराज बनाना चाहता हूँ। कैकेयी के सामने अपने निर्णय का औचित्य प्रतिपादित करते समय भी दशरथ ने राम के गुणों की प्रशंसा की थी। एक बार भी उन्होंने यह नहीं कहा कि ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकारी बनाने विषयक धर्म व्यवस्था को ध्यान में रखकर ही यह निर्णय लिया गया है।

अश्वमेध यज्ञ का प्रस्ताव करते समय दशरथ ने दो स्थलों पर यह बात कही है कि यदि इसमें किसी प्रकार का अपराध हो जाने का भय न हो तो इस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाए।[1] इस कथन से आभास होता है कि वह अपराध करने से डरते थे किन्तु उनका कथन स्वयं उनके ही दूसरे कथनों से खण्डित हो जाता है। कैकेयी को कोप भवन में क्रोधाविष्ट देखकर उसे मनाने और प्रसन्न करने के लिए स्वयं दशरथ ने ही कहा था—देवि! तुम रोओ नहीं और न अपने शरीर को सुखाओ। तुम्हीं बताओ आज किस अवध्य का वध कर दिया जाए अथवा किस प्राणदण्ड पाने योग्य

1 वाल 1 8 17 1 12 17

अपराधी को मुक्त कर दिया जाए? किस दरिद्र को धनवान बना दिया जाए और किस धनवान को अकिंचन कंगाल बना दिया जाए?

> *का वाऽवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्।*
> *अवध्यो वध्यतां को वा वध्यः को वा विमुच्यताम्।*
> *दरिद्रः को भवत्वाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिंचनः।* —वा रा 2 10 3° 35

दशरथ के उपर्युक्त वाक्य प्रमाणित करते हैं कि उन्हें राजधर्म के नियमों की कोई परवाह नहीं थी। वह अकारण ही किसी भी अवध्य को मार डालने अथवा किसी के धन का अपहरण करने में संकोच नहीं करते थे। राम वनगमन के समय ग्रामवासियों ने भी दशरथ के प्रति इसी प्रकार की आशंका व्यक्त करते हुए कहा था कि उन्होंने निरपराध राम का परित्याग कर दिया है।[1]

राम ने दशरथ के सम्मान की पूरी रक्षा की है किन्तु दशरथ की चरित्रगत दुर्बलताएँ मन्थरा और लक्ष्मण के वाक्यों से उद्घाटित होकर ऊपर आ जाती हैं। दशरथ की आसक्ति कैकेयी के प्रति सबसे अधिक थी और इस कारण कौसल्या तथा सुमित्रा को अनेक कष्ट भोगने पड़े थे। इस प्रेमव्यवहार के कारण कैकेयी की दृष्टि उनके दोषों पर पड़ी ही नहीं थी किन्तु मन्थरा इन सब बातों का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन करती रही। दासी होते हुए भी वह मूर्ख नहीं थी। सबसे पहले उसने कैकेयी पर आरोप लगाते हुए कहा था कि राजकुल में जन्म लेकर और एक नरेश की महारानी होकर राजधर्मों की उग्रता को वह क्या नहीं समझ रही। इसके पश्चात् ही उसने दशरथ के सम्बन्ध में कहा कि वह धर्म की बात तो करते हैं किन्तु पूरे शठ हैं ऊपर से मीठी बातें करते हुए भी हृदय से क्रूर हैं। तुम उन्हें शुद्ध हृदयवाला मानती हो इसीलिए ठगी जा रही हो। मन्थरा ने इस प्रसंग में दशरथ को दुष्टात्मा शत्रु साँप पापी अनृतवादी सब-कुछ कहा। उसने स्पष्ट कहा कि तुमने अज्ञानवश एक साँप को अपने अंक में स्थान दे दिया है—

> *धर्मवादी शठो भर्ता श्लक्ष्णवादी च दारुणः।*
> *शुद्धभावेन जानीषे तेनैवमतिसन्धिता॥*
> *अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु।*
> *काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके॥*
> *शत्रुः पतिप्रवादेन मात्रेव हितकाम्यया।*
> *आशीविष इवाङ्केन बाले परिधृतस्त्वया॥*
> *यथा हि कुर्याच्छत्रुर्वा सर्पो वा प्रत्युपेक्षितः।*
> *राज्ञा दशरथेनाद्य सपुत्रा त्वं तथा कृता॥* —वा रा 2 7 21 26-8

---

1 वा रा 2 49 8

लभ्मण दशरथ का पूरी तरह स कामी वृद्धावस्था क कारण विवक नष्ट कय्यी क वशीभूत आर राजाचित गुणा स शून्य मानत थ। उन्हान स्पष्ट कहा कि दशरथ प्रथमत वृद्ध हा चुक ह आर इस पर भी काम विषया के वशीभूत ह।[1] विवेकहीन राजा की इस प्रकार (वन जान की) आना का कौन राजनीतिज्ञ पुत्र पालन करेगा।[2] ल मण ने दशरथ को वृद्ध केकयी म आसक्त कृपण विवेकहीन आर गर्हणीय मानकर मार डालन तक का इरादा किया था।[3] मन्थरा की भाति लक्ष्मण भी दशरथ का पापी शठ मिथ्याचारी आर कामी मानते थ। उन्हाने राम स खुले शब्दों म कहा था कि आपका उन दोना पापिया (दशरथ ओर ककयी) पर सन्दह क्या नहीं हा रहा। ससार मे ऐस अनक व्यक्ति होन ह जो दूसरा को ठगने के लिए धर्म का ढोग रचत ह। य दाना स्वार्थवश शठतापूवक आपका परित्याग करना चाह रह ह।[4]

सुमन्त्र जब राम लक्ष्मण को वन म विदा कर अयोध्या लाटे थ तब उनके माध्यम स भी लक्ष्मण ने बडे तीखे शब्दा म सन्देश भेजा था। लक्ष्मण के अनुसार ककेयी का आदेश मानकर दशरथ न वनगमन की आज्ञा देकर उनको बड़ा कष्ट दिया है। लक्ष्मण ने यह भी कहा था कि इस प्रकार का शास्त्रविरुद्ध कार्य कर दशरथ किस प्रकार लोकप्रिय राजा बने रह सकेगे।[5]

दशरथ की विवेकहीनता उनके आचरण म लगातार परिलक्षित है। पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात् हविष्य अथवा पुत्रप्रदा खीर का वितरण उन्हाने अपनी तीन रानिया म जिस प्रकार किया उसका कुछ भी आधार समझ म नहीं आता। कासल्या को आधा भाग सुमित्रा को पहल चतुथाश ककेयी को अष्टमाश ओर फिर शेष बचा भाग सुमित्रा को देन की आखिर कान सी तुक थी। विवाह के तुरन्त बाद भरत शत्रुघ्न को ननिहाल भेजकर माण्डवी आर श्रुतिकीर्ति को लगातार बारह वर्ष तक उन्हाने पति वियोग का व्यथ ही कष्ट दिया था। राम के लिए वे कौसल्या आर सुमित्रा का परित्याग करने के लिए तयार हो गये थे[6] आर ककेयी के पेरो पर गिरकर पचास तरह से मनुहार करत रहे।[7] ककेयी स वह इतने अधिक डरते थे कि जब सुमन्त्र लोटकर आये तो ककेयी के भय से उन्हान राम क सम्बन्ध म पूछने बतलाने का भी साहस नहीं किया। तब कासल्या ने उनसे कहा कि जिस ककेयी के भय से आप सुमन्त्र स राम का समाचार नहीं पूछ रहे ह वह केकेयी यहाँ नही ह। तभी वे कुछ कहन सुनने का साहस कर सके थ।[8] विना सोच विचार के कुछ भी कर डालना आर फिर पश्चात्ताप करना दशरथ का स्वभाव रहा है। ककेयी की बातो मे आकर राम को वनवास देकर भी वह पश्चात्ताप करते रहे थे। उन्हाने सुमन्त्र स कहा था कि सुहृदो आर मन्त्रिया स परामर्श किये विना एक स्त्री की इच्छा पूर्ण करन के लिए ही मने यह अनर्थ कर डाला है।[9]

---

1 वा रा 2 21 3 2 वा रा 1 7 3 वा रा 2 21 19 4 वा रा 2 23 8 9 5 वा रा 2 58 7 33 6 वा रा 2 12 11 7 वा रा 2 12 15 111 8 वा रा 2 57 31 9 वा रा 2 59 19

ककेयी का दशरथ पर पूर्ण अधिकार था। इस कारण बचारी कौसल्या तक का पचासो मुसीबत झेलना पडी थीं। कौसल्या आर सुमित्रा अपन नारी स्वभाव क कारण भल ही कुछ अधिक न बाल सकी ह किन्तु प्राय सभी पात्र दशरथ का काम क अधीन ही मानते थे। राम पिता की मर्यादा का इतना अधिक सम्मान करते थे कि उनक मन म दशरथ के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना परिलक्षित नही होती। किन्तु उनके मन म भी यह सन्देह रहा था कि उनके वनगमन के पश्चात् कौसल्या आर सुमित्रा की पूरी दुर्दशा कर दी जाएगी। उन्होने लक्ष्मण को साथ चलने स रोकत हुए कहा था कि जा दशरथ मेघवर्षण के समान सभी की कामनाओ का पूरी करते थे वही अब कामपाश स आबद्ध ह।[1]

दशरथ ने वृद्धावस्था म नवयोवना केकेयी से विवाह किया था। अतएव केकेयी उनको प्राणा से भी अधिक प्रिय थी।[2] वे प्राय ही ककेयी के महलो मे जाते थे आर वह आकुलतापूवक उनकी प्रतीक्षा करती थी। राम को युवराज बनाने का निश्चय करने के पश्चात् भी दशरथ केकेयी को तद्विषयक समाचार सुनाने के बहान 'कामबल सयुक्त' हाकर रति क उद्देश्य से गये थे।[3] उन्हाने उसक अगा पर हाथ फरते हुए एक कामी क रूप म ही उससे बात की थी। उस समय वह पूर्णतया कामबाणा स बिधे हुए कामवेग स सन्तप्त कामेच्छा का अनुसरण कर रह थे।[4] ककेयी क साथ बाता के प्रसग म उनको लगातार 'कामी काममोहित ही लिखा गया ह। लक्ष्मण ने उनको स्पष्ट शब्दा मे काम के वशीभूत ही कहा ह। कोसल्या से उन्हाने कहा था कि महाराज स्त्री की बाता म आ गये ह इसलिए उनकी प्रकृति विपरीत हा गयी है। एक तो वह वृद्ध ह आर इस पर भी विषया ने उनको अपन वश म कर लिया हे। मन्मथ के आवश म आकर व इस समय क्या नही कह सकते।[5] दशरथ की काम वृत्ति की चचा अयाध्या के बाहर भी हाती रहती थी। ग्रामवासिया ने राम का वन जाते हुए दखकर कहा था कि काम क वश म पडे हुए राजा दशरथ का धिक्कार हे कि उन्होने इस प्रकार का गहणीय कार्य किया ह।[6]

दशरथ ने स्वय स्वीकार किया ह कि वह ककेयी की आज्ञा के अधीन थे। आर उसके किसी भी अभिप्राय को भग करने का उनमे साहस ही नही था।[7] जिस प्रकार वह ककेयी के सामने गिडगिडात मनुहार करत पर पडते आर हाथ जोडते रहे उससे यही प्रकट हाता है कि न तो वह इन्द्रियजयी थे ओर न उनमे पुरुषार्थ बल ही था। भक्ति भावना से प्रेरित होकर उनको राम का पिता हाने के नाते कितना भी सम्मान दिया जाय किन्तु धर्म आचरण और व्यवहार की दृष्टि से रामायण का सबस कमजार पात्र दशरथ को ही माना जाएगा।

---

1 वा रा 2 31 12 2 वा रा 2 10 23 3 वा रा 10 17 4 वा रा 2 11 1 5 वा रा 2 21 2 3 6 वा रा 2 49 1 7 वा रा 2 10 34

कासल्या का राम की माता क रूप म सर्वाधिक सम्माननीय माना जाता है। दशरथ न राम क प्रति जो अनुराग प्रकट किया है उस दखत हुए सहज ही यह विश्वास किया जा सकता है कि दशरथ कौसल्या का यथोचित ध्यान रखत हागे। किन्तु कासल्या को निरन्तर कष्टमय जीवन ही बिताना पड़ा था। दशरथ ने उसकी कभी कोई परवाह नहीं की आर एसा प्रतीत हाता है माना उस पति सुख की काई अनुभूति हा ही नही सकी थी। जब राम ने कासल्या का दशरथ और कैकेयी द्वारा दिय गय वन जाने क निर्देश की सूचना दी थी तो यह दशरथ का कासती हुई रा पडी थी। उसन कहा था—पति के प्रभुत्व काल म जा सुख प्राप्त होना चाहिए वह सुख कभी दखन का नहीं मिला आर ज्येष्ठ हाकर भी मुझ सौता की अप्रिय बात ही सुनना पड़ी ह—

न दृष्टपूर्व कल्याण सुख वा पतिपौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थित मया ॥
सा बहून्यमनाज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम्।
अह श्रोष्ये सपत्नीनामवराणा परा सती ॥ —वा रा २ २० ३८ ३९

कासल्या क विषय म अलग से ही लिखा गया ह। यहाँ मात्र इतना ही सकेत करना अभीष्ट है कि कासल्या-जसी सीधी सरल स्वभाव नारी को दशरथ न कैकेयी क प्रति आसक्त रहन के कारण लगातार कष्ट सहने के लिए मजबूर किया था। यह सभी तथ्य दशरथ की कमजारियो का ही पुष्ट करते ह। कासल्या ने दशरथ स सीधा प्रश्न किया था कि राम को वनवास दकर आपन पुत्र क प्रति ठीक वसा ही व्यवहार किया ह जसा बडी मछली छोटी मछली क साथ करती है। सनातन ऋषियो ने शास्त्र म जिसका साक्षात्कार किया ह तथा श्रेष्ठ द्विज जिसका आचरण करत ह वह धर्म आपकी दृष्टि म सत्य ह अथवा नहीं।[1] दशरथ ने कासल्या क प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया ओर अपने स्वभाव क अनुसार अचेत हाकर रह गये थे।

यह कहा जा सकता है कि दशरथ क मन म किसी आचार-व्यवस्था के प्रति काई निष्ठा नहीं थी। उनक सभी निर्णय तथा कार्य रागद्वेष एव इन्द्रिय विकारा स प्रभावित रह।

---

1 वा रा 2 61 22 23

कोसल्या का देवार्चन ओर मनोतियॉ

कासल्या सुमित्रा आर ककयी को प्राय दशरथ की बडी मँझली और छोटी रानी लिखा गया ह। कौसल्या यद्यपि सबस बडी थी किन्तु यह ज्ञात नही होता कि दशरथ का उसके साथ विवाह किस अवस्था में हुआ था। नाम की सगति के आधार पर ही कोसल्या का कासलनरश की कन्या माना जाता ह किन्तु इसका कोई सीधा प्रमाण उपलब्ध नहीं। रामायणकाल म कोसल एक बडा जनपद था जो सरयू के तट पर बसा हुआ था। अयाध्या इसी जनपद की नगरी थी। पुत्रेष्टि यज्ञ के समय अन्य राजाओ क साथ कोसलनरेश भानुमान को भी सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया गया था तथापि यह उल्लेख्य ह कि जिस प्रकार ककयनरेश को स्पष्ट शब्दो म दशरथ का श्वशुर लिखा गया ह उसी प्रकार कोसलनरेश के भी श्वशुर होने का काई सकेत नहीं। यह होने हुए भी कासल्या को कोसलनरश की पुत्री मानने म कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अश्वमेध यज्ञ क अवसर पर कौसल्या ने ही सब ओर से अश्व की परिचर्या करक प्रसन्न हाकर तीन तलवारा से उसका स्पर्श किया था। यज्ञ पूरा होने पर पायस का आधा भाग दशरथ ने कासल्या को दिया था जिसके फलस्वरूप उसने राम का जन्म दिया। बालकाण्ड म इससे अधिक कासल्या के सम्बन्ध म कोई उल्लख नहीं।

राम क राज्याभिषेक ओर वनगमन की घटना से ही कासल्या के जीवन पर वास्तविक प्रकाश पडता ह। इस प्रसग म प्राप्त सन्दर्भ इस तथ्य को प्रमाणित करते हे कि ज्येष्ठ रानी हाने के पश्चात् भी उस बेचारी को इतना कष्टमय जीवन बिताने के लिए विवश होना पडा था मानो सुख की उस कोई अनुभूति हुई ही न हो। दशरथ स लेशमात्र भी उसे पति सुख प्राप्त नहीं हो सका था। कौसल्या के विवाह क कितने समय पश्चात् सुमित्रा भी महारानी बनकर आ गयी थी यह कहना सम्भव नही किन्तु यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कोसल्या के प्रति अधिक अनुराग न हाने के कारण ही दशरथ ने सुमित्रा से विवाह किया हागा। इसके पश्चात् वृद्धावस्था म जब उन्हाने नवयौवना सुन्दरी कैकेयी से विवाह किया तो उनकी प्रेमासक्त एकान्तत केकेयी मे ही केन्द्रित होकर रह गयी थी। सपत्निया के बीच में कौसल्या को किस प्रकार उपक्षित आर तिरस्कृत जीवन बिताना पडा यह स्वय

उसी के वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। दशरथ ने कदाचित् उसे एक सहस्र गाँवों की जागीर देकर अलग बैठा दिया था।

यह सब-कुछ होते हुए भी पातिव्रत धर्म के प्रति कौसल्या की आस्था लगातार सुदृढ़ बनी रही। सीता को भी उसी प्रकार पातिव्रत धर्म का उसने उपदेश दिया था। कौसल्या नारियों को सती और असती दो श्रेणियाँ मानती थी और असती स्त्रियों के प्रति उसके मन में असीम घृणा की भावना विद्यमान थी। वनगमन के पूर्व उसने सीता को उपदेश देते हुए कहा था—

जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम पति के द्वारा सदा सम्मानित होकर भी संकट में पड़ने पर उसका आदर नहीं करती हैं वे सम्पूर्ण जगत् में असती (कुलटा) के नाम से पुकारी जाती है। नारियों का यह स्वभाव ही होता है कि पहले तो वे पति के द्वारा यथेष्ट सुख भोगती है परन्तु जब वह थोड़ी सी भी विपत्ति में पड़ता है तो उस पर दोषारोपण करती हुई उसका परित्याग कर देती हैं। जो असत्यशील विकृत चेष्टावाली दुष्ट पुरुषों से संसर्ग रखनेवाली कुलटा पापपूर्ण विचारयुक्त जरा सी बात पर पति से विमुख हो जानेवाली स्त्रियाँ हैं वे सब असती कुलटा कही जाती हैं। उत्तम कुल किया हुआ उपकार विद्या भूषण आदि का दान और संग्रह यह सब कुछ कुलटा स्त्रियों को वश में नहीं कर पाता है क्योंकि उनका हृदय अव्यवस्थित रहता है। इसके विपरीत जो सत्य सदाचार शास्त्र मर्यादा और कुलोचित मर्यादाओं में स्थित रहती हैं उन साध्वी स्त्रियों के लिए पति ही एकमात्र परम पवित्र और श्रेष्ठ देवता है। इसलिए तुम राम का कभी अनादर न करना। ये निर्धन हों अथवा धनी तुम्हारे लिए देवता के ही समान है।

दशरथ के प्रति किंचित् आक्रोश प्रकट करने के पश्चात् वह स्वयं रो पड़ी थी। पति को पत्नी से कुछ याचना करनी पड़े इस प्रकार की स्थिति को वह नारीधर्म के विरुद्ध मानती थी। दशरथ से क्षमा माँगते हुए उसने कहा था— पति अपनी स्त्री के लिए इहलोक और परलोक में भी स्पृहणीय है। इस जगत् में जो स्त्री अपने बुद्धिमान् पति द्वारा मनायी जाती है वह कुलस्त्री कहलाने के योग्य नहीं है।

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् कौसल्या ने सती होने की कामना व्यक्त की थी। पहले कैकेयी की भर्त्सना करते हुए उसने कहा था—नारी धर्म को त्याग देनेवाली कैकेयी के सिवा संसार में दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो अपने लिए आराध्य देव स्वरूप पति का परित्याग कर जीना चाहेगी। मैं आज ही मृत्यु का वरण करूँगी एक पतिव्रता की भाँति पति के शरीर का आलिंगन करके चिता की आग में प्रवेश कर जाऊँगी।

पातिव्रत धर्म के प्रति निःशेषतया आस्थावान होते हुए और पति को देवोपम मानते हुए भी कौसल्या ने राम को वनवास दिये जाने विषयक दशरथ के निर्णय को उचित नहीं माना। राम को वन में विदा करने के पश्चात् सुमन्त्र के लौटने पर

जव दशरथ ने ककेयी क भय से उनसे बात करने का भी साहस नही किया तो कासल्या ने व्यजनापूण तीख शब्दो म कहा था—"पहले तो आपने अनीतिपूर्वक पुत्र को वनवास दे दिया आर अव इस प्रकार लज्जित हो रहे हे। उठिए आर अपने सुकृता का सुख भोगिए।" इसके पश्चात् फिर उसने दशरथ का उलाहना देते हुए कहा था—"नारी के लिए पति, पुत्र आर वन्धु-वान्धव ही सहारा होते हे। आप तो मेरे हो ही नहीं राम का भी वनवास दे दिया है। इस प्रकार आपके द्वारा म सभी प्रकार स मारी गयी।" कासल्या दशरथ के निर्णय को मात्र अपन लिए ही अहितकर नही वरन् पूरे राष्ट्र राज्य मन्त्री प्रजा सभी के लिए विनाशकारी मानती थी। उसने वडे ही व्यग्यपूर्ण शब्दा म कहा था—अव राष्ट्र ओर प्रजा का नाश करके आप ककेयी आर भरत क साथ सुखपूर्वक रहिए—

हत त्वया राष्ट्रमिद सराज्य हता स्म सर्वा सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पारा सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ।

—वा रा 2 61 26

केकयी क साथ विवाह करने के पश्चात् दशरथ ने कोसल्या ओर सुमित्रा को पूणरीत्या तिरस्कृत आर उपेक्षित अवस्था मे छोड दिया था। विश्वामित्र के साथ राम को वन भेजा गया धनुर्भग का समाचार पाकर दशरथ मिथिला गये आर राम को युवराज वनाने का निर्णय लिया गया किन्तु इनम से किसी की खवर कोसल्या के काना तक पहुँची थी, इसका कोई उल्लेख नही। राम के राज्याभिषक के दिन भी दशरथ न कासल्या अथवा सुमित्रा—किसी क महल मे जाने की आवश्यकता नही समझी आर वे सीधे ककेयी के पास ही पहुँच थे। दशरथ ने इस तथ्य को स्वय स्वीकार किया है। वे यह तो मानते हे कि प्रियवदा कासल्या उनके प्रति सदेव दासी सखी भार्या भगिनी आर माता के समान व्यवहार करती हुई उनकी हितपिणी थी किन्तु केकेयी की सवा खुशामद म ही लगे रहन के कारण उन्हाने कभी कोसल्या का सम्मान नहीं दिया—

यदा यदा च कौसल्या दासीवच्च सखीव च।
भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति ॥
सतत प्रियदामा मे प्रियपुत्रा प्रियवदा।
न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव ॥

—वा रा ° 12 68 69

कासल्या ने दु खी हाकर दशरथ से सीधे शब्दों म तन त्व मम नेवासि अथात् तुम तो मेरे हो ही नही कहा था ओर राम से अपना दु ख रोते हुए वह बुरी तरह फूट पडी थी। उसक वचना म इतनी अधिक व्यथा भरी हुई हे कि पढत हुए और उद्धृत करत हुए भी आखे भर आती ह। राम से उसने कहा था—

उसी के वाक्या स स्पष्ट हो जाता हैं। दशरथ ने कदाचित् उसे एक सहस्र गाँवो की जागीर देकर अलग बेठा दिया था।

यह सब-कुछ होते हुए भी पातिव्रत धर्म के प्रति कोसल्या की आस्था लगातार सुदृढ बनी रही। सीता को भी उसी प्रकार पातिव्रत धर्म का उसने उपदेश दिया था। कोसल्या नारिया की सती ओर असती दो श्रेणियॉ मानती थी ओर असती स्त्रिया के प्रति उसके मन म असीम घृणा की भावना विद्यमान थी। वनगमन के पूर्व उसने सीता को उपदेश देते हुए कहा था—

"जो स्त्रियाँ अपन प्रियतम पति के द्वारा सदा सम्मानित होकर भी सकट मे पडने पर उसका आदर नही करती ह वे सम्पूर्ण जगत् म असती (कुलटा) के नाम से पुकारी जाती ह। नारिया का यह स्वभाव ही होता है कि पहले तो वे पति के द्वारा यथेष्ट सुख भोगती ह परन्तु जब वह थोडी सी भी विपत्ति मे पडता है ता उस पर दोषारोपण करती हुई उसका परित्याग कर दती ह। जो असत्यशील विकृत चेष्टावाली दुष्ट पुरुषो से ससर्ग रखनेवाली कुलटा पापपूर्ण विचारयुक्त जरा सी बात पर पति स विमुख हा जानेवाली स्त्रियॉ ह वे सब असती कुलटा कही जाती हे। उत्तम कुल किया हुआ उपकार विद्या भूषण आदि का दान ओर सग्रह यह सब कुछ कुलटा स्त्रिया को वश म नहीं कर पाता है क्योकि उनका हृदय अव्यवस्थित रहता ह। इसके विपरीत जो सत्य सदाचार शास्त्र मर्यादा ओर कुलोचित मर्यादाआ म स्थित रहती ह उन साध्वी स्त्रिया के लिए पति ही एकमात्र परम पवित्र आर श्रेष्ठ देवता ह। इसलिए तुम राम का कभी अनादर न करना। ये निर्धन हो अथवा धनी तुम्हारे लिए देवता के ही समान हे।

दशरथ के प्रति किचित् आक्रोश प्रकट करने के पश्चात् वह स्वय रो पडी थी। पति को पत्नी से कुछ याचना करनी पडे इस प्रकार की स्थिति को वह नारीधर्म के विरुद्ध मानती थी। दशरथ से क्षमा मॉगते हुए उसने कहा था— पति अपनी स्त्री के लिए इहलोक आर परलोक मे भी स्पृहणीय हे। इस जगत् मे जो स्त्री अपने बुद्धिमान् पति द्वारा मनायी जाती हे वह कुलस्त्री कहलाने के योग्य नहीं है।

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् कोसल्या न सती होने की कामना व्यक्त की थी। पहले केकेयी की भर्त्सना करते हुए उसने कहा था—नारी धर्म को त्याग देनेवाली केकयी के सिवा ससार म दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो अपने लिए आराध्य देव स्वरूप पति का परित्याग कर जीना चाहेगी। मे आज ही मृत्यु का वरण करूँगी एक पतिव्रता की भाति पति के शरीर का आलिगन करके चिता की आग मे प्रवेश कर जाऊँगी।

पातिव्रत धर्म के प्रति नि शेषतया आस्थावान होते हुए ओर पति को देवोपम मानते हुए भी कोसल्या ने राम का वनवास दिये जाने विषयक दशरथ के निर्णय को उचित नही माना। राम को वन म विदा करने के पश्चात् सुमन्त्र के लाटने पर

जब दशरथ ने कैकेयी के भय से उनसे बात करने का भी साहस नही किया तो कौसल्या ने व्यंजनापूर्ण तीखे शब्दो मे कहा था-- पहले तो आपने अनीतिपूर्वक पुत्र को वनवास दे दिया और अब इस प्रकार लज्जित हो रहे है। उठिए और अपने सुकृतों का सुख भोगिए।" इसके पश्चात् फिर उसने दशरथ का उलाहना देते हुए कहा था-- नारी के लिए पति पुत्र और बन्धु-बान्धव ही सहारा होते है। आप तो मेरे हो ही नहीं, राम को भी वनवास दे दिया है। इस प्रकार आपके द्वारा मैं सभी प्रकार से मारी गयी।" कौसल्या दशरथ के निर्णय को मात्र अपने लिए ही अहितकर नही वरन् पूरे राष्ट्र राज्य मन्त्री प्रजा सभी के लिए विनाशकारी मानती थी। उसने बड़े ही व्यंग्यपूर्ण शब्दो में कहा था--अब राष्ट्र और प्रजा का नाश करके आप कैकेयी और भरत के साथ सुखपूर्वक रहिए--

हत त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हताः स्म सर्वाः सह मन्त्रिभिश्च।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौराः सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ।

--वा रा 2 61 26

कैकयी के साथ विवाह करने के पश्चात् दशरथ ने कौसल्या और सुमित्रा को पूर्णरीत्या तिरस्कृत और उपेक्षित अवस्था में छोड दिया था। विश्वामित्र के साथ राम को वन भेजा गया धनुर्भंग का समाचार पाकर दशरथ मिथिला गये और राम को युवराज बनाने का निर्णय लिया गया किन्तु इनमें से किसी की खबर कौसल्या के कानों तक पहुँची थी इसका कोई उल्लेख नहीं। राम के राज्याभिषेक के दिन भी दशरथ ने कौसल्या अथवा सुमित्रा--किसी के महल मे जाने की आवश्यकता नही समझी और वे सीधे कैकेयी के पास ही पहुँचे थे। दशरथ ने इस तथ्य को स्वयं स्वीकार किया है। वे यह तो मानते है कि प्रियंवदा कौसल्या उनके प्रति सदैव दासी, सखी भार्या भगिनी और माता के समान व्यवहार करती हुई उनकी हितैषिणी थी किन्तु कैकयी की सदा खुशामद मे ही लगे रहने के कारण उन्होने कभी कौसल्या को सम्मान नही दिया--

यदा यदा च कौसल्या दासीवच्च सखीव च।
भार्यावद् भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति ॥
सततं प्रियदामा मे प्रियपुत्रा प्रियंवदा।
न मया सत्कृता देवी सत्कारार्हा कृते तव ॥

--वा रा 2 12 68 69

कौसल्या ने दुःखी होकर दशरथ से सीधे शब्दो मे त्वं न मम नेयासि अर्थात् तुम तो मेरे हो ही नही कहा था और राम से अपना दुःख रोते हुए वह बुरी तरह फूट पडी थी। उसके वचनो में इतनी अधिक व्यथा भरी हुई है कि पढते हुए और उद्धृत करते हुए भी आँखे भर आती है। राम से उसने कहा था--

अत्यन्त निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता।
परिवारेण कैकेय्या समा वाप्यथवावरा। —वा रा 2 ″0 42

—पति की आर से मुझ सदा अत्यन्त तिरस्कार ओर कडी डॉट फटकार ही मिलती रही हे कभी प्यार आर सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। म सदेव कैकेयी की दासियो के समान अथवा उनस भी गयी बीती समझी जाता रही हूँ।

राम को दशरथ क कासल्या के प्रति इस प्रकार के अनुदार व्यवहार का ज्ञान रहा था। अतएव वनगमन के पूर्व उनके मन म अनेक प्रकार की शकाएँ उत्पन्न हुइ थी। उनका हल उन्हाने अलग-अलग रीति से ही सोचा था। केकेयी से तो वे कुछ कह ही नही सकत थ अतएव कासल्या ओर दशरथ से ही कहना उन्होंने उचित समझा था। कोसल्या उस समय वृद्ध हा चुकी थी। अतएव दशरथ से उनके विषय म कहते हुए राम ने कहा था—

"मरी यशस्विनी माता कासल्या वृद्ध हा चुकी हं। इनका स्वभाव उदार हे तथा य धर्मनिष्ठ ह। यह कभी आपकी निन्दा नहीं करतीं। मरे चले जाने पर इनका इतना कष्ट होगा जितना इन्हाने कभी नहीं भोगा। अतएव आप कृपया इनका सम्मान करते रहिए। कहीं ऐसा न हो कि मरे च॰॰ जाने पर यह शाक म पडकर अपने प्राण त्याग दे।

कोसल्या का पूरा जीवन सातो से प्राप्त कष्ट भोगत ही व्यतीत हुआ था। सबसे पहले सुमित्रा उसकी सोत वनकर आयी थी उसक बा॰ जब ककयी न महला म प्रवश किया तब कदाचित् कासल्या ओर सुमित्रा दोना को तिरस्कृता के रूप मे छाड दिया गया था। दशरथ की परम प्रयसी होने के नात केकेयी इतनी अधिक अभिमान स भर गयी थी कि उसन प्रारम्भ से ही कोसल्या का अनादर करना शुरू कर दिया था। इसीलिए मन्थरा न ककयी स कहा था— तुम पति का अत्यन्त प्रेम प्राप्त होने के कारण अभिमान म आकर पहले जिनका निरादर करती रही हा वे ही तुम्हारी सात कासल्या अपन पुत्र क राजा बनन पर तुमस अपने वर का प्रतिशाध लंगी। ककयी भी कासल्या क प्रति इतनी अधिक ईर्ष्यालु थी कि वह किसी भी अवस्था म उसका सम्मानपूर्ण स्थिति म देखना बर्दाश्त नहीं करती थी। उसने दशरथ से स्पष्ट शब्दा म कहा था कि राम माता कासल्या का राजमाता के रूप म दूसरे लोगो द्वारा सम्मानित हात देखने की अपक्षा वह मर जाना श्रयस्कर मानती ह।

वस्तुत कासल्या आर केकयी क वीच इतना अधिक सातियाडाह रहा हे जिसकी राम परिवार म कल्पना करना भी कठिन है। जब राम ने कासल्या का यह सूचना दी थी कि दशरथ न उनका अभिषक करन का निश्चय किया ह ता कासल्या ने आशीष देत हुए स्वय अपन और सुमित्रा के बन्धु-बान्धवा को आनन्दित करने की ही कामना व्यक्त का थी। ककयी के बन्धु बान्धवा के प्रति काई शुभकामना व्यक्त

नहीं की गयी। इसी प्रकार उन्होने राम स कहा था–तुमको मेरी सोत की कही हुई अधर्मयुक्त वात मानकर वन जाना उचित नही। कोसल्या की केकेयी के प्रति यही धारणा थी कि नरश्रेष्ठ राम पर अपना विष उडेलकर वक्रगति से चलनेवाली केकेयी कचुल छोडकर सर्पिणी की भाँति स्वच्छन्द विचरेगी ओर जिस प्रकार घर म रहनेवाला दुष्ट सर्प बार बार कष्ट दता रहता हे, उसी प्रकार राम को वन भेजकर सफलमनोरथ ककेयी उसे कष्ट देती रहगी।

राम जब सबसे पहली वार कोसल्या का दशरथ द्वारा वनवास दिये जाने विषयक निणय की सूचना देते ह तो कोसल्या की व्यथा का वाँध ऐसा फूट पडता हे कि पाटको को भी वह अपने साथ वहा ले जाता हे। सोता आर विशेषकर ककयी द्वारा दिये गये कष्टो को व्यक्त करने से वह अपने का रोक नहीं सकी। उसकी सहिष्णुता धुएँ के समान विलीन हो गयी ओर अतीत के कष्टा का स्मरण करती हुई भयावह भविष्य की कल्पना से वह काँप गयी थी। पति का सुख उस प्राप्त था ही नहीं पुत्र वियाग का सामने देखकर उसने वन्ध्या रहना ही श्रेयस्कर समझा था। राम के अतिरिक्त कोई ऐसा था भी नहीं जिसके समक्ष वह अपना हृदय खालकर रख सकती। सभी उसके लिए पराय थ। इसलिए राम से ही उसने कहा था–

वटा वन्ध्या का एक मानसिक शोक होता ह। उसके मन म यह सन्ताप बना रहता हे कि मुझे कोई सन्तान नहीं ह। इसके सिवा दूसरा कोई दु ख उसे नहीं होना। पति के प्रभुत्वकाल म एक ज्यष्ठ पत्नी को जो सुख प्राप्त होना चाहिए वह मुझे पहल कभी देखन को नही मिला। म सोचती थी कि पुत्र के राज्य म सब सुख देख लूँगी आर इसी आशा स म अव तक जीती रही। बडी रानी हाकर भी मुझे अपनी बाता स हृदय को विदीर्ण कर देनवाली छोटी सातो के कटु वचन सुनने पडेग। स्त्रियो के लिए इससे बढकर महान् दु ख आर क्या हा सकता है। अत मेरे दु ख का काई अन्त नहीं दिखाई देता। वटा तुम्हार निकट रहने पर भी मे इस प्रकार सोता से तिरस्कृत रही हूँ फिर तुम्हारे परदेस चले जान पर मेरी क्या दशा होगी। उस दशा म तो मेरा मरण ही निश्चित ह। पति की ओर से मुझे सदा तिरस्कार ओर कडी डाँट फटकार ही मिलती रही ह। कभी प्यार आर सम्मान प्राप्त नही हुआ। म ककेयी की दासिया के वरावर अथवा उनसे भी गयी वीती समझी जाती रही हूँ। जो कोई मेरी सवा म रहता या मेरा अनुसरण करता है वह भी केकेयी पुत्र भरत को देखकर चुप हाकर रह जाता ह। तुम्हारे जाने पर इस दुर्दशा म पडकर सदा क्रोधी स्वभाव के कारण कटु वचन वोलनेवाली केकयी की तरफ केसे देख सकूँगी। तुम्हारी उम्र सत्ताइस वर्ष की हा चुकी हे। म यही आशा लगाये वेठी थी कि अव मेरा दु ख दूर हो जाएगा। इस वुढाप म इस तरह साता द्वारा किया गया तिरस्कार आर उससे होनेवाल दु ख का म अधिक नही सह सकूँगी। मुझस अव इन सोतो के वीच नही रहा जाएगा।

राम को भी केकयी द्वारा कासल्या को दिये जानेवाले कष्टा की पूरी जानकारी थी। वनवास की पूरी अवधि म यह चिन्ता उनको लगातार सालती रही कि कासल्या पर न जान क्या वीत रही होगी। गगा पारकर भरद्वाज आश्रम के समीप पहुचते पहुचते भी उन्हान लक्ष्मण को समझा बुझाकर लाट जाने का आग्रह किया था। उनकी इच्छा थी कि लक्ष्मण लाटकर कासल्या आर सुमित्रा की सेवा शुश्रूषा कर सकेंगे। लक्ष्मण से उन्हाने कहा था कि साभाग्य के मद मे कैकेयी कोसल्या आर सुमित्रा को कष्ट द सकती है। वह दशरथ को भी मार डाल सकती ह। केकेयी द्वेषवश अन्याय कर सकती ह आर कासल्या सुमित्रा दोना को विष देकर मार सकती ह।

राम के अतिरिक्त रामायण क अन्य पात्रो म कवल सुमित्रा को ही कासल्या के प्रति कुछ सहानुभूति रही थी। कासल्या के होते हुए भी जव सुमित्रा का विवाह हुआ था आर वह रानी वनकर आयी थी उस समय कासल्या के प्रति कैसा व्यवहार था इसका कोई उल्लख नही किया गया किन्तु कासल्या ने अपना दु ख रोत हुए केवल ककयी को ही नहीं वल्कि साता को वुरा कहा ह। सुमित्रा क प्रति कासल्या ने कही कोई सद्भावना भी प्रदर्शित नही की। सम्भव ह ककेयी क आने के पश्चात् जव सुमित्रा का भी उपेक्षिता बनाकर छाड दिया गया हागा तभी सुमित्रा के मन म कासल्या के प्रति सद्भावना का उदय हुआ हागा। सुमित्रा ने राम के गुणा की प्रशसा करत हुए ही कासल्या का धैर्यपूवक दु ख सहन करने का परामर्श दिया था।

दशरथ आर ककेयी के कारण कोसल्या को जो कष्ट भोगने पडे थे उनके कारण उसकी सभी आशाएँ राम म ही कन्द्रित हा गयी थीं। व्रत और उपवास के साथ राम क उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए ही उस अपना जीवन विता देना पडा था। आराध्य देवता की पूजा स्तुति करत हुए उसने स्वय क लिए कभी कोई कामना नही की। इसीलिए राम वनगमन के पूर्व वडे विषादपूर्वक उसने कहा था– 'मरे द्वारा किय गय व्रत-उपवास सव निरर्थक ही सिद्ध हुए।" राम के लिए समस्त दवी दवताआ का स्मरण करते हुए उसने जो मगल कामनाए की थीं उनस यह स्पष्ट है कि राम के अतिरिक्त उसे अपने जीवन का कोई सहारा दिखाई नहीं दिया।

जिस प्रकार वृद्धा ओर पति की आर से उपक्षिता एव तिरस्कृता सती साध्वी नारिया दवाभिमुख हा जाती ह उसा प्रकार सभी आर स निराश कासल्या ने अपना जीवन व्रत-उपवास आर देवताआ की पूजा-आराधना के लिए समर्पित कर दिया था। स्वय राम ने कासल्या क लिए तपस्विनी शब्द का प्रयाग किया है। उसे सदैव दव प्रतिमा क समक्ष ही वठा देखा गया ह। राम अपने युवराज पद पर अभिषेक का समाचार जव उनको सुनाने के लिए गय थे तब भी वह अपने नेत्र बन्द किये ध्यानावस्थित अवस्था म ही वटी थी। पुत्र का अभिषेक विषयक समाचार सुनन के

पश्चात् भी वह प्राणायाम करती हुई देवताओ से मगल कामना करने लगी। राम के अभ्युदय के लिए न तो उसने किसी प्रकार का षड्यन्त्र रचा और न दशरथ को समझाने बुझाने अथवा फुसलाने का ही प्रयास किया वरन् मात्र व्रत-उपवास के माध्यम से देवताओ की प्रार्थना करती रही थी।

पुत्र के अभिषेक का समाचार सुनकर भी कौसल्या के दैनिक जीवन म कोई परिवर्तन नही हुआ। न तो किसी प्रकार के मान गुमान की भावना ही उसके मन मे जाग्रत हुई और न पूजा-आराधना को छोडकर प्रत्याशित सुखोपभोगो की ओर ही उसका ध्यान गया। वह पहले की भाँति फिर अपने आराध्य के सामने हाथ जोडकर बैठ गयी थी। राजा दशरथ द्वारा दिये गये वनगमन के निर्देश का समाचार लेकर जब राम फिर उसके पास पहुँचे तब भी वह पूर्व की भाति रातभर जागकर विष्णु की पूजा करती हुई पुत्र की मगल कामना करती रही थी। वह नित्य व्रत परायणा थी और प्रात काल मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि मे आहुति देती थी। उसके चारो ओर केवल पूजन सामग्री—दही अक्षत घी प्रसाद सामग्री हविष्य धान का लावा सफेद फूलो की माला खीर समिधा और भरे हुए कलश ही रहा करते थे। नित्य प्रति इष्टदेवता के लिए तर्पण करना भी उसके पूजा विधान का अग था। पूजा करने के समय वह नियमत रेशमी या सन के बने हुए सफेद वस्त्र ही धारण करती थी।

राम को वन के लिए विदा करते समय स्वस्तिवाचन करते हुए भी उसने देवताओ के प्रति अपनी आस्था का सम्बल ही ग्रहण किया था। वह पहले आचमन करके ही स्वस्तिवाचन के लिए तैयार हुई। इसके बाद अनेक मगल कामनाए करते हुए पुष्पमाला गन्ध आदि उपचारो और स्तुतियो द्वारा देवताओ का पूजन किया। राम के कल्याण के लिए किसी महात्मा ब्राह्मण को बुलाकर विधिपूर्वक होम कराया था। इसके लिए उसने प्रयत्नपूर्वक घी श्वेत पुष्प माला समिधा आदि वस्तुएँ ब्राह्मण के समीप रखवा दी थीं। ब्राह्मण द्वारा विधिपूर्वक होम करने और स्वस्तिवाचक मन्त्रो का पाठ करने पर कौसल्या ने उसे यथेष्ट दक्षिणा दी थी। ब्राह्मण द्वारा पूजा विधि सम्पन्न होने पर कौसल्या ने स्वय भी राम के मस्तक पर चन्दन रोली आदि का तिलक करने के साथ ही मन्त्रोच्चारणपूर्वक सिद्धिदा विशल्यकारिणी नामक ओषधि को उनकी रक्षा के लिए बाँध दिया था। और शिव आदि देवता महर्षि भूतगण नाग आदि सबसे प्रार्थना की थी कि वे चिरकाल तक राम का हित साधन करते रहे। व्रत और उपवासो के द्वारा कौसल्या ने अपने शरीर को पूरी तरह सुखा डाला था। राम के शब्दो म तो इस तथ्य के सकेत मिलते ही ह भरत ने भी भरद्वाज आश्रम म उनका परिचय देते हुए कहा था— "भगवन् ! आप जिन्हे शोक और अनशन के कारण अत्यन्त दीन और कृशकाय देख रहे ह वही दशरथ की बडी महारानी राम की माता कौसल्या ह।"

धर्म के रूप म कौसल्या नारियो के लिए केवल पातिव्रत धर्म को ही सर्वोपरि मानती थी और व्रत-उपवास देवपूजा ही उसका नित्य-नैमित्तिक आधार था। देवताओ

म विष्णु आर शिव क प्रति तो उसके मन मे आस्था थी ही विश्वेदेव मरुद्गण धाता विधाता पूषा भग अर्यमा इन्द्र लोकपाल स्कन्द साम बृहस्पति सप्तर्षि नारद शुक्र सूर्य कुबेर यम अग्नि वायु–सभी के प्रति वह श्रद्धावती रही। राम वनगमन के पूर्व इन समस्त देवताओ से कल्याण के लिए उसने कामना की थी। ऐसा प्रतीत होता ह कि किसी विशिष्ट देवता को उपास्य मानकर ही उसन यह चर्या नहीं अपनायी थी वरन् एक सरल नारीस्वभाव के परिणामस्वरूप आर निराशा से अभिभूत हाकर ही वह सभी देवताओ के सामने हाथ जोडती रही। शान्ति, सुख और सरक्षण की आशा स उस यह सब करना पडा। घने अन्धकार से घिरे हुए व्यक्ति क द्वारा किरण की खाज के प्रयास के समान ही कौसल्या म बचैनी आर छटपटाहट दिखाइ दती ह। राम के लिए उसने उपर्युक्त देवताओ से ही नहीं अपितु समिधा कुश पवित्री वेदी मन्दिर पवत वृक्ष जलाशय ऋषि ऋतुएँ मास सवत्सर रात दिन श्रुति स्मृति आकाश पाताल नक्षत्र ग्रह कला काष्ठा साँप बिच्छू सभी क सामने हाथ जाड थ आर पुत्र का कल्याण करने की कामना की थी। उसका यह आचरण ही पुष्टि करता ह कि वह कितनी निराश आर अपने को असहाय मानती थी।

कौसल्या का कभी यह विश्वास ही नही रहा कि दशरथ राम के प्रति सद्भावना रखत हुए उनके हित का बात भी साचगे। वह स्वय राजमहल की व्यवस्था मे अपने का असहाय पाती थी। इसलिए अपन पुत्र के हित के लिए ही उसने व्रत और उपवास आदि का सहारा लिया था। राम के सद्गुणो क प्रति भी वह पूर्णतया आश्वस्त थी। राम न जब सबस पहले उस दशरथ द्वारा युवराज पद पर अभिषेक किये जान क निर्णय की सूचना दी ता उसन प्रसन्नता म केवल दो बात ही कही थी। प्रथमत यह कि तुम्हार लिए किये गये व्रत-उपवास आर देवाराधना का फल आज प्राप्त हो गया ह आर दूसरा यह कि राम न अपन सद्गुणो से दशरथ को प्रसन्न कर लिया ह। अपन स्वभाव आर प्रकृति के अनुसार राम का भी उसने धर्मनिष्ठ बनान का पूरा प्रयास किया था। उसका विश्वास था कि विपत्तिकाल म केवल धर्माचरण हो व्यक्ति की रक्षा करता ह। राम को प्रतिदिन मन्दिरो म जाकर देवताओ को प्रणाम करने की उसने प्रेरणा दी थी। इसलिए राम क वनगमन के समय उसन आशीष दत हुए कहा था–"तुम नियमपूर्वक जिस धर्म का पालन करते हो वह धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा। देवस्थानो आर मन्दिरो म जाकर तुम जिनको प्रणाम करते हो य देवता आर महर्षि वन म तुम्हारी रक्षा कर। इसक पहले भी राम के प्रति शुभकामना व्यक्त करत हुए उसने कहा था– बेटा तुम धर्मशील वृद्ध एव महात्मा राजर्षियो क समान आयु कीर्ति आर कुलोचित धर्म प्राप्त करो।

कर्म परिणाम आर दैव क प्रति कौसल्या की आस्था कम नहीं थी। दशरथ द्वारा राम का वन भेजन विषयक निर्णय सुनकर उसन यद्यपि कैकेयी आर दशरथ को बुरा अवश्य कहा किन्तु उसे उसने दैव का ही खेल माना था। उसकी मान्यता थी कि

इस जगत् म दव ही सबसे बलवान है। उसकी आना सबके ऊपर चलती है ओर उसी के प्रभाव के कारण राम को वनवास जाना पड रहा है। काल की आज्ञा का उल्लघन करना असम्भवप्राय ह आर उसकी गति को समझना भी सरल नही। किसी दूसरे पर दोपारोपण करने क स्थान पर उसने यही माना था कि पूर्वजन्म के कर्मो क परिणामस्वरूप ही उसको यह पुत्र वियोग की विपत्ति सहन करनी पड रही है। कर्म परिणामा को भोगना प्राणी के लिए अनिवार्य ह। यदि असह्य दु ख भार से बचने के लिए काइ अपने जीवन का अन्त करने का भी प्रयास करे तो भी यह सम्भव नहीं। यदि यह सम्भव हाता तो वह यमलोक को प्रस्थान कर जाने के लिए आकुल था। किन्तु कासल्या के अनुसार निश्चय ही अकाल मृत्यु जैसी कोई स्थिति हाती ही नही।

कोई शस्त्र स्वय कष्टप्रद नही हाता आर न कोइ निष्क्रिय शत्रु ही हानिकर हो सकता ह। इनकी क्रियाएँ आर उनके परिणाम ही व्यक्ति को पीडा देत ह। शस्त्र प्रहार के पश्चात् हुए आघात से ही कष्ट हाता ह स्वय शस्त्र स नही। शस्त्र अथवा शत्रु मात्र निमित्त ही होते हैं। काम क्रोधादि शत्रु भी उसी स्थिति म शत्रु हात है जब उनके आघाता के परिणामा स व्यक्ति अपने का पराभूत पाता है। इन सबका एकान्तत परिणाम प्राय शोक ही होता हे। अतएव कौसल्या ने कामादि विकारो का नही अपितु शोक का ही सबसे बडा विकार माना ह। यदि काम लोभ आदि के वशीभूत होकर व्यक्ति उनके परिणामो के प्रति उपेक्षा भाव रखत हुए शोकाभिभूत नहीं होता ता निश्चय ही उन शत्रुआ अथवा विकारो का उसने जीत लिया ह। शोक भी एसा शत्रु ह जा धर्य को ही नही अपितु व्यक्ति के शास्त्रज्ञान तथा उसके विवेक को भी नष्ट कर दता ह—

शोको नाशयते धैर्य शोको नाशयते श्रुतम्।
शोको नाशयते सर्व नास्ति शोकसमो रिपु । —वा रा 2 6२ 15

वस्तुत कासल्या को वेदिक धर्मपद्धति स्मार्त धर्म क्षात्रधर्म अथवा राजनीति किसी की भी सम्यक् जानकारी नही थी। वह सती साध्वी अत्यन्त सरल स्वभाव सीधी सादी सामान्य नारी थी। सातो के दुर्व्यवहार और पति की उपेक्षा ने उसे निराशा क इतने गहर गत म धकेल दिया था जहा गहन अधकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। उसक सामन आँखे बन्द कर देवताआ का हाथ जाड़कर मगल कामना करन के अलावा कोई मार्ग था ही नही। अपने जीवन म ता वह सर्वथा निराश थी हा अतएव उसकी आशा केवल राम पर टिककर रह गयी थी। बड़ी रानी हान का उस अपन जीवन म कोई सुख नही मिला बल्कि इसके विपरीत भूले भटके जब उसको इस बात का स्मरण हो जाता था कि दशरथ की सबसे बड़ी महारानी आर राम सदृश पुत्र की माता हाने पर भी उसे यह सभी कष्ट झलना पड़ रहे ह

ता उसकी मनोव्यथा असख्य गुनी बढ जाती थी। राम वनगमन के पश्चात् भरत ने उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया इसका रामायण मे विशेष उल्लेख नहीं किया गया। कोसल्या और सीता दो पात्र रामायण के ऐसे ह जिनको अपना जीवन ही दु खो की ज्वाला म होम देना पडा था।

सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था के सम्बन्ध मे कोसल्या के विचार निश्चित रूप से स्वतन्त्र रहे ह। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को स्वीकार करते हुए माता का गोरव वह किसी भी प्रकार कम नही मानती। धर्म की दृष्टि से माता की सेवा को पिता की आज्ञा पालन की अपेक्षा वह अधिक श्रेयस्कर मानती थी। धर्म व्यवस्था का प्रमाण देते हुए उसने राम से कहा था– राम तुम स्वय धर्म को जानते हो। इसलिए यदि तुम धर्म का पालन करना चाहो तो यही रहकर मेरी सेवा करो और इस प्रकार उत्तम धर्म का आचरण करो। कश्यप ने अपने घर मे रहकर ही नियमपूर्वक अपनी माता की सेवा की थी इस प्रकार उत्तम तपस्या करते हुए उन्होने स्वर्ग प्राप्त किया था। *राम को मातृ सेवा का उपदेश देते हुए उसे मातृ गोरव का भी पूरा ध्यान रहा।* उसके जीवन म केवल यही एक क्षण एसा दिखाई देता ह जब उसने मातृत्व के अधिकार की भावना से कोई बात कही थी अन्यथा उसकी वाणी मे दीनता के अतिरिक्त कुछ रहा ही नही। उसने अधिकारपूर्वक राम से कहा था जिस प्रकार राजा अथवा पिता तुम्हारे लिए गोरवास्पद और पूज्य ह उसी प्रकार माता के रूप म म भी समान रूप स तुम्हारे लिए पूजनीया हूँ। पिता ने तुमको कुछ भी आज्ञा दी हो किन्तु म तुम्हे वन जाने की आज्ञा नही देती अतएव तुम्हे वन के लिए नहा जाना चाहिए। मेरी आज्ञा की अवहेलना करते हुए यदि तुम वन चले जाओगे तो म जीवित नहीं रहूगी और तुमको ब्रह्महत्या के समान नरकगामी कष्ट भोगना पडेगा। कोसल्या के उपर्युक्त वाक्य प्रमाणित करते हे कि वह माता का स्थान पिता की अपेक्षा अधिक गोरवपूर्ण मानती थी। किन्तु राम पिता को मा की अपेक्षा वरेण्य मानते थ अतएव इस सम्बन्ध म उस बेचारी की पुत्र के द्वारा भी अवहेलना ही की गयी थी।

मन्थरा द्वारा लगातार प्रेरित किये जाने और युक्तियाँ सुझाने के परिणामस्वरूप ही कैकेयी राम को वनवास भेजने के लिए तैयार हुई थी। अन्यथा राम के युवराज पद पर अभिषेक के समाचार स उसको इतनी अधिक प्रसन्नता हुई थी कि उसने मन्थरा को पुरस्कारस्वरूप अपना आभूषण उतारकर द दिया था। चाहे दशरथ की प्रेयसी होने के कारण अथवा प्रभुतासम्पन्न होने के कारण अथवा जो भी कारण रहा हो किन्तु जसा कि दशरथ ने स्वय स्वीकार किया है कि राम भरत की अपेक्षा कैकेयी की अधिक सेवा शुश्रूषा किया करते थे। सम्भव ह इसी कारण अथवा अपने सहज स्वभाव के कारण कैकेयी ने राम और भरत म कभी कोई भेद नहीं माना वरन् वह राम को अपना ही ज्येष्ठ पुत्र समझती थी। इसके विपरीत कोसल्या के हृदय म भरत

के प्रति कोई सद्भावना दिखाई नहीं देती। यह विशेष रूप स उल्लेखनीय है कि ककयी ने राम कोसल्या दशरथ सीता अथवा किसी भी अन्य पात्र की निन्दा करते हुए किसी भी अवसर पर एक शब्द का भी उच्चारण नही किया। राम को वनवास भेजने के लिए उसने दशरथ से वरदान अवश्य माँगा किन्तु राम के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना व्यक्त नहीं की। इसके विपरीत कासल्या दशरथ क प्रति तो अपना आक्राश प्रकट करती ही है कैकेयी आर भरत के प्रति भी उसके मन म कोई सद्भावना नही रही। ककेयी तथा सुमित्रा आदि अन्य रानिया को कासल्या कभी सहन नहीं कर सकी आर वार वार यही कहती रही कि म इन सोतो के बीच नही रह सकूगी।

ककेयी ने राम के अभिपेक के समाचार से जिस प्रकार प्रसन्नता व्यक्त की थी, भरत के अभिपक से कोसल्या को किंचित् भी प्रसन्नता नही हुई थी। उसके मन म लगातार यही लालसा पनपती रही कि किसी भी प्रकार राम का राज्याधिकार प्राप्त हो। राम ने जब वनवास की अवधि व्यतीत कर लोटने आर तब राज्याधिकार प्राप्त करन की बात कही थी तब भी कासल्या के मन म यह सन्देह बना रहा था कि इतनी लम्बी अवधि के पश्चात् राम का राज्याधिकार मिलना सम्भव हो सकेगा या नहीं। प्रथमत उसे सन्देह था कि चादह वर्ष की अवधि तक राज्यसुख का उपभोग करन के पश्चात् भरत राम क लिए राज्य का त्याग करगे। दूसरे वह यह भी साचती रही कि कदाचित् राम स्वय भी भरत के द्वारा भोगे हुए राज्य को ग्रहण नहीं करगे। प्रत्येक दशा मे राम को राज्य च्युत रहने की व्यथा उसके मन मे बनी रही थी।

सक्षेप म कासल्या का आचार एक शोकसन्तप्ता पति के द्वारा तिरस्कृता सोतो के कष्ट स दु खी आर सभी प्रकार से उपक्षिता सरल स्वभाव सती साध्वी नारी का दवताओ के सामने हाथ जोडकर प्रार्थना करने तक ही सीमित रहा है। दशरथ ओर साता के व्यवहार ने उस बचारी को ऐसे अँधेरे मे धकेल दिया था जहाँ उसे देवताओ को मनाने के अतिरिक्त कोई रास्ता सूझता ही नहीं था। वन से लाटने आर राज्य पर अभिपिक्त हाने के बाद राम ने उसकी कितनी परवाह की थी इसका भी कुछ उल्लेख नहीं किया गया।
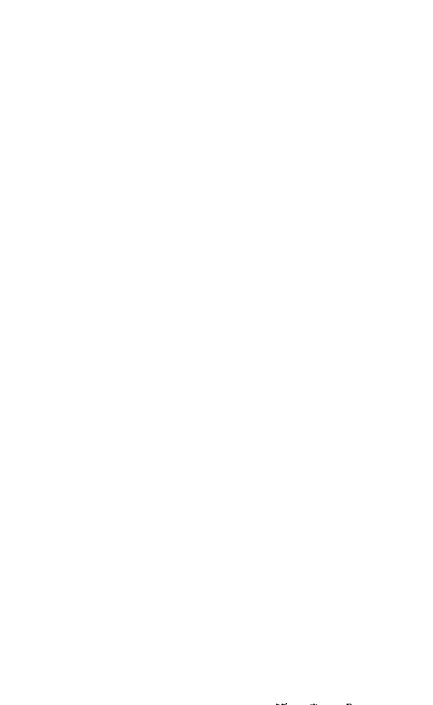
हुई तो मन्थरा को आश्चर्य हुआ था। मन्थरा क आश्चर्य का मूल कारण यही था कि एक नराधिप कुल मे उत्पन्न होकर आर एक नरेश की महारानी होकर भी केकेयी राजधर्मो की उग्रता को क्या नही समझ सकी थी। तात्पर्य यह कि रामायण के सन्दर्भ दशरथ की तीना रानिया म से केवल केकेयी के सम्बन्ध म ही स्पष्ट इगित करत ह कि वह एक राजकन्या थी। विवाह के पूर्व ककेयी का जीवन ककयनरेश के राजमहला में ही बीता था।

केकयी के साथ विवाह करने के लिए दशरथ ने उसकी सन्तान को राज्याधिकार देन का अनुबन्ध स्वीकार किया था। इस प्रकार का अनुबन्ध स्वीकार करने के लिए दशरथ की विवशता के प्रति कोई सकेत नहीं किया गया। दशरथ को जिस रूप म कामी कहा गया है सम्भव हे अनुबन्ध के मूल मे भी उनकी यही दुर्बलता रही होगी। यह भी प्रतीत होता ह कि दशरथ न अनुबन्ध विषयक घटना का पूर्णरीत्या गुप्त ही रखा था। उन्हाने स्वय अनुबन्ध के सम्बन्ध मे कहीं कुछ भी नहीं कहा। मन्थरा को तो इसका ज्ञान था ही राम को भी इसकी जानकारी थी। ककयी को भी या तो इसकी जानकारी नही थी अथवा राम के प्रति पुत्र स्नेह की भावना मे उसन इसकी कभी कोइ परवाह नही की। मन्थरा के द्वारा ही उसको अनुबन्ध का स्मरण कराया गया था।

कोसल्या आर सुमित्रा भले ही दशरथ की महारानी रही हा किन्तु उनको राजमहला का सुख आर राजमहिपी के समान जीवन यापन का अवसर कभी सुलभ ही नहीं हुआ। इसके विपरीत केकेयी पूरी महारानी के रूप म ही मिलती है। कासल्या आर सुमित्रा की किसी दासी का उल्लेख नही किन्तु ककेयी की दासी मन्थरा रामायण की एक प्रमुख पात्र ह। राजमहलो में भी ककेयी का प्रभाव और प्रभुत्व कम नहीं रहा। कोसल्या बेचारी एक सामान्य नारी की भाँति अपनी सोतो के कारण जीवनभर रोती रही सुमित्रा की स्थिति भी सर्वथा नगण्य ही रही। किन्तु ककेयी को न तो सोता के कारण कोई कष्ट भोगना पडा आर न किसी प्रकार की उपेक्षा ही सहनी पडी। दशरथ उसकी प्रसन्नता के लिए नियम व्यवस्था के अनुकूल अथवा प्रतिकूल कुछ भी करने के लिए सदेव तयार रहते थे। राजमहल के दास दासिया आर अनुचरा पर केकेयी का इतना जबर्दस्त प्रभाव था कि उसके पुत्र भरत का देखते ही व कासल्या की परिचर्या छोडकर भाग जाते थे। सुमन्त्र जैसे महामन्त्री केकेयी के डर स कुछ बालने का साहस भी नही करत थे। स्वय दशरथ और सभी सेवक केकयी की आज्ञा के ही अधीन थे।

रामायण म सुमित्रा के भवन का कोई वर्णन नही किया गया। कौसल्या के महल म देव प्रतिमाआ के अतिरिक्त कदाचित् कुछ था ही नहीं। किन्तु केकेयी का महल समस्त सुख सुविधाओ आर साज सामग्री से भरा पूरा था। उसके महल म तोते मोर क्रौच हस आदि पक्षी कलरव करते रहते आर वाद्यो का मधुर घोष गूँजता रहता

भी त्याग कर सकत ह। तुम अपने साभाग्य बल का स्मरण करा। दशरथ म तुम्हारी किसी बात का टाल जाने की सामथ्य ही नहीं है। दशरथ ककेयी को मणि मोती सोना और विविध रत्नो के उपहार देकर प्रसन्न किया करते थे।

रामाभिषेक के पूर्व जब दशरथ ककेयी क अन्त पुर म गये और उन्होने उसको सदव की भाँति शैया पर नही देखा तो वे बेहद परेशान हो गये थे[1] और जब प्रतिहारी न ककयी क काप भवन की आर जाने की सूचना दी तब ता उनका मन बुरी प्रकार सन्तप्त आर व्याकुल हो उठा था।[2] दशरथ ने उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए सब-कुछ करने का आश्वासन देते हुए कहा था– देवि! तुम्हारा क्रोध मुझ पर है एसा तो विश्वास नहीं होता। किसने तुम्हारा तिरस्कार अथवा अपमान किया है? मरा मन सदव तुम्हार कल्याण म ही लगा रहता ह फिर भी मुझ क्लश दन क लिए तुम इस प्रकार भूमि पर क्यो लोट रही हो। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रेतशक्ति ने तुम्हारे चित्त को प्रभावित किया हे। मेरे पास अनेक कुशल वद्य है तुम्हारी व्याधि का दूर कर तुम्ह सुखी कर दगे। तुम्हीं बताओ, आज किसका प्रिय करना है अथवा किसन तुम्हारा अप्रिय किया ह। किसको लाभ पहुँचाया जाए अथवा किस कठोर दण्ड दिया जाए। देवि! तुम रोओ नहीं आर न अपनी देह को सुखाओ। तुम्ही बतलाओ आज किस अवध्य का वध कर डाला जाए या किस प्राण दण्ड पाने योग्य अपराधी को मुक्त कर दिया जाए। किस दरिद्र को धनवान बना दिया जाए अथवा किस धनी के धन को छीन लिया जाए। म और मरे सभी अनुचर तुम्हारी आज्ञा के अधीन ह ओर किसी भी दशा म तुम्हारे मनोरथ को मे भग नही कर सकता। अपने प्राण दकर भी म तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा।[3]

उपर्युक्त उद्धरण इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि दशरथ पर केकेयी का इतना जबदस्त अधिकार था कि उसको किंचित् भी अप्रसन्न देखने की उनमें सामर्थ्य शष नहीं थी। दशरथ क प्रसग म भी इस बात के प्रति सकेत किया जा चुका हे कि ककेयी के समक्ष वे एक ऐसे क्रीत दास के समान दिखायी देते ह जो अपने स्वामी के लिए कुछ भी करन को तेयार रहता हे। केकेयी की प्रसन्नता के लिए वे राजधर्म और न्याय की भी हत्या करने को तेयार रहे। अवध्य का वध करने प्राणदण्ड पान याग्य अपराधी को मुक्त करने अथवा किसी निर्दोष धनवान का धन छीन लन क लिए भी वे सहर्ष तैयार हो गये थे। इसके पश्चात् भूमि पर लेटी हुई ककयी के सिर को उठाकर उन्हाने उसे अपनी गोदी म लिटा लिया था और सभी प्रकार की सौगन्ध खाकर उसकी अभिलाषा पूर्ति का वचन दिया था। वे उसे प्रसन्न करने के लिए उसक पैर तक छूते रहे थे आर उसकी दया के लिए गिडगिड़ाते रहे।[4]

1 वा रा 2 10 17 2 वा रा 2 9 21 3 वा रा 2 10 28 35 4 वा रा 2 12 15 36

उसके सामने उनका पौरुष धुएँ के समान विलीन हो जाता था।[1] लक्ष्मण ने इस बात को अनेक बार दुहराया है कि कैकेयी के वश में होने के कारण ही दशरथ राम को वन भेजने जैसा न्याय विरुद्ध कार्य करने के लिए तैयार हुए थे।

राजमहलों में सर्वाधिक प्रभुत्व प्राप्त होने तथा दशरथ पर एकाधिकार होने के कारण ही कदाचित् कैकेयी को अपने सौभाग्य पर कुछ अभिमान भी रहा करता था। यद्यपि कैकेयी के आचरण और व्यवहार में कहीं भी उसके अभिमान की भावना का प्रतिबिम्ब नहीं मिलता किन्तु अन्य पात्रों ने उसे प्रायः ही सौभाग्यबलगर्विता कहा है। मन्थरा के अनुसार पति की अनन्य प्रेयसी होने के कारण कैकेयी ने दर्प की भावना से कौसल्या का तिरस्कार किया था और परिणामस्वरूप कौसल्या के मन में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो गयी थी। कौसल्या के प्रसंग में लिखा जा चुका है कि वह सौतों द्वारा दिये गये कष्टों के कारण जीवनभर रोती बिलखती रहीं। उसे यह कष्ट कैकेयी के कारण ही भोगने पड़े थे। राम को भी सन्देह था कि राज्याधिकार प्राप्त होने पर कैकेयी अपनी सौतों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगी।[2] कौसल्या ने स्वयं राम से उनके वनगमन के पूर्व कहा था कि कैकेयी क्रोधी स्वभाव के कारण सदैव कटु वचन बोलती रहती है। तुम्हारे चले जाने के बाद ऐसी दुर्गति में पड़कर *मैं उसका मुँह भी कैसे देख सकूँगी।*[3] कैकेयी के मन में भी यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि दशरथ राम को राज्य पर अभिषिक्त करके कौसल्या के साथ मौज उड़ाना चाहते हैं।[4] इस स्थिति को सहन करने के लिए वह किसी भी प्रकार तैयार नहीं थी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यदि मैं एक दिन भी राममाता कौसल्या को राजमाता होने के नाते दूसरे लोगों से हाथ जुड़वाते देख लूँगी तो उस समय मैं मर जाना ही श्रेयस्कर समझूँगी।[5] राम भी कैकेयी की इस असहिष्णुता से परिचित थे। इसलिए उन्होंने वनवास की अवधि में लक्ष्मण से कहा था कि सौभाग्य के मद से मोहित हुई कैकेयी कौसल्या और सुमित्रा को कष्ट पहुँचा सकती है और सुमित्रा को बड़े दुःख के साथ रहना पड़ेगा।[6] राम को इस सीमा तक सन्देह था कि कैकेयी द्वेषवश अन्याय करती हुई कौसल्या और सुमित्रा को जहर भी दे सकती है।[7] दशरथ के मरण पर विलाप करती हुई रानियों ने भी कहा था कि अब हम सब विधवाएँ इस दुष्ट विचारवाली कैकेयी के पास कैसे रहेंगी।[8]

कैकेयी के स्वभावगत गुण-दोषों का जहाँ तक प्रश्न है यह उल्लेखनीय है कि उसे केवल अन्य पात्रों की अभ्युक्तियों के आधार पर ही नहीं आँका जाना चाहिए। राम को वन भेजने के कारण उसे जितनी गालियाँ दी गयी हैं उनको उसके आचरण

1 वा रा 2 12 34 2 वा रा 2 8 37 3 वा रा 2 31 13 4 वा रा 2 20 11 5 वा रा 2 12 42 6 वा रा 2 1 48 7 वा रा 2 53 15 16 8 वा रा 2 53 18 9 वा रा 2 66 13।

आर चरित्र स मल नहीं खाता। दशरथ वसिष्ठ सुमन्त्र आदि न उसे पापिनी कुल-कलंकिनी क्रूरहृदया कुलघातिनी पति हत्यारी, दुराचारिणी निर्दया, पापनिश्चया दुष्टा अनाया आदि कहकर अनगिनत गालियाँ दी ह। स्मरणीय ह कि वनगमन के समय राम की अवस्था सत्ताईस वष की हो चुकी थी। भरत लक्ष्मण आदि के जन्म का उल्लेख एक साथ ही किया गया है जिससे यही प्रतीत हाता ह कि भरत की आयु भी उतनी ही रही हागा। विवाह के कितन वर्ष पश्चात् भरत का जन्म हुआ था इसका कोइ सकत नही। तात्पर्य यह कि राम वनगमन के पूर्व ककेयी अयाध्या क राजमहला म सत्ताइस वष स भी अधिक समय से रानी बनकर रह रही थी। किन्तु उस पर इस प्रकार क दाष तभी आरोपित किय गय जब उसने राम को वन भजन का आग्रह किया। यह विशेषत ध्यान दने याग्य ह कि लक्ष्मण न कैकेयी क प्रति न ता किसी कटु शब्द का ही प्रयाग किया आर न उस दाषी माना। इसके विपरीत लक्ष्मण क अनुसार राम-वनवास का पूरा दायित्व दशरथ पर था जिन्हान अपनी कामगत दुर्बलता क कारण एक स्त्री की वात मानकर यह अन्याय किया था। इसी प्रकार शत्रुघ्न न भी दशरथ का ही पूरी तरह स दाषी माना था।[1] मन्थरा उस विलासिना मानती थी।[2] उसका पर परमदर्शना'—अत्यन्त बुद्धिमती मन्त्रना विचारशीला भी कहा गया ह।[3] दशरथ स्वय उसे प्रियवना मानते ही थे। राम ने उसे हितकामानुवर्तिनी [4] अर्थात् कल्याण चाहनवाली कहा है।

राम की धारणा यह भी थी कि राजकुल म जन्म लनेवाली राजोचित गुणा से सम्पन्न आर प्रकृति सम्पन्ना ककयी के मन म ऐसी कोई बात उत्पन्न हो ही नही सकती जा उनक लिए कष्टकर हा।[5]

ककयी को क्राधी स्वभाव आर लाभिन कहा गया ह। कोसल्या क अनुसार वह सदा क्रोध करनवाली आर कटु वचन बालनवाली थी।[6] अयोध्या स भेजे गय दूत जब केकय देश म भरत को बुलाने क लिए पहुँच थ तव उन्होने भी अपनी माता कैकेयी क विषय म जिज्ञासा करते हुए उस क्रोधी कहा ह। इतना ही नहीं उन्होने उसके लिए अपने ही स्वार्थ म लीन चण्डी के समान सदा कापशीला जेसे शब्दा का भी प्रयाग किया ह।[7] सुमन्त्र के अनुसार, ककेयी म दुराग्रह की जबर्दस्त भावना थी आर यह दोष उस अपनी माता से ही मिला था। ककेयी का समझात हुए उन्हाने उसकी माता का पूव इतिहास सुनाते हुए कहा था कि उसने अपने पति केकयनरेश क जीवन मरण की चिन्ता न करते हुए दुराग्रह को त्यागना उचित नहीं समझा आर अन्तत ककयनरेश ने उसे घर स निकाल दिया था। सम्भव हे सुमन्त्र इस बहाने यह कहना चाहते थ कि यदि ककयी अपने दुराग्रह का नही छाडती तो उसे भी

---

1 वा रा 2 78 3-4 2 वा रा 2 9 7 3 वा रा 2 14 61 4 वा रा 2 16 17 5 वा रा 2 16 17 2 22 19 6 वा रा 2 20 44 7 वा रा 2 70 10

निष्कासित किया जा सकेगा। किन्तु केकयी ने सुमन्त्र की बातों की कोई परवाह नहीं की थी।

क्रोध के अतिरिक्त केकयी के स्वभाव का दूसरा बड़ा दोष लोभ कहा गया। दशरथ के अनुसार उसके मन में धन के प्रति इतनी अधिक आसक्ति थी कि धन लोभ के कारण वह धर्म का भी परित्याग कर सकती थी।[1] कौसल्या भी यही मानती थी कि जिस प्रकार धन का लोभी दूसरा को विष खिला देता है उसी प्रकार कैकेयी ने भी धन-लोभ के कारण रघुकुल का विनाश कर डाला है।[2] भरत जब मामा के यहाँ से लौटकर अयोध्या पहुँचे थे और कैकेयी के पास जाकर उन्होंने दशरथ के विषय में प्रश्न किया था उस समय भी उसे 'राज्य लोभेन मोहिता' लिखा गया है।[3] भरत ने उसे फटकारते हुए स्पष्ट शब्दों में लुब्धा कहा और यह भी कहा कि राज्य के लोभ में पड़कर ही उसने यह क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला।[4]

केकेयी पर लगाये गये आरोप यदि उसके आचरण और व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में देखे जाएँ तो इनकी सगति बैठती ही नहीं। उसने दशरथ से कोसल्या के सम्बन्ध में जो कहा था कि मैं उसको राजमाता के रूप में देखना सहन नहीं कर सकती उसके अतिरिक्त एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जिसके आधार पर उसे क्रोधी लोभी दुराग्रही दुराचारिणी पापिनी सिद्ध किया जा सके। इसके विपरीत उसकी सहृदयता एव आभिजात्य गुण उसके प्रत्येक आचरण में प्रतिबिम्बित है।

विवाह के समय केकयनरेश ने दशरथ से जो अनुबन्ध किया था उसकी ककेयी ने कभी परवाह नहीं की। नवयौवना होकर भी उसने वृद्ध दशरथ की कभी अवमानना नही की वरन् उनकी हितकामना में अन्य रानियों की अपेक्षा अधिक तत्पर रही थी। पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात् दशरथ ने पायस का अष्टमांश ही उसे दिया था किन्तु उसको इस सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं हुई। अनिन्द्य सुन्दरी और गुणवती होने के साथ ही वह एक वीरांगना भी थी। सारथी के दायित्व निर्वाह में कैकेयी इतनी कुशल थी कि देवासुर सग्राम में उसने अपने पति के रथ की बागडोर सभाली थी। इससे उसका साहस युद्ध-कौशल शौर्य और दशरथ की हितकामना स्पष्ट परिलक्षित है। रणभूमि में प्राण रक्षा के विनिमय स्वरूप दशरथ द्वारा दिये गये वरदानों को भी वह भूल गयी थी। मन्थरा ने ही अनुबन्ध की भाँति इन वरदानों का भी उसे स्मरण कराया था। पुत्र को राज्याधिकार दिये जाने विषयक अनुबन्ध और राजा द्वारा दिये गये वरदानों का विस्मरण किसी सामान्य व्यक्ति का गुण होना सम्भव नहीं। मन्थरा द्वारा सानुबन्धा हता ह्यसि कहने अर्थात् अनुबन्ध का स्मरण कराये जाने के पश्चात् भी केकेयी ने राम के अभिषेक से प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मन्थरा की भर्त्सना की थी। इससे अधिक सहिष्णुता सहृदयता और उदारता रामायण के किसी अन्य पात्र में दिखाई नहीं देती।

---

1 वा रा 2 12 7 2 वा रा 2 66 6 3 वा रा 2 72 14 4 वा रा 2 74 7

मिथिला से राम आदि के विवाह के बाद अयोध्या लौटने के तुरन्त पश्चात् दशरथ ने भरत शत्रुघ्न को युधाजित के साथ मामा के यहाँ भेज दिया था। इस अवसर पर बेचारी माण्डवी के विषय में सोचने विचारने की उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। इसके बारह वर्ष पश्चात् राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का निर्णय लिया गया था। भरत को इस अवसर पर भी बुलाने का विचार नहीं किया गया। यह अनुमान करना भी सहज नहीं कि दशरथ भरत को आखिर कितने वर्षों तक अयोध्या से बाहर रखना चाहते थे। कैकेयी एक ओर बारह वर्ष तक पुत्र का वियोग सहती रही और दूसरी ओर अपनी नवविवाहिता बहू माण्डवी को पति के वियोग में तड़पती देखती रही। इस पर भी उसने दशरथ से किसी प्रकार की शिकायत नहीं की। पति को प्रसन्न रखने के लिए कैकेयी ने जिस सहिष्णुता उदारता का परिचय दिया जिस साहस और शौर्य से काम लिया तथा जो यातनाएँ सहीं उनको दृष्टि से ओझल करना उसके प्रति अन्याय ही है।

कैकेयी राजकुल की कन्या होने के कारण राज्य के नियमों से पूर्णतया परिचित थी। उसे इस बात का ज्ञान था कि ज्येष्ठ पुत्र ही नियमानुसार राज्य का अधिकारी होता है। अतएव मन्थरा द्वारा अनुबन्ध का स्मरण कराये जाने पर भी उसने कहा था कि राम महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं अतएव वही युवराज पद पर अभिषिक्त होने के अधिकारी हैं।[1] उसके हृदय में सद्गुणों के प्रति अपरिमित सम्मान की भावना विद्यमान थी। राम के अभिषेक के समाचार से उसे इस कारण भी प्रसन्नता हुई थी कि अयोध्या का राज्यभार राम के समान सद्गुण-सम्पन्न राजकुमार को सौंपा जा रहा है। उसने मन्थरा से कहा था कि राम धर्म के ज्ञाता गुणवान्, जितेन्द्रिय कृतज्ञ सत्यनिष्ठ और सदाचारी हैं।[2] वे दीर्घजीवी होकर पिता के समान ही अपने भाइयों और भृत्यों का पालन करेंगे। इससे मुझे तो कल्याण ही दिखाई दे रहा है।[3] मामा के यहाँ से लौटने पर और दशरथ के देहावसान को सुनकर भरत ने जब राम के वनगमन के विषय में सुना था तो उन्हें आश्चर्य हुआ था। उन्होंने कैकेयी से ही पूछा था कि क्या राम ने किसी ब्राह्मण के धन का अपहरण तो नहीं किया अथवा किसी व्यक्ति की हत्या तो नहीं कर दी थी अथवा किसी परस्त्री की ओर उनका मन तो नहीं चला गया था जिसके कारण उनको राज्य से निष्कासित किया गया है? इस अवसर पर भी कैकेयी ने राम के सद्गुणों की प्रशंसा में कमी नहीं की। उसने बड़े शान्त भाव से ही कहा था कि राम ने किंचित् मात्र भी किसी ब्राह्मण के धन का अपहरण नहीं किया है। किसी निरपराध धनी या दरिद्र व्यक्ति की हत्या भी उन्होंने नहीं की है और राम किसी परायी स्त्री पर दृष्टि डालते ही नहीं।[4] कैकेयी की सहिष्णुता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि दशरथ कौसल्या

---

1 वा रा 2 8 14 2 वा रा 2 8 14 3 वा रा 2 8 17 4 वा रा 2 72 48

वसिष्ठ भरत सुमन्त्र आर सभी पुरवासियो की अनगिनत आर अत्यन्त कटु गालियाँ सुनते हुए भी उसने किसी के प्रति लेशमात्र भी न तो आक्रोश प्रकट किया न एक भी अपशब्द का उच्चारण किया ओर न राम के सद्‌गुणो की प्रशसा म कोई सकोच ही किया।

निर्भीकता ओर स्पष्टवादिता केकेयी क स्वभाव की विशेषता थी। वह न तो किसी अप्रिय सत्य को छिपाकर पचाना ही जानती थी ओर न उस पर सुन्दर शब्दो का आवरण ही डालती थी। उसने जो कुछ भी कहना चाहा साफ शब्दो म दो टूक कहा आर जो कुछ किया निर्भीकतापूर्वक खुलकर किया। मन्थरा आर भरत से राम के गुणो की प्रशसा उसने खुलकर की थी। वर माँगने के पूर्व दशरथ के प्रश्नो का उत्तर देते हुए उसने कहा था कि न तो किसी के द्वारा म अपमानित या निन्दित ही हुई हू आर न किसी ने मेरा कोई अपकार ही किया है। इसके पश्चात् दशरथ के प्रतिज्ञाबद्ध होने पर देवताओ को साक्षी बनाकर उसने दोनो अभिप्राय स्पष्ट शब्दो म बता दिये थे। दशरथ ने उसे पचासो तरह से फुसलाकर अपनी बात बदल देने के लिए उसके हाथ पर जोडे अधर्म होने का भय दिखाया आर यह भी कहा कि राम को युवराज बनाने का उनका वचन असत्य हो जाएगा[1] किन्तु ककयी ने सभी अनुनय विनय आर मनुहारो का कवल एक ही उत्तर दिया था। अब धर्म हो अथवा अधर्म झूठ हो या सच जिस बात के लिए आपने मुझसे प्रतिज्ञा कर ली ह उसमे कोई परिवर्तन नही हो सकता।[2] राम को निष्कासित किये जाने के अतिरिक्त किसी दूसरे वर से मुझ सन्तोष नहीं होगा।[3] इसके बाद भी जब दशरथ रोते बिलखते रहे स्वय अपने मरण का भय दिखाते रहे, कुल पर कलक लगने स डरते डराते रहे ओर भरत के द्वारा राज्य ग्रहण न किये जाने की आशका भी प्रकट करते रहे[4] तब भी ककयी ने यही कहा था कि धर्म के अभीष्ट फल के लिए आर मेरी प्रेरणा से आप राम को घर से निकाल दीजिए—म अपने इस कथन को तीन बार दुहराती हूँ।[5]

राम ने ककयी के महल म पहुचकर जब दशरथ को अचेतावस्था म देखा आर ककयी से ही उसका कारण जानना चाहा तब भी उसने न किसी की निन्दा की न सत्य पर आवरण डालने का प्रयास किया आर न किसी प्रकार की आलकारिक भाषा के माध्यम से कटु सत्य को प्रकारान्तर से कहने की शैली ही अपनायी। उसने कहा था— राम दशरथ कुपित नहीं ह आर न इनको कोई कष्ट ही हुआ ह। इनके विषाद का कारण केवल यह ह कि तुम्हारे भय के कारण अपने मन की बात कहने का साहस नहीं कर पा रह ह। तुम इनके प्रिय हो इसलिए तुमसे कोई अप्रिय बात कहने के लिए इनकी जुबान ही नहीं खुलती रही ह।[6] इसके पश्चात् राम के भी

1 वा रा 2 1? 67 2 वा रा ? 12 46 3 वा रा 2 12 49 4 वा रा 2 12 61 5 वा रा 2 1‍1 9 6 वा रा 2 18 20 21

प्रतिनाबद्ध होने पर उसने दोनों वरदान एक ही संक्षिप्त वाक्य में सुना दिये थे।[1] भरत के मामा के यहां से लौटने पर भी उसने उनको दशरथ के देहावसान, राम के निष्कासन और स्वयं भरत को राज्याधिकार प्राप्त होने की बात भी अत्यन्त संक्षेप में साफ शब्दों में सुना दी थी। इन घटना-वर्णनों में न तो उसके मन में नारी प्रकृति की दुर्बलता दिखाई देती है, न पति प्रेम का लाभ रहा और न उसने भरत को राज्याधिकार प्राप्त होने के प्रति कोई प्रसन्नता ही व्यक्त की।

समय और कैकयी का स्वभाव प्रायः एक-सा ही रहा है जो अपने कदमों को आगे बढ़ाकर पीछे मुँह कर देखना जानते ही नहीं। राम को निर्वासित किये जाने का वर माँगने के पश्चात् कैकयी के समक्ष अनेक ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न की गयीं जिनमें बड़े से बड़ा दृढ़निश्चयी व्यक्ति भी अपना विवेक और निर्णय शक्ति खो सकता था। दशरथ का सबसे अधिक स्नेह उसी को प्राप्त था किन्तु उनकी मनुहार उसे प्रभावित न कर सकी। तरुणी होकर भी वैधव्य की आशंका ने उसे विचलित नहीं किया। कौसल्या की आह और कराह उसे छू नहीं सकीं। वसिष्ठ, सुमन्त्र, दशरथ और पुरवासियों की गालियाँ व्यर्थ की बकवास सिद्ध हुई और लक्ष्मण का आक्रोश उसके मन को किंचित् भी भयभीत नहीं कर सका। वैसे वह इतनी सरल हृदया थी कि छल-कपट और प्रपंच उसे छू तक नहीं सके थे। मन्थरा ने उसकी सरलता पर आश्चर्य प्रकट किया ही था[2] उसने स्वयं भी यह स्वीकार किया था कि यदि मन्थरा उसे न बतलाती तो दशरथ का मन्तव्य उसकी समझ में नहीं आ सकता था।[3] हाथ जोड़ने और पैर पड़ने के साथ ही दशरथ ने भरत का अभिषेक करने की बात स्वीकार की थी।[4] राम के गुणों का स्मरण दिलाते हुए उन्होंने यह विश्वास दिलाने की भी चेष्टा की थी कि राम के अयोध्या में रहने से कैकेयी को कुछ भी हानि नहीं होगी। राम के निष्कासन से इक्ष्वाकुवंश पर कलंक लगने की बात भी उन्होंने की किन्तु यह सब बातें और दशरथ की मरणोन्मुख अचेतनावस्था उसके लिए प्रभावहीन सिद्ध हुईं। इस अवसर पर लक्ष्मण ने जो आक्रोश प्रकट किया था उसे सुनकर बड़े पहाड़ ढह सकते थे। उनका क्रोध भयंकर भूचाल की थरथराहट जैसा था जो यह आभास देता था मानो समस्त भू-मण्डल को ही निगल जाएगा। दशरथ और उनके समर्थकों को बन्दी बना लेने अथवा मार डालने की बात लक्ष्मण ने स्पष्ट शब्दों में दुहरा दी थी और घोषणा कर दी थी कि राम के निष्कासित किये जाने पर अयोध्या को निर्जन खण्डहरों के रूप में बना दिया जाएगा। यदि लक्ष्मण का आक्रोश कार्य रूप में परिणत हो जाता तो पूरी अयोध्या लाशों से पट जाती और सरयू में खून की बाढ़ आ गयी होती। कैकयी इन सब बातों को चुपचाप सुनती रही। नदी की धारा की भाँति पीछे मुड़कर देखना भी उसकी प्रकृति के विरुद्ध था।

---

1 वा॰ रा॰ 2.18.33 2 वा॰ रा॰ 2.7.23 3 वा॰ रा॰ 2.9.40 4 वा॰ रा॰ 2.12.16

राजकुल के अनुरूप सम्भ्रान्त व्यक्तियों और अशिक्षित गँवारों के बीच का अन्तर उसे साफ दिखाई देता था। उसके अनुसार अभिजात वर्गीय सत्पुरुष अपने पूर्वनिर्णय से कभी विचलित नहीं होते और न कभी पश्चात्ताप ही करते हैं। इसीलिए राम से भी दशरथ के विषय में उसने साफ कह दिया था—"इन्होंने पहले तो मेरा सत्कार करते हुए मुझे मुँहमाँगा वरदान दे दिया और अब यह गँवारों की भाँति उस पर पश्चात्ताप करते हैं। वर देने की प्रतिज्ञा करके भी उसके निवारण के लिए यह उसी प्रकार प्रयत्नशील है जिस प्रकार अज्ञानी पुरुष पानी निकल जाने पर उसे रोकने के लिए बाँध बनाने की निरर्थक चेष्टा करते हैं।"[1] तर्कसंगत बात को मानने से कैकेयी ने कभी इनकार नहीं किया। राम ने ही कैकेयी के हाथ से दो चीर ले लिये थे। एक को स्वयं पहनकर दूसरा चीर उन्होंने सीता को दे दिया था। वसिष्ठ और दशरथ ने इस पर कैकेयी को ही फटकारते हुए कहा था कि केवल राम को वनवास दिया गया है और सीता को चीर पहनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। वसिष्ठ ने यह भी कहा था कि कैकेयी ने वर के रूप में सीता वनवास माँगा ही नहीं इसलिए सीता को वनगमन के लिए वह नहीं कह सकती। कैकेयी ने इन दोनों बातों का किंचित् भी विरोध नहीं किया था। उसे अपनी क्षमता और शक्ति पर इतना अधिक *भरोसा था जो उसे निरन्तर आश्वस्त किये रहा कि किसी भी स्थिति पर वह नियन्त्रण* पा सकेगी। उल्लेखनीय है कि भरत भी उस समय अयोध्या में नहीं थे जिनके सहयोग का उसे विश्वास रहा होता। दशरथ के समान स्नेही पति, वसिष्ठ-जैसे वेदज्ञ पुरोहित, सुमन्त्र-जैसे मन्त्री और लक्ष्मण-जैसे पराक्रममूर्ति तथा पूरे जनपद के विरोध की उसने रत्ती भर भी परवाह नहीं की और दशरथ से दो टूक कह दिया था, "जो कुछ निश्चय किया जा चुका है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।"[2]

कैकेयी के मन में सत्य के प्रति इतनी निष्ठा थी कि वह उससे श्रेष्ठ किसी तत्त्व को मानती ही नहीं। स्वयं उसी के शब्दों में—

सत्यमेकं पदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम् । —वा रा २ 14 7

—सत्य ही प्रणव रूप शब्दब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परमतत्त्व की प्राप्ति होती है।

वह अपने इसी सिद्धान्त पर ध्रुव की भाँति अटल रही। जब दशरथ ने राम वनवास का वर देने में आनाकानी की तो कैकेयी ने कहा था—"महाराज, आपने मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी और जब मैंने उन्हें माँगा, तब आप इस प्रकार अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े मानो कोई पाप करके पछता रहे हों। आपको तो

---

1 वा रा 2 18 2 93 2 वा रा 2 12 46

सत्पुरुषों की मर्यादा में स्थिर रहना चाहिए। धर्मज्ञ पुरुष सत्य को ही सबसे श्रेष्ठ धर्म बतलाते हैं। उस सत्य का सहारा लेकर ही मैंने आपको धर्मपालन के लिए प्रेरित किया है।"[1] उसने महाराज शैव्य अलर्क और समुद्र का उदाहरण देते हुए दशरथ से कहा था कि शैव्य ने बाज पक्षी को अपना शरीर देने की प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण किया था और वेदज्ञ ब्राह्मण को अपनी दोनों आँख निकालकर देने में महाराजा अलर्क ने भी कोई आनाकानी नहीं की थी। जड़ होते हुए भी समुद्र सत्य का ही अनुसरण करने के कारण अपने सीमा तट का कभी उल्लंघन नहीं करता।[2]

सत्य और प्रतिज्ञा पालन से विचलित हो जाने के कारण उसने दशरथ की कड़ी भर्त्सना करते हुए कहा था– राजन्! यदि दो वरदान देकर आप फिर उनके लिए पश्चात्ताप करते हैं तो वीर नरेश्वर इस भू-मण्डल में आप अपनी धार्मिकता का ढिंढोरा कैसे पीट सकेंगे? जब बहुत से राजर्षि एकत्र होकर आप से मुझे दिये हुए वरदानों के विषय में बातचीत करेंगे, तब उन्हें आप क्या उत्तर देंगे? क्या आप उनसे यह कहेंगे कि जिस कैकेयी के प्रसाद से मैं जीवित हूँ, जिसने संकटकाल में मेरे प्राणों की रक्षा की थी उसको वर देने के लिए की गयी अपनी प्रतिज्ञा मैंने झूठी कर दी? यदि वर देने की प्रतिज्ञा करके भी आप उससे विपरीत बात कहेंगे तो राजाओं के माथे पर कलंक का टीका लगायेंगे।"[3] कैकेयी से बात करते हुए दशरथ प्रायः अपने सत्यवादी होने का दम्भ भरते रहे थे। इस पर भी कैकेयी ने आक्षेप करते हुए कहा था–"महाराज आप तो सदैव डींग मारा करते थे कि मैं बड़ा सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ हूँ फिर आप प्रतिज्ञाबद्ध होकर भी मेरे वरदानों से क्यों मुकर रहे हैं।[4] यदि आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है तो सत्य का अनुसरण कीजिए। मेरा अभिलषित वर पूरा होना चाहिए क्योंकि उसके लिए आप पहले से वचनबद्ध हैं।[5] दशरथ यह सब सुनते रहे, राम के गुणों की प्रशंसा करते हुए मोहग्रस्त होकर बिलखते रहे कैकेयी को गालियाँ भी देते रहे और फिर भी स्वयं को धर्म बन्धन में बँधा हुआ मानते रहे।[6]

सुमन्त्र द्वारा बुलाये जाने पर जब राम कैकेयी के महल में पहुँचे थे और दशरथ के विषय में चिन्ता प्रकट की थी तब भी कैकेयी ने सत्य के अनुसरण के प्रति अपना आग्रह प्रकट किया था। दशरथ को सत्य से विमुख हो जाने की चिन्ता भले ही न रही हो किन्तु कैकेयी को इस बात की चिन्ता परेशान करती रही थी कि कहीं ऐसा न हो कि दशरथ की सत्यनिष्ठा झूठ सिद्ध हो। उसने राम से भी सत्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा था–"सत्य ही धर्म का मूल है और यही सत्पुरुषों का सिद्धान्त है। कहीं ऐसा न हो कि महाराज दशरथ तुम्हारे कारण उस सत्य को ही छोड़ बैठें।"[7]

---

1 वा रा 2 14 2 3 2 वा रा 2 14 4-6 3 वा रा 2 12 39-42 4 वा रा 2 13 3
5 वा रा 2 11 8; 6 वा रा 2 14 34 7 वा रा 2 18 24

राम के निर्वासन एव भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त किये जाने हेतु वर याचना क कारण ही केकेयी को दशरथ कौसल्या आर राम के प्रति क्रूर तथा भरत के प्रति ममतामयी कहा जाता हे। उसके आचरण से यह दोनो ही धारणाएँ असिद्ध ठहरती है। जन्म से लेकर वरदान विपयक घटना तक की सत्ताईस-अट्ठाईस वप की लम्बी अवधि म भरत का केवल विवाह एव मिथिला से लोटने पर मामा क घर चले जाने का सक्षिप्ततम उल्लेख रामायण मे किया गया है। भरत क प्रति ककेयी के वात्सल्य भाव अथवा ममत्व क प्रति इंगित करता हुआ एक भी शब्द खाजा नहीं जा सकता। भरत को मामा के घर भेजन के पहल न तो दशरथ न ककेयी स परामर्श ही लिया और न ककयी का ही दशरथ क इस व्यवहार क प्रति काइ शिकायत रही। उल्लखनीय ह कि वन का प्रस्थान करन के पूव राम दशरथ कासल्या केकेयी सुमित्रा सीता लम्भण वसिष्ठ पुत्र सुयन आदि सबसे जी भरकर मिलते रहे थे तथा राम के साथ सबने अनेक प्रकार से विचार कर अपने दु ख भार का हलका करने का प्रयास किया था। भरत का भी मामा के यहाँ बारह वर्ष से भी अधिक समय क लिए भेजा गया था किन्तु इस अवसर पर भरत ने केकेयी अथवा माण्डवी किसी से भी भेट नहीं की। केकेयी के मन म भी भरत को प्रस्थान पूर्व दखने की इच्छा नही हुई। कोसल्या के मन मे राम के प्रति इतना अधिक ममत्व था कि उन्हाने राम को वन जाने से रोकने की काशिश की उनक साथ वन जाने की इच्छा प्रकट की आर पुत्र वियाग की कल्पना से अचेत होकर गिर पडी थी। सीता क विषय म भी उन्होन कहा था कि राजमहलो के सुखो की अधिकारिणी वनवास क कष्टा का किस प्रकार सहन करेगी। इसके विपरीत कैकयी ने भरत अथवा माण्डवी क प्रति कहीं काई भी विचार प्रकट नही किये।

राम के सद्गुणों की ककेयी सदव प्रशसक रही है। इसका उल्लेख किया जा चुका ह। राम आर भरत मे उसने कभी कोई अन्तर माना ही नहीं था[1] और राम के अभिषेक के समाचार स उसका हृदय हर्ष स इतना अधिक भर गया था कि मन्थरा को आभूषण दकर भी उसे सन्ताप नहीं हुआ तथा उसका ओर भी यथेष्ट उपकार करन के लिए उसके मन मे बचेनी उत्पन्न हो गयी थी।[2] उसने मन्थरा से यह भी स्पष्ट कह दिया था—"मरे लिए जेसे भरत आदर के पात्र ह वैस ही वल्कि उसस भी बढकर राम ह क्योंकि वे कौसल्या स भी अधिक मेरी सेवा किया करत ह। यदि श्री राम का राज्य मिल रहा है ता उस भरत का ही मिला हुआ समझो क्याकि राम सभी भाइया को अपने ही समान समझते ह।[3]

केकया आर राम क बीच वात्सल्य भाव का दशरथ ने भी स्वीकार किया ह। उनक अनुसार राम ककेयी के प्रति सगी माता के समान व्यवहार करते थे[4] आर उसकी त्तनी अधिक सेवा किया करते थे जितनी सेवा करते हुए भरत को कभी

1 वा रा 2 7 35 2 वा रा 2 7 34 3 वा रा 2 8 18 19 4 वा रा 2 12 8

नहीं देखा गया।[1] राम के प्रति ककेयी के मन मे इतना अधिक स्नेह था कि वह उनको ही अपना ज्यष्ठ पुत्र मानती थी आर यह भी मानती थी कि वे धर्माचरण म सबसे आगे ह।[2] कैकेयी ने इस प्रकार के विचार भरत के प्रति कही भी प्रकट नहीं किये। भरत के ननिहाल स लौटने के पश्चात् ककेयी ने उनको अपने अक म बठाकर मस्तक सूँघकर निर्विकार रूप स दशरथ के मरण आर राम के वनगमन का समाचार सुना दिया था। उसने यह अवश्य कहा कि यह सब-कुछ मैंने तुम्हारे लिए ही किया हे। मात्र इतना कहकर उसने भरत को राज्य भार सँभालने क लिए ठीक उसी प्रकार कह दिया जिस प्रकार माता पिता अथवा गुरु पुत्र अथवा शिष्य को कर्तव्य पालन का निर्देश देते ह। न तो उसने राज्य प्राप्ति पर कोई प्रसन्नता ही व्यक्त की आर न भरत के प्रति कोई ऐसा विचार ही प्रकट किया जिससे यह प्रमाणित हो सके कि वह ममत्वाकृष्टमानसा थी।

दशरथ कासल्या आर राम ककेयी को ममत्वहीन क्रूर हृदय मानते रह ह। दशरथ न उसे नृशस दुष्टचरित्रा आदि कहकर अनक भद्दी गालियॉं ता दी ही ह यह भी आशका प्रकट की ह कि राम के वन चले जाने आर स्वय दशरथ के मरण के पश्चात् ककेयी कासल्या सुमित्रा आर अन्य परिजनो पर अत्याचार करेगी।[3] कासल्या ता केकेयी क नाम स जिन्दगी भर राती ही रही। राम के मन म भी ककेयी क प्रति असीमित भय विद्यमान था। वन मे उन्हाने लक्ष्मण से कहा था कि म समझता हूँ कि दशरथ के प्राणा का अन्त करने मुझे निष्कासित करने आर भरत को राज्य दिलाने के लिए ही ककेयी इस राजभवन म आयी हे। वह साभाग्य मद म आकर कासल्या ओर सुमित्रा का कष्ट पहुचा सकती हे। इन लोगा का बडे कष्ट के साथ अपना जीवन बिताना पडेगा। ककेयी कासल्या आर सुमित्रा को जहर दे सकती ह।[4] इस प्रकार अपने विचार प्रकट करते हुए राम ने लक्ष्मण को अयोध्या लाट जाने का परामर्श दिया था।[5] राम के विचार से ककेयी इतनी अधिक दुष्ट थी कि सीता हरण का समाचार सुनकर वह सफल मनोरथ हा जाएगी।[6]

उपर्युक्त उद्धरण ककेयी के आचरण आर व्यवहार को ही विशेष रूप से उद्घाटित करत ह। जहॉं तक धर्म का प्रश्न है ककेयी को नि सकाच रूप स धर्म क प्रति पूर्णतया तटस्थ आर निरपेक्ष माना जा सकता ह। सत्य के प्रति जिस रूप म वह आग्रहशील रही ह उसका उल्लेख किया जा चुका ह। देवताआ का उसने केवल एक बार उसी समय स्मरण किया जब उनका दशरथ द्वारा दिये गये वरदान का साक्षी बनाया था। इसके अतिरिक्त कैकेयी क पूरे जीवन म धर्म का नाम भी नहीं लिया गया। न ता उसन कौसल्या की भाति किसी देवता क सामने हाथ जाड

1 वा रा 2 12 25 2 वा रा 2 12 17 3 वा रा 2 12 88 4 वा रा 2 53 14 15 18
5 वा रा 2 53 16 6 वा रा 3 62 9

कर प्रार्थना की न व्रत-उपवास के द्वारा अपने शरीर को कष्ट ही दिया। न अपने महल म किसी देव प्रतिमा का स्थापित किया और न वदिक यज्ञ-यागादि के प्रति ही कोई आस्था प्रकट की। धर्म के नाम पर किया गया उसका कोई भी क्रिया-व्यापार देखा ही नही गया। सन्ध्या वन्दनादि का कदाचित् उसे नाम भी ज्ञात नहीं रहा होगा। पातिव्रत धर्म के विषय म उसके विचार महाभारत की जरत्कारु के अधिक समीप ह। जरत्कारु को इस बात की चिन्ता रही थी कि उसके पति के सन्ध्या वन्दनादि नित्य धर्म का लोप न हो आर इसलिए उसने पति की निद्रा भग कर दी और उनक भयकर क्रोध तथा परित्याग को भी स्वीकार किया था। केकेयी की भी सबसे बडी चिन्ता यही रही कि दशरथ सत्य के अनुसरण स कहीं विचलित न हो जाएँ। सत्य स विचलित हान का वह इक्ष्वाकुवश पर सबस बडा कलक मानती थी इसीलिए उसने दशरथ स कहा था कि प्रतिज्ञा पालन से विमुख होकर राजर्षियो की सभा मे वह किस प्रकार अपना मुँह दिखाएगे। ककेयी को लक्ष्मण के समान धर्म का विरोधी मानना भी न्यायसगत नही। उसने यदि धर्म के प्रति कोई आस्था प्रकट नहीं की तो अनास्था ओर विगर्हणा सूचक शब्द भी उसकी जुबान स नहीं निकला।

ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकार प्राप्त होने विषयक इक्ष्वाकुवश की धर्म मर्यादा को मानने राम क सद्गुणो को स्वीकारने दशरथ कौसल्या आदि किसी के प्रति द्वेष भाव न हान आर भरत क प्रति विशेष ममत्व भावना के न होते हुए भी ककेयी न राम को अयोध्या से निर्वासित कर दिया था। इसके कारणो ओर रहस्य को समझन समझाने क लिए विद्वानो द्वारा लगातार प्रयास किये जाते रहे ह। इसे कभी राजनीतिक षड्यन्त्र की सज्ञा दी जाती है और कभी लोकहित के उद्देश्य से दैवी विधान मान लिया जाता ह। यह भी कहा गया है कि देवताओ के अनुरोध पर सरस्वती ने ही ककेयी को इस प्रकार वर माँगने के लिए प्रेरित किया था। कभी उसके मन में भरत के प्रति अपरिमित वात्सल्य भाव आर कभी राम क प्रति विद्वेष भावना को मान लिया जाता हे। रामायण के सन्दर्भो के आधार पर इनमे से एक भी तथ्य की पुष्टि करना सम्भव नही।

मन्थरा द्वारा राम के युवराज पद पर अभिषेक की प्रथम सूचना दिये जाने के पूर्व तक केकेयी के हृदय म इस प्रकार की वर-याचना की कल्पना का प्रस्फुटन ही नहीं हुआ था। मन्थरा ने पहली सूचना म मात्र इतना ही कहा था कि दशरथ ने अनुबन्ध के होते हुए भी और झूठी सान्त्वना देते रहने पर भी धोखा दिया है। अनुबन्ध के झुठलाये जाने पर उसक मन म कोई परिताप नहीं हुआ था और न राम के अधिकार प्राप्ति से ही उसके हृदय को ठेस पहुँची थी। इसके पश्चात् ही मन्थरा ने अपनी भूमिका बदल दी थी। उसने भावी राजमाता कोसल्या का सात के रूप म आर राम का सौत पुत्र क रूप म स्मरण कराया था। सौत आर सौत पुत्र के सम्भावित कटु व्यवहार का चित्र भी उसने प्रस्तुत किया आर यह भी स्मरण

कराया था कि कौसल्या तिरस्कृता होने के कारण अवसर पाकर पूरा बदला लेगी।[1] मन्थरा ने कहा था—तुमको अपनी सात कौसल्या की सेवा म दासी की भाँति हाथ जोड़कर खड़ा रहना पड़ेगा और भरत को भी राम की गुलामी करनी पडेगी। राम पक्ष की स्त्रियाँ—सीता, उर्मिला आदि प्रसन्न होगी और तुम्हारी बहुएँ माण्डवी और श्रुतिकीर्ति शोकमग्न हो जाएगी।[2] कैकेयी राम के प्रति पूर्ण आश्वस्त थी किन्तु मन्थरा न उसक उस विश्वास को ही हिला दिया था। राम क सम्बन्ध म उसने कहा था—राम क्षत्रिय धर्म और राजनीति के विशेषज्ञ ह। वे समयोचित कार्य-व्यवहार म निपुण है अतएव भरत के प्रति उनके व्यवहार की कल्पना से भी मै काँप जाती हूँ।[3] राम अकण्टक राज्याधिकार प्राप्त होने पर भरत को देश से निष्कासित कर देगे अथवा व उनका मार ही डाल सकते है।[4] भरत के ननिहाल मे और राम के अयोध्या मे रहने के कारण पुरवासियो के मन म राम क प्रति ही आदर भाव है। लक्ष्मण भी राम क अनन्य सहयोगी ह इसलिए राम भरत का अनिष्ट किये बिना नहीं रहेगे। मन्थरा ने राम और भरत को सात पुत्र होने क कारण परस्पर सहजशत्रु कहा और कहा कि राज्य और धन स वंचित होकर समृद्ध राम के वशीभूत होकर भरत किस प्रकार जीवित रह सकेगा।[5] राम के राजा बन जाने पर भरत को और तुम्हारी भावी सन्तति को सदा के लिए राज्याधिकार से वंचित रह जाना पडेगा[6] और तुमको भरत के साथ दीनहीन तिरस्कृत जीवन बिताना पडेगा।[7]

स्पष्टतया मन्थरा ने कैकेयी के नारी स्वभावगत सौतिया द्वेष को उभार दिया था। एक ओर उसने कौसल्या को प्रतिष्ठा प्राप्त होने का सकेत किया और दूसरी ओर कौसल्या के राजमाता बन जाने पर कैकेयी की दीनहीन अवस्था को चित्रित किया था। तमसावृत भविष्य के प्रति भी कैकेयी का ध्यान उसने आकृष्ट किया था। यह लिखा ही जा चुका ह कि अयोध्या के महलो में महारानी बनकर आते ही कैकेयी का ही सबसे अधिक प्रभुत्व प्राप्त था। दशरथ और राज्य के सभी सेवक कैकेयी की आज्ञा के अधीन थे। प्रभुत्व और प्रतिष्ठा के उच्चतम पद का सुख भोगकर कैकेयी कभी यह बरदाश्त नहीं कर सकती थी कि उसकी प्रतिष्ठा को कोई आघात लगे। इसीलिए उसन दशरथ से कहा था कि यदि एक दिन भी म कौसल्या को राजमाता के रूप में लोगो को हाथ जुडवाते देख लूँगी उस दिन में मर जाना ही श्रेयस्कर समझूँगी। कैकेयी के इस वाक्य मे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए जितनी बेचैनी ह उतनी कौसल्या के प्रति विद्वेष भावना नहीं। राम के अभिषेक के परिणामस्वरूप कैकेयी की आँखो मे स्वय अपनी भरत की माण्डवी की और भावी सन्तति की दुर्दशा का चित्र उभरकर आ गया था। इससे बचने बचाने के लिए ही

---

1 वा रा 2 8 37 2 वा रा ²8 10 12 3 वा रा 2 8 8 4 वा रा 2 8 27 5 वा रा 2 8 35 6 वा रा 2 8 22 7 वा रा 2 8 38

उसने अनुबन्ध आर दशरथ द्वारा दिये गये वरदाना का सहारा लिया था। प्रभुत्व आर प्रतिष्ठा की रक्षा के अतिरिक्त काई भी ऐसा दूसरा कारण माना ही नहीं जा सकता जिसन ककेयी का राम के निर्वासन के लिए प्ररित किया हो।

दशरथ की राजमहिपी क रूप म अयोध्या की राज्य व्यवस्था म केकेयी का महत्त्वपूण याग रहा। स्वय दशरथ आर सभी अधिकारी एव कर्मचारी केकेयी की आज्ञा क अधीन थ। लक्ष्मण ने भी दशरथ को ककेयी का ही वशवर्ती कहा है।[1] ककयी द्वारा निर्देश दिय जान पर दशरथ उस विपय म मन्त्रिया आदि से परामर्श लने का साहस भी नहीं कर सक्ते थे।[2] पूरी अयाध्या ककयी क नाम से काँप जाती थी। राजकुल के पुराहित वसिष्ठ का भी केकेयी ने कभी पूछा तक नहीं। छोटे वडे सभी कार्यो म वह स्वय निर्णय लेती रही आर दशरथ क समान वसिष्ठ अथवा अन्य मन्त्रिया स परामर्श लन की उसने कोई आवश्यकता नही समझी। राम के अभिपक क पहल दशरथ न वसिष्ठ सुमन्त्र कामदेव सबसे परामर्श किया था तथा वसिष्ठ क निर्देशानुसार ही अभिपेक की तैयार की गयी थी। किन्तु भरत के ननिहाल से लाटन पर ककयी न उनका सीधे राज्य भार ग्रहण करने को कह दिया था। राम की भाति भरत को भी अभिपक पूर्व व्रत करने के लिए उसने कहा ही नही आर वसिष्ठ आदि पुराहित तथा सुमन्त्र आदि मन्त्री ताकते रह गये थे।

दशरथ राजा हाकर भी केकेयी की इच्छा के अनुसार ही कोई आदेश देते थे। राम को निष्कासित करन के लिए केकेयी ने वरा की याचना अवश्य की थी किन्तु जव दशरथ न उनको स्वीकार करने म कुछ हीला हवाली की तो कैकेयी ने उन्हें सीधा निर्देश द दिया था। उसने अपने कथन की तीन वार आवृत्ति की थी। स्मरणीय ह कि तत्कालान व्यवस्था क अनुसार याचना अथवा अनुरोध का नहीं अपितु आज्ञा का तीन वार दुहरान का नियम रहा ह। इस प्रसग मे कैकय्या प्रचोदित शब्द का ही प्रयाग किया गया। जिसका अर्थ केकेयी द्वारा प्रार्थना किया जाना हो ही नही सकता। इसके पश्चात् ककयी ने दशरथ से साफ कहा था कि यदि आप मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं करगे ता मे प्राण त्याग दूँगी।[3] राम को बुलाने के लिए सुमन्त्र को भी उसन सीधी आज्ञा दत हुए कह दिया था कि तुम शीघ्र ही राम का बुला लाआ आर इस सम्बन्ध म तुमको कुछ साचन विचारने की जरूरत नहीं।[4] सुमन्त्र राम का विदा करने क पश्चात् जब लाटने लग तव राम न भी उनको सावधान कर दिया था कि ककयी का प्रिय करन की इच्छा से दशरथ जो कुछ भी आज्ञा द उसका तुमको आदरपूर्वक पालन करना चाहिए।[5] सामान्यतया सुमन्त्र प्रत्यक अवसर पर वालत रह किन्तु जब वह ककेयी के महल म जात थे ता वहाँ उसकी उपस्थिति

1 वा रा 2 23 12 2 वा रा 2 59 18 19 3 वा रा 2 14 10 4 वा रा 2 14 63
5 वा रा 2 52 21

म दशरथ स बात करने में भा वह काप जात थे।[1] ककेयी क डर से उनकी स्मृति भी गायब हो जाती थी।[2] स्वय दशरथ उससे इतने अधिक आतंकित थ कि वह राम क सम्बन्ध म बात करते हुए बगल झाँकन लगते थे। सुमन्त्र जब वन स लोटे तो राम के विषय म दशरथ ने उनस प्रश्न करने का भी साहस नहीं किया। कौसल्या ने जब उन्ह बताया था कि जिस कैकेयी के भय स वह बात नही कर रहे हे वह अभी यहॉ नहीं ह तभी उन्हाने कुछ कहने सुनने की हिम्मत की थी।[3]

राम क वनगमन के साथ ही अयोध्या की राज्यसत्ता का पूरा भार केकेयी ने अपने हाथा म ले लिया था। दशरथ ने पहल ही इसका सकेत करते हुए कहा ह कि राम के वन चले जाने ओर मरी मृत्यु क पश्चात् तू अपने बेटे के साथ अयोध्या का राज्य करगी।[4] दशरथ के इस कथन मे भरत द्वारा नही वरन् ककेयी द्वारा राज्य करन की बात कही गयी ह। कासल्या न भी विलाप करते हुए कहा था 'क्रूर दुष्टाचरिणी केकेयी' तेरी कामना सफल हा गयी हे। अब राजा को भी त्याग कर तू अकेली ही अकण्टक राज्य का सुख भागती रह।[5] पुरवासिया द्वारा भी इसी आशय के विचार प्रकट किय गये ह। उन्होने कहा था कि हम सब लोग राम क साथ ही चले जाएगे फिर भले ही केकयी पुत्र ओर बन्धु बान्धवो सहित अयोध्या को अपने अधिकार म कर ल।[6] सभी पुरवासी ककेयी की कठोर राज्य व्यवस्था से डर गय थे। उन्हाने अपने भय को प्रकट करते हुए कहा था कि यदि केकेयी का इस राज्य पर अधिकार हो गया तो यह अनाथवत् हो जाएगा आर इसम धर्म की मर्यादा नही रह जाएगी।[7] राम ने जब पुरवासिया से लाट जाने के लिए अनुराध किया तब भी यही कहा था कि आप सबको लोटा दने का मेरा उद्दश्य यही है कि केकेयी भरत द्वारा सुरक्षित विशाल राज्य को हस्तगत कर ले।[8]

उपर्युक्त सन्दभ इसी बात के प्रति सकेत करत ह कि राज्य सत्ता पर ककेयी का ही अधिकार हो गया था। राजसेवको न दशरथ की आज्ञा का पालन करना कदाचित् बन्द कर दिया था। यही कारण ह कि जब दशरथ ने राम को वन से लाटा लाने की इच्छा प्रकट की तब सुमन्त्र स कहा था कि यदि आज भी इस राज्य म मेरी आज्ञा मानी जाती हो तो तुम राम को वन स लाटा ले आओ।[9] यदि दशरथ को राजा के अधिकार प्राप्त रह होते तो उनके द्वारा इस प्रकार के शब्दो का प्रयोग न किया गया होता। दशरथ को ककेयी का महल छोडकर कोसल्या के भवन मे आ जाना पडा था। दशरथ का अन्तिम समय एक एसी समस्या उत्पन्न कर देता ह जिसका उत्तर देना सरल नही। कौसल्या से बात करते-करते ही दशरथ का प्राणान्त हुआ था। सुमित्रा को भी उस समय उनक निकट बेठी हुई लिखा गया हे। दोनो

1 वारा 2 31 5 2 वारा 2 60 14 3 वारा 2 57 31 4 वारा 2 12 93 5 वारा 2 66 3 6 वारा 2 33 25 7 वारा 2 48 21 8 वारा 2 52 63 9 वारा 2 59 22

रानियो के उपस्थित रहते हुए भी दशरथ का मरण रातभर एक अज्ञात घटना के रूप में ही बना रहा और दूसरे दिन प्रात काल सूत, मागध और वन्दीजन सदैव की भाँति सगीत तथा गाजे-बाजे के साथ राजद्वार पर उपस्थित हुए थे। बहुत समय तक दशरथ के बाहर न आने पर कुछ स्त्रिया ने जब शैया के समीप जाकर देखा तो उन्हे आश्चर्य हुआ था। उन्होने देखा था कि दशरथ का प्राणान्त हो चुका था तथा कोसल्या एव सुमित्रा की नींद नहीं खुली थी। वे अन्य स्त्रिया का रोना चिल्लाना सुनकर ही जागी थीं। यदि श्रद्धापूर्वक कौसल्या और सुमित्रा के शोकग्रस्त हो अचेत होने की बात न मानी जाय तो इस स्थिति का समाधान होता ही नहीं।

दशरथ के मरण के पश्चात् सक्रमण काल की जो स्थिति उत्पन्न हुई थी उस पर नियन्त्रण पाने के लिए कैकेयी को बडे कठोर कदम उठाने पड़े थे। राम के वन के लिए प्रस्थान के समय से ही उसने कठोर नियन्त्रण-नीति को राज्य मे लागू कर दिया था। अयोध्या की जनता उसकी कठोरता का अनुभव कर रही थी। पुरवासियों ने स्वय कहा हे कि क्रूर कैकेयी अब निष्ठुर कर्म मे ही लगी रहती है। राम की याद करते हुए उन्होंने कहा था कि अब हम लोग पापिनी कैकेयी के वश में रहते हुए दु ख भोगते रहेंगे। नयी व्यवस्था मे अयोध्या का नक्शा पूरी तरह बदल गया था। यद्यपि इसके पीछे पुरवासियों का राम के विरह में शोक सन्तप्त होना लिखा गया हे किन्तु केकेयी के विषय म जो सन्दर्भ ऊपर दिये गये है, उनसे यह भी अनुमान होता हे कि यह सब कैकेयी की नयी नीतियो का परिणाम ही रहा होगा। सुमन्त्र जब राम को विदा करके अयोध्या लौटे थे तो उनको प्रत्यक्ष घर का बाहरी चबूतरा और भीतरी भाग सूना दिखाई दिया था बाजार बन्द मिले थे और सडकों पर कोई चहल पहल नहीं दिखाई दी। इसके पश्चात् भी व्यापारियों की दुकानें बन्द रही थीं खेल-कूद बन्द हो गये थे और यदि कुछ दुकानें खुलती भी थीं तो वहाँ खरीददार नहीं पहुँचते थे। यज्ञ बन्द हो चुके थे और लोग अपने को अनाथ जैसा मानने लगे थे। अग्निहोत्र स्वाध्याय कथावार्ता उत्सव सभी कुछ बन्द था। भरत जब मामा के घर से लौटे थे तो उनको भी अयोध्या म पहले की भाँति चहल-पहल नहीं दिखाई दी। कैकेयी को ही लोग इसका कारण मानते थे और कहीं ऐसी जगह जाने के लिए आकुल हो उठते थे जहाँ वे कैकेयी का नाम भी न सुन सकें। यह स्थिति ठीक वैसी ही थी मानो पूरे राज्य में सख्त कर्फ्यू लगा दिया गया हो।

यह भी उल्लेखनीय है कि राम को वन भेजने के नौ दिन पश्चात् सुमन्त्र अयोध्या वापस लोटे थे। उसके बाद दशरथ का शरीरान्त होने पर ही भरत को ननिहाल से बुलाने के लिए दूत भेजे गये थे। भरत के आने पर कैकेयी के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने बताया था कि राजगृह से अयोध्या तक आने में उनको

सात रात्रिया मार्ग में वितानी पडी थी।[1] अर्थात् दूता के राजगृह जाने आर भरत को लेकर लाटने मे सालह दिन का समय लग गया था। दशरथ की अन्त्यष्टि में भी तेरह दिन का समय लग गया था और इसके पश्चात् ही भरत का राज्याभिषेक हुआ था। इस प्रकार कम स-कम चालीस दिन तक अयोध्या की राज्य-व्यवस्था ककेयी के हाथा म ही रही थी। भरत के मामा क यहाँ से लौटने पर उनका राज्याभिषेक कर उसने राज्य की पूरी व्यवस्था भरत के हाथा म साप दी थी।

कैकेयी के जीवन पर गम्भीर दृष्टि से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि वह धम ओर आचार की सभी व्यवस्थाआ के प्रति पूर्णतया निरपेक्ष थी। सत्य के प्रति उसका इतना जबरदस्त आग्रह था कि स्वय उससे कभी विचलित नहीं हुई आर किसी को विचलित होते दखना उसके लिए सह्य भी नहीं था। आडम्बर मिथ्याचरण अथवा छल प्रपच के द्वारा यश प्रतिष्ठा ओर सुख प्राप्त करना उसको कभी प्रिय नही रहा। दशरथ का सत्य का पालन करने के लिए उसने लगातार जोर दिया ओर उसके पीछे उसकी यही कामना रही कि इक्ष्वाकुवश पर सत्य से विचलित होन का कलक न लगे।

वस्तुत ककेयी का चरित्र इतना गम्भीर ह कि उसकी गुत्थिया को सुलझाना सरल नही। राम को वन भजने की एक घटना को लेकर उसकी सभी चारित्रिक विशपताआ की ओर से आँख फेर लेने का तात्पर्य उसके प्रति अन्याय तो है ही एक गम्भीर आर निर्दोष व्यक्तित्व को समझने म भी भूल होती रहेगी।

---

1 वा रा 2 72 8

भरत का समन्वयवाद

रामायण मे छोटे बडे सब मिलाकर शताधिक पात्रो का समावेश किया गया है। कथावस्तु तथा घटना वर्णन की दृष्टि स इनमे से राम सीता, लक्ष्मण का पूर्ण विस्तार के साथ कुछ पात्रा का सन्दर्भ के अनुरूप सक्षेप म वर्णन और शेष का मात्र नामोल्लेख किया गया है। इस से भरत को द्वितीय वर्ग मे रखा जा सकता है तथापि रामायण के सर्वथा निर्दोष ओर आदर्श पात्रा की यदि समीक्षा की जाय तो भरत आर हनुमान ही अग्रगण्य सिद्ध होते हे। लक्ष्मण भी निष्कपट रूप से अपने सिद्धान्तो के प्रति समर्पित रहे किन्तु वे सनातन धर्म के विद्वेषी ओर उग्रवादी थे। राम के सम्बन्ध मे भी ताटका वध शूर्पणखा का अपमान वाली-वध सीता परित्याग आदि अनेक प्रश्न ऐसे ह जो उनके आचरण ओर व्यवहार के समक्ष खडे रहत ह। भरत का चरित्र इस प्रकार के दोषो से सर्वथा अछूता रहा। रामायण के किसी भी पात्र ने भरत पर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगाया आर यदि आशकावश कोई विचार व्यक्त भी किया गया तो वह आशका निर्मूल ही सिद्ध हुई। उदाहरणार्थ लक्ष्मण को भरत पर सन्देह हुआ किन्तु उनका वह सन्देह निराधार ही सिद्ध हुआ।

दशरथ परिवार म उत्पन्न राम भरत आदि चारो पुत्रो म स माता पिता का सबस अधिक स्नेह कवल राम को ही प्राप्त हो सका। दशरथ उनको कभी दृष्टि से ओझल होने ही नही देना चाहते थे आर कोसल्या का मन भी राम म ही लगा रहता था। उसकी पूजा उपासना प्रार्थना भी राम के लिए ही हुआ करती थी। महर्षि विश्वामित्र जब राम को लेन क लिए आय थ तब दशरथ न स्नेहवश उनको भजन से इनकार किया था। राम के वनगमन पर तो उनका प्राण ही त्याग देने पडे। विश्वामित्र ने लक्ष्मण को भी भजने क लिए दशरथ स अनुरोध किया ही नहीं था आर जब लक्ष्मण भी जाने के लिए उद्यत हुए तो दशरथ अथवा सुमित्रा न उनको रोकने क लिए एक शब्द भी नहीं कहा। राम क साथ वन के लिए भी लक्ष्मण अपने आप चल गय थे। राम के अतिरिक्त भरत लक्ष्मण ओर शत्रुघ्न के प्रति दशरथ कक्रेयी अथवा सुमित्रा क मन म ममत्व की कोई भावना नहीं रही। भरत के सत्ताईस वर्ष के जीवन की कवल जन्म विवाह आर मामा के यहाँ जाने की घटनाओ का सक्षिप्ततम उल्लख मात्र किया गया ह। यह भी उल्लेखनीय है कि जो दशरथ राम

के दूर होन की कल्पना मात्र से तडप जात थे उन्हीं ने भरत का ननिहाल चले जान का निर्देश दिया था।[1]

स्नेह आर ममत्व विरहित व्यवहार का ही यह परिणाम था कि भरत के मन मे भी दशरथ कक़ेयी अथवा किसी के भी प्रति ममत्व की भावना उत्पन्न ही नहीं हुइ थी। मामा के यहाँ जाने क पहले उन्हाने राम, दशरथ आर मालाआ से पूछा था यह उल्लेख अवश्य किया गया ह[2] किन्तु यह इस प्रकार किया गया हे कि आपचारिकता की परछाई के समीप भी नहीं पहुँचता। सीता माण्डवी लक्ष्मण उर्मिला आदि का उनके जान की खबर भी लगी थी या नही इसका सकेत भी रामायण म नहीं किया गया। बारह वर्ष तक अलग रहन पर भी न ता भरत को ही दशरथ केकेयी अथवा माण्डवी की कभी याद आयी आर न इन्हाने ही भरत का कभी स्मरण किया। तात्पर्य यह कि भरत को जन्म स ही अपना जीवन सवस अलग-थलग रहकर बिताना पडा था आर इस कारण उनके मन में माता पिता अथवा किसी व्यक्ति के प्रति ममत्व की नहीं वरन निर्विकार आर वीतराग होकर कर्तव्य निर्वहण की भावना ही सुदृढ हुई थी।

भरत की बाल्यावस्था के विषय मे रामायण म कहीं कुछ लिखा ही नही गया। किस गुरु से उनको शस्त्र आर शास्त्र शिक्षा प्राप्त हुई थी इसका भी कोई सकेत नही किया गया। राक्षसा आर शत्रुआ क साथ युद्ध मे भी उनको कभी उलझना नहीं पडा। लका विजय क पश्चात् अयोध्या लोटन पर और बहुत समय तक राज्य शासन करने के पश्चात् राम न जब अपने आर भाइया क पुत्रा के लिए राज्य प्राप्ति की व्यवस्था की आर केकयनरश युधाजित की ओर से गन्धर्वों के दश पर आक्रमण करन क लिए उनका आमन्त्रित किया गया तब राम क द्वारा भरत को ही भेजा गया था। भरत ने अपने दोना पुत्र तक्ष ओर पुष्कल के साथ केकय नरेश की सहायता से गन्धर्वों के देश पर आक्रमण किया था। इस युद्ध मे उनक द्वारा काल-देवता के दारुण अस्त्र--सवर्तास्त्र का भी प्रयोग किया गया था आर उन्हाने भयानक युद्ध करते हुए गन्धर्वों को पराजित किया था। विजित दश का राज्यभार तक्ष और पुष्कल को सापकर वह फिर अयोध्या वापस लाट आये थे। इसके पश्चात् पुन जब लक्ष्मण क पुत्रो--अगद आर चन्द्रकेतु--का प्रश्न उपस्थित हुआ तब भरत क परामर्श से ही उनके लिए कारूपथ आर चन्द्रकान्ता नगरी के राज्य की व्यवस्था की गयी थी। चन्द्रकेतु क साथ भरत को ही भजा गया था और वे वहाँ एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रुके थे। जब चन्द्रकेतु का राज्य सुदृढ हो गया तब भरत फिर अयोध्या लोट आय थे।

उपर्युक्त उदाहरण इस तथ्य को प्रमाणित करते ह कि युद्ध-कौशल शौर्य ओर

---

1 वा रा 2 77 16 17 2 वा रा 2 77 17 18

साहम की भरत म कमी नहा थी। व राज्य-व्यवस्था का नियन्त्रण म रखना तथा नय राज्य म भी व्यवस्था वनाय रखन की कला म निष्णात थ।

भरत के सक्रिय एव व्यावहारिक जीवन का प्रारम्भ राम के वन चले जाने और उनक मामा क घर स लोटने पर ही होता है। ननिहाल से लोटने पर अयोध्या की जा राजनीतिक ओर परिवार की कलहपूर्ण स्थिति भरत को मिली थी उसमे वडे से वडा विचारशील और धयवान् व्यक्ति भी अपना विवक खो सकता था। पूरी अयोध्या म सन्नाटा छाया हुआ था आर महला म दशरथ के मरण पर सभी रानियाँ रो रही थीं। वसिष्ठ आर सुमन्त्र सभी की आखा क सामने अँधेरा था। वसिष्ठ को यह विश्वास था कि उस अराजकता की स्थिति पर नियन्त्रण पाने की क्षमता कवल भरत म ही ह। यही कारण है कि मार्कण्डेय आदि ऋषियो एव अन्य मन्त्रियो द्वारा यद्यपि भरत को वुलान का परामर्श नहीं दिया गया और इक्ष्वाकुवश के किसी भी राजकुमार अथवा किसी अन्य को राजा वनाने की सलाह दी गयी थी[1] तथापि वसिष्ठ ने भरत का बुलवाकर उन्ही को राज्य भार सापन का निर्णय लिया था।

भरत को भी यद्यपि शक्ति उपाय और बुद्धिवल क द्वारा राज्य भार सँभालने की अपनी सामर्थ्य पर विश्वास था[2] किन्तु प्रथमत कुल परम्परा तथा राजधर्म के नियमा का उल्लघन उनको सह्य नहीं था आर दूसरे कैकेयी ने जिस रीति से उनके लिए राज्य प्राप्ति का याग जुटाया था उस भी उन्हान उचित नहीं माना। राजधर्म के नियमा के प्रति उनक मन म इतनी जवर्दस्त आस्था थी कि उनके सम्यक् निर्वहण के लिए वे सव कुछ वरदाश्त कर सकते थे। ककेयी द्वारा राम के निष्कासन का समाचार सुनकर उन्हान प्रश्न किये थे— क्या राम ने किसी ब्राह्मण के धन का हरण किया है? क्या उन्हाने किसी निष्पाप व्यक्ति की हत्या कर दी ह? क्या राम किसी परस्त्री के प्रति आसक्त हो गये ह? किस अपराध के कारण राम का निष्कासित किया गया है? इन प्रश्ना म स्पष्टतया यह ध्वनि सन्निहित ह कि यदि राम इनम से किसी अपराध क दापी होते तो उनका निष्कासन भरत की दृष्टि म अनुचित न होता। भरत का आक्रोश वस्तुत उसी समय भडका जव उनको ज्ञात हुआ कि राम का निरपराध हाते हुए भी निष्कासित किया गया है। केकयी ने जब यह वताया कि उसकी यह युक्ति कवल भरत का राज्याधिकार प्राप्त करान क लिए थी तव उन्हान उसको भी कटु वचन कहने म सकोच नही किया।

उपयुक्त घटना सन्दर्भ म भरत का आग्रह मुख्यतगा दो वाता के प्रति रहा

1 किसी निर्दोप व्यक्ति को दण्डित किया जाना उचित नहीं भले ही उससे अपरिमित लाभ की आशा हो

2 राजधर्म नियमा तथा इक्ष्वाकुवश परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य

1 वा रा 2 67 38 2 वा रा 2 73 17

का अधिकारी होता है अतएव राम के अतिरिक्त किसी को भी राजा बनने का अधिकार नहीं।

जहाँ तक पहले सिद्धान्त का प्रश्न है उल्लेखनीय है कि धर्म पालन के नाम पर अनेक पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा धर्म विरुद्ध कृत्य भी किये जाते रहे है। हरिश्चन्द्र ने यज्ञ-यूप से बाँधने के लिए बेचारे शुन शेप को खरीद लिया था और एक लाख गाय देकर उसके पिता को ही अपने पुत्र का वध करने के लिए राजी कर लिया। अम्बरीष ने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने ही निरीह पुत्र को अपनी आँखो के सामने चिरवा डाला था। परशुराम ने पिता की आज्ञा पालन को धर्म मान कर अपनी माता का ही सिर काट लिया था। इस प्रकार के धर्म पालन में इन महापुरुषो के दिमाग में यह बात क्यो नहीं आयी कि शुन शेप जैसे निरीह बालको का आखिर क्या अपराध था जिसके लिए उन्हे दण्डित किया गया? धर्म-व्यवस्था और उसके पालन की तभी सराहना की जा सकती है जब उसके द्वारा कोई दूसरा अधर्म न हो। यदि दशरथ सत्यप्रतिज्ञ ही रहना चाहते थे तो भी निर्दोष राम को दण्ड देना किस धर्म व्यवस्था के अनुकूल था? इस प्रकार का दोष भरत के चरित्र को छू तक नही सका। न तो उन्होने किसी निरपराध को दण्डित किया और न किसी अपराधी को मुक्त ही किया। इसी आस्था से प्रेरित होकर उन्होने बार बार और विविध रूप से कैकेयी से प्रश्न किये थे कि राम को अकारण ही निष्कासित क्यो किया गया?[1] शूरवीर कृतात्मा यशस्वी राम पाप की ओर देखते तक नहीं फिर भी उनको चीर पहनाकर घर से निकल जाने के लिए क्यो कहा गया?[2] भरत ने यह भी समझ लिया था कि कैकेयी द्वारा यह सब-कुछ राज्यलाभ के वश किया गया है। इस प्रकार राज्यलाभ से सत्य और धर्म पालन के नाम पर किये गये पापकृत्यो में भरत ने सहभागी बनने से भी इनकार कर दिया। उन्होने कैकयी से स्पष्ट शब्दो में कह दिया था कि चूँकि यह सब-कुछ लोभ मोह और पाप भावना से किया गया है अतएव राज्यभाग की तुम्हारी इच्छा को मैं पूर्ण होने ही नहीं दूँगा।[3]

राज्याधिकार की व्यवस्था के विषय में भी भरत अविचलित रूप से राजधर्म नियमो के प्रति आस्थावान् थे। अनायास ही अयोध्या का राज्याधिकार प्राप्त होने पर भी उन्होने स्वय को नियमानुसार उसका अधिकारी नहीं माना। राजधर्म का उल्लघन करने के कारण ही उन्होने कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहा था कि इस कुल में जो सबसे बडा होता है उसी का राज्याभिषेक होता है। दूसरे भाई सावधानीपूर्वक बडे भाइ के अधीन रहकर ही कार्य करते है। मेरे विचार मे राजधर्म पर तेरी दृष्टि नहीं है अथवा तू उसे बिलकुल जानती ही नहीं। राजाओ के व्यवहार की जो शाश्वत परम्परा है उसका भी तुझको ज्ञान नहीं। राजकुमारो मे जो ज्येष्ठ

1 वा रा 2 73 7 2 वा रा 2 73 12 2 74 3 3 वा रा 2 73 17 25

हाता ह उसी का राजा के पद पर अभिपेक किया जाता है। सभी राजाओ के यहाँ समान रूप स इस नियम का पालन होता है आर इक्ष्वाकुवश म इस नियम का विशेप आदर हे।[1] इसके पश्चात् जव मन्त्रिया ने भरत से राज्य भार ग्रहण करने का अनुरोध किया आर यह भी कहा कि स्वय दशरथ द्वारा प्रदत्त राज्य को अधिकार म लेना न्याय सगत ह तव भी भरत ने उनको यही उत्तर दिया था कि नीतिविद् होकर भी आप सवको इस प्रकार की वात कहना उचित नहीं। हमारे कुल म सदा ज्येष्ठ पुत्र ही रा"य का अधिकारी होता रहा ह। राम हम सवसे ज्येष्ठ है। अत वही इस राज्य के अधिकारी ह।[3] इन्हीं नियमा और धर्म व्यवस्थाआ के प्रति दृढ आस्था व्यक्त करते हुए उन्हाने राम को वन से लाटा लाने का निर्णय लिया था। चित्रकूट पहुँचकर भरत न राम से अयाध्या लौटन का अनुरोध करते हुए भी यही कहा था कि कुल परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र क होते हुए छोटा पुत्र राजा हो ही नहीं सकता। ज्येष्ठ होने के नाते आप ही राज्य के अधिकारी ह। अत आप धर्मानुसार राज्य भार ग्रहण कर।[4] इस व्यवस्था के प्रति भरत इतने अधिक निष्ठावान् थे कि राम के अयोध्या न लाटने की स्थिति म वह उनकी पादुकाएँ लकर लाटे थे आर इस रीति से उन्हाने अपनी कुल परम्परा का निर्वाह किया था।

राम की अनुपस्थिति म भरत ने पूरे चाहह वर्ष तक नन्दिग्राम मे रहकर राज्य का सचालन किया था। यह एक विडम्वना ही है कि भरत की चौदह वर्ष की राज्य व्यवस्था को एकदम उपक्षित छोड़ दिया गया है। उसके सम्वध म गिने चुने सन्दर्भ ही रामायण म प्राप्त हाते ह ओर पूरी कथावस्तु अयाध्या से हटकर राम के पीछ चली जाती है। ककयी ने राम के निष्कासन के साथ ही भरत क अभिपक का भी वर प्राप्त किया था। अयोध्या क नागरिको ने राम क निर्वासन पर गहरा दुख व्यक्त किया था किन्तु यह विशेप रूप से उल्लेखनीय है कि भरत को राज्याधिकार प्राप्त हान के समाचार पर किसी के भी द्वारा भूलकर भी हर्प व्यक्त नहीं किया गया। लागा न जिस प्रकार राम के विपय मे लिय गये निर्णय की कटु आलाचना की थी उसी प्रकार भरत को राज्य देने विपयक निर्णय का भी स्वागत याग्य नही माना था। एसा प्रतीत हाता है कि राज्य-व्यवस्था की दृष्टि स भरत राम क समान उदारवादी नहीं थ। ककयी आर भरत की राज्य व्यवस्था की कल्पना से भी लाग काप जात थ। उनको कसाई क घर म वँधे हुए पशु क समान स्थिति का ही अनुभव हाता था। नगरवासिया न दुख प्रकट करत हुए कहा था—"यदि इस राज्य पर ककयी का अधिकार हा गया ता यह अनाथ हा जाएगा। धर्म की मर्यादा नहा रहगी। एस राज्य मं जीवित रहना भी व्यर्थ है फिर धन आर पुत्रा से भी क्या

1 वा रा 2 73 20 22 2 वा रा 2 79 3 3 वा रा 2 79 7 8 4 वा रा 2 101 10 2 102 2

प्रयोजन ह। अब हमारे पुण्य समाप्त हो गये है इसलिए या तो हम लोगा को विष खाकर मर जाना चाहिए या किसी ऐसे देश म चले जाना चाहिए जहाँ इसकी चर्चा भी न सुनाई दे। दशरथ ने राम को निर्वासित कर दिया और हम लोगों को भरत के साथ उसी प्रकार बाँध दिया गया है जैसे कसाई के घर में पशु को बाँध दिया जाता है।[1] इसी भय के कारण पुरवासियों ने अपनी गड़ी हुई धन-सम्पत्ति लेकर अयोध्या से चले जाने का भी विचार किया था।[2]

दशरथ की अन्त्यष्टि के पश्चात् भरत ने राम को लौटा लाने के लिए प्रस्थान पूर्व मार्ग निर्माण की जो व्यवस्था की थी, उससे यह प्रकट होता है कि वह अपने आदेशा के पालन म विलम्ब को बरदाश्त नहीं करते थे। उन्होने आदेश दिया था कि शिल्पी ऊँची नीची भूमि को समतल कर अच्छी सड़को का निर्माण करे।[3] निर्माण का यह कार्य अयोध्या से लेकर गगा के तटवर्ती प्रदेश तक किया गया था। इसमे कितना समय लगा था इसका उल्लेख यद्यपि रामायण में नहीं ह तथापि कार्य विस्तार को दखते हुए कहा जा सकता ह कि उसम कम समय नही लगा होगा। मार्ग म पडे पत्थरा को हटाया गया झाड झखाड काटे गये, सडक के किनारे नये वृभ लगाय गये भूमि को समतल किया गया स्थान-स्थान पर पुल बाधे गये जगह-जगह तालाबा का निर्माण किया गया कुआ का निर्माण किया गया छावनियो ओर विश्राम स्थला का निर्माण किया गया तथा नगर सुधार के अन्य सभी कार्य किये गये थे। इतने अधिक आर विस्तृत निर्माण-कार्य निश्चय ही योजनाबद्ध रीति से विशेपना द्वारा पूर्ण विचार के पश्चात् ही पूरे कराये गये होगे। चित्रकूट-यात्रा के उद्देश्य से ही यह सब किया गया था अतएव युद्धस्तर पर ही यह कार्य किया गया होगा।

वन यात्रा के अवसर पर गगातट तक पहुँचते हुए भरत ने अपनी राज्य व्यवस्था का अध्ययन भी किया था। कोई बाहरी शत्रु अयोध्या राज्य की ओर ऑख उठाकर देखने का भी साहस नहीं कर सकता था। निषादराज से राम सीता के विषय मे सुनकर भरत को जब मानसिक क्लेश हुआ, उस समय उनका मन अनेक प्रकार क साच विचारो म उलझ गया था। वे एक ओर राम आर सीता के विषय मे सोचते रहे और दूसरी आर राज्य की सुरक्षा के विषय म भी उनक मन मे विचार उत्पन्न हुए थे। इस अवसर पर उन्हाने अनुभव किया था

न च प्रार्थयते कश्चिन्मसापि वसुन्धराम् ।
वने निवसतस्तस्य बाहुवीर्याभिरक्षिताम् ॥
शून्यसवरणारक्षामयन्त्रितहयद्विपाम् ।
अनावृतपुरद्वारा राजधानीमरक्षिताम् ॥

---

1 वा रा 2 48 21 27 28 2 वा रा 2 33 18 21 3 वा रा 2 79 13

अप्रहृष्टबला शून्या विषमस्थामनावृताम्।
शत्रवो नाभिमन्यन्ते भक्ष्यान् विषकृतानिव। —वा रा 2 88 23-25

राम के वन म निवास करने पर भी उनके ही बाहुबल से रक्षित पृथ्वी को कोई शत्रु मन से भी लेने की बात नहीं सोचता। इस समय यद्यपि अयोध्या की रक्षा के लिए चहारदीवारी नहीं बनाई गयी हाथी घोडे बँधे हुए नही रहते नगर द्वार का फाटक खुला रहता हे राजधानी अरक्षित ह सनिका म जोश नहीं ह आर पूरा नगर सूना हे फिर भी शत्रु विषमिश्रित भोजन की भाँति अयोध्या की ओर देख भी नहीं सकते।

उपर्युक्त उद्धरण म यद्यपि पृथ्वी को राम के बाहुबल से रक्षित कहा गया है किन्तु अयोध्या म जब राम का शासन था ही नहीं तब भरत का यह कथन उनकी सदाशयता आर ऋजुता का ही परिचायक है। इतना स्पष्ट है कि राजधानी अयोध्या की ओर शत्रु दृष्टि नही डालते थे ओर यह बाहुबल पराक्रम तथा सुदृढ शासन व्यवस्था का ही परिणाम था।

भरत के समय म सुमन्त्र आदि को भी दशरथ के समय के अनुरूप प्रतिष्ठा प्राप्त नही थी। उन्हाने मन्त्रिया अथवा पुरोहित वसिष्ठ स कभी परामर्श नहीं लिया अपितु व राजा की भाँति आदेश ही दिया करते थे। नगर सुधार आर मार्ग-निर्माण का काय पूर्ण हाने पर भरत न सुमन्त्र को राजाचित भाषा म आदेश दिया था। इस अवसर पर भरत द्वारा प्रयुक्त शब्द 'मम शासनात् विशेष रूप स विचारणीय है।

यह भी उल्लखनीय ह कि महर्षि भरद्वाज ने राम लक्ष्मण का औपचारिक रीति से स्वागत कर दूसरे ही दिन चित्रकूट पर रहने के लिए विदा कर दिया था किन्तु भरत का स्वागत सत्कार करने के लिए उन्हाने अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। स्वागत सामग्री जुटाने क लिए उन्हाने पहले सभी दवताओ का आवाहन किया ओर फिर विविध भाजन सामग्री क द्वारा सेना सहित भरत का राजोचित सत्कार किया था। निषादराज गुह द्वारा किये गय सत्कार मे राम के प्रति अगाध श्रद्धा दिखाई देती हे आर भरत का स्वागत करत समय राजोचित मर्यादा का ही अधिक ध्यान रखा गया था। भरत ने अपनी विशाल वाहिनी क साथ शिविका म बठकर ही एक राजा की भाति चित्रकूट की यात्रा की थी।[1] उनके साथ इतने अधिक हाथी घाड़े चित्रकूट पहुँच थ कि उनकी लीद से चित्रकूट की पूरी जमीन ढक गयी थी।[2]

चादह वष क शासनकाल म भरत कवल राम की पादुकाओ की पूजा नहीं करते रहे थे वरन् राज्य-व्यवस्था पर पूरा ध्यान दिया गया था। चारा वर्णो की प्रजा की सभी प्रकार क भया स सुरक्षा-व्यवस्था की गयी। मन्त्री पुराहित और सेनापति सभी का प्रजा की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया था। राज्याधिकार सम्पन्न हाकर भी स्वय

1 वा रा 2 92 37 2 वा रा 2 117 3

भरत तथा मन्त्री आदि सभी काषाय वस्त्र धारण कर त्यागमय जीवन व्यतीत करते थे।[1] वाली से चर्चा करते हुए श्री राम ने किष्किन्धा आदि प्रदेशो पर इक्ष्वाकुवश के राजाओ का ही आधिपत्य माना है। इस अवसर पर राम ने भरत की राज्य-व्यवस्था पर भी चर्चा की है और कहा है कि धर्मनिष्ठ भरत ही इस पूरे भू भाग के अधिपति है। राजाओ मे कठोर नियन्त्रण और अनुग्रह के जो गुण होने चाहिए भरत म विद्यमान ह।[2] भरत को नीति, विनय, सत्य पराक्रम और देशकाल के ज्ञान से सम्पन्न कहा गया ह।[3]

राम के कथनानुसार यह भी ज्ञातव्य ह कि भरत न केवल अपने राज्य म ही धर्म और व्यवस्था बनाये रखने का प्रयास नही किया वरन् उन्होने बाहर के प्रदेशो म भी धर्म प्रचार क प्रयत्न किये थ। इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए उन्होने राजाओ को आदेश दिये थे कि सभी जगह धर्म पालन की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट किया जाए। भरत क आदेशानुसार धर्म प्रचार के लिए निकले हुए इन राजाओ को यह भी निर्देश दिय गये कि धर्म के प्रतिकूल आचरण करनेवाले व्यक्तियो को दण्डित किया जाए। भरत की आज्ञा स ही अनेक राजा धर्म का प्रचार करते हुए चारो ओर घूमते रहे थे। राम के अनुसार उनको स्वय भी भरत की ओर से वनवास की अवधि म धर्म प्रचार के आदेश प्राप्त हुए थे।[4] राम ने स्वय कहा है कि राजा भरत धर्म से भ्रष्ट पुरुषो को दण्डित करते ह और धर्मात्मा पुरुष का धर्मपूर्वक पालन करते हुए कामासक्त स्वेच्छाचारी पुरुषो पर नियन्त्रण रखने म तत्पर रहते ह। हम भरत की आज्ञा को ही प्रमाण मानकर मर्यादा का उल्लघन करनेवाले लोगो को दण्ड देने के लिए सदैव उद्यत रहते ह।[5] यद्यपि रामायण म अथवा किसी अन्य ग्रन्थ म इस बात का उल्लेख नही मिलता कि भरत ने और किन राजाओ को धर्म प्रचार के लिए बाहर भेजा था किन्तु राम् के उपर्युक्त कथन स यह प्रमाणित ह कि भरत के द्वारा अयोध्या के बाहर भी धर्म प्रचार के सघन प्रयास किये गये थे।

भरत ने अपनी शक्ति केवल धर्म प्रचार पर ही केन्द्रित नही रखी थी एक कुशल राजा की भाँति राज्य के अन्य अगो पर भी पूरा ध्यान दिया गया था। विविध उपायो से कोष और कोष्ठागार की वृद्धि की गयी थी। राज्य की आन्तरिक व्यवस्था पर तो उनका पूर्ण नियन्त्रण था ही, सीमा सुरक्षा तथा युद्ध की दृष्टि से सेना का भी विस्तार किया गया था। राम क वनगमन के पश्चात् मामा के यहाँ से लोटकर राज्य भार सँभालने के समय से चोदह वर्ष की अवधि म खजाना भण्डार राज्य सम्पत्ति और सेना—सब की दस गुनी वृद्धि हो गयी थी। राम का राज्य भार सौपते समय उन्होने स्वय बताया था—

---

1 वा रा 6 126 53-31 2 वा रा 4 18 7 3 वा रा 4 18 8 4 वा रा 4 18 9 11
5 वा रा 4 18 23-25

अवेक्षता भवान् कोश कोष्ठागार गृह बलम्।
भवतस्तजसा सर्व कृत दश गुण मया। —वा रा 6 127 57

—आप स्यय राज्य का खजाना कोष्ठागार घर और सेना सब-कुछ देख लीजिए। आपके प्रताप स यह सब वस्तुएँ पहले की अपेक्षा दस गुनी हो गयी ह।

भरत के व्यक्तित्व का अध्ययन उनके आचरण ओर व्यवहार क द्वारा ही किया जाना चाहिए। कैकेयी का मातृ स्नेह उनको कदाचित् प्राप्त हुआ ही नही था। शत्रुघ्न के अतिरिक्त अन्य किसी भाई के सान्निध्य मे उनका रहना भी प्रमाणित नही। विश्वामित्र के साथ राम ओर लक्ष्मण के चले जाने पर भरत केवल शत्रुघ्न के साथ अयाध्या म रह थ। आर जब विवाह के पश्चात् सभी भाइ अयाध्या लाट तब फिर भरत आर शत्रुघ्न को मामा क यहा चला जाना पडा था। मामा के यहाँ स उनक लाटने का योग भी राम के वन चले जाने पर ही उपस्थित हुआ था। इस प्रकार भरत का अधिकाश जीवन सबसे अलग रहकर ही व्यतीत हुआ था। इस अवस्था मे उनके विचारा ओर मनोभावा का वास्तविक ज्ञान किसी को हो ही नहीं सका ओर वे प्राय सभी पात्रा की समझ स परे रहे। कैकेयी कासल्या लक्ष्मण निषादराज गुह ओर राम को भी भरत क विषय म गलतफहमी बनी ही रही। अवसर उपस्थित होने पर यह गलतफहमियाँ दूर हुई आर सभी पात्र उनको आँखे मल कर देखने ही रह गये।

भरत की उदारता आर सदाशयता को दशरथ ही सबसे अधिक समझ सके थे। यद्यपि मन्थरा भरत को राम का सहज शत्रु मानती थी किन्तु दशरथ न यह सोचा भी नही कि भरत क मन में राम के प्रति विद्वेष भावना हो सकती ह। वह भरत को महात्मा शब्द से अभिहित करते ह।[1] उन्हाने स्पष्ट शब्दों म यह भी कहा था कि धर्म पालन की दृष्टि से भरत श्रीराम से भी बढे चढ थे।[2] यदि राम को निष्कासित कर दिया जाय तो भरत किसी भी दशा म राज्य को स्वीकार ही नहीं करेग।[3] भरत के विषय म दशरथ की यह धारणा असत्य नहीं रही। केकेयी भरत क विषय मे प्राय मान ही रही। यद्यपि उसन भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त करन के लिए दशरथ को वाध्य अवश्य किया किन्तु सकेत किया जा चुका है कि इसक मूल म न ता उसकी ममत्व भावना ही थी आर न भरत के चरित्र गुणो के प्रति उसका विशेष झुकाव ही था। ऐसा प्रतीत होता ह मानो भरत का लालन पालन मन्थरा क द्वारा किया गया हो क्योकि मन्थरा के मन मे भरत के प्रति अनुराग की जो विशिष्ट भावनाए थीं वह केकेयी के मन मे दिखाई नही देती। कैकेयी द्वारा भरत के विषय मे कोई विचार व्यक्त किया ही नहीं गया जिस उद्धृत किया जा सके।

कासल्या के मन म भरत के प्रति किंचित् भी स्नह भावना विद्यमान नहीं रही। कैकेयी भल ही भरत की अपक्षा राम का अधिक अच्छा आर अपना मानती रही

1 वा रा 2 12 21 2 वा रा 2 12 62 3 वा रा 2 12 61

हो किन्तु कौसल्या सदैव भरत को सात पुत्र के रूप मे देखती रही। उसे एक ओर अपने प्रिय पुत्र राम क निर्वासन तथा राज्यच्युत होने का दु ख हुआ और दूसरी ओर यह स्मरण कर मानो उसके प्राण निकले जाते थे कि राम के चले जाने पर उसे भरत और कैकेयी के अनुशासन मे रहना पडेगा। राम से उसने कहा ही था कि भरत को देखते ही सभी नौकर चाकर उससे बात करना भी बन्द कर देते है।[1] वह लगातार कैकेयी और भरत के नाम पर रोती रही और राम की वनवास की अवधि समाप्त होने तथा उस दिन की प्रतीक्षा करती रही जब वनवास की अवधि पूर्ण कर राम राजा बनेंगे।

सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर होता है कि राम जैसे मनस्वी उदारचेता महापुरुष के मन मे भी भरत के प्रति गलत धारणाएँ जन्म लेती रही है। विचार और आचरण की दृष्टि स सोलह वर्ष की अवस्था के पश्चात् ही व्यक्ति प्राढ होता है तथा विकास की यह कालावधि सामान्यतया सोलह वर्ष स तीस वर्ष क बीच मानी जाती है। राम और भरत सोलह वर्ष की आयु के पश्चात् परस्पर एक-दूसरे के सम्पर्क में रहे ही नहीं। सम्भवत इसी कारण राम भरत की वैचारिक भूमि से अपरिचित रहे होगे। कभी तो राम भरत क प्रति पूर्ण आस्थावान् दिखाइ देते है और कभी उनके मन मे अनेक शकाएँ उत्पन्न हो जाती है। कौसल्या को आश्वस्त करते हुए राम ने कहा था– भरत बडे धर्मात्मा है। वे समस्त प्राणियो क प्रति प्रियभाषी और सदा धर्मशील है। अत वे तुम्हारी सेवा करेगे।"[2] वन म बहुत दूर तक साथ चलते हुए पुरवासियो स लौट जाने का अनुरोध करते समय भी राम ने कहा था–"भरत का चरित्र बडा ही सुन्दर और सबका कल्याण करनेवाला है। कैकेयी का आनन्द बढाने वाले भरत आप लोगो का भी प्रिय और हित करते रहेगे। वे अवस्था म छोटे होने पर भी ज्ञान म बडे है। पराक्रमोचित गुणो से सम्पन्न होने पर भी स्वभाव से कोमल हैं। राजा क रूप मे वे निश्चय ही प्रजा के भय का निवारण करेगे। वे मुझसे भी अधिक राजोचित गुणो स युक्त है अत आप सबको भरत की आज्ञा का पालन करना चाहिए"।[3] तमसा क तट पर लक्ष्मण से चर्चा करते हुए भी राम न कहा था–"धर्मात्मा भरत धर्म अर्थ काम–तीनो के अनुकूल वचनो द्वारा पिताजी का और माता कौसल्या को सान्त्वना देगे। जब म भरत के कोमल स्वभाव का स्मरण करता हूँ तो मुझे माता पिता की अधिक चिन्ता नहीं होती।[4] इसी प्रकार चित्रकूट मे भरत की सेना को देखकर जब लक्ष्मण न अपना आक्रोश प्रकट किया उस समय भी लक्ष्मण को समझाते हुए राम ने कहा था–"भरत कुलधर्म का स्मरण करते हुए ही हम लोगो स मिलने के लिए आ रहे है। उनके मन म कभी हम लोगो का अहित

---

1 वा रा 2 20 43 2 वा रा 2 24 22 3 वा रा 2 45 7-9 4 वा रा 2 46 7 8

करने का विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकता। [1] इस स्थान पर राम ने यह भी कहा—"भरत किसी भी प्रकार अहित नहीं कर सकते तथा यदि उनसे कहा जाय कि अयोध्या का राज्य लक्ष्मण को दे दो तो वे सहर्ष राज्य छोड देगे। [2]

उपर्युक्त विचारो के विपरीत स्वय राम ने ही अनेक अवसरो पर ऐसे विचार भी प्रकट किये ह जो भरत के प्रति उनकी आशकाओ को व्यक्त करते हे। दशरथ से वनगमन के लिए विदा माँगते समय जिस स्वर म उन्होने बार-बार दुहराया था कि आप यह समस्त पृथ्वी भरत को द दीजिए और सत्यवादी बनिए[3] उसस स्पष्ट ध्वनित हे कि भरत को राज्य देने विषयक दशरथ के निर्णय को वे विष के घूँट के समान पीकर रह गय थे। लक्ष्मण से भी राम ने अयोध्या म ही रहकर कोसल्या और सुमित्रा की सेवा करते रहने का अनुरोध किया था। इस अवसर पर राम ने कैकेयी के प्रति आशका व्यक्त की और भरत के विषय म भी स्पष्ट कहा था कि भरत राज्याधिकार प्राप्त कर कैकेयी का ही अनुसरण करेगे और दुखिया कोसल्या तथा सुमित्रा का भरण पोषण नही करेगे। अत तुम प्रयत्नपूर्वक राजा का अनुग्रह प्राप्त कर कोसल्या का पालन करते रहो।[4] राम न सीता को भी अयोध्या म ही रहने क लिए समझाया था। सीता को उन्होंने जिन शब्दो मे समझाया है वह विशेष रूप स द्रष्टव्य हे। उन्होने कहा था—

सोऽह त्वामागतो द्रष्टु प्रस्थितो विजन वनम्।
भरतस्य समीपे तु नाह कथ्य कदाचन॥
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणा कथ्या भरतस्याग्रतो मम॥
अह ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन।
अनुकूलतया शक्य समीपे तस्य वर्तितुम्॥
तस्मै दत्त नृपतिना यौवराज्य सनातनम्।
स प्रसादयितव्यस्त्वया सीते नृपतिश्च विशेषत। —वा रा 2 26 24 27

विप्रिय च न कर्त्तव्य भरतस्य कदाचन।
स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च॥
आराधिता हि शीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविता।
राजान सम्प्रसीदन्ति प्रकुप्यन्ति विपर्यये॥
औरस्यानपि पुत्रान् हि त्यजन्त्यहितकारिण।
समर्थान् सम्प्रगृह्णन्ति जनानपि नराधिपा॥

---

1 वा रा 2 97 9 13 2 वा रा 2 97 16 17 3 वा रा 2 34 41-41 4 वा रा 2 31 14 15

सा त्व यसेह कल्याणि राज्ञ समनुवर्तिनी।
भरतस्य रता धर्मे सत्यव्रतपरायणा ॥ —वा रा 2 26 31 37

—वन को प्रस्थान करने क पूर्व म तुमको देखने के लिए आया हूँ। मेरे वन चले जाने पर तुम भरत क समीप कभी मेरी प्रशसा न करना क्योंकि समृद्धिशाली पुरुष दूसरो की प्रशसा सहन नहीं कर पाते है। इसलिए पुन तुमसे कहता हूँ कि भरत के सामने कभी मेरे गुणो की प्रशसा न करना। तुम्हे विशेषत भरत के समक्ष किसी भी प्रकार मेरी चर्चा नहीं करनी चाहिए। उनके मनोनुकूल व्यवहार करके ही तुम उनके निकट रह सकती हो। दशरथ ने उनको सदा के लिए युवराज पद दे दिया है इसलिए तुम्हे प्रयत्नपूर्वक उनको प्रसन्न रखना होगा। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक है कि वे ही अब राजा होगे। तुम्हे भरत की इच्छा के विरुद्ध कोई भी काम नही करना है, क्योकि इस समय वे ही देश और कुल के राजा है। अनुकूल आचरण के द्वारा आराधना और प्रयत्नपूर्वक सेवा करने पर ही राजा प्रसन्न होते है तथा विपरीत बर्ताव करने पर वे कुपित हो जाते है। जो अहित करनेवाले है वे अपने औरस पुत्र ही क्यो न हो, राजा उन्हे त्याग देते है और आत्मीय न होने पर भी जो सामर्थ्यवान् होते है उन्हे वे अपना बना लेते है। अतएव तुम राजा भरत के अनुकूल बर्ताव करती हुई धर्म एव सत्यव्रत मे तत्पर रहकर यहीं निवास करो।

उपर्युक्त उद्धरण इस बात के प्रमाण माने जा सकते है कि राम भरत को किंचित् भी सहिष्णु और उदार नही मानते थे। उनकी धारणा यही रही कि भरत कौसल्या सुमित्रा और सीता के प्रति कभी भी सहिष्णु रहकर अच्छा व्यवहार नहीं करेगे। राम का विश्वास था कि सामान्य राजाओ की भाँति भरत भी राज्याधिकार प्राप्त होते ही पूरी तरह से बदल जाएगे और कौसल्या तथा सीता आदि सभी के प्रति पूर्ण राजोचित व्यवहार किया जाएगा। राम की स्वय की आस्था भी यही थी कि राजा को आत्मीय सम्बन्धो की पूर्णतया उपेक्षा कर निःशेषतया राजधर्म के अनुसार ही आचरण करना चाहिए। इसी कारण उन्होने सीता की पवित्रता को जानते हुए भी उनको निर्वासित कर दिया था। राम ने कभी यह कल्पना भी नहीं की कि भरत ने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया था जिसके द्वारा वे सनातन धर्म और राजधर्म दोनो का ही निर्बाध रूप से पालन करते रहे। राम और भरत के चरित्र मे यह अन्तर विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि राम ने आवश्यकतानुसार जब जैसा भी उचित समझा वही किया और उसे धर्मानुकूल सिद्ध करने के लिए तर्क उपस्थित किये और भरत ने राजधर्म सनातन धर्म तथा कुलधर्म सभी की मर्यादाओ को किंचित् भी आघात पहुँचाये बिना उनका पालन किया। राम ने भरत के प्रति जो आशकाए व्यक्त की है वह सर्वथा निराधार ही थीं। पूरी रामायण मे एक भी पंक्ति ऐसी नहीं खोजी जा सकती जो दशरथ, कौसल्या राम सीता लक्ष्मण किसी के भी प्रति भरत के

मन की दुर्भावना का ओर इंगित कर सके। सुमन्त्र जब राम को विदा करके लोटने लगे थे तब भी राम ने उनके द्वारा भरत को सन्देश भेजा था—"तुम्हारी दृष्टि म केकेयी का जो स्थान हे वही कासल्या आर सुमित्रा का भी होना चाहिए।[1] यहाँ पर भी राम क मन की आशका ही प्रकट हुई है जब कि भरत कासल्या को केकेयी की अपेक्षा अधिक आदर देते रहे हे।

भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त देखकर राम के मन म किसी प्रकार की प्रसन्नता दिखाइ नहीं देती। उनक मन को यह बात लगातार सालती रही कि उनको राज्यच्युत होना पडा आर भरत को राज्याधिकार प्राप्त हो गया। अपनी वदना को लक्ष्मण के सामने अभिव्यक्त करते हुए उन्होने कहा था— केकेयीकुमार भरत ही सुखी ओर साभाग्यवती स्त्री के पति ह जो अकेले ही हृष्ट पुष्ट मनुष्यो से भरे हुए कोसल देश के राजा की भाँति भोग करेगे। पिताजी वृद्ध हो गये है ओर म वन म चला आया हूँ, ऐसी दशा म केवल भरत ही समस्त राज्य के श्रेष्ठ सुखो का उपभोग करेग।[2]

सुमन्त्र ने लाटकर दशरथ से राम का जो सन्देश सुनाया था वह भी राम के मन म भरत के प्रति व्याप्त आशकाआ को ही व्यक्त करता हे। राम ने कोसल्या का सन्देश भेजते हुए कहा था— तुमका कुमार भरत क प्रति राजोचित बर्ताव करना है। राजा छोटी आयु के भी हा तो भी वे आदरणीय होते ह। इस राजधर्म को याद रखना।" भरत को भी उन्हाने यही कहलाया था— सभी माताआ के प्रति न्यायाचित व्यवहार करत रहना।[3]

राम के य सन्देश भी यही ध्वनित करते हे कि प्रथमत वे राजधर्म को सर्वोपरि मानते थे आर दूसरे यह कि भरत के विषय में उनके मन मे सदेव यह आशका बनी ही रही कि वह राजा बनने पर कौसल्या के प्रति सहिष्णु ओर उदार नहीं रहेगे।

कासल्या आर राम की भाँति सीता क मन म भी भरत के प्रति किसी प्रकार की सद्भावना नही रही। राम के वन गमन के निर्णय से सीता को दुहरा आघात लगा था। प्रथमत अपने पति के निर्वासित किये जान का आर दूसरे भरत के हाथा म राज्य चल जान पर उन्ह दु ख हुआ था। राम न जब उनसे अयोध्या म ही रह कर दशरथ-कोसल्या की सेवा करते रहने का आग्रह किया था तब सीता ने स्पष्ट शब्दा म कहा था कि मुझे वनवास के कष्टा स कोई परशानी नहीं। यदि आप मुझे अपन साथ वन म नहीं ले चलग तो म आज ही विष पी लूँगी। किन्तु शत्रुआ के अधीन हाकर नही रहूगी।[4] तात्पर्य यह कि सीता क मन म भरत के प्रति इतनी अधिक कटुता विद्यमान थी कि वे उनको अपना शत्रु मानती थीं।

लक्ष्मण ने भरत क प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए उनका मार डालने तक का

---

1 वा रा 2 52 93 2 वा रा 2 53 11 12 3 वा रा 2 58 20 21 4 वा रा 2 30 19

इरादा प्रकट किया है किन्तु यह कहना असगत नहीं होगा कि लक्ष्मण के विचार किसी गलतफहमी से नहीं वरन् उनके उग्रवादी स्वभाव की प्रतिक्रिया रहे ह। उन्होने कभी भरत के किसी दोप के प्रति इशारा नही किया। अपने सहज स्वभाव के कारण ही उनकी भुजाएँ फडक उठती थी। भरद्वाज आर निपादराज गुह के मन मे भी भरत के प्रति सन्देह हुआ था ओर भरत के सामने आते ही उनका वह सन्देह विलीन हा गया। इस प्रकार भरत के सम्बन्ध में ककेयी कोसल्या राम सीता भरद्वाज निपादराज—सभी के मन मे गलत धारणाएँ पनपती रही आर अवसर उपस्थित होने पर भरत उन गलत धारणाआ के सर्वथा प्रतिकूल एक ऐसे विलक्षण धर्मावलम्बी सिद्ध होते गय जिसका उदाहरण दूसरा नही।

जहॉ तक भरत की धर्माचरण विपयक आस्थाओं का प्रश्न हे उन्हाने सनातन धर्म राजधर्म ओर कुलधर्म की सभी व्यवस्थाआ का पूरी निष्ठा के साथ पालन किया। राम न दशरथ द्वारा निष्कासित किये जाने पर दु ख भी प्रकट किया हे आर उसे न्यायोचित भी नहीं माना। किन्तु भरत को जव दशरथ ने मामा के घर जाने का आदेश दिया था तब वे अपनी नव विवाहिता पत्नी माण्डवी से विना भेट किये चुपचाप चले गये थे। बारह वर्ष तक दशरथ न उनको अयोध्या से बाहर रखा फिर भी उनके मन मे दशरथ कोसल्या अथवा राम किसी के प्रति विकृत भावना जन्म नही ले सकी। इस प्रकार राम आर भरत दोनो ने ही यद्यपि पिता की आज्ञा से ही अयोध्या स बाहर रहना स्वीकार किया था किन्तु भरत ने जिस निष्ठा के साथ उस *आज्ञा का पालन किया वह उदाहरणीय हे। उन्होने चोदह वर्ष तक राज्य शासन* का सचालन किया किन्तु राम की पादुकाओं को सिहासनासीन कर ज्येष्ठ पुत्र के राज्याधिकारी होने के कुलधर्म को आघात नहीं पहुँचने दिया। चादह वर्ष के उनके शासनकाल की एक भी ऐसी घटना नहीं जो धर्म-व्यवस्था के प्रतिकूल हो। राम और भरत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का विपय नही है तथा राम क अध्ययन स अन्य सन्दर्भ स्वयमेव उद्घाटित हो जाते हे अतएव यहॉ उनकी विवेचना करना भी समीचीन नहीं। कोसल्या को सन्देह था कि चादह वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् भरत राम को राज्य नहीं लोटाएँगे[1] किन्तु भरत ने उस पर कभी अपना अधिकार माना ही नहीं।

मामा के यहॉ से लाटने पर भरत ने कोसल्या के सामने अपने को निर्दोष बतलाते हुए जो कहा ह उसम उनकी धार्मिक आस्थाओ का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है। उन्होने कहा था—राम को जिस प्रकार निष्कासित किया गया है उसकी मुझे कोई जानकारी नही। इसके साथ ही उन्हाने कहा था कि जिसकी अनुमति से राम को वन जाना पडा उसकी बुद्धि गुरु से सीखे शास्त्रा म निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करने

1 वा रा 2 61 11

व्यक्ति को रागद्वेष नही होता उसी प्रकार वस्तु के रहने पर भी मनुष्य का रागद्वेष से मुक्त रहना चाहिए। जिसे इस प्रकार की विवेक बुद्धि प्राप्त है उसे परिताप होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। जिस मनुष्य को आत्म और अनात्मतत्त्व का बोध है संकट पड़ने पर भी उसे विषाद नहीं होता।[1]

भरत ने कहीं भी किसी देवता का नाम नही लिया और किसी के प्रति अपनी आस्था व्यक्त नही की। निषादराज गुह से मिलने के पश्चात् जब उन्होने इगुदी वृक्ष की जड के समीप राम की भूमि शैया को देखा तब काल की महत्ता को अवश्य स्वीकार किया था। उन्होने कहा था कि निश्चय ही काल से अधिक बलवान् कोई दूसरा देवता नहीं जिसके प्रभाव से दशरथनन्दन राम को भी इस प्रकार भूमि पर सोना पडा।[2] व्यवहार की दृष्टि से लौकिक जीवन मे वे राजा को ही देवोपम मानते थे। राम को लौटने के लिए आग्रह करते हुए उन्होने कहा था कि यद्यपि सब लोग राजा को मनुष्य कहते है तथापि मेरे मत से वह देवत्व पर प्रतिष्ठित है क्योंकि उसके धर्म और अर्थयुक्त आचार को साधारण मनुष्य के लिए असम्भावित बताया गया है।[3] राजा को इतनी अधिक महत्ता देने पर भी भरत उसे स्वेच्छाचारी बनाने के समर्थक नहीं थे। वे राजा के लिए आवश्यक मानते थे कि वह निहित धर्म नियमो के अनुसार प्रजा के सभी वर्गो का सम्यक् रीति से पालन करे। भरद्वाज के आश्रम पर पहुँचकर उन्होने अपनी सेना को आश्रम से दूर रोक दिया था। भरद्वाज के पूछने पर उन्होने बताया था कि राजा और राजपुत्र को चाहिए कि वे सभी देशो मे प्रयत्नपूर्वक तपस्वीजनो को दूर छोड़कर रहे।[4]

भरत की मान्यता थी कि प्रजा का समुचित रूप से पालन करना ही क्षत्रिय का धर्म होता है। क्षत्रिय होकर भी प्रजा पालन से विरत होना अथवा ससार त्याग कर वनवासी का जीवन व्यतीत करना धर्म का उल्लघन है। क्षत्रिय के लिए प्रजा पालन को वे प्रत्यक्ष सुख का साधनभूत धर्म और इसकी तुलना मे अन्य धर्माचरण को भविष्य मे फल देनेवाला अनिश्चित धर्म मानते थे। इसी प्रकार गृहस्थ आश्रम भरत की दृष्टि मे सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि शेष आश्रम के व्यक्तियों का जीवन भी गृहस्थो पर ही निर्भर है। अपनी इन्ही आस्थाओ के आधार पर उन्होने राम से कहा था—कहाँ वनवास और कहाँ क्षात्र धर्म। कहाँ जटा धारण और कहाँ प्रजा का पालन। ऐसे परस्पर विरोधी कर्म आपको नहीं करने चाहिए।[5] भला कौन ऐसा क्षत्रिय होगा जो प्रत्यक्ष सुख के साधनभूत प्रजापालन रूप धर्म का परित्याग करके संशय मे स्थित सुख के लक्षण से रहित भविष्य में फल देनेवाले अनिश्चित धर्म का आचरण

---

1 वा रा 2 106 4 5 2 वा रा 2 88 11 3 वा रा 2 102 4 4 वा रा 2 91 7
5 वा रा 2 106 18

करेगा? धम के ज्ञाता पुरुप चारो आश्रमो में गार्हस्थ्य का ही श्रेष्ठ वतलाते ह फिर आप उसका परित्याग क्या करना चाहते ह?[1]

भरत का जीवन दर्शन सक्षेप म उन्हीं के शब्दो मे निम्नलिखित रहा है—

सुजीव नित्यशस्तस्य य परैरुपजीव्यते।
राम तेन तु दुर्जीव य परानुपजीवति। —वा रा 2 105 7

जिसका आश्रय प्राप्त कर दूसरे लोग जीवन निवाह करते ह उसी का जीवन उत्तम है आर जो दूसरा का आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करता है उसका जीवन दु खमय है।

लक्ष्मण का पुरुपार्थवाद

जीवन दर्शन आचार व्यवहार एव धामिक आस्थाआ की दृष्टि स लभ्मण रामायण महाकाव्य क सवस अधिक विलक्षण पात्र ह। रामायण की रचना वद के उपवृहण तथा धर्म की प्रतिष्ठापना क उद्दश्य स की गयी था आर यह आश्चर्यजनक ह कि *इस स्थिति म भी वाल्मीकि ने लक्ष्मण-जस पात्र को अपनाया तथा कथावस्तु का* किसी प्रकार का आघात नहीं लगन दिया।

पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात् पायस का दशरथ ने जिस प्रकार बँटवारा किया था उसक अनुसार सुमित्रा को दो बार उसका भाग दिया गया था। दशरथ का प्रम सुमित्रा क प्रति विशेष नहीं रहा फिर भी उन्हाने ऐसा क्या किया यह स्पष्ट नहीं। सुमित्रा क गर्भ से लक्ष्मण आर शत्रुघ्न का जन्म हुआ था। जैसाकि अन्यत्र सकेत किया गया ह राम लक्ष्मण आदि चारो भाइयो की जन्मगत ज्यष्ठता अथवा कनिष्ठता का स्पष्ट ज्ञान सम्भव नहीं। लक्ष्मण को राम से कनिष्ठ कहा गया ह। सयोगवशात् बाल्यकाल से ही लक्ष्मण राम क साथ आर शत्रुघ्न भरत के साथ रहन लग थ। दशरथ अथवा सुमित्रा के मन म लक्ष्मण क प्रति कितना स्नह था इसका भी रामायण म कोई सकेत नहीं किया गया। इस प्रकार मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि लक्ष्मण का पूरा बाल्यकाल राम के साथ ही व्यतीत हुआ था। इसके पश्चात् भी उनका पूरा जीवन राम के साथ ही बीता। विश्वामित्र जब राम को ल गये थ तब भी लक्ष्मण बिना किसी आज्ञा क अथवा बिना माता पिता की अनुमति प्राप्त किये राम के साथ चल गये थ। राम क वनगमन के समय भी लक्ष्मण न स्वय ही उनके साथ वन जान का निर्णय लिया था। इस प्रकार राम के अनवरत निकट सम्पर्क म रहन का सवस अधिक अवसर केवल लक्ष्मण को ही मिला था। यद्यपि राम और लक्ष्मण दोना की आस्थाआ ओर मान्यताआ म जबरदस्त अन्तर रहा है दोना हो परस्पर एक दूसर के सिद्धान्तो स कभी सहमत भी नहीं हो सके फिर भी इनका स्नह सहयोग आर साहचर्य उदाहरणीय बन कर रहा।

सैद्धान्तिक दृष्टि स लक्ष्मण की रामायण के किसी भी अन्य पात्र स कभी पटी ही नहीं। प्रस्तुत अध्ययन मे उल्लिखित प्रसगो से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम के साथ जीवन पर्यन्त छाया के समान रहने पर भी लक्ष्मण उनकी नीतियो आर *सिद्धान्तो से कभी सहमत नहीं हुए* अपितु स्पष्ट शब्दो म विरोध ही प्रकट करते

रह ह। इसी प्रकार लक्ष्मण के सिद्धान्तो के प्रति राम ने कभी सहानुभूति नही दिखलायी और उनको मानने स सदैव इनकार किया। सुग्रीव से मित्रता हो जाने और वालि वध के पश्चात् सीता के वियोग स व्यथित राम स जब लक्ष्मण ने पराक्रम करने का परामर्श दिया था तब उन्होने उत्तर दिया था कि यद्यपि तुम्हारे विचार हितकर ह तथापि सदा पराक्रम पर विश्वास लेकर चलना उचित नही।[1]

वनवास की अवधि म राम को कौसल्या का लगातार स्मरण होता रहा और वे उसके कष्टमय जीवन की कल्पना कर दुःख का अनुभव भी करते रह थे किन्तु लक्ष्मण को सुमित्रा की याद ने कभी परेशान नहीं किया। उनको कौसल्या की ही अधिक चिन्ता रही थी। निषादराज गुह से चर्चा करते हुए उन्होने अयोध्या के राज महलो की जब याद की थी तब दशरथ और कौसल्या का ही पहले स्मरण किया और उसके पश्चात् ही सुमित्रा की उनको याद आयी थी। इस अवसर पर भी माता के प्रति उन्होने अधिक ममता व्यक्त नही की। इसी प्रकार वन के लिए जब सुमित्रा ने लक्ष्मण को विदा किया था तब भी इन दोनो के बीच मातृ स्नेह और ममत्व की कोई झलक दिखाई नहीं देती। सक्षेप म सुमित्रा ने लक्ष्मण को प्रमाद न करने तथा बडे भाई राम की आज्ञा के अधीन रहने का ही निर्देश दिया था। दशरथ के प्रति भी लक्ष्मण के मन म किंचित् भी स्नेह सम्मान अथवा ममत्व की भावना दिखाई नही देती। दशरथ की कडे से-कडे शब्दो म निन्दा करने म उन्होने किसी प्रकार का सकोच नही किया। उन्हे स्पष्ट शब्दो म विपरीत अर्थात् उलटी बुद्धि वृद्ध विषयो के वशीभूत तथा कामी कहा। दशरथ ने राम को निष्कासित करने का जो निर्णय लिया था उसे लक्ष्मण ने विवेकभ्रष्ट राजनीति ज्ञान से शून्य विषयाविष्ट कामी पुरुष का निर्णय कहा। दशरथ को शत्रु मानकर उनको कद कर लेने अथवा मार डालने के लिए भी वे उद्यत हो गये थे।[3] राम ने लक्ष्मण के आवेश को शान्त करने के लिए जब पिता की आज्ञा पालन को धर्म निरूपित किया तब भी लक्ष्मण ने स्पष्ट कहा था कि आपको इन दोनो पापियो दशरथ और ककयी--पर सन्देह क्या नही हो रहा? ससार के अनेक पापासक्त व्यक्तियो की भाति दूसरो को ठगने के लिए ही इन दोनों ने धर्म का पाखण्ड रचा ह। दशरथ के अधमपूर्ण और निन्दित वचनो का पालन करना उचित नहीं।[4] दशरथ की प्रभुता मिटाने के लिए लक्ष्मण की भुजाएँ बुरी तरह फडक उठती थी।[5] वनवास की अवधि म लक्ष्मण के मन म लगातार यह बात बनी रही थी कि यह सभी कष्ट उनको केवल दशरथ के अविवेकपूर्ण निर्णय के कारण ही भोगने पडे थे। सुमन्त्र के द्वारा उन्होने बिना किसी सकोच के दशरथ को सन्देश भेज दिया था कि बुद्धि की कमी के कारण उचित-अनुचित का विचार

1 वा रा 4 30 19 20 2 वा रा 4 21 5 3 वा रा 4 21 19 19 4 वा रा 4 23 8 12 5 वा रा 4 23 37

किये विना ही उन्होंने जो निर्णय लिया है वह निश्चय ही निन्दा और दुःख का जनक होगा।[1] लक्ष्मण दशरथ में राजोचित गुणों का सर्वथा अभाव मानते थे और यह भी मानते थे कि इस प्रकार लोक प्रतिकूल कार्य करते हुए दशरथ का राजा बना रहना सम्भव नहीं होगा।[2] उनको दशरथ में पिता का भाव दिखाई ही नहीं दिया।[3]

अवस्था क्रम की दृष्टि से भरत और लक्ष्मण की ज्येष्ठता और कनिष्ठता के विषय में सप्रमाण कुछ भी कहना सरल नहीं किन्तु सामान्यतया भरत को लक्ष्मण से ज्येष्ठ ही माना जाता है। यह होते हुए भी लक्ष्मण के मन में भरत के प्रति भी लेशमात्र सम्मान अथवा भ्रातृ-स्नेह की भावना विद्यमान नहीं रही। भरत के गुणों की लक्ष्मण ने कभी प्रशंसा नहीं की और न उनकी सदाशयता के प्रति वे आश्वस्त रहे थे। भरत को राज्य का अधिकारी तो वे मानते ही नहीं थे उनको दशरथ के द्वारा राज्य दिये जाने पर लक्ष्मण को असीम क्रोध हुआ था। राम ने जब भरत के प्रति सन्देह व्यक्त करते हुए कहा था कि भरत राज्यमद से मोहित होने पर कौसल्या और सुमित्रा का भरण पोषण नहीं करेंगे तब लक्ष्मण ने यही कहा था कि राम के प्रभाव से भरत को यह सब करना ही पड़ेगा। इतना कहकर भी उनको सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने स्पष्ट कहा था कि यदि भरत गलत रास्ते पर चलेंगे और अभिमान में आकर माताओं की रक्षा नहीं करेंगे तो मैं दुर्बुद्धि और क्रूर भरत को उनके सभी सहयोगियों के साथ मार डालूँगा।[4] भरत के कारण ही राम को राज्यच्युत किया गया था अतएव लक्ष्मण भरत को अपना शत्रु मानते थे। उनको अपकारी के रूप में देखते हुए मार डालने के लिए लक्ष्मण की बेचैनी उभरकर ऊपर आ जाती थी। जब भरत चित्रकूट पहुँचे तब लक्ष्मण ने उनको देखकर राम से कहा था— यह भरत हमारा शत्रु है और सामने आ गया है। भरत का वध करने में मुझे कोई दोष दिखाई नहीं देता।[5]

लक्ष्मण के मन में राम के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा को देखते हुए सहज ही यह धारणा बन जाती है कि सीता के प्रति भी वे उसी प्रकार श्रद्धावान् रहे होंगे। रामायण के सन्दर्भ इस धारणा को खण्डित कर देते हैं। सीता और लक्ष्मण दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति लेशमात्र भी सद्भावना विद्यमान नहीं थी। न तो लक्ष्मण ने ही किसी स्थान पर सीता के प्रति स्नेह अथवा सम्मान की भावना प्रकट की और न सीता ने ही लक्ष्मण के प्रति उदारमना होने का परिचय दिया। राम की सहधर्मिणी होने के नाते ही लक्ष्मण सीता को सम्मान देते रहे अन्यथा वे उनको सामान्य नारी से अधिक नहीं मानते। सीता में नारी के सहज दोषों को भी लक्ष्मण स्वीकार करते थे। इन दोनों के विचार मारीच के प्रसंग में ही अभिव्यक्त हुए हैं। जब मारीच ने

1 वा रा 2 58 30 2 वा रा 2 58 33 3 वा रा 2 58 31 4 वा रा 4 31 20 21
5 वा रा 4 96 23-24

प्राण-त्याग के समय हा सीते! हा लक्ष्मण कहते हुए आर्तनाद किया और उस सुनकर भी लक्ष्मण अविचलित खडे रह गये तब सीता के मनाभाव सहज ही शब्दो म फूट पडे। उन्होने लक्ष्मण से कहा था— सामित्र! तुम मित्र रूप म अपने भाई क शत्रु जान पडते हा। म जानती हूँ, तुम मुझ पर अधिकार करने के लिए राम का विनाश चाहत हो। मर लिए तुम्हारे मन म लोभ हो गया ह इसीलिए राम के पास नहीं जा रहे। राम का सकट मे पडना ही तुम्हे प्रिय हे। तुम्हारे मन मे अपने भाई क प्रति स्नह नही।[1] लक्ष्मण ने जब उनकी भ्रान्ति आर राक्षसा की छल क्रिया क प्रति सत्त्त किया तब पुन सीता ने लक्ष्मण को अनार्य निर्दयी क्रूरकर्मा कुलागार जसे अपशब्दो स सम्बोधित करते हुए कहा था—"लक्ष्मण राम किसी भारी विपत्ति म पड जायें यही तेरा अभीष्ट हे। तेरे जसे क्रूर एव छिप हुए शत्रुआ के मन म इस प्रकार का पाप पूर्ण विचार आश्चर्य की बात नही है। श्री राम को अकेले वन म आते दख मुझे प्राप्त करने क लिए ही तू उनक साथ चला आया ह। यह भी सम्भव ह कि तुझे भरत न भेजा हा।[2]

सीता ने यद्यपि उपर्युक्त विचार क्रोध के आवेश म व्यक्त किय थे किन्तु इसस यह सकेत अवश्य मिलता हे कि सीता को लक्ष्मण के चरित्र पर विश्वास नही था। राम के प्रति लक्ष्मण के समपण को वे समझ ही नहीं सकी थीं। लक्ष्मण ने राम क स्थान पर भरत को राज्याधिकार दिये जाने का जबरदस्त विरोध किया था आर व दशरथ को मार डालने तक के लिए उद्यत हो गये थे। राम की किसी आज्ञा की उन्होने अवहेलना नहीं की। सीता ने जब राम के साथ वन जाने का निर्णय लिया था उसक पहले ही लक्ष्मण उनके साथ चलने को तैयार हो चुके थे। यह सब-कुछ दखते हुए भी सीता न लक्ष्मण को न तो राम के प्रति निष्ठावान् माना ओर न अपने प्रति ही। वे उन्ह छिपा हुआ शत्रु मानती रहीं आर उनके चरित्र पर भी इतना बडा आराप लगा दिया। जिस लक्ष्मण ने सीता क नित्य पादाभिवन्दनरत रहते हुए उनके मुख की आर कभी इतनी भी दृष्टि नहीं डाली थी कि उनके केयूर ओर कुण्डला को पहचान सक उनके प्रति सीता के मन म इस प्रकार के विचारो का होना निश्चय ही आश्चर्यजनक ह।

लक्ष्मण के मन म सीता के प्रति मात्र इसी कारण सम्मान की भावना रही थी कि व राम की सहधर्मिणी थीं। पूरी रामायण मे लक्ष्मण ने सीता क किसी गुण क प्रति सम्मान की भावना व्यक्त नहीं की। सीता को उत्तर देते हुए उन्होने कहा था— मैथिलि! एसी अनुचित ओर प्रतिकूल बात मुह से निकालना स्त्रियो के लिए आश्चर्य की बात नही हे। निश्चय ही आपकी बुद्धि मारी गयी ह। आप केवल नारी हान के कारण साधारण स्त्रियो के दुष्ट स्वभाव को अपना कर मेरे प्रति ऐसी आशका

1 वा रा 3 4 5 7 2 वा रा 3 45 21 24

करती है।[1] लक्ष्मण ने राम से भी सीता के कठोर वचनों की शिकायत करते हुए कहा था कि उनके असहनीय वचनों के कारण ही मुझे उनको छोडकर चला आना पडा।

लक्ष्मण के उपर्युक्त विचार इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि वे सीता को नारी के सहज दोषों से युक्त साधारण स्त्री से अधिक समादरणीया नहीं मानते थे। सीता के इतने कठोर वचनों को वे बरदाश्त कर गये यह कम नहीं।

आयु अथवा ज्येष्ठता की मर्यादा को लक्ष्मण ने कभी स्वीकार नहीं किया। राम ने वनगमन का निर्णय केवल इसीलिए स्वीकार किया था कि वह आदेश उनको पिता दशरथ और मां कैकेयी द्वारा दिया गया था। कौसल्या के रोकने पर भी उन्होंने पिता की आज्ञा का उल्लंघन धर्म मर्यादा के प्रतिकूल माना और वन जाने के लिए तैयार हो गये। इसके विपरीत लक्ष्मण ने स्पष्ट कह दिया कि राजवृत्त का ध्यान रखनेवाला कोई भी पुत्र विवेकशून्य राजा (पिता) की आज्ञा पालन के लिए तैयार नहीं हो सकता।[2] उन्होंने यह भी कहा कि यदि कैकेयी के प्रोत्साहन देने पर पिताजी हमारे शत्रु बन रहे हैं तो हमें मोह ममता छोड़कर उन्हें कैद कर लेना चाहिए या मार डालना चाहिए। उसी स्थल पर लक्ष्मण ने अपने सिद्धान्त और मान्यता को भी स्पष्ट कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्तव्याकर्तव्य का विवेक खो बैठे और कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे दण्ड देना आवश्यक हो जाता है।[3] राम के आयु में बड़े होने के कारण ही लक्ष्मण उनके अनुयायी नहीं बन गये थे। वरन् उन्होंने राम में कुछ ऐसी विशेषताएँ देखी थीं जिनसे वह प्रभावित थे। हनुमान को लक्ष्मण ने राम का परिचय देते हुए उनके गुणों की प्रशंसा की थी और इसी के साथ यह भी कहा था कि मैं अपने कृतज्ञ और बहुज्ञ भाई के गुणों से आकृष्ट होकर ही इनका दास बन गया हूँ।[4] इसके अतिरिक्त लक्ष्मण ने दशरथ वसिष्ठ सुमन्त्र कौसल्या कैकेयी सुमित्रा आदि किसी के प्रति आयु मर्यादा की दृष्टि से सम्मान प्रकट नहीं किया वरन् वे सैद्धान्तिक दृष्टि से ज्येष्ठता की मर्यादा को स्वीकार करते ही नहीं थे।

पूरी रामायण में दो चार स्थलों पर ही ये संकेत मिलते हैं कि लक्ष्मण भी सन्ध्योपासनादि नित्यकर्मों का पालन करते थे। महर्षि विश्वामित्र के साथ सरयूतट पर रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात काल राम के साथ लक्ष्मण ने भी स्नान करके देवताओं का तर्पण किया और परम मन्त्र (गायत्री) का जप किया था।[5] राक्षसों का संहार होने और यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् भी दोनों भाई विश्वामित्र के साथ सन्ध्योपासना में सम्मिलित हुए थे।[6] विश्वामित्र के निर्देश से लक्ष्मण ने यह सब

---

1 वा रा 3 15 29 33 2 वा रा 2 21 7 3 वा रा 2 21 12 13 4 वा रा 4 4 12
5 वा रा 1 23 3 6 वा रा 1 30 6

क्रिया अवश्य किन्तु इस प्रकार के सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्मों में उनकी आस्था प्रमाणित नहीं होती। उनकी आस्था धार्मिक आचारों के प्रति नहीं रही वरन् वे लोकरीति और राजर्षियों की परम्परा के प्रति आस्थावान् थे। राम के स्थान पर दशरथ ने भरत को राज्याधिकार सौंपा था लक्ष्मण ने इसका विरोध मुख्यतया इसी कारण किया था कि दशरथ का निर्णय ज्येष्ठ पुत्र को राज्याधिकार सौंपने की लोकरीति और राजर्षि परम्परा के विरुद्ध है।[1] लक्ष्मण के मतानुसार दशरथ को राजर्षियों की आचार-परम्परा का अनुसरण करते हुए ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंप कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करना ही विहित था और राम से भी उन्होंने इसी परम्परा के निर्वाह के प्रति संकेत किया था।[2]

वैयक्तिक जीवन में लक्ष्मण मद्यपान के विरोधी थे। वे यह मानते थे कि मद्यपान से धर्म अर्थ और काम—तीनों पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं। सुग्रीव को मदिरापान से उन्मत्त देखकर उन्होंने तारा से कहा था कि तुम्हारा पति विषय भोगों में आसक्त रहकर धर्म और अर्थ का लोप कर रहा है। धर्म और अर्थ की सिद्धि के निमित्त प्रयत्नशील पुरुष के लिए मद्यपान उचित नहीं, क्योंकि इससे धर्म अर्थ और काम—तीनों का नाश हो जाता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से लक्ष्मण राजनीति और न्याय के अनुसर्ता पौरुष और पराक्रम के प्रति विशेषतया आस्थावान् विशुद्ध रूप से कर्मवादी थे। शत्रु का अस्तित्व उनको किसी भी रूप में सह्य नहीं था और उनकी उँगलियाँ तुरन्त ही तूणीर और तलवार पर जा टिकती थीं। पिता दशरथ माता कैकेयी और भाई भरत किसी को भी मार डालने के प्रति उनकी भुजाएँ फड़क उठती थीं। अपनी बाहुओं को वे केवल शोभा के लिए नहीं मानते थे धनुष उनके लिए *शृंगार की सामग्री नहीं था* और न बाण खम्भा बनाने के लिए थे। उन्होंने दशरथ भरत आदि का इंगित करते हुए साफ कहा था कि जिसे मैं अपना शत्रु समझता हूँ, उसे कदापि जीवित नहीं रहने देना चाहता।[4] शत्रुओं के दमन के लिए वे सम्पूर्ण पृथ्वी को खून से लथपथ कर देने में संकोच नहीं करते। शत्रु और शत्रु सेना के हाथी घोड़ों को देखना भी उन्हें बर्दाश्त नहीं। इस अवस्था में यदि देवराज इन्द्र भी उनके सामने क्यों न आ जाए तो उसे मारने में भी उनके हाथ शिथिल नहीं पड़ते। उन्होंने कहा था जिस समय तलवार को हाथ में लेता हूँ वह बिजली की भांति चमक उठती है। इसके द्वारा मैं अपने किसी भी शत्रु को वह वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, कुछ नहीं समझता। आज मेरी तलवार के प्रहार से पीस डाले गये हाथी घोड़े और रथियों के हाथों जाँघों और मस्तकों से पटी हुई यह पृथ्वी ऐसी हो जाएगी कि इस पर

---

1 वारा 2 23 10 2 वारा 2 23 25 26 3 वारा 4 33 46 4 वारा 2 23 31

चलना फिरना भी कठिन हो जाएगा। शत्रुओं के संहार के लिए पूरी धरती को खून से रँग डालने के लिए वे सदैव उद्यत रहे।

पराक्रम और पौरुष के प्रति लक्ष्मण की इतनी जबरदस्त आस्था थी कि सभी प्रकार के दुःखों के नाश का उपाय वे केवल पौरुष को ही मानते थे। कौसल्या को आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा था कि मैं अपनी शक्ति से ही तुम्हारे दुःख दूर कर दूँगा। वे पौरुष में प्रारब्ध को बदलने तक की सामर्थ्य मानते थे इसीलिए दैव की सत्ता का उन्होंने समर्थन नहीं किया। उन्होंने राम से भी कह दिया था— यद्यपि आप सब कुछ दैव अथवा प्रारब्ध का परिणाम मानते हैं किन्तु मुझे यह अच्छा नहीं लगता। आपको भी उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिए। जो वीर्यहीन है कायर है वही प्रारब्ध पर भरोसा करता है। शक्तिशाली वीर पुरुष दैव की उपासना नहीं करते। उपनिषद् के ऋषि ने कहा था कि एकत्व का अनुभव करनेवाले को शोक मोह नहीं होता। अन्य दर्शनों ने इसी प्रकार अपनी आस्थाएं व्यक्त की हैं। किन्तु लक्ष्मण का सिद्धान्त इन सबसे अलग रहा। उनके मतानुसार पुरुषार्थ के द्वारा ही समस्त दुःखों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से दैव को भी दबाने में समर्थ है उसे दैव के द्वारा कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर अवसाद नहीं होता। लक्ष्मण का यह सिद्धान्त पूर्व प्रतिष्ठापित नहीं रहा और न किसी ऋषि के द्वारा उसका प्रतिपादन ही किया गया था। कदाचित् इसी कारण लक्ष्मण को कहना पड़ा था कि आज सभी लोग देखेंगे कि दैव की शक्ति बड़ी है अथवा पुरुष का पुरुषार्थ। दैव और पुरुषार्थ में कौन बलवान है और कौन दुर्बल आज इसका स्पष्ट निर्णय हो जाएगा। जिन लोगों ने दैव के बल से आपके राज्याभिषेक को नष्ट हुआ देखा है वे ही आज मेरे पुरुषार्थ से दैव का विनाश भी देखेंगे।

लक्ष्मण के उपर्युक्त वाक्य राम के राज्याभिषेक का समर्थन तो करते ही हैं किन्तु प्रत्यक्ष रूप से उनके द्वारा पुरुषार्थ का समर्थन और दैव की सत्ता का विरोध ही किया गया है। वे पुरुषार्थ से परे किसी अन्य सत्ता को स्वीकार नहीं करते। अन्य दर्शन कर्म को जिस रूप में स्वयं परिणामी मानते हैं लक्ष्मण को वह भी स्वीकार नहीं। गीता कर्म की महत्ता को स्वीकार तो करती है किन्तु उसके अनुसार मनुष्य कर्म करने के विषय में स्वतन्त्र नहीं। सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा ही कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। सभी कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा ही किये जाते हैं तथापि अहंकार से मोहित व्यक्ति अज्ञानवश स्वयं को कर्ता मान बैठता है। तात्पर्य यह कि गीता के अनुसार मनुष्य कर्म करने के लिए विवश होते हुए भी अपनी इच्छा के अनुसार कर्म करने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं। पुरुषार्थ भी प्रकृत गुणों के द्वारा ही उन्हीं के अनुरूप कर्म करने के लिए प्रेरित होता है। पुरुषार्थ स्वयं में [illegible] है। लक्ष्मण को गीता का यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं। उनके अनुसार पुरुषार्थ प्रकृति प्रकृतिजनित गुण तथा दैव सबसे परे रहनेवाली परम शक्ति है जो सबको

नियन्त्रित करती है। उन्होने कहा था कि जो किसी अकुश की परवाह नहीं करता मद की धारा बहानेवाले मत्त गजराज की भाँति स्वच्छन्द रूप से दौडनेवाले दैव को भी मै अपने पुरुषार्थ से आज पीछे लौटा दूँगा।[1] जो मेरे विरोध मे खडा होगा उसे मेरा पुरुषार्थ जैसा दु ख देने मे समर्थ होगा वैसा देववल उसे सुख नहीं पहुचा सकेगा।[2]

पुरुषार्थ अथवा उत्साह को दु खनाश के साधन रूप मे प्रतिष्ठापित करने के लिए लक्ष्मण को उन महर्षियो और आचार्यों की कोटि मे रखा जा सकता है जिन्होने दु ख नाश के लिए अपने अलग और नवीन सिद्धान्तो को प्रतिष्ठापित किया है। सीता के वियोग मे जब राम उन्मत्त की भाँति प्रलाप करते थे तब भी लक्ष्मण ने उनसे कहा था कि आपको धैर्य धारण कर सीता की खोज के लिए मन मे उत्साह रखना चाहिए। उत्साही मनुष्य अत्यन्त दुष्कर कार्य आ पडने पर भी कभी दु खी नही होते।[3] यदि आपको मेरी बात ठीक लगे तो आप शोक छोड दीजिए।[4] जिस प्रकार विष्णु ने बलि को बाँधकर पृथ्वी प्राप्त कर ली थी उसी प्रकार आप भी सीता को प्राप्त कर लेंगे।[5]

राम को यद्यपि परम विवेकशील एव धैर्यवान् कहा जाता है किन्तु आपत्ति के समय उनका धैर्य विचलित हो जाता था। सीता के वियोग मे वे अज्ञानियो की भाँति रोते रहे सुग्रीव द्वारा सीता की खोज मे विलम्ब होने पर तथा समुद्र द्वारा मार्ग न दिये जाने पर उनका क्रोध भडक उठा और युद्ध मे लक्ष्मण के अचेत हो जाने पर उनका उत्साह भग हो गया। लक्ष्मण को उनका यह क्रिया व्यापार कभी अच्छा नही लगा। राम को अत्यधिक रोते और विलाप करते हुए देखकर लक्ष्मण ने एक स्थल पर तो स्पष्ट कह दिया था कि वैदेही सीता यदि मर जायें अथवा नष्ट हो जाय तब भी आपको दूसरे साधारण गँवार मनुष्यो की भाँति शोक नही करना चाहिए।[6] पम्पा सरोवर पर पहुचकर वहाँ के उद्दीपन से अभिभूत होकर राम का वियोगजनित दु ख पुन जाग उठा। वे विवेकहीन की भाति फूट फूट कर रो पडे थे। इस समय भी लक्ष्मण ने उनसे कहा था कि आप स्वय पर सयम रखिए और शोक न कीजिए। आपके समान अकलुष पुरुषो की बुद्धि उत्साहशून्य नहीं होती।[7] आप दीनतापूर्ण विचारो का परित्याग कर धैर्य का आश्रय लें। जिन व्यक्तियो का प्रयत्न और धन नष्ट हो गया है वे भी यदि उत्साहपूर्वक उद्योग न करे तो उन्हे अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। उत्साह ही बलवान् होता है। उत्साह से बढ़कर दूसरी कोई शक्ति नही। उत्साही पुरुष के लिए ससार मे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं।[8] इस स्थल

---

1 वा रा २ २३ २१ 2 वा रा २ २३ २१ 3 वा रा 3 63 19 4 वा रा 3 61 18 5 वा रा 3 26 21 6 वा रा 3 60 11 7 वा रा 4 1 115 8 वा रा 4 1 120 121

पर राम ने लक्ष्मण के सिद्धान्त को स्वीकार किया था तथा शोक मोह से मुक्त होकर वे स्वस्थ चित्त हुए थे।[1]

लक्ष्मण का पुरुषार्थवाद मात्र शरीरबल का प्रतिपादन नहीं वरन् एक सुविचारित और विवेचनापूर्ण दर्शन के रूप में ही सामने आया है। वह यद्यपि अनीश्वरवादी अथवा अनात्मवादी दर्शन नहीं है तथापि ईश्वर और आत्मा की सत्ता का उस रूप में स्वीकार नहीं करता जिस रूप में सांख्य योग वेदान्त आदि दर्शनों में स्वीकार किया गया है। उनका कहीं विरोध नहीं किया गया किन्तु इतना गौण मान लिया गया है कि उनकी चर्चा भी आवश्यक नहीं समझी गयी। प्रकृति अथवा माया जैसे तत्त्व का भी पुरुषार्थवाद में कोई स्थान नहीं। इसके अतिरिक्त एक अन्य वैशिष्ट्य जो इसमें दिखाई देता है वह यह है कि सृष्टि सृष्टि व्यापार चराचर जगत् और समस्त प्राणिजगत् से वह अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं करता वरन् मनुष्य-जीवन तक ही उसकी परिधि का विस्तार है। आचार के स्थान पर व्यवहार को इसमें अधिक महत्त्व दिया गया है।

पुरुषार्थ ही सर्वोपरि परम तत्त्व है तथा उसी के द्वारा मानव जीवन के समस्त क्रिया व्यापार का संचालन एवं नियन्त्रण होता है। सृष्टि की उत्पत्ति और विकास आदि के विषय में कदाचित् इस कारण इसमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी कि किसी भी दार्शनिक मान्यता के अनुसार सृष्टि विकास के सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी जीवन की स्थिति यही रहती है। मनुष्य के समस्त क्रिया व्यापार उसके जीवन में ही सम्भव हैं तथा कर्म परिणामों का भोग भी जीवन का ही एक अंग है। लक्ष्मण द्वारा प्रतिपादित पुरुषार्थ के द्वारा सभी प्रकार के क्लेशादि से मुक्त हुआ जा सकता है। उत्साह और कर्म ही पुरुषार्थवाद के विशिष्ट तत्त्व हैं। जिस प्रकार वेदान्त आदि अन्य दर्शन अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अनुसरण से दु ख शोक आदि का नाश मानते हैं ठीक उसी प्रकार लक्ष्मण लगातार इस बात पर बल देते रहे कि दु खनाश का एकमात्र उपाय पुरुषार्थ ही है।

लक्ष्मण धर्म और अधर्म की सत्ता का स्पष्ट शब्दों में लगातार विरोध करते रहे हैं। धर्माचरण के मात्र बाह्य क्रिया विधानों को ही नहीं वरन् धर्म भावना गुरुजन दुष्कृत तथा अन्य लक्षणों को भी उन्होंने व्यर्थ का पाखण्ड ही कहा। जब सीता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम शोक से अचेत हो गये तब लक्ष्मण ने उनको समझाते हुए जो कुछ कहा उसमें लक्ष्मण के धर्म विषयक विचार पूरी तरह उभर कर ऊपर आ गये। उन्होंने राम से कहा था

आर्य आप सदा शुभ मार्ग पर ही स्थिर हैं और जितेन्द्रिय हैं तथापि धर्म आपको अनर्थों से बचाने में समर्थ नहीं हो रहा। इसलिए धर्म सर्वथा निरर्थक है।

---

1 वारा ४।१।३

स्थावर तथा पशु आदि जगम प्राणिया का भी सुख का अनुभव हाता ह किन्तु उनके सुख म धर्म कारण नहीं होता क्याकि उनम न ता धर्माचरण की शक्ति ही ह आर न धम म उनका अधिकार ही हे। अतएव मरी मान्यता यही ह कि धर्म जस तत्त्व की कोई सत्ता ही नही ह। स्थावरा ओर जगम प्राणिया का सुखी दखने पर भी यदि कहा जाय कि जहा धर्म हे वहाँ सुख अवश्य ह तो यह वात भी युक्तियुक्त नही ह क्याकि उस दशा म आप जसे धमात्मा पुरुष का विपत्ति म पडना ही नहीं चाहिए। यदि अधम की भी सत्ता हाती ओर अधर्म दु ख का कारण हाता ता रावण को सदा नरक मे हा पडा रहना चाहिए था आर आप-जस धर्मात्मा पुरुष पर सकट आना ही नही चाहिए। रावण पर कोई सकट नही हे ओर आप निरन्तर विपत्तिया म उलझे हुए ह इसस धर्म आर अधर्म क परस्पर विराधी परिणाम (शास्त्रप्रतिपादित परिणामा के विपरीत) ही दिखाई देते ह। जिनम अधम प्रतिष्ठित ह व निरन्तर समृद्ध होत जात ह ओर धर्मशील व्यक्ति क्लेश म पडे रहते ह। इससे भी धर्म ओर अधर्म की निरर्थकता ही सिद्ध हाती ह। जा धम अव्यक्त ह आर जड हाने क कारण प्रतिकार ज्ञान म रहित ह असत् के समान विद्यमान हे उस धर्म के द्वारा दूसर पापात्मा का वध्य रूप स प्राप्त करना केस सम्भव हा सकता ह। यदि सत्कर्मो का परिणामभूत अदृष्ट शुभ ही हाता ता आपका किसी प्रकार का क्लेश नही हाना चाहिए था। किन्तु आप भी इस विपत्ति म फँसे हुए ह। अतएव धम आर सुकृत के शुभ परिणामी होने की पुष्टि नहीं होती। यदि धम दुर्वल आर स्वत कार्य साधन मे असमर्थ हाने के कारण काय सिद्धि के लिए पुरुपार्थ का सहारा लेता ह ता ऐसा दुवल आर सामर्थ्यहीन धर्म का सवन करना ही व्यर्थ ह। यदि धर्म वल अथवा पुरुपार्थ का अग हाकर क्वल उसी क सहारे चलता हे ता धर्म का परित्याग कर सीधे पुरुपार्थ अथवा पराक्रम का सहारा लना ही श्रेयस्कर ह।[1]

धर्म की सत्ता आर उसकी उपयोगिता का खण्डन करन के पश्चात् लक्ष्मण ने कहा था कि अव इन्द्रजित द्वारा दिये गय दु ख को (जिस आपका धर्म दूर नही कर सका) म अपने कम आर पराक्रम से दूर करूगा।[2]

वनगमन क पूर्व भी लक्ष्मण ने दशरथ आर ककेयी के प्रति आक्षेप करत हुए कहा था कि सत्य ओर धर्म का पाखण्ड रचनेवाले व दाना ही पापात्मा ह। ससार म ऐसे अनेक लाग ह जो स्वार्थ साधन क लिए धर्म का वहाना करते ह।[3] दशरथ आर ककेयी क इस कपटपूर्ण षड्यन्त्र का जानवूझकर भी धम का नाम लेकर आप उस स्वीकार करन ह। धर्म म इस प्रकार की आसक्ति सर्वथा निन्दित ह।[4] आपकी धर्म म इस प्रकार की आसक्ति कवल मरी दृष्टि म ही नहीं समस्त समाज की दृष्टि

1 वा रा 6 83 14 27 2 वा रा 6 83 42 3 वा रा 2 23 8 4 वा रा 2 23 13

म भी निन्दित ह।[1] लक्ष्मण क मतानुसार धर्म व्यक्ति म निणयात्मिका बुद्धि नहीं वरन् विचिकित्सा की भावना ही उत्पन्न करता है। उनके विचार स धर्म बुद्धि को माह स ग्रस्त कर दता है इसीलिए उन्हान कहा था कि जिस धर्म के ससर्ग से व्यक्ति माहग्रस्त हो जाता ह उस धर्म का म घार विराधी हूँ

यनत्त्मागता द्वेध तव बुद्धिर्महामते।
साऽपि धर्मो मम द्वेष्यो यत्प्रसगात् विमुह्यसि। —वा रा ॰ 23 11

धर्म का विराध करन क साथ ही लक्ष्मण ने अर्थ की महत्ता का पूरी शक्ति के साथ समर्थन किया ह। व धमार्थ प्रभवति अथवा धर्मार्थश्च कामश्च' जैस सिद्धान्त-वाक्या क समर्थक नहीं वरन् इसक विपरीत अर्थ को ही धर्म का आधार मानत ह। राम से उन्हाने कहा था कि आपने राज्य का परित्याग कर धर्म के मूल अर्थात् अथ का उच्छेद कर डाला ह—

धममूल त्वयाच्छिन्न राज्यमुत्सृजता तदा। —वा रा 6 83 3।

इसके साथ ही लक्ष्मण ने अपन विचारा का और भी अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस प्रकार पर्वता स नदियाँ निकलती है उसी प्रकार जहाँ-तहाँ से सगृहीत ओर बढे हुए अर्थ से ही जीवन की समस्त क्रियाएँ सफल हाती ह। जो मन्दबुद्धि मनुष्य अर्थ से वंचित ह उसकी सभी क्रियाए उसी प्रकार छिन्न भिन्न हो जाती है जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु म छोटी छोटी नदियाँ सूख जाती ह। अर्थ का परित्याग करके भी जो पुरुष सुख की कामना करता ह वह निश्चय ही पापाचार म प्रवृत्त हो जाता ह। अर्थात् धम म प्रवृत्ति के लिए भी अर्थ ही आधार हे। जिसके पास धन है उसी के अधिक मित्र हाते हे जिसके पास धन सम्पत्ति हे सभी लोग उसी के भाई-बन्धु बनते ह धनी पुरुष ही लोक म श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है और वही विद्वान् माना जाता है। धनवान् पुरुष ही पराक्रमी बुद्धिमान्, भाग्यशाली आर गुणवान् समझा जाता हे। जिसके पास धन हे उसके धर्म आर कामरूप सभी प्रयोजन सिद्ध होते है ओर निर्धन पुरुष अनवरत प्रयत्न करन पर भी उनको प्राप्त नही कर सकता। हर्ष काम दर्प धर्म क्रोध शम और दम—यह सभी केवल अर्थ के अधीन ह। अर्थ के द्वारा ही इनकी प्राप्ति सम्भव ह। आप पिता की आज्ञा पालन को सत्य धर्म का पालन मानकर वन मे चले आये ओर राक्षसो ने आपकी प्रियतमा का हरण कर लिया। लक्ष्मण का स्पष्ट सकेत रहा हे कि धर्म पालन के नाम पर जो कुछ आपने किया है उसी के कारण यह सब कष्ट भागने पड़ रह ह और धर्माचरण विपत्तियो से छुटकारा दिलाने मे असमर्थ है। इसके साथ ही लक्ष्मण ने स्पष्ट कहा कि धर्म आपके जिन कष्टों

---

1 वा रा 2 23 14

को दूर नहीं कर सका उनको म अपने कर्म और पराक्रम से दूर कर दूँगा।[1]

लक्ष्मण व्यक्ति के सुख-दुख का कारण धम अथवा अधर्म को नहीं प्रत्युत समाज और व्यक्तियो की व्यवहार नीतियो को मानते हैं। राम को जिन विपत्तियो का सामना करना पडा उनके लिए वे धर्म, अधर्म देव अथवा किसी अज्ञात शक्ति को दोष नही देते वल्कि सारा दोष दशरथ की काम प्रवृत्तियो, उनके द्वारा कैकेयी के वश म आकर गलत निर्णय लेने और उनके अविवेकपूर्ण नीति विरुद्ध व्यवहार को ही दोषी मानते है। उन्होने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप स राम को भी इसके लिए दोषी ठहराया ह कि उन्होने दशरथ की आज्ञा को धर्म के रूप म स्वीकार करते हुए उनके नीति विरुद्ध निर्णय का स्वीकार किया था। नीति और परम्परागत नियमो के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राम को ही राज्याधिकार सौपना दशरथ का कर्तव्य था किन्तु उन्होने उसके विपरीत आचरण किया जिसके कारण राम, लक्ष्मण, सीता पूरे इक्ष्वाकुवश और अयोध्या की सारी प्रजा को कष्ट भोगना पडा। इन सबके लिए किसी का धर्म-अधम नहीं वल्कि दशरथ का अनीतिपूर्ण व्यवहार ही दोषी ह। इसी प्रकार राजा यदि नीति के विरुद्ध कोई निर्णय लेता ह तो प्रजा को कष्ट होना स्वाभाविक ही है। व्यक्ति क जीवन म भी यही बात देखी जाती है। इस प्रकार लक्ष्मण के मतानुसार व्यक्ति अथवा समाज के सुख-दुख क लिए धर्म-अधर्म नहीं प्रत्युत स्वय व्यक्ति और समाज की व्यवहार-नीतियाँ ही उत्तरदायी होती हैं।

शक्रादिष्वपि देवेषु वर्तमानो नयानयो।
श्रूयते नर शार्दूल त्व न शोचितुमर्हसि ॥ –वा रा 3 66 13

वैदिक यज्ञ यागादि मे निरपराध प्राणिया की वलि के रूप म हत्या की जाती रही है। यद्यपि यज्ञ विधान उसे हत्या मानने अथवा याज्ञिक को हत्या के अपराध का दोषी मानने को तयार नहीं किन्तु लक्ष्मण इस तर्क से सहमत नहीं। इस प्रकार किये गये यज्ञ में जिन प्राणियो की हत्या कर दी जाती है उनके विषय मे यह कहने का कोई आधार नही कि उनको किन्ही पाप कर्मो के परिणामस्वरूप ही मृत्युदड भोगना पड रहा ह। चूँकि इस प्रकार के क्रिया विधानो को ऋषियो द्वारा धार्मिक मान्यता प्रदान की गयी है इसलिए यज्ञ-कर्ताओ को भी सर्वथा दोषी मानना सगत नहीं। इस स्थिति मे लक्ष्मण ने उन क्रिया विधानों ओर परम्पराओ की आलोचना की है जो इस प्रकार की प्राणि हिसा के लिए अनुमति देते ह। उन्होने कहा था– यदि विधिपूर्वक किये गये कर्म विशेष के द्वारा कोई जीव मारा जाता है या विहित कर्म करता हुआ कोई किसी को मारता है तो उस विधि को ही हत्या के दोष से लिप्त

---

1 वा रा 6 83 32 42

मानना चाहिए, कता का नहीं।[1] लक्ष्मण ने इस प्रकार एक ओर धर्म अथवा अधर्म के सुख दुख म परिणमन का निरोध किया हे ओर दूसरी ओर इस तथ्य का प्रतिपादन भी किया ह कि समाज अथवा व्यक्ति के सुख दुख के लिए वेयक्तिक ओर सामाजिक व्यवस्थाएँ मूलत दोषी ह। यदि इस प्रकार की व्यवस्थाएँ धर्म के नाम पर भी की गयी हे तो भी वेयक्तिक ओर सामाजिक हित की दृष्टि से उनको स्वीकार करना उचित नही। इस रूप म लक्ष्मण वेदिक यन यागादि ओर कर्म-काण्डा का विरोध करत दिखाई देत हे।

दार्शनिक दृष्टि स व्यक्ति की राग द्वेषादि प्रवृत्तिया ओर सत्त्व रज-तम गुणा की स्थिति को इन सबका मूल म माना जाता ह किन्तु लक्ष्मण इतनी दूर तक इस सम्बन्ध म विचार करन क लिए कदाचित् तेयार नही। रागद्वेष की प्रवृत्तिया ओर गुणों के अस्तित्व की समाप्ति की कभी कल्पना ही नहीं की जा सकती। सृष्टि ओर प्राणि जगत् क विद्यमान रहत हुए गुण दोषा की नि शेष समाप्ति किसी भी दशा मे सम्भव नही। यही कारण ह कि दर्शन वेयक्तिक जीवन म ही इन पर विजय पाने का परामर्श देता ह। इस पर भी ऐसी स्थिति की कभी भी कल्पना नही की जा सकती जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति समान रूप स एक ही समय म गुण दोषा पर विजयी हो सक। कदाचित् इसी कारण लक्ष्मण का विचार रहा हे कि जीवन म दुख ओर आपत्तिया का आना एक अनिवार्य स्थिति ह। जीवन के समस्त क्रिया-व्यापार सत्त्वादि गुणा ओर राग द्वेषादि प्रवृत्तिया द्वारा ही नियन्त्रित होते ह ओर किसी भी दूसर क व्यवहार स प्रभावित व्यक्ति क मन म अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रतिक्रिया का उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही ह। इस चक्र की गति को रोकना सम्भव नही ओर इस कारण जीवन म सुख दुख की स्थिति भी अनिवार्य ही ह।

लक्ष्मण न अनेक प्रमाण प्रस्तुत करत हुए राम स कहा था कि यह लोक का स्वभाव ही ह कि यहाँ सब पर दुख आता-जाता रहता ह। नहुष के पुत्र ययाति का इन्द्रत्व प्राप्त होन पर भी दुख भोगना पडा। हमार पिता महाराज दशरथ के पुरोहित महर्षि वसिष्ठ को एक ही दिन म सो पुत्र प्राप्त हुए किन्तु वे सभी एक ही दिन म मार डाल गये। विश्ववन्दिता जगन्माता पृथ्वी भी हिलती डुलती दखी जाती हे ओर धर्म के प्रवर्तक ससार के नेत्र समस्त विश्व के आधार सूर्य चन्द्र का भी राहु द्वारा ग्रस्त होना पडता हे। जब बड बड देवता भी इस स्थिति से मुक्त नही हो सकत तब सामान्य प्राणिया की स्थिति ही क्या ह?[2] इस विचार के साथ ही लक्ष्मण की मान्यता यह भी ह कि जिस प्रकार दुख शोक का आना अनिवार्य है उसी प्रकार उनका अन्त भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया ही ह। वह अग्नि-ज्वाला की भाँति एक क्षण म प्रज्वलित होकर दूसर ही क्षण दूर हो जाती है

---

1 वा रा 6 83 11 27 2 वा रा 3 66 8 12

आश्वसिह नरश्रेष्ठ प्राणिन' कस्य नापद ।
सस्पृशन्त्यग्निवद् राजन् क्षणेन व्यपयान्ति ॥ —वा रा 3 66 6

दु ख आर सुख के आने ओर जान की स्थिति को अपरिहार्य मानन की दशा न स्वाभाविक रूप से इनसे विचलित न होने का ही उपदेश दिया जा सकता ह। श्रीमद्भगवद्गीता मे भी इसी का प्रतिपादन किया गया है

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे त्व न शोचितुमर्हसि ॥ —गीता 2 27

अपरिहार्य स्थिति को उत्साहपूर्वक सहन करना और पराक्रम के द्वारा उसके निवारण का प्रयत्न ही एक मात्र मार्ग हे। लक्ष्मण के द्वारा इसी का प्रतिपादन किया गया है। जब भी अवसर मिला वे राम स लगातार यही कहत रहे कि विपत्ति में शोक नहीं करना चाहिए। उन्होने कहा था—"आर्य! आप शोक का परित्याग कर धैर्य धारण कर। सीता की खोज के लिए मन मे उत्साह रखे क्योकि उत्साही मनुष्य जगत् म अत्यन्त दुष्कर कार्य आ पडने पर भी कभी दु खी नहीं होते।[1] यदि विदेहराज कुमारी सीता मर जायँ या नष्ट हो जायँ तो भी आपको दूसरे गँवार मनुष्यो की भाति शोक नही करना चाहिए।[2] आप जैसे सर्जन पुरुष बडी से बडी विपत्ति आने पर भी शोक नही करत व खेदरहित होकर अपनी विचार शक्ति को नष्ट नहीं होने देत।[3] प्रस्रवण गिरि पर राम के पुन शोक से दु खी हाने पर लक्ष्मण ने कहा था— वीर इस प्रकार व्यथित होन से कोई लाभ नहीं है। आपको शोक नही करना चाहिए क्योकि शोक करनेवाले पुरुष के सभी मनोरथ नष्ट हो जाते ह। आप एक कर्मठ वीर तथा देवताओ से भी समादृत है। आस्तिक धर्मात्मा और उद्योगी ह। यदि आप भी शोक वश उद्यम छोड बठते ह तो पराक्रम क स्थान स्वरूप युद्धभूमि मे आप अपने शत्रु का वध करने मे समर्थ नहीं हो सकेगे। आप अपने शोक को जड से उखाड फकिए और उद्योग के विचार को दृढ कीजिए तभी आप परिवार सहित उस राक्षस का वध करने में समर्थ हो सकेंगे।[4]

पम्पा सरोवर पहुँचने पर उसके प्राकृतिक सोन्दर्य से राम की विरह व्यथा उद्दीप्त हो उठी थी। सीता के वियोग म उनका धैर्य भी समाप्तप्राय हो रहा था आर उन्होने दु खी हृदय से लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने का परामर्श दिया। उस समय भी लक्ष्मण न उनसे कहा था कि आप जैसे अकलुष पुरुषो को उत्साह नही खोना चाहिए। स्वजनो के वियोग का दु ख सभी को सहना ही पडता है। इस बात को स्मरण करके अपने प्रियजना के प्रति मोह और आसक्ति को त्याग दीजिए। जल

1 वा रा 3 63 19 2 वा रा 3 66 14 3 वा रा 3 66 15 4 वा रा 4 27 34 37

आदि से भीगी हुई बत्ती भी अधिक स्नेह में भिगो देने पर जलने लगती है।[1]

राम की आज्ञा से सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़कर अयोध्या लौटने पर लक्ष्मण ने शोक सन्तप्त राम को देखकर जो विचार व्यक्त किये वह उनके दार्शनिक विचारों का सार है। उन्होंने कहा था— पुरुषसिंह आप शोक न करें। काल की ऐसी ही गति है। आप जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी पुरुष शोक नहीं करते। संसार में जितने संचय हैं उन सबका अन्त विनाश है उत्थान का अन्त पतन है संयोग का अन्त वियोग और जीवन का अन्त मरण है। अतः स्त्री पुरुष मित्र और धन में आसक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनसे वियोग होना निश्चित है। आप आत्मा से आत्मा को मन से मन को तथा सम्पूर्ण लोकों को भी संयत रखने में समर्थ हैं। फिर अपने शोक पर काबू रखना कौन बड़ी बात है। आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष इस तरह के प्रसंग आने पर मोहित नहीं होते। यदि आप दुःखी होंगे तो यह अपवाद आप पर फिर आ जाएगा। लोग कहेंगे कि स्त्री का परित्याग करके उसी की चिन्ता से दुःखी रहते हैं। धैर्य से चित्त को एकाग्र करके दुर्बल शोक बुद्धि का परित्याग करें।"[2] लक्ष्मण इस विषय में इतने अधिक दृढ़निश्चयी थे कि अन्त में राम के निर्देश पर जब वे शरीर त्याग के लिए चलने लगे तब उन्होंने स्वयं के प्राणों के प्रति तो कोई मोह प्रकट किया ही नहीं राम को चिन्तित देखकर उनको समझाते हुए उन्होंने कहा था कि आपको मेरे लिए सन्ताप नहीं करना चाहिए। पूर्व जन्म के कर्मों से बँधी हुई काल की गति ऐसी ही है। आप निश्चिन्त होकर मेरा वध कर डालें और अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें।[3]

व्यवधान को देव की प्रेरणा का परिणाम मानते ह तो आपका यह विचार मुझे कतई पसन्द नही। आप ऐस विचारा का परित्याग करे। जा कायर ह जिनम पराक्रम का नाम नहीं हे वही दैव का भरासा करते हैं। सारा ससार जिन्ह आदर की दृष्टि से देखता ह वे शक्तिशाली वीर पुरुष कभी दव की उपासना नहीं करत।

यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते देवी चापि तयोर्मतम्।
तथाप्युपेक्षणीय ते न मे तदपि रोचते॥
विक्लवो वीर्यहीना य स दैवमनुवर्तते।
वीरा सम्भावितात्मानो न दैव पर्युपासते॥ —वा रा 2 23 15 16

इसी के साथ उन्हाने घाषणा की थी कि जिन लागो ने देव के वल से आज आपके राज्याभिषक को नष्ट हुआ देखा ह वे ही आज मरे पुरुषार्थ स दव का विनाश भी दख लगे।[1]

व्यक्ति आर समाज की व्यवहार नीतिया के कारण सुख-दु ख की अपरिहार्य स्थिति धर्म की निष्फल जडता दु ख नाश के लिए उत्साहपूर्वक पराक्रम आर दव की दुर्वलता आदि सिद्धान्तो क प्रति लक्ष्मण इतने अधिक निष्ठावान् थे कि इनसे कभी वह विचलित होते दिखाई नही दिये। राम ओर लक्ष्मण का जीवन सर्वथा समान परिस्थितिया म ही व्यतीत हुआ था। दोना ही प्रारम्भ म विश्वामित्र के साथ रहे एक ही समय दाना का विवाह हुआ एक साथ राजमहलो से निष्कासित हाकर वनवास के लिए निकले राक्षसो के साथ समान रूप से सघर्ष किया। राम को सीता का वियोग केवल एक वर्ष क लिए भागना पडा किन्तु लक्ष्मण पूरे चौदह वर्ष तक उर्मिला से अलग रहे। इस सबके हाने हुए भी पूरे जीवन म कभी एक क्षण क लिए भी लक्ष्मण के चेहरे पर विषाद की रेखा दिखाई नही दी। राम का दशरथ के निर्णय स गहरा आघात लगा था ओर वे वनवास की पूरी अवधि म राज्याधिकार से वंचित किये जान क दु ख को भुला नही सके। सीता हरण युद्ध म लक्ष्मण के घायल हा जाने इन्द्रजित द्वारा प्रपचपूर्वक सीता की मृत्यु का दृश्य उपस्थित करने जेस अवसरा पर वह रो देते थे आर मृत्यु का वरण करने तक को तेयार हा जाते थे। यदि तुलसीदास जैसा महाकवि राम की इस करुणाजनक विपादपूर्ण स्थिति पर नर लीला' का पर्दा न डालता तो राम क देवत्व क सामने एक प्रश्नचिह्न लगा ही रहता। इसके विपरीत लक्ष्मण क पौरुष ओर दु खा पर उनकी विजय पर सन्देह करन की कोई गुजायश नही। लक्ष्मण के सिद्धान्ता का परिणमन निस्सन्देह तत्र क माह क शोक की स्थिति म ही होता है।

उपर्युक्त आस्थाआ के अतिरिक्त यह तथ्य भी विशेष रूप से उल्लेख्य ह कि

1 वा रा 2 23 19

लक्ष्मण न अपन जीवन मे भूलकर भी देवलाक स्वर्गलोक नरकलोक आदि का नाम तक नहीं लिया। ऐसा प्रतीत होता है मानो पुनर्जन्म म भी उनकी कोई आस्था नही थी। दशरथ, भरत राक्षस तथा अपन शत्रुओ क सहार की चचा करत समय उन्होंन प्राय वधिष्यामि जेसे शब्द का ही प्रयाग किया है ओर कही भी स्वर्ग पहुँचा दूँगा' अथवा नरक भेज दूँगा जेसी शब्दावली का प्रयोग उनके द्वारा नहीं किया गया। एक स्थान पर अवश्य ही उनके द्वारा वीरलोक शब्द का प्रयोग किया गया हे। उन्होने राम स वन न जाने का आग्रह करते हुए कहा था—"जिस प्रकार तट भूमि समुद्र को रोके रहती है उसी प्रकार मे आपकी और आपके राज्य की रक्षा करूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो वीरलोक का भागी न होऊँ।[1] मात्र इस प्रयोग के आधार पर लक्ष्मण की पुनर्जन्म अथवा पाप पुण्य के परिणामस्वरूप मरणोपरान्त नरक अथवा स्वर्गलोक की प्राप्ति म आस्था मानना किसी भी प्रकार सगत नहीं।

सन्ध्या वन्दनादि मे लक्ष्मण की किस सीमा तक आस्था थी इसका उल्लेख किया जा चुका है। देवऋण ऋषिऋण पितृऋण को भी लक्ष्मण स्वीकार नहीं करते थे। उन्होने कहीं भी इनसे उऋण होने के लिए तर्पण आदि विधि को सम्पन्न नहीं किया आर न कही इनका उल्लेख ही किया। जीवन की उपलब्धियो और असफलताओ का वह केवल पौरुष का अथवा पराक्रमहीनता का परिणाम मानते थे। इस स्थिति मे स्वाभाविक रूप से उनके द्वारा धनुष ओर बाण का ऋण ही स्वीकार किया गया हे। चित्रकूट मे जब वह भरत को मार डालने के लिए उद्यत हुए तब उन्होने यही कहा था कि इस महान् वन मे सेना सहित भरत का वध करके मे धनुष ओर बाण के ऋण से उऋण हो जाऊँगा।[2]

वस्तुत युद्ध ही लक्ष्मण के लिए यज्ञ था परम्परासम्मत नीतिवाक्य ही वेद मन्त्र थे शत्रु ही हविष्य थे उत्साहपूर्वक पराक्रम करते रहना ही कर्म था और जिस प्रकार समस्त दर्शनो साधना पद्धतियो क्रिया विधाना का एक मात्र उद्देश्य दु खा से मुक्ति हे उसी प्रकार लक्ष्मण के आधार विधान का उद्देश्य भी दु खो से छुटकारा और सुख की प्राप्ति ह। इसी सन्दर्भ मे लक्ष्मण द्वारा की गयी योग की परिभाषा ओर उसके लक्षण भी विशेष रूप स उल्लेखनाय ह। व न ता अष्टाग योग को योग मानते हे ओर न हठयोग मन्त्रयोग लययोग आदि के पति ही सकेत करते ह। व्यक्ति को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए योग का सहारा लेने का लक्षमण ने प्रतिपादन किया है। यह लक्ष्य केवल नि श्रेयस की प्राप्ति ही नहीं हे। यदि योग के द्वारा केवल नि श्रेयस की ही प्राप्ति होती है तो लक्ष्मण उसका समर्थन नहीं करते। परिस्थिति और आवश्यकतावशात् कुछ भी लक्ष्य हो सकता है। लक्ष्मण के अनुसार स्वस्थ चित्त से विषादरहित होकर कामादि का परित्याग कर एकाग्रचित्त से अपने लक्ष्य की प्राप्ति

1 वा रा 2 23 28 2 वा रा 2 96 30

के लिए पराक्रम करना ही याग है। लक्ष्य के प्रति अविचलित एकाग्रता ही समाधि है। शरद् ऋतु की उद्दीपक सान्दर्य सुपमा को देखकर राम जव सीता के वियोग म दु खी हुए तव उनकी व्याकुलता ओर उद्विग्नता को देखकर लक्ष्मण ने कहा था

आय! इस प्रकार काम के अधीन होकर अपने पोरुप का तिरस्कार करन से, पराक्रम को भूल जाने से *क्या लाभ हागा? इस लज्जाजनक शोक के कारण आपके* चित्त की एकाग्रता नष्ट हा रही है। क्या इस समय योग का सहारा लेने से मन का लक्ष्य के प्रति एकाग्र करने से यह सारी चिन्ता दूर नही हो सकती? आप आवश्यक कर्मो के अनुष्ठान म पूर्ण रूप स लग जाइए मन को प्रसन्न कीजिए और हर समय चित्त की एकाग्रता बनाये रहिए। साथ ही अन्त करण मे दीनता को स्थान न देते हुए अपने पराक्रम की वृद्धि के लिए शक्ति वढाने का प्रयत्न कीजिए।[1]

वोद्ध दर्शन के चार आर्यसत्य—दु ख, दु ख के उदय का कारण आर दु ख निरोध के प्रयत्ला पर ही केन्द्रित है। वहाँ तृष्णा को ही दु ख का मूल कारण ओर तृष्णा पर विजय प्राप्त करना ही दु ख निराध का प्रमुख उपाय माना गया ह। उपर्युक्त विवेचन के अनुसार लक्ष्मण की मान्यताएँ इससे भिन्न है। इसी प्रकार याग की जो विभिन्न परिभापाएँ दी गयी है लक्ष्मण का योग भी उनसे अलग दिखाई देता है। यह मतभद होत हुए भी लक्ष्मण का पूरा दर्शन दु खनाश के प्रति ही उद्दिष्ट है। यहाँ लक्ष्मण की पराक्रम विपयक मान्यताआ के सम्वन्ध में भी कुछ लिखना अनिवार्य ह। लक्ष्मण के पराक्रम मे क्रोध ओर आवेश को कोई स्थान नहीं। शारीरिक वल अथवा पशु वल का भी पराक्रम से कोई सम्वन्ध नही। लक्ष्मण ने अनक स्थलो पर अपने विचारों को स्पष्ट किया है। शारीरिक वल की दृष्टि से राम सम्भवत लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थे किन्तु पारुप आर पराक्रम पर लक्ष्मण की आस्था ही अधिक रही। राम का क्राध जरा-जरा सी वाता पर भडक उठता था। आवश म उनको यह भी ध्यान नहीं रहता था कि जिसके प्रति वे अपना क्रोध प्रकट कर रहे है वह वास्तव मे दोपी है भी अथवा नही। इसक अतिरिक्त वे क्रोध म आकर इस सीमा तक उत्तेजित हो उठत थे कि निरीह ओर निरपराध को भी दण्डित करने के लिए तैयार हा जात थे। प्रस्रवण गिरि पर पहुँचते हुए उन्हाने शोक विह्वल होकर गोदावरी नदी तथा वन के मृगो से सीता के विपय म जानने के लिए प्रश्न किये थ ओर जव इनस उनको उत्तर न मिला तो राम क्रोध की आग मे जल उठे थे। उन्होने पर्वत के प्रति क्रोध प्रकट करते हुए कहा था कि तू मेरे वाणो से जलकर भस्म हो जाएगा ओर तेरे तृण वृक्ष आर पल्लव नष्ट हो जाएँगे। इसी प्रकार गोदावरी को सुखा डालने की वात उन्होंने कही थी। इसी के साथ राम न कहा था कि अव यक्ष गन्धर्व पिशाच राक्षस किन्नर अथवा मनुष्य कोई भी चेन से नही रह सकेगा।

---

1 वा रा 4 30 17

म नदी सरोवर समुद्र, वृक्ष लता गुल्म सबको नष्ट कर दूगा ओर तीनो लोको म काल की विनाशलीला आरम्भ कर दूँगा।[1] समुद्र क प्रति भी राम ने इसी प्रकार क्रोध व्यक्त किया था। समुद्र से मार्ग प्राप्त करने के लिए पहले उन्होने तीन रात तक कुशासन पर धरना दिया था। इस पर भी जब समुद्र प्रकट नहीं हुआ तो राम ने समस्त जलचरा क सहित समुद्र को सुखा डालन के लिए बाण का सन्धान किया था। राम के क्रोध की यह अभिव्यक्ति पराक्रम नहीं माना जा सकता। इसी कारण क्रोध के ऐस क्षणो म लक्ष्मण ने उनको शान्त किया। प्रस्रवण गिरि के प्रति क्रुद्ध होने पर लक्ष्मण ने राम को समझाते हुए कहा था—आर्य आप पहले कोमल स्वभाव से युक्त जितेन्द्रिय आर समस्त प्राणिया के हित मे तत्पर रहे हे। अब क्रोध के वशीभूत होकर अपने स्वभाव का परित्याग न करे।[2] किसी एक के अपराध से समस्त लोको का सहार न करे[3] अपने देवोचित तथा मानवोचित पराक्रम को देखकर उसका अवसर क अनुरूप उपयोग करते हुए शत्रुआ क वध का प्रयत्न कीजिए।[4] समुद्र के प्रति कुपित राम के बाण को भी लक्ष्मण ने पकड लिया था। इस अवसर पर उन्होने कहा था कि समुद्र को नष्ट किय बिना ही आपका कार्य सम्पन्न हो जाएगा। आप जसे महापुरुष क्रोध क अधीन नहीं होत।[5]

इन्द्रियजयी पुरुष के पराक्रम आर पारुष के विनाशान्मुख अथवा समाज क लिए हानिकर हाने की सम्भावना भी नही हो सकती। लक्ष्मण की आस्था धर्म के प्रति भले ही न रही हो किन्तु नीति ओर परम्परागत आचार व्यवहार म उनका जबरदस्त विश्वास रहा। उनकी मान्यता यही थी कि सकडा और हजारा वर्ष की जीवन यात्रा म समाज म कवल वही परम्पराएँ स्थापित होती ह आर उन्हीं को सार्वजनिक स्वीकृति भी मिलती ह जो निस्सन्देह समाज के लिए लाभदायक सिद्ध हो। अतएव उन परम्पराआ का उच्छेद व्यक्ति अथवा समाज किसी के लिए भी हितकर नही। कर्तव्य को विस्मृत कर शराब के नशे में मस्त सुन्दरियो के साथ क्रीडा मे रत सुग्रीव का समझाते हुए उन्होने जो कुछ कहा था उससे भी सिद्ध होता ह कि लक्ष्मण इन्द्रिय निग्रह सत्य आर न्याय के समर्थक थ। उन्होने सुग्रीव से कहा था— वानरराज! धर्यवान् कुलीन दयालु जितन्द्रिय ओर सत्यनिष्ठ राजा का ही ससार मे आदर होता ह। जा राजा अधर्म म स्थित होकर उपकारी मित्रा क प्रति की गयी अपनी प्रतिज्ञाआ को झूठी कर देता ह उससे बढकर नृशस कान हो सकता है। जो पहले मित्रा के द्वारा अपना कार्य सिद्ध करके बदल म उन मित्रो का कोई उपकार नही करता वह कृतघ्न सभी प्राणिया क लिए वध्य हे। गा हत्यारे शराबी चोर आर व्रतभग करनेवाले

---

1 वा रा 3 61 58 71 2 वा रा 3 65 4 3 वा रा 3 65 6 9 4 वा रा 3 66 20
5 वा रा 6 21 3।

पुरुष के लिए सत्पुरुषा ने प्रायश्चित्त का विधान किया है किन्तु कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नही है।[1]

यह सकेत किया जा चुका है कि क्रोध अथवा आवेश के वशीभूत होकर भी निरपराध को दण्डित करने के वे घोर विरोधी थे। राम को निवासित करने के विषय मे दशरथ के निर्णय की तीखी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा था— मै रामचन्द्र का कोई ऐसा अपराध या दोष नही देखता हूँ जिस कारण इनको राज्य से निकाला जाकर वन मे रहने के लिए विवश किया जाय। अत्यन्त शत्रुता की भावना से तिरस्कृत होने पर भी कोई पुरुष परोक्ष मे भी राम को दोषी माननेवाला दिखाई नही देता। धर्म पर दृष्टि रखनेवाला कौन ऐसा राजा होगा जो देवता के समान शुद्ध सरल जितेन्द्रिय शत्रुओ पर भी स्नेह रखनेवाले पुत्र का अकारण परित्याग करेगा।[2] नीति के विरुद्ध कार्य करने पर लक्ष्मण ने दशरथ और सुग्रीव की ही आलोचना नही की बल्कि जब कभी उन्होंने राम को भी नीति के प्रतिकूल कार्य करते देखा तब उनको भी रोकने मे उन्होंने सकोच नही किया। प्रस्रवण गिरि पर राम को क्रुद्ध देखकर लक्ष्मण ने उनको राजोचित कर्तव्यो का स्मरण कराते हुए कहा था कि राजा लोग अपराध के अनुसार ही उचित दण्ड देनेवाले कोमल स्वभाववाले और शान्त होते है।[3] दण्ड देते समय अपराध का लक्ष्मण इतनी बारीकी से देखने के अभ्यस्त थे कि अपेक्षा से अधिक दण्ड देने की भूल न हो। कबन्ध ने जब राम और लक्ष्मण दोनो को अपनी भुजाओ में बाध लिया और उनको खा जाने की चेष्टा की तब भी लक्ष्मण को उस पर क्रोध नही हुआ बल्कि उस समय भी उन्होने क्रोध से विरहित पराक्रम का ही सहारा लिया था।[4]

उन्होंने भली भाँति समझ लिया था कि कबन्ध की केवल भुजाओ मे ही शक्ति थी इसलिए उन्होने उसको मार डालना उचित नहीं समझा। राम से उन्होंने कहा था कि इसकी भुजाओ मे ही इसका सारा बल और पराक्रम निहित है। चूँकि राजाओ के लिए यज्ञ मे लाये गये पशुओ के समान निश्चेष्ट प्राणियो का वध निन्दित बताया गया है इसलिए इसका वध न करते हुए केवल इसकी भुजाओ का उच्छेद कर डालना चाहिए।[5]

जिस प्रकार लक्ष्मण कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नहीं मानते थे उसी प्रकार अपकारी को मार डालना वह एक पुनीत कर्तव्य मानते रहे है। दशरथ को मार डालने के लिए उन्होने जो कुछ कहा था वह रोष के कारण नहीं बल्कि कर्तव्य समझ कर ही कहा था। उन्होंने कहा था कि यदि गुरु भी घमण्ड मे आकर कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान खो बैठे और कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता

---

1 वा रा 4.31 7,8 10 12 2 वा रा 2 21 1 6 3 वा रा 3 65 10 4 वा रा 3 70 3
5 वा रा 3 70 5-6

ह। इस समय दशरथ ककयी म आसक्तचित्त होकर दीन वन गये है वे अपना विवेक खा बठ ह आर अधिक वृद्ध हाने क कारण समाज मे निन्दित हो रहे है अतएव वृद्ध पिता का म अवश्य मार डालूँगा।[1]

अपकारी को मार डालने म लक्ष्मण किसी प्रकार का दोष नहीं मानते बल्कि सामने आ जान पर उसका जीवित छोड दन का अधर्म मानत ह। चित्रकूट म शाल वृक्ष पर चढकर जब उन्होने भरत को आते हुए देखा था तब राम से कहा था— आज यह कोविदार क चिह्न स युक्त ध्वजवाला रथ रणभूमि मे हम दोनो के अधिकार मे आ जाएगा आर आज म अपनी इच्छा के अनुसार उस भरत को भी सामने दखूँगा जिसक कारण आपको सीता को ओर मुझ भी सकट का सामना करना पडा ह तथा जिसक कारण आप अपने सनातन राज्याधिकार से वचित किय गये ह। यह भरत हमारा शत्रु है ओर सामने आ गया ह अत वध के ही योग्य ह। भरत का वध करने म मुझे कोई दोष दिखाई नही देता। जो पहले का अपकारी रहा हो उसका मारकर कोई अधम का भागी नही होता। भरत न पहले हम लोगो का अपकार किया ह इसलिए उसको मार डालने म नही बल्कि जीवित छोड देन मे अधर्म ह। म ककयी का भी उसक सग सम्बन्धियो आर बन्धु बान्धवो सहित मार डालूँगा ताकि यह पृथ्वी ककयी रूप महान् पाप स मुक्त हो जाए।

अपकारी को मार डालने के प्रति लक्ष्मण जितने सतर्क दिखाई दते ह कृतज्ञता आर उपकार का बदला चुकान क प्रति भी व उतनी ही सावधानी बरतने के समर्थक रहे। सीता की खाज के लिए प्रतिज्ञाबद्ध सुग्रीव जब अपने कर्त्तव्य को भूल बैठा था तब लक्ष्मण न तारा क माध्यम से सुग्रीव से कहलाया था कि मित्र के किये हुए उपकार का यदि अवसर आने पर भी बदला न चुकाया जाए तो धर्म की हानि तो होती ही ह गुणवान् मित्र के साथ मत्री सम्बन्ध टूट जाने पर बहुत अधिक आर्थिक हानि भी उठानी पडती है। मित्र दो प्रकार के होते ह—एक तो अपने मित्र के अर्थ साधन म तत्पर होता ह आर दूसरा सत्य आर धम के ही आश्रित रहता ह। तुम्हार स्वामी ने मित्र के दोनो ही गुणो का परित्याग कर दिया है। वह न तो मित्र का काय सिद्ध करता ह आर न स्वय ही धर्म म स्थित है।[3]

लक्ष्मण क समग्र व्यक्तित्व को जानने के लिए उनके नारी के प्रति विचारो को जानना भी आवश्यक ह। रामायण क अन्य सभी पात्र नारी क प्रति सम्बन्ध सापक्ष विचार ही प्रकट करत रह ह। राम न कौसल्या ककयी सीता आदि के प्रति जो भी विचार प्रकट किय वह स्नेह सम्बन्धो की पृष्ठभूमि पर ही व्यक्त किय गय ह। इसी प्रकार रावण मन्दोदरी सुग्रीव-तारा दशरथ-ककेयी दशरथ-कौसल्या आदि की परस्पर बातचीत सम्बन्ध निरपेक्ष नहीं रही। पूरी रामायण म कवल लक्ष्मण ही एक

---

1 वा रा 2 ९1 13 19 2 वा रा 2 96 1 24 26 3 वा रा 4 33 47-48

एसा पात्र है जिसके विचार पूर्णतया सम्बन्ध निरपेक्ष रहे। माता पिता भाई बहन पत्नी आदि क रिश्ते लक्ष्मण के विचारा म किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं ला सके वरन् वह इन सबके प्रति अपना वसा ही कर्तव्य मानत ह जैसा एक व्यक्ति का दूसर के प्रति होना चाहिए। राग द्वप लक्ष्मण का कभी लेश मात्र भी प्रभावित नहीं कर सका आर न इन्द्रियार्थ ही उनको कर्तव्य पथ से विचलित कर सके।

लक्ष्मण के मन म नारी क रूप सान्दर्य क प्रति थोडी भी आसक्ति नहीं रही। सुमित्रा के साथ उनके ममत्वहीन सम्बन्धा के विषय म लिखा जा चुका है। विवाह के पश्चात् वे उर्मिला के साथ सालह वर्ष का समय बिता चुके थे। इसके पश्चात् भी वनगमन के समय न तो वे उर्मिला से मिले ही आर न कभी उर्मिला क प्रम सम्बन्धा आर क्रीड़ा-व्यापारा की उनको याद ही आयी। सीता हरण के पश्चात् राम उनके वियाग म रो देते थे आर उन्हान वियोग स व्यथित होकर इस प्रकार के विचार व्यक्त किये ह जिनम उनकी कर्तव्य भावना नहीं वरन् काम भावना ही अधिक व्यक्त हुई। इसी कारण लक्ष्मण को बार बार यह कहन के लिए विवश होना पडता था कि काम के वशीभूत हाकर कर्तव्य को विस्मृत कर देना उचित नहीं। लक्ष्मण कर्तव्या क प्रति इतने अधिक समर्पित निष्ठावान् थ कि उर्मिला का विरह उनके मार्ग म कभी व्यवधान नहीं बन सका। नारी के प्रति लक्ष्मण के मन म कोई आकर्षण तो था ही नहीं सिद्धान्तत वे परस्त्री का देखना भी पाप मानते रहे है। सीता के केयूर-कुण्डला को पहचानने म भी उन्होने इसी कारण असमथता व्यक्त की थी कि सीता के चरणा स ऊपर उनके मुख भाग की ओर उन्हाने कभी देखा भी नहीं।[1]

वन म सीता को छोडकर लक्ष्मण जब लोटने लगे थे तब सीता ने उनस अपनी ओर देखने क लिए इस कारण आग्रह किया था जिससे उनको यह ज्ञात हो सके कि वे गर्भवती है। उनके अनुरोध को अस्वीकार करत हुए लक्ष्मण ने उत्तर दिया था– शाभने! आप मुझस यह क्या कह रही ह। मने इसके पहल भी आपका सम्पूण रूप कभी नहीं दखा। केवल आपक चरणा के ही दर्शन किये हे। फिर आज यहा वन के भीतर रामचन्द्र की अनुपस्थिति म आपकी ओर कसे देख सकता हू?" सुग्रीव के राजमहलो म जब तारा उनक सामने आकर खडी हो गई थी तब भी उनकी नजर नीची हो गयी थी।

लक्ष्मण नारी को प्रकृतित सामान्य बुद्धिफूहड विवेकहीन ओर अन्य अनेक दोषा से युक्त मानते थे। मृगरूपधारी मारीच न मरते समय हा लक्ष्मण का जिस प्रकार आर्तनाद किया था उसक रहस्य को सीता समझ ही नहीं सकी। लक्ष्मण भी उसके छल से विचलित हो सकते थे। राम की सहधर्मिणी हाते हुए भी सीता को राम

1 वा रा 4 6 22 23

के स्वर का केवल सामान्य बोध ही था और वे मारीच के मायाजनित स्वर को पहचान नहीं सकीं। इसके विपरीत लक्ष्मण का एक ओर राम के अपराजेय पराक्रम पर विश्वास था ओर दूसरी ओर राक्षसों की कृत्रिम आवाज करने की शक्ति को भी वे समझ गये थे। अतएव सीता द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी वे उनको अकेली छोड़कर आश्रम से जाने के लिए तैयार नहीं हुए। इस पर सीता ने जब फिर से अनेक अनुचित बातें कहीं तो लक्ष्मण उनको सहन न कर सके। उन्होंने सीता को उत्तर देते हुए कहा था कि— ऐसी अनुचित और प्रतिकूल बात मुँह से निकालना स्त्रियों के लिए आश्चर्य की बात नहीं। इस संसार में नारियों का ऐसा स्वभाव ही देखा जाता है। स्त्रियाँ प्राय विनय आदि धर्मों से रहित चंचल कठोर तथा घर में फूट डालनेवाली होती हैं। इसके पश्चात् उन्होंने वनचारियों को साक्षी बनाकर फिर कहा था कि मैंने न्याययुक्त बात कही है फिर भी आपने मेरे प्रति ऐसी कठोर बात मुँह से निकाली है। निश्चय ही आज आपकी बुद्धि मारी गयी है। धिक्कार है आपको जो मुझ पर ऐसा सन्देह करती हैं। मैं बड़े भाई की आज्ञा पालन में तत्पर हूँ और आप केवल नारी होने के कारण साधारण स्त्रियों के दुष्ट स्वभाव को अपनाकर मेरे प्रति ऐसी आशंका करती हैं।" राम से भी सीता की शिकायत करते हुए उन्होंने कहा था कि वह नीच श्रेणी की स्त्रियों के समान ही अपने मन में व्यथा को स्थान देती है।

क्रौंचारण्य में मतंग मुनि के आश्रम के समीप अयोमुखी ने स्वयं को लक्ष्मण के सामने भार्या के रूप में समर्पित कर दिया था। अयोमुखी का व्यवहार किसी भी प्रकार से राक्षसोचित नहीं था वरन् लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में बाँधकर उसने प्रेमपूर्वक रमण करने का अनुरोध किया था। लक्ष्मण का हाथ पकड़कर उसने कहा था—*"मेरा नाम अयोमुखी है। मैं तुम्हें भार्या रूप से मिल गयी तो समझ लो कि* तुमको बहुत बड़ा लाभ हुआ। तुम मेरे प्यारे पति हो। प्राणनाथ तुम पर्वत की दुर्गम कन्दराओं में और नदियों के तटों पर चिरकाल तक मेरे साथ रमण करते रहोगे। अयोमुखी के इस प्रकार प्रणय निवेदन पर नारी के प्रति दुर्बल स्वभाव व्यक्ति पथ से विचलित हो सकता था किन्तु लक्ष्मण ने उसके नाक कान और स्तन काटकर उसे भगा दिया था।[1] इसका तात्पर्य यह नहीं कि नारी को देखकर वे सहज ही क्रुद्ध हो उठते थे वरन् नारी को वे कदाचित् इतना दुर्बल मानते रहे कि उसके सामने पराक्रम पौरुष अथवा क्रोध प्रकट करना भी वे उचित नहीं समझते। सुग्रीव के पास जाते समय उनके मन में क्रोध की भावना विद्यमान थी किन्तु उसके राजभवन में पहुँचने पर जब तारा ने आकर उनका स्वागत किया तो लक्ष्मण का सभी क्रोध शान्त हो गया था। लक्ष्मण के स्वभाव की ही यह विशेषता बन गयी थी कि स्त्री के समीप होने से उनका क्रोध शान्त हो जाता था।[2]

1 वा रा 3 69 11 18 2 वा रा 4 33 39

सीता क सन्दर्भ म नारी के विषय मे लक्ष्मण के जो विचार व्यक्त हुए ह उनसे स्पष्ट है कि वे नारी को प्रकृति चचल कठोर सामान्य बुद्धि विनय आदि गुणा से रहित घर म फूट डालने वाली उचित-अनुचित के विवेक से शून्य, जसे दाषा स युक्त मानते थे। वे नारी के प्रति अपने कर्तव्या का उसी प्रकार निर्धारण करते रहे ह जिस प्रकार किसी भी अन्य व्यक्ति के प्रति किया जा सकता ह।

व्यक्तित्व की महानता के लिए लक्ष्मण वाणी को अधिक महत्त्व नही देते। उनकी स्पष्ट मान्यता ह कि कोई भी व्यक्ति केवल वाता के आधार पर न तो महान् ही बनता ह ओर न उसके सत्पुरुष होने का विश्वास ही किया जा सकता ह। यद्यपि वे रामायण क सर्वप्रमुख पात्रो म से ह तथापि सर्वत्र ही मितभाषी दिखाई देत ह। जब पराक्रम का अवसर उपस्थित होता ह तभी वे बालते दिखाई दते हे अन्यथा चुपचाप अपन कर्म कर्तव्य का निर्वाह करते ह। वनगमन के पूव का अवसर सीता के साथ विवाद शोकग्रस्त राम को समझाने सुग्रीव को समझाने आदि क गिने चुने ही ऐस प्रसग हे जहाँ लक्ष्मण की वाग्मिता प्रकट होती ह। उनका वस्तुत उनकी कर्मठता ओर पुरुषार्थ से ही समझा जा सकता ह। पुरुषार्थ पराक्रम धर्म नारी-स्वभाव राजधर्म, नीति सुहृद्धर्म आदि विषया क सन्दर्भ म वे सक्षेप म ही अपने विचार प्रकट करके कर्म करने म लग जाते हे। आज की भाषा मे विचारो के प्रचार को व कदाचित् आवश्यक नहीं मानते।

प्रहस्त के मारे जाने पर जब रावण युद्ध करने के लिए स्वय रणभूमि म उपस्थित हुआ आर उसने सुग्रीव आर नील को अपने बाणा के प्रहार से अचत कर दिया तब लक्ष्मण भी उससे युद्ध करने के लिए पहुँच गये। उन्हाने रावण स केवल एक ही वाक्य कहा था— राक्षसराज म आ गया हूँ, अब तुम्हे वानरा के साथ युद्ध नही करना चाहिए।[1] इस पर रावण ने जब लक्ष्मण को ललकारते हुए कहा— लक्ष्मण तुम्हारा शीघ्र ही अन्त होनेवाला हे इसलिए तुम्हारी बुद्धि विपरीत हो गयी हे। अब तुम मेरे बाण से आहत हाकर इसी क्षण यमलाक की यात्रा कराेगे। रावण की इस गर्वोक्ति का सुनकर भी लक्ष्मण न तो उसी के समान क्रोध म बडबडाय आर न किसी प्रकार का दम्भ ही प्रकट किया। शान्त आर गम्भीर भाव से उन्हाने रावण से केवल यही कहा था कि महान् प्रभावशाली पुरुष तुम्हारी तरह गर्जना नही करते। तुम व्यर्थ ही डीग हॉक रहे हो।[2] इसी प्रकार रावणपुत्र अतिकाय ने भी लक्ष्मण को सामने देखकर अपने पराक्रम की डीग भरते हुए अनेक बाते की थी। उसको भी उत्तर दत हुए लक्ष्मण ने कहा था कि केवल बात बनान से तुम बड नहीं हो सकते ओर न मात्र डीग हॉकन से कोई पुरुष श्रेष्ठ हा सकता ह। तुमको पराक्रम के द्वारा ही अपना परिचय देना चाहिए। शूर वही माना गया है जिसम पुरुषार्थ हो। तुम्हारे

1 वा रा 6 59 94 2 वा रा 6 59 97

पास सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्र मौजूद ह अतएव बाणो अथवा अन्य अस्त्र शस्त्रा क द्वारा ही अपन पराक्रम का परिचय देना चाहिए।[1]

इन्द्रजित ने भी लक्ष्मण स गर्वोक्तिपूर्ण अनेक बातें कही थीं। इन्द्रजित और लक्ष्मण के बीच एक बार युद्ध हो भी चुका था और उसने उसमें लक्ष्मण को बेहोश कर दिया था। कदाचित् उसी अनुभव का स्मरण करते हुए उसने लक्ष्मण के सामने दम्भ स भर हुए अनक वाक्य कहे। यद्यपि लक्ष्मण भी उसक पराक्रम का भूले नहीं थ तथापि उनके मुख पर भय का कोई चिह्न भी नही दिखाई दिया। इन्द्रजित की गर्वोक्तियो का उत्तर देत हुए निर्भीक लक्ष्मण ने कहा था कि तुमने केवल वाणी के द्वारा अपन शत्रुवध आदि कार्यो की पूर्ति के लिए घोषणा कर दी है परन्तु उन कार्यो को पूरा करना तुम्हार लिए बहुत कठिन हे। जो व्यक्ति क्रिया द्वारा कर्तव्य के पार पहुँचता ह अर्थात् जो कहता नहीं काम पूरा करके दिखाता है वही वास्तव म बुद्धिमान् ह। जा काय किसी क द्वारा भी सिद्ध होना कठिन है उसे केवल वाणी क द्वारा कहकर तुम अपने को कृतार्थ मान रहे हो। तुमने पहले स्वय अपने को छिपाकर जिसका आश्रय लिया था वह चोरा का मार्ग ह। वीर पुरुष उसका सेवन नही करते। इस समय म तुम्हारे बाणो के मार्ग मे आकर खडा हुआ हूँ। इसलिए तुम अपना पराक्रम दिखाओ केवल बातो से कोई लाभ नही होता।[2]

उल्लेखनीय ह कि लक्ष्मण अपने इन विचारा का केवल इन्द्रजित अतिकाय आदि विरोधिया के सामने ही नही प्रत्युत् राम के सामने भी खुलकर प्रकट करते रह ह। रावण द्वारा मूर्च्छित होन और सुषेण की चिकित्सा के पश्चात् लक्ष्मण के सचत हाने पर राम की आँखो म आँसू भर आये थे। उन्होने लक्ष्मण का हृदय से लगाते हुए कहा था कि तुम्हारे बिना मुझ जीवन की रक्षा से सीता से अथवा विजय स भी कोइ मतलब नही है। जब तुम्ही नही रहोगे तब मुझे जीवन से क्या प्रयोजन ह' राम के इन विचारो म कुछ इस प्रकार की ध्वनि निहित रही कि युद्ध का खतरा छोडकर लका पर विजय प्राप्त किये और सीता को मुक्त किये बिना ही अयोध्या वापस लौट जाना चाहिए। राम के इन विचारो से भी लक्ष्मण के हृदय को आघात लगा था। खिन्न होकर उन्होने राम से कहा था कि आप सत्य पराक्रम हे ओर आपने पहले रावण का वध करके विभीषण को लका का राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी। उस प्रकार की प्रतिज्ञा करके अब आपको ओछ और निबल मनुष्य की भाँति ऐसी बात नही कहनी चाहिए। सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते। प्रतिज्ञा का पालन ही महानता का लक्षण ह।[3]

न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करना क्षत्रियो का नतिक दायित्व हे। यदि कोई राजा अथवा राजकुमार किसी कारणवश प्रजा पालन के अपने कर्तव्य से विरत होता है

---

1 वा रा 6 71 58 60 2 वा रा 6 88 13-16 3 वा रा 6 101 51 52

ता लक्ष्मण की दृष्टि से यह उचित नहीं। राजा को शौर्य पराक्रम आदि गुणा से सम्पन्न होकर भी प्रजा के प्रति किसी भी दशा म क्रूरता पूर्ण व्यवहार करना न्याय नहीं। लक्ष्मण की दृष्टि म लोकप्रियता अर्जित करने के लिए राजा को न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करना आवश्यक है और जब तक राजा लोकप्रिय रहता है तभी तक वह राजा रह सकता है। लोक द्वारा निन्दित व्यक्ति किसी भी दशा मे अधिक काल तक राजा नहीं बना रह सकता। यदि राजा काम अथवा लाभवश शास्त्रविरुद्ध आचरण करता है तो प्रजा के विरोध का सामना करने के लिए उसे मजबूर होना ही पड़ेगा। सुमन्त्र जब वन से लौटने लगे थे तो लक्ष्मण ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि दशरथ ने कैकयी का आदेश मानकर दिये हुए वरदान को पूरा करने के लिए ईश्वर की प्रेरणा से अथवा स्वेच्छाचारिता के कारण अथवा जिस किसी भी अन्य कारण उचित-अनुचित का विचार किये बिना ही राम को वनवास भेजने का जो शास्त्रविरुद्ध कार्य किया है वह निश्चय ही दुःख और निन्दा का जनक होगा। इस क्रूरतापूर्ण कृत्य के कारण दशरथ की लोकप्रियता समाप्त हो जाएगी और प्रजा के विरोध के कारण अब उनका राजा बने रहना भी सरल नहीं होगा।[1]

सुग्रीव जैसे गुणहीन वानर को लक्ष्मण राज्याधिकार का पात्र नहीं मानते थे। उन्होंने राम से कहा था कि सुग्रीव वानर होने के कारण श्रेष्ठ पुरुषों के सदाचार पर स्थिर नहीं रह सकेगा। वह वानरो की राजलक्ष्मी का पालन और उसकी सुरक्षा मे असमर्थ है। वह विषय भोगो मे आसक्त है। ऐसे गुणहीन पुरुष को राज्य नहीं देना चाहिए। जब सुग्रीव लक्ष्मण के समक्ष उपस्थित हुए तब भी लक्ष्मण ने यही कहा था कि धर्यवान्, कुलीन दयालु जितेन्द्रिय और सत्यवादी राजा का ही ससार मे आदर होता है।[3]

वनवास की अवधि म कष्टमय जीवन को सहते हुए और अनेक अप्रत्याशित आपत्तियो के उपस्थित होने पर राम अनेक स्थलो पर धैर्य और साहस खोते हुए दिखाई देते है। विजय के क्षणो मे उनका उत्साह अविचलित रहा किन्तु सीता हरण इन्द्रजित और रावण के शक्तिप्रयोग से लक्ष्मण के आहत होकर अचेत होने पर इन्द्रजित द्वारा छलपूर्वक सीता की मृत्यु का दृश्य उपस्थित किये जाने पर तथा अन्य ऐसे ही अवसरो पर वे इतने अधिक निराश दिखायी देते है कि जीवन त्यागकर मृत्यु का वरण करने तक के लिए उद्यत हो जाते है। ऐसे अवसरो पर लक्ष्मण ने ही उनके धैर्य और साहस की रक्षा की। वस्तुत राम के गरिमामय व्यक्तित्व की रक्षा करने उसे और भी ऊँचा उठाने तथा उनकी सफलताओ का अधिकाश श्रेय लक्ष्मण को ही है। लक्ष्मण अपने अदम्य साहस अपराजेय पौरुष और पराक्रम के बल पर स्वय

---

1 वा रा 2 58 27 33 2 वा रा 4 31 2 3 3 वा रा 4 34 7

अयोध्या के राज्य पर अधिकार कर सकते थे किन्तु न तो इसको वे नीति सगत ही मानते थे आर न उनके मन मे राज्य के सुखोपभोगों के प्रति किंचित् भी लिप्सा विद्यमान थी। राम ही राज्य के अधिकारी थे इसलिए उन्हाने राम क हाथा म ही राज्य सत्ता सापने के लिए अपने समस्त सुखा की आहुति दे दी। लका विजय के पश्चात् अयोध्या का राज्यभार सँभालने पर राम ने उनको युवराज पद पर अभिषिक्त करने का प्रस्ताव किया था किन्तु इस भी लक्ष्मण न अस्वीकार कर दिया।[1] अन्तत भरत का युवराज बनाया गया था। लक्ष्मण केवल राजर्षियो की परम्परा क अनुकूल *कर्तव्य निर्वाह क प्रति समर्पित रह।*

शरीर त्याग के समय भी लक्ष्मण को मोह आर ममता ने परेशान नही किया। दुर्वासा क क्रोध क कारण ही राम लक्ष्मण का प्राणदण्ड देने के लिए विवश हुए थे। राम के मन म विचिकित्सा की भावना देखकर ही लक्ष्मण ने कहा था कि आप निश्चिन्त होकर मेरा वध कर डाल। राम का निर्णय सुनकर वे चुपचाप वहाँ से चल दिये थ। इस अवसर पर भी उन्होने उर्मिला अथवा अपने पुत्रा से मिलने की अभिलाषा प्रकट नहा की। सरयू क तट पर जाकर आचमन कर उन्हाने प्राणवायु का रोककर अपने प्राणा का सहज ही परित्याग कर दिया था।

चारित्रिक दृष्टि स लक्ष्मण क समान त्यागी कर्तव्यनिष्ठ पुरुषार्थवादी कर्मयोगी आर अपन सिद्धान्ता क प्रति अविचल रूप से आस्थावान् पात्र पूरी रामायण म कोई दूसरा नहीं। राम क अनन्यतम सहयोगी ओर सबसे अधिक विश्वासपात्र हाते हुए भी उन्हाने राज्यशक्ति का कभी कोई लाभ नहीं उठाया। कर्तव्य-पालन म वे इस निष्ठा के साथ तत्पर रहे कि सुखभोग के लिए एक क्षण भी उन्ह सुलभ नहीं हो सका।

जब हम लक्ष्मण क समग्र जीवन दर्शन पर दृष्टि डालते ह तो निम्नलिखित तथ्य उभरकर सामने आ जात ह—

1 ईश्वर आर आत्मा की सत्ता का यद्यपि लक्ष्मण ने कहीं विरोध नही किया किन्तु व उनका समर्थन नही करते।
2 *धर्म-अधर्म को निष्फल निरर्थक आर जड मानते ह।*
3 व्यक्ति क सुख-दु ख पाप पुण्या के परिणाम नही वरन् नीति अथवा अनीति क परिणाम ह।
4 धर्म की अपेक्षा अर्थ अधिक महत्त्वपूर्ण है।
5 दु खा की निवृत्ति अथवा जीवन की सफलता धर्माचरण पर नहीं बल्कि पुरुषार्थ पर निर्भर ह।
6 पुरुषार्थ क द्वारा दैव अथवा प्रारब्ध को भी बदला जा सकता है।
7 प्रारब्ध अथवा दैव जैसी कोई शक्ति नहीं।

---

1 वा रा 6 129 9 -93

8 काम क्रोधादि राग द्वेष और इन्द्रियाँ जीवन में सबसे बड़े बाधक तत्त्व हैं।

9 लोकरीति के अनुसार आचरण करना व्यक्ति का नैतिक दायित्व है।

10 स्वार्थ से रहित विवेक के द्वारा लोकनीति के अनुसार ही व्यक्ति को अपना कर्तव्य निर्धारित करना चाहिए।

उपर्युक्त सिद्धान्तों एवं लक्ष्मण के जीवन को देखते हुए यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि लक्ष्मण विशुद्ध रूप से पुरुषार्थवादी थे। समाज में किसी प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न न होने देने के लिए वे उन लोकरीतियों का पालन आवश्यक मानते थे जिनको दीर्घकालीन परीक्षण के पश्चात् समाज द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। उस काल में दो परम्पराएँ स्थापित हो चुकी थीं। एक ब्राह्मणों द्वारा स्थापित परम्परा थी और दूसरी राजर्षियों द्वारा। लक्ष्मण ने इनमें से राजर्षियों की परम्परा का ही समर्थन किया है। लोकरीतियों के प्रति आस्थावान् होने के कारण उनके परम्परावादी होने की धारणा अवश्य बलवती होती है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने वैदिक और ब्राह्मण परम्परा की उन रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह किया है जो या तो सड़ गल चुकी थीं अथवा नीति, तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरीं। व्यक्ति के अभ्युत्थान में सहायक होते हुए भी जो नीति समाज के लिए हितकर रही, लक्ष्मण ने उसी का अनुसरण करना श्रेयस्कर समझा। व्यक्ति और समाज दोनों के साथ खिलवाड़ करनेवाले बड़े से बड़े धार्मिक सिद्धान्त लक्ष्मण की दृष्टि में व्यर्थ की बकवास ही हैं।

आचारहीन सुग्रीव की निर्ममता और राज्य-लोभ

किष्किन्धा के अधिपति ऋक्षरजा की पत्नी के गर्भ से इन्द्र और सूर्य के सयोग से वाली और सुग्रीव का जन्म हुआ था। इसी कारण वाली और सुग्रीव को क्रमश इन्द्रपुत्र और सूर्यपुत्र भी कहा गया है।[1] रामायण के ही एक अन्य सन्दर्भ के अनुसार जाम्ववान् और उनके बड़े भाई धूम्र का जन्म भी ऋक्षरजा की पत्नी के गर्भ से ही गद्गद के सयोग से हुआ था।[2] यह गद्गद कौन थे इसका स्पष्ट सकेत नहीं किया गया। सूर्यपुत्र होने के कारण ही सुग्रीव को सूर्य के समान प्रभावान् कहा गया है।[3] वाली सुग्रीव धूम्र और जाम्बवान् को अलग-अलग पिताओ के सयोग से एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न सहोदर कहना तर्कसगत ही होगा।

इक्ष्वाकुवश की परम्परा के अनुसार ऋक्षरजा के कुल मे भी ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्याधिकार दिये जाने की प्रथा मान्य थी। सुग्रीव ने ही राम का वाली का परिचय देते हुए कहा था कि पिता की मृत्यु हो जाने पर मन्त्रियो ने ही वाली को ज्येष्ठ समझकर राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया था।[4] न तो सुग्रीव की बाल्यावस्था के विषय मे ही रामायण मे कुछ लिखा गया है और न इस बात का ही सकेत है कि उसकी पत्नी रुमा किसकी पुत्री थी अथवा इन दोनो का विवाह कब और किस प्रकार हुआ था।

वाली को ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्याधिकार की प्राप्ति यद्यपि राजधर्म परम्परा के अनुसार सर्वथा नीति विहित थी किन्तु सुग्रीव के मन मे राज्य प्राप्ति का लोभ इतना प्रबल था कि इस वह विष के घूँट के समान ही पी गया था। सुग्रीव प्रकृतित कामी विलासी और राज्य लोभी था। एक ओर उसकी दृष्टि सदैव राज्य प्राप्ति पर टिकी रही और दूसरी ओर रुमा के साथ विवाह होने के पश्चात् भी बड़े भाई वाली की पत्नी तारा पर भी उसकी दृष्टि केन्द्रित रही थी। वालि वध के पश्चात् जब सुग्रीव विलास-क्रीडाओ मे सब-कुछ भूल गये थे तब स्वय हनुमान ने ही यह अनुभव किया था कि अपनी पत्नी रुमा और मनोवाछित तारा को प्राप्त कर सुग्रीव अपने कर्तव्य को भूल बैठे है।[5] सुग्रीव का राज्य लोभ अनेक प्रसगो से

1 वा रा 3 72 20 3 75 26 4 57 5-6 2 वा रा 6 ?7 10 11 6 30 20 21 3 वा रा 4 38 8 4 वा रा 4 9 1 2 5 वा रा 4 29 4

प्रमाणित होता है। राम का सुग्रीव का सबसे पहला परिचय कबन्ध के द्वारा दिया गया था। कबन्ध ने कहा था कि जिस प्रकार आप राज्य और पत्नी से वंचित होने के कारण दुःखी हैं उसी प्रकार सुग्रीव भी इन्हीं कारणों से दुखी होकर रह रहे हैं। वे स्वयं अपनी सहायता के लिए किसी सहायक की खोज रहे हैं अतएव वे अवश्य अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए आपकी सहायता करेंगे।[1] राम से भेंट होने पर अपनी करुण गाथा सुनाते हुए सुग्रीव ने भी कहा था—"हे पुरुष सिंह! आप कृपया ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे मैं अपनी प्रिय पत्नी और राज्य को प्राप्त कर सकूँ।[2] बाणों से आहत वाली के आक्षेपों का उत्तर देते हुए राम ने भी स्पष्ट कहा था कि सुग्रीव पत्नी और राज्य की प्राप्ति के लिए मेरी भलाई करने के लिए वचनबद्ध है। मैंने भी वानरों के समक्ष इनको स्त्री और राज्य दिलाने की प्रतिज्ञा की है।[3] वाली के मारे जाने पर सुग्रीव को राज्य, तारा और रुमा के मिल जाने पर अपार हर्ष हुआ था और वह पूर्णतया निश्चिन्त होकर रहने लगा था।[4] सुग्रीव ने बड़े भाई के प्रति गुरुभाव होने की बात अवश्य कही है।[5] किन्तु राज्य के प्रति उसका लोभ इतना प्रबल था कि राम से उसने कहा था कि इस समय जो मेरा दुःख है वह वाली के नाश होने पर ही मिट सकता है। मेरा सुख और जीवन उसके विनाश पर ही निर्भर है।[6] इसके बाद ही राम के सामने हाथ जोड़कर उसने कहा था कि मेरा प्रिय करने के लिए आप आज ही उस वाली का जो भाई के रूप में मेरा शत्रु है वध कर डालिए।[7] वालि-वध का समाचार सुनकर जब सभी वानर यूथपति भयभीत होकर भागने लगे तब तारा ने उनसे सम्बोधित करते हुए कहा था कि यद्यपि क्रूर भाई सुग्रीव ने राज्य के लोभ से राम को प्रेरित करके उनके द्वारा दूर से चलाये हुए और दूर तक जानेवाले बाणों के द्वारा अपने बड़े भाई वाली को मरवा डाला है तो तुम लोग इस प्रकार भयभीत होकर क्या भाग रहे हो।[8] सुग्रीव को भी सम्बोधित कर तारा ने कहा था—"सुग्रीव तुम्हारा मनोरथ सफल हो। तुम्हारे भाई जिन्हें तुम अपना शत्रु समझते थे मारे गये। अब तुम बेखटके राज्य भोगो। रुमा को भी प्राप्त कर लोगे।[9]

सुग्रीव का राज्य-लाभ तथा गुणहीनता वाली के मायावी राक्षस के साथ हुए युद्ध की घटना से और भी अधिक प्रमाणित होती है। वाली और मायावी के बीच एक वर्ष तक दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात् गुहा द्वार से फेनयुक्त रक्त की धारा बहती हुई देखकर सुग्रीव के होश उड़ गये थे। उसमें इतना भी साहस न हुआ कि वह अपने बड़े भाई के हत्यारे राक्षस से बदला लेने के लिए उसे ललकारता। एक कायर चोर की भाँति वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ और किष्किन्धा में आकर राज्य को अपने

---

1 वा रा 3 72 11 15 19 2 वा रा 4 5 30 3 वा रा 4 18 26 27 4 वा रा 4 16 9 4 27 28 5 वा रा 4 9 24 6 वा रा 4 8 39 7 वा रा 4 12 11 8 वा रा 4 19 9 9 वा रा 4 20 1

अधिकार म कर लिया। इस स्थल पर वाली के मारे जाने की कल्पना स उस लश मात्र भी दु ख हुआ हो ऐसा प्रतीत ही नही हाता। वाली ने भी लोटने पर इसका अनुभव किया था आर मन्त्रिया तथा पुरवासिया म कहा था कि यह सुग्रीव ऐसा क्रूर आर निर्दयी ह कि इसने भ्रातृ प्रेम को भुला दिया आर सारा राज्य अपने अधिकार म लन के लिए ही मुझ उस गुफा के अन्दर बन्द करके लाट आया।[1] यद्यपि सुग्रीव ने उत्तर म कहा था कि मन स्वेच्छा से राज्य को ग्रहण नही किया है आर पुरवासिया तथा मन्त्रिया ने ही राज्य पर मरा अभिषेक कर दिया है तथापि उसका यह कथन अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं हाता। प्रथमत कुल परम्परा क अनुसार वाली के पश्चात् अगद ही राज्य का अधिकारी था और फिर सुग्रीव अपने मन्त्रियो ओर प्रजा म कभी इतना अधिक लोकप्रिय नही रहा कि अगद की उपेक्षा कर उसे राजा बनाने पर विचार किया जाता।

सुग्रीव के उपर्युक्त व्यवहार स रुष्ट होकर ही वाली ने उस घर से निकाल दिया था। पूरी रामायण म इसका कोई सकेत भी उपलब्ध नहीं ह जिसके आधार पर यह प्रमाणित हो सके कि वाली के मन म सुग्रीव की पत्नी रुमा के प्रति भी कोई आकर्षण था अथवा उसक प्रति वह मयादा क विपरात व्यवहार करता था। वाली न केवल सुग्रीव का हा निष्कासित किया था। उसने रुमा को बलपूर्वक रोक लेने का कभी कोई प्रयास नही किया। वाली के रहत हुए सुग्रीव का राज्य पर भी कोई अधिकार नही था। इसक पश्चात् भी वह व्यर्थ ही राम से लगातार यह कहता रहा कि वाली ने उसे राज्य से वचित कर दिया आर उसकी पत्नी रुमा को भी छीन लिया ह।[2] वाली द्वारा सुग्रीव क घर स निकाले जाने की बात यद्यपि कबन्ध[3] आर हनुमान न भी कही[4] किन्तु राज्य आर पत्नी से वचित किये जाने का मिथ्या प्रचार स्वय सुग्रीव ने ही किया था। सुग्रीव क इस आचरण के लिए कबन्ध ने उसको अपराधी मानते हुए कृत किल्बिष शब्द का प्रयोग किया है।[5] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि सुग्रीव बराबर यही कहता रहा कि वाली ने बिना किसी अपराध के होते हुए भी उसे दण्डित किया है। राम से उसने कहा था कि बिना अपराध क ही मुझे यह सब सकट भोगना पड रहा ह।[6]

वाली द्वारा निष्कासित किये जाने ओर उसके द्वारा पीछा किये जाने पर अपने प्राण बचाने के लिए सुग्रीव चारा दिशाओ म भागता फिरा था। उसने विभिन्न नदियों वना ओर नगरा का देखते हुए सारी पृथ्वी को गाय की खुरी की भाँति मानकर उसकी परिक्रमा कर डाली थी।[7] आत्मरक्षा के लिए हिमालय मेरु विन्ध्य पर्वत ओर समुद्र सबको छान डाला था। इस भाग-दाड मे ही उसको पृथ्वी के भूगोल का एसा चाक्षुष

1 वा रा 4 10 25 2 वा रा 4 10 27 3 वा रा 3 72 11 4 वा रा 4 3 20 5 वा रा 3 72 21 6 वा रा 4 10 29 7 वा रा 4 46 12 13

ज्ञान हो गया था कि राम को भी आश्चर्य हुआ था। सीता की खोज के लिए वानरो को निर्देश देते समय जब सुग्रीव ने विभिन्न दिशाओ म अवस्थित स्थलो का परिचय दिया और मार्गो का सकेत किया तो राम ने माना आश्चर्य मे पडकर उससे प्रश्न किया था कि तुम समस्त भू मण्डल के स्थानो का परिचय कसे जानते हो।[1] हनुमान ने इस भाग-दौड म सम्भवत सुग्रीव का साथ दिया था। अन्त मे हनुमान ने ही उनको मतग मुनि क आश्रम मे शरण लेने का परामर्श दिया था।[2] हनुमान के परामर्श से ही सुग्रीव न ऋष्यमूक पर्वत की मलय चोटी पर आश्रय लिया था। यह स्थान मतग ऋषि के आश्रम की सीमा म था ओर शापवश वाली के लिए वहाँ प्रवेश करना सम्भव नही था। यहाँ यह कहना असमीचीन नहीं होगा कि सुग्रीव ने न तो राम की भाँति ज्येष्ठ की आज्ञा पालन रूप मर्यादा का पालन करते हुए निष्कासन को सहर्ष स्वीकार किया ओर न लक्ष्मण की भाँति बड भाई द्वारा दिये गये दण्ड को सहन का ही साहस दिखाया। वाली के विरुद्ध युद्ध करने का भी साहस उसमे नही था। वह केवल कही से सहायता प्राप्त होने के सयोग की बाट जोहता रहा।

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के साथ चार ओर भी वानर थे।[3] इनम से हनुमान को ही उसन अपना मन्त्री बनाया था। हनुमान ने राम लक्ष्मण का अपना परिचय देते हुए स्वय को सुग्रीव का मन्त्री बताया था।[4] राम ने भी उनको सुग्रीव का सचिव कहा है।[5]

सुग्रीव किसी भी प्रकार से किष्किन्धा राज्य का अधिकारी तो था ही नहीं उसमे स्वभावतया राजोचित गुणो का सर्वथा अभाव था। वाली के अन्त्येष्टि सस्कार सम्पन्न होने क पश्चात् हनुमान ने राम से कहा था कि सुग्रीव को वानरो का यह विशाल साम्राज्य प्राप्त होना सरल नही था किन्तु आपकी कृपा से ही इनको यह सुलभ हो गया है।[6] सुग्रीव के दो अन्य मन्त्री प्लभ और प्रभाव ने भी राम की ओर इंगित करते हुए सुग्रीव से कहा था कि ये दोनो भाई ही आपके राज्यदाता है।[7] तारा ने भी लक्ष्मण स कहा था कि रामचन्द्रजी की कृपा से ही सुग्रीव ने वानरो के अक्षय राज्य को रुमा को तथा मुझको भी प्राप्त किया है।[8] अशोक वाटिका म सीता को देखकर राम क पराक्रम का स्मरण करते हुए भी हनुमान क मन म फिर यह विचार आया था कि वानरो का दुर्लभ ऐश्वय जो वाली द्वारा सुरक्षित था राम के कारण ही सुग्रीव को प्राप्त हो सका है।[9] तात्पर्य यह कि राम यदि सुग्रीव की सहायता न करते तो सुग्रीव म राज्य प्राप्त करने की सामर्थ्य ही नहीं थी।

आचरण ओर स्वभाव की दृष्टि से सुग्रीव अत्यन्त कामी आर विलासी प्रकृति का था। कर्तव्य क प्रति वह पूर्णत असावधान था ओर राज्यमद म सब-कुछ भूल

1 वारा 4 46 1 2 वारा 4 46 20 21 3 वारा 3 72 12 4 वारा 4.3 22
5 वारा 4 3 26 27 6 वारा 4 26 4 5 7 वारा 4 31 45 8 वारा 4 35 5
9 वारा 5 16 11

वढता था। राज्याभिषेक के पश्चात् वे शराब पीकर रमा और अन्य सुन्दरियो के साथ विलास-क्रीड़ा म मग्न हो गय थे। उनकी यह दशा देखकर स्वय हनुमान को चिन्ता हुई थी आर व सोचने लगे थे कि प्रयोजन सिद्ध हो जाने के कारण अब सुग्रीव धर्म आर अर्थ के सग्रह म शिथिलता दिखाने लगे ह। वे असाधु पुरुषों के मार्ग का आश्रय ले रहे ह आर एकान्त म ही उनका मन लगता है। उनको अपना अभीष्ट प्राप्त हो चुका ह अतएव अब वे युवती स्त्रियो के साथ क्रीड़ा विलास मे ही लगे रहते ह। अपने अभिलषित मनोरथो पत्नी रमा आर अभीष्ट सुन्दरी तारा को प्राप्त कर अब वे निश्चिन्त होकर दिन रात भोग विलास म ही रत रहते हैं। जिस प्रकार इन्द्र गन्धर्वो आर अप्सराओ के क्रीड़ा विहार म लगा रहता है उसी प्रकार सुग्रीव भी मन्त्रियो पर राज्य भार सौपकर विलास क्रीड़ाओ म ही मग्न रहते ह। वे मन्त्रियो के कार्य की देखभाल भी नहीं करते और पूर्णतया स्वेच्छाचारी बन गय है।[1] राम भी सुग्रीव की कामुक प्रवृति को जानते थे इसलिए उन्हाने उसे 'कामवृत्त च सुग्रीव' (काम म आसक्त) कहा।[2] राम के द्वारा निर्देश पाकर जब लक्ष्मण सुग्रीव का समभान उसके महलो म पहुच थे तब भी वह काम के अधीन होकर तारा के साथ भोगरत था।[3] उन्होने सुग्रीव के महलो मे अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं जो रूप यौवन के गर्व स भरी हुई थीं आर पूरा महल नूपुरो और करधनियो की झकार स गूँज रहा था।[4] सुग्रीव इतना अधिक भीरु था कि लक्ष्मण के आने का समाचार सुनकर ही उसके होश उड गये और उसने तारा को ही उनसे मिलने के लिए भेज दिया था। लक्ष्मण ने तारा स भी कहा था कि तुम्हारा पति सुग्रीव विषय भोगो म आसक्त होकर धर्म आर अर्थ के सग्रह का लोप कर रहा है। सुग्रीव द्वारा निर्धारित चार महीने की अवधि बीत चुकी ह किन्तु अभी भी वह मधुपान के मद से उन्मत्त होकर स्त्रियो के साथ विहार क्रीडा म लगा हुआ है।[5] तारा ने भी इस बात को स्वीकार किया था आर कहा था कि कामासक्ति के कारण ही इन दिनो सुग्रीव का मन किसी दूसरे काम मे नही लगता।[6] लक्ष्मण ने जब अन्त पुर म प्रवेश किया था तब सुग्रीव ने रमा को गाढ आलिंगन पाश म बाधे हुए ही उनका स्वागत किया था।[7]

राज्याभिषेक के पश्चात् सुग्रीव के राजमहलो म इस जोर शोर से आनन्दोत्सव मनाया गया था कि बाजो की ध्वनि दूर पर्वत शिखर पर राम को भी सुनाई दी थी। इसका सकेत करते हुए उन्होने लक्ष्मण से कहा था कि निश्चय ही कपिश्रेष्ठ सुग्रीव अपनी पत्नी को पाकर राज्य को हस्तगत करके बडी भारी लक्ष्मी पर अधिकार कर आनन्दोत्सव मना रहे ह।[8] तारा ने सुग्रीव की इन दुर्बलताओ पर आवरण डालने

---

1 वा रा 4 29 1 9 2 वा रा 4 30 3 3 वा रा 4 31 22 33 4 वा रा 4 33 2 25 5 वा रा 1 33 13-45 6 वा रा 4 33 51 7 वा रा 1 33 66 8 वा रा 4 27 27 28 1 28 57

का प्रयास किया था और उसने लक्ष्मण के क्रोध को शान्त करने का प्रयास करते हुए कहा था कि सुग्रीव ने पहले बहुत दुख भोगा है इसी कारण सुख के समय में यह ऐसे रम गये है कि इनको समय का भी ध्यान नहीं रहा।[1] किन्तु सुग्रीव की विलास-क्रीडाओं को देखकर लक्ष्मण ने स्पष्ट कहा था कि रामचन्द्र परम महात्मा और दया से द्रवित हो जानेवाले है इसीलिए उन्होंने तुम्हारे समान पापी और दुरात्मा को वानरों के राज्य पर बैठा दिया है।[2] भोगो में आसक्त होने पर जब सुग्रीव अपने कर्तव्य को भूल बैठा था तब भी लक्ष्मण ने कहा था कि उपकार का बदला चुकाने की उसकी नीयत नहीं है। ऐसे गुणहीन पुरुष को राज्य नहीं दिया जाना चाहिए।[3]

हनुमान जानते थे कि सुग्रीव के स्वभाव में वानरोचित चपलता प्रकृतित विद्यमान है। ऋष्यमूक पर राम-लक्ष्मण को आते देखकर सुग्रीव भयभीत होकर काप उठा था और उसे वाली के आने का सन्देह हुआ था। उस समय हनुमान ने कहा था कि आप अपनी वानरोचित चपलता को ही प्रकट कर रहे है। चपलतावश आप अपने को विचारमार्ग पर स्थिर रख ही नहीं पाते है। जो राजा बुद्धिबल का आश्रय नहीं लेता वह सम्पूर्ण प्रजा पर शासन कर ही नहीं सकता।[4]

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त सुग्रीव अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था। मायावी को परास्त कर किष्किन्धा पुरी में लौटने पर वाली ने प्रजाजनों और मन्त्रियों से सुग्रीव की शिकायत की थी। इस अवसर पर सुग्रीव के लिए उसने सुदारुण[5] क्रूरदर्शन[6] जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा था कि यह सुग्रीव ऐसा क्रूर और निर्दयी है कि इसने भ्रातृप्रेम को भुला दिया और सारा राज्य अपने हाथ में कर लेने के लिए मुझे उस गुफा के भीतर बन्द कर दिया था।[7] क्रोध के वश में सुग्रीव उचित-अनुचित का विवेक भी खो देता था। वालि वध के पश्चात् विलाप करते हुए उसने स्वयं राम से कहा था कि वाली ने मेरा बहुत अधिक तिरस्कार किया था इसलिए क्रोध और अमर्ष के कारण मैंने उनके वध के लिए अनुमति दे दी थी।[8] सुग्रीव वस्तुत क्रोध को क्षत्रियों के लिए एक आवश्यक गुण के रूप में ही स्वीकार करता था। समुद्र पार करने के लिए चिन्ताकुल राम को आश्वस्त करते हुए उसने कहा था कि अपने हृदय में शोक को स्थान देना व्यर्थ है। इस समय तो आपको शत्रुओं के प्रति क्रोध धारण करना चाहिए। जो क्षत्रिय मन्द अर्थात् क्रोधशून्य होते हैं उनसे कोई चेष्टा नहीं बन पाती परन्तु जो शत्रु के प्रति आवश्यक क्रोध से भरा होता है उससे सब डरते हैं।[9]

सुग्रीव के क्रोधी स्वभाव का विशेष प्रमाण उसके उन निर्देश वाक्यों से मिलता है जिनके अनुसार वह निश्चित अवधि में सीता की खोज में असफल वानरों को मरवा डालने की पूर्व घोषणा करता है। अनेक सन्दर्भों मे उसे कठोर दण्ड नीति का

1 वा रा 4 35 6 2 वा रा 4 34 16 3 वा रा 4 31 3 4 वा रा 4 2 17 18 5 वा रा 4 10 14 6 वा रा 4 10 17 7 वा रा 4 10 25 8 वा रा 4 24 6 9 वा रा 6 2 19

अनुसर्जा भी कहा गया है किन्तु मरवा डालने से कम किसी अन्य दण्ड को वह शायद जानता ही नहीं। हनुमान द्वारा समझाये जाने पर वह वानरो की सीता की खोज के लिए भजने को तयार हुआ था और नील को निर्देश दिया था कि समस्त यूथपतियो को वानर सेना सहित अविलम्ब किष्किन्धा मे उपस्थित होने के लिए सूचित कर दिया जाए। इसी के साथ यह भी कहा गया था कि पन्द्रह दिन के पश्चात् पहुँचनेवाले वानर को प्राण दण्ड दिया जाएगा।[1] एसा प्रतीत होता है कि वानर यूथपति सुग्रीव की आज्ञा का अधिक सम्मान नहीं करते थे। इसलिए दूसरी बार सुग्रीव ने हनुमान स कहा था कि साम दाम आदि उपायो का प्रयोग करके वानरो को बुलाया जाए।[2] इसी क साथ उसका क्रोध पुन जाग्रत हो गया और उसने कहा कि जो वानर दस दिन क भीतर नही आते राजाज्ञा को कलंकित करनेवाले उन दुरात्मा वानरो को मार डालना चाहिए।[3] मृत्यु आर काल के समान भयानक दण्ड देनेवाले सुग्रीव का आदेश सुनकर सभी वानर भय स काँपते हुए ही किष्किन्धा की ओर प्रस्थित हुए थ।[4] वानरो के एकत्रित होने पर उनको विभिन्न दिशाओ में जाने के लिए निर्देश देते समय सुग्रीव ने फिर कहा था कि सीता का पता लगाकर एक मास पूरा होते तक लोट आना होगा। एक मास स अधिक ठहरनवाला वानर मार डाला जाएगा।[5]

दक्षिण दिशा मे भेज गये वानरो को बहुत परिश्रम करने पर भी जब सीता का पता नही लगा आर व निराश थककर बैठ गये तब अगद ने उनसे कहा था कि सुग्रीव क्रोधी राजा ह उनका दण्ड भी बडा कठोर होता ह। इसलिए उनसे और राम स आप सबको डरते रहना चाहिए।[6] तापसी स्वयप्रभा के आश्रम म घूमते हुए जब सुग्रीव द्वारा दिया गया समय भी बीत गया तब वानरो क प्राण सूख गये थे। सुग्रीव क क्रोध का स्मरण करते हुए स्वय हनुमान ने कहा था कि हम लोग सुग्रीव के द्वारा दी गई समय सीमा को लाँघ चुक ह आर इसलिए अब हमारी आयु पूरी हो चुकी ह।[7] इस अवसर पर अगद क मन म सबस अधिक भय व्याप्त हो गया था। उन्होंने बडी कातर वाणी म कहा था कि हम लोग जिस काम के लिए निकले थे उसे पूरा नहीं कर सके इसलिए निश्चय ही हम लोगो को प्राणो से हाथ धोना पड़ेगा।[8] अगद ने सुग्रीव के भय से यही पर उपवास करते हुए प्राण त्याग करने का निश्चय किया था। वे जानते थे कि सुग्रीव स्वभाव से ही कठोर है। राजा के पद पर प्रतिष्ठित होते हुए वह कभी क्षमा नहीं करेगा।[9] अन्य वानरो ने भी प्राण दण्ड के भय स उसी आश्रम म बने रहने का विचार किया था।[10]

मार डालना सुग्रीव का मानो 'तकिया कलाम' रहा है। वह बात बात मे मार

---

1 वा रा 4 29 37 2 वा रा 4 37 9 3 वा रा 4 37 12 4 वा रा 4 37 19 5 वा रा 4 40 70 4 47 53 6 वा रा 4 49 9 7 वा रा 4 52 23 8 वा रा 4 53 12 9 वा रा 4 53 14 16 10 वा रा 4 53 21 22

गलन को बात कहना है। हनुमान अगद तथा अन्य सभी वानर उसे अत्यन्त क्रूर स्वभाव निर्मम निर्दयी और शठ मानते रहे है।[1]

सुग्रीव किसी भी व्यक्ति के साथ मत्री सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व उस व्यक्ति का भली भाँति परीक्षण कर लेने के प्रति सतर्कता बरतने का समर्थक है। वह किसी भी व्यक्ति पर सहज ही विश्वास कर लेने के लिए तैयार नही था। ऋष्यमूक पर्वत पर राम-लक्ष्मण को आते हुए देखकर उसके मन में सन्देह हुआ था कि वे वाली के द्वारा भेजे गये है। जब हनुमान ने सुग्रीव की शका का समाधान किया तब भी सुग्रीव ने कहा था कि प्राणी मात्र को छद्मवेष में विचरनेवाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करना चाहिए क्योंकि वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते है और स्वय किसी का विश्वास नही करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषों पर प्रहार कर बैठते है।[2] इसी विचार के साथ उन्होने हनुमान को एक साधारण पुरुष की भाँति राम-लक्ष्मण के पास जाने और विभिन्न चेष्टाओं द्वारा उनका यथार्थ परिचय प्राप्त करने के लिए कहा था। तारा भी सुग्रीव की इस विशेषता से परिचित थी। उसने अपने पति वाली से कहा था कि सुग्रीव स्वभाव से ही कार्यकुशल और बुद्धिमान है। वे किसी ऐसे पुरुष के साथ मत्री नही करेगे जिसके बल और पराक्रम को उन्होने अच्छी तरह परख न लिया हो।[3] प्रतीत होता है कि सुग्रीव शकालु स्वभाव का था। यह भी सम्भव है कि वाली के भय के कारण ही उसमे यह दोष उत्पन्न हो गया हो।

मत्री धर्म के निर्वाह पर सुग्रीव बहुत अधिक जोर देता था। राम से मित्रता हो जाने के बाद उसने बार बार मित्रों के कर्तव्य की चर्चा की। मैत्री धर्म के सम्बन्ध मे सुग्रीव यही मानता था कि अच्छे स्वभाववाले मित्र अपने घर के सोने चाँदी अथवा आभूषणों को अपने मित्रों के लिए अविभक्त ही मानते है। अतएव मित्र धनी हो अथवा दरिद्र सुखी हो या दु खी निर्दोष हो अथवा सदोष वह मित्र के लिए सबसे बडा सहायक होता है। सत्पुरुष अपने मित्र का उत्कृष्ट प्रेम देखकर आवश्यकता पडने पर उसके लिए धन सुख और देश का भी परित्याग कर देते है।[4] सुग्रीव ने जब राम को धैर्य धारण करने की सलाह दी तब सुग्रीव के मत्री भाव की प्रशसा करते हुए राम ने कहा था कि एक स्नेही और हितैषी मित्र को जो कुछ करना चाहिए तुमने वही किया है। तुम्हारा कार्य सर्वथा उचित और योग्य है।[5]

यद्यपि मैत्री धर्म के प्रति उपर्युक्त प्रकार से सुग्रीव की आस्था व्यक्त की गयी है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वह इनके निर्वाह के प्रति अधिक निष्ठावान और सतर्क दिखाई नही देता। राम सुग्रीव की सहायता प्राप्ति के लिए शरत् काल के आने तक

---

1 वारा 4 55 10 2 वारा 4 2 22 3 वारा 4 15 14 4 वारा 4 8 7 9 5 वारा 4 7 17

प्रतीक्षा करते रहे थ।[1] और उन्हें विश्वास था कि उपयुक्त समय आने पर सुग्रीव स्वयं ही कृतज्ञ की भांति अपना कार्य करेंगे। किन्तु सुग्रीव रुमा और तारा के साथ विलास-क्रीडाओं में सब-कुछ भूल गये थ। यदि हनुमान उसको स्मरण न कराते तो कदाचित् उसको स्वयं अपने कर्तव्य का स्मरण ही न होता। हनुमान ने ही सुग्रीव को मैत्री धर्म के निर्वाह के प्रति प्रेरित किया था। राम को भी सुग्रीव की इस अनवधानता का अनुभव हुआ था। उन्होंने लक्ष्मण से कहा था– सुग्रीव यह समझता है कि राम मेरी शरण में आये हैं इसीलिए वह मेरा तिरस्कार कर रहा है।[2] उसने सीता की खोज के लिए समय निश्चित किया था किन्तु अपना काम निकल जाने पर वह दुर्बुद्धि वानर प्रतिज्ञा करके भी उसका स्मरण नहीं कर रहा।[3] इसी विचार के साथ राम ने लक्ष्मण के माध्यम से सुग्रीव को सन्देश भेजा था और कहला भेजा था कि यदि तुमने पूर्व निश्चय के अनुसार अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की तो तुमको बन्धु बान्धवों सहित मार डाला जाएगा।

लक्ष्मण भी इस बात को स्वीकार करते थे कि सुग्रीव के मन में कृतज्ञता और प्रत्युपकार की भावना ही नहीं थी। पहले तो सुग्रीव की लापरवाही को देखते हुए उन्होंने राम से कहा था कि सुग्रीव की बुद्धि मारी गयी है इसलिए वह विषय भोगों में आसक्त हो गया है। आपकी कृपा से उसे राज्य आदि का लाभ हुआ है इस उपकार का बदला चुकाने की उसकी नीयत ही नहीं है।[4] तारा से भी सुग्रीव के विषय में बतलाते हुए लक्ष्मण ने कहा था कि सुग्रीव ने चार महीने की अवधि निश्चित की थी। वे कभी के बीत गये किन्तु सुग्रीव मधुपान के मद से अत्यन्त उन्मत्त होकर स्त्रियों के साथ क्रीडा विहार कर रहा है। उसे बीते हुए समय का पता ही नहीं है।[5] सुग्रीव को भी अत्यन्त तीखी भाषा में फटकारते हुए लक्ष्मण ने कहा था कि तुम अनार्य कृतघ्न और मिथ्यावादी हो। रामचन्द्रजी की सहायता से तुमने पहले अपना काम पूरा कर लिया किन्तु जब उनकी सहायता करने का अवसर आया तब तुम कुछ नहीं करते।[6] लक्ष्मण का क्रोध इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने स्पष्ट कहा था कि जो पहले मित्रों की सहायता से अपना काम सिद्ध करके बदले में उन मित्रों का कोई उपकार नहीं करता, उस कृतघ्न को मार डालना चाहिए।[7]

सुग्रीव को राम की सदाशयता के प्रति विश्वास नहीं था। वह राम को स्वयं अपने समान इतना दुर्बल चरित्र मानता था जैसे वह कर्तव्याकर्तव्य उचित-अनुचित आदि का विचार किये बिना ही मैत्री सिद्धान्तों की उपेक्षा करते हुए जरा सी शिकायत अथवा चुगली चपाटी के आधार पर ही अपने मित्रों के प्रति दुर्भावनापूर्वक सोचने विचारने के अभ्यस्त हों। लक्ष्मण के क्रोध का समाचार सुनकर उसने कहा

---

1 वा रा 4 7 11 2 वा रा 4.30 67-68 3 वा रा 4 30 69 4 वा रा 4 31 3
5 वा रा 4 31 45 6 वा रा 4 31 13 7 वा रा 4.31 10

वालि वध के पश्चात् सुग्रीव के राज्याभिषेक के सम्बन्ध मे आवश्यक निर्देश देते हुए राम ने कहा था कि वर्षा ऋतु की समाप्ति पर कार्तिक आने पर तुम रावण-वध के लिए प्रयत्न करना यही हम लोगो की शर्त रहेगी।[1] सुग्रीव के साथ इस प्रकार की शर्त निश्चित करने के पश्चात् ही राम आश्रम को लौटे थे।[2] इन दोनो ही स्थलो पर मैत्री अथवा सख्य जैसे शब्दो का नहीं वरन् 'समय' शब्द का प्रयोग ही यह प्रमाणित करता है कि राम सुग्रीव के बीच मित्रता नही बल्कि एक समझौता हुआ था। हनुमान ने लंका मे पहुचकर रावण को राम का परिचय देते समय यही कहा था कि सुग्रीव ने राम से सीता को खोज निकालने की प्रतिज्ञा की है और श्रीराम ने सुग्रीव को वानरों का राज्य दिलाने का वचन दिया था।[3] इस प्रकार की शर्तें और समझौते के बाद भी और राम के द्वारा अपनी शर्त पूरी किये जाने पर भी भोग विलास मे रत सुग्रीव के द्वारा अपनी शर्त पूरी करने मे असावधानी उसकी चारित्रिक दुर्बलता का ही प्रमाण माना जाएगा। यदि हनुमान मंत्री धर्म के बहाने उसे इस समझौते की याद न दिलाते राम के आक्रोश की उसे खबर न लगती और लक्ष्मण द्वारा डाँट फटकार न लगायी जाती तो सुग्रीव का ध्यान समझौते के पालन की ओर शायद कभी जाता ही नहीं।

सुग्रीव के चरित्र मे ऐसी कुछ विशेषताएँ दिखाई ही नहीं देतीं जिनके आधार पर उसकी धार्मिक आस्थाओ का विवेचन किया जा सके। राम के साथ समझौता करते समय अग्नि को साक्षी बनाया गया था। यद्यपि यह अग्नि हनुमान द्वारा अपनी प्रेरणा से अरणियों को रगडकर उत्पन्न की गयी थी। उन्होने अग्नि को प्रज्वलित कर राम और सुग्रीव के बीच मे रख दिया था जिसकी उन दोनो ने प्रदक्षिणा की थी।[4] अग्नि के साक्षी रहने पर मित्रता होने पर सुग्रीव को विश्वास भी हुआ था कि इसका निर्वाह भी अवश्य होगा।[5] इससे प्रतीत होता है कि सुग्रीव की आस्था उन व्यवस्थाओ के प्रति अवश्य रही है जो ब्राह्मणो और स्मृतिकारो द्वारा दी गयी थी। सुग्रीव यद्यपि न तो किसी देवता की पूजा-अर्चना करता ही दिखाई दिया और न उनकी चर्चा ही करता रहा किन्तु वह देवताओं का अनुग्रह स्वीकार करता था। राम से मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उसने कहा था कि देवताओ की मुझ पर विशेष कृपा है इसीलिए आप जैसे गुणवान् महापुरुष मेरे सखा हो गये है।[6] ब्राह्मणो के प्रति सुग्रीव के मन मे श्रद्धा रही है और वह उनका सम्मान भी करता था। अभिषेक के अवसर पर रत्न वस्त्र और अनेक अन्य पदार्थो के द्वारा ब्राह्मणो का सम्मान किया गया था।[7] इसी प्रकार ऋषि मुनियो आश्रम-स्थलो और उनके समाधि-स्थलो को भी सुग्रीव प्रणम्य मानता था। उसका

---

1 वा रा 4 26 17 2 वा रा 4 27.5 3 वा रा 5.51 9 4 वा रा 4 5 13-15 5 वा रा 4 8 4 6 वा रा 4 8 ॰ 7 वा रा 4 26 29

विश्वास था कि इस प्रकार प्रणाम आदि के द्वारा व्यक्ति को दु खो ओर क्लेशा से मुक्ति मिलनी है। ऋष्यमूक पर्वत से राम ओर लक्ष्मण क साथ जब सुग्रीव किष्किन्धा की ओर चला था तब मार्ग मे उसने सप्तजन ऋषियो की तपस्या आदि का वर्णन करते हुए राम से उन दिवगत मुनिया का प्रणाम करने क लिए कहा था। उसन कहा था कि आप मन को एकाग्र करके दोनो हाथ जोडकर लक्ष्मण के साथ उन मुनिया के उद्देश्य से प्रणाम कीजिए जो उन पवित्र अन्त करणवाले मुनिया को प्रणाम करते ह उनके शरीर म किंचिन्मात्र भी अशुभ नहीं रह जाता हे।[1]

सुग्रीव ने जब राम को साता की खाज कर ला देने का आश्वासन दिया तब उसने सीता की तुलना वेदश्रुति से की थी।[2] अभिपेक के समय पर भी मन्त्रवेत्ता पुरुषों ने अग्निवेदी को प्रज्वलित कर उसके चारा ओर कुशा बिछाये आर मन पूत हविष्य क द्वारा आहुति दी थी। इसके पश्चात् मन्त्रोच्चारण करते हुए पूर्वाभिमुख बठे हुए सुग्रीव का समस्त तीर्थो आर समुद्रा से लाये गये जल से विधिपूर्वक अभिपेक किया गया था।[3] मायावी द्वारा वाली को मृत समझन पर सुग्रीव ने उस जलाजलि दी थी और राम के द्वारा उसक मार जाने पर भी सुग्रीव ने शास्त्रानुकूल विधि से ही वाली का और्ध्वदैहिक सस्कार करन की आज्ञा दी थी।[4]

रामायण में उपर्युक्त दो चार प्रसग ही सुग्रीव की धार्मिक अथवा आचार-विषयक मान्यताओ क सन्दर्भ म प्राप्त होते है। यद्यपि इनके आधार पर दृढतापूर्वक नहीं कहा जा सकता तथापि यह माना जा सकता ह कि वेदश्रुति आर वैदिक विधान के प्रति सुग्रीव के मन म सम्मान की भावना विद्यमान थी।

समझोते के अनुसार प्रतिज्ञाबद्ध होने पर भी सुग्रीव सीता की खोज करने के अपने दायित्व को जिस प्रकार भूल गया था उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सद्धान्तिक रूप से सुग्रीव उपकार का बदला चुकाने पर लगातार जोर देता रहा ह। लक्ष्मण द्वारा फटकार जान पर जब उसको होश आया तब राम से उसने कहा था कि आप और आपके भाई की कृपा से ही म वानर राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ हूँ। जो किये हुए उपकार का बदला नहीं चुकाता है वह पुरुषा म धर्म को कलंकित करनेवाला माना गया है।[5] सुग्रीव के इस प्रकार के कथनों पर विश्वास करना सहज नहीं। आरम्भ म उसक द्वारा जो असावधानी और उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया गया उससे स्पष्ट हा जाता है कि सुग्रीव के मन वाणी और कर्म म एकरूपता नहीं रही अपने दोषों को छिपाने के लिए बहानेबाजी करने म भी वह चतुर रहा। लक्ष्मण आक्रोश को शान्त करन के लिए पहले उसने राम के पराक्रम की प्रशसा करते कहा कि राम स्वय ही रावण का वध करने म समर्थ है और फिर अपनी असावध

---

1 वा रा 4 13 25 26 2 वा रा 4 6 5 3 वा रा 4 26 30 36 4 वा रा 4 9 20 4 30 5 वा रा 4 38 26

वालि वध के पश्चात् सुग्रीव के राज्याभिषेक के सम्बन्ध म आवश्यक निर्देश देत हुए राम ने कहा था कि वर्षा ऋतु की समाप्ति पर कार्तिक आने पर तुम रावण वध के लिए प्रयत्न करना यही हम लोगो की शर्त रहेगी।[1] सुग्रीव क साथ इस प्रकार की शर्त निश्चित करने के पश्चात् ही राम आश्रम को लोटे थे।[2] इन दोना ही स्थलो पर मत्री अथवा सख्य जैसे शब्दा का नहीं वरन् 'समय' शब्द का प्रयोग ही यह प्रमाणित करता ह कि राम सुग्रीव के बीच मित्रता नहीं बल्कि एक समझाता हुआ था। हनुमान ने लका मे पहुँचकर रावण को राम का परिचय देते समय यही कहा था कि सुग्रीव ने राम से सीता को खोज निकालने की प्रतिज्ञा की है और श्रीराम ने सुग्रीव को वानरो का राज्य दिलाने का वचन दिया था।[3] इस प्रकार की शर्त ओर समझोते के बाद भी आर राम के द्वारा अपनी शर्त पूरी किये जाने पर भी भोग विलास म रत सुग्रीव के द्वारा अपनी शर्त पूरी करने म असावधानी उसकी चारित्रिक दुर्बलता का ही प्रमाण माना जाएगा। यदि हनुमान मत्री धर्म के बहाने उसे इस समझाते को याद न दिलाते राम के आक्रोश की उसे खबर न लगती ओर लक्ष्मण द्वारा डाँट फटकार न लगायी जाती तो सुग्रीव का ध्यान समझौते क पालन की ओर शायद कभी जाता ही नहीं।

सुग्रीव के चरित्र म ऐसी कुछ विशेषताएँ दिखाई ही नहीं देतीं जिनके आधार पर उसकी धार्मिक आस्थाओ का विवेचन किया जा सके। राम के साथ समझाता करते समय अग्नि को साक्षी बनाया गया था। यद्यपि यह अग्नि हनुमान द्वारा अपनी प्रेरणा से अरणिया को रगडकर उत्पन्न की गयी थी। उन्होंने अग्नि को प्रज्वलित कर राम आर सुग्रीव के बीच म रख दिया था जिसकी उन दोना ने प्रदक्षिणा की थी।[4] अग्नि के साक्षी रहने पर मित्रता होने पर सुग्रीव का विश्वास भी हुआ था कि इसका निर्वाह भी अवश्य होगा।[5] इससे पतीत होता हे कि सुग्रीव की आस्था उन व्यवस्थाओ क प्रति अवश्य रही ह जो ब्राह्मणा और स्मृतिकारा द्वारा दी गयी थी। सुग्रीव यद्यपि न तो किसी देवता की पूजा-अर्चना करता ही दिखाई दिया ओर न उनकी चर्चा ही करता रहा किन्तु वह देवताओं का अनुग्रह स्वीकार करता था। राम से मैत्री सम्बन्ध स्थापित होने पर प्रसन्नता व्यक्त करत हुए उसने कहा था कि दवताओ की मुझ पर विशष कृपा हे इसीलिए आप जेसे गुणवान् महापुरुष मेरे सखा हो गये है।[6] ब्राह्मणो के प्रति सुग्रीव के मन म श्रद्धा रही ह आर वह उनका सम्मान भी करता था। अभिषेक के अवसर पर रत्न वस्त्र और अनेक अन्य पदार्थो के द्वारा ब्राह्मणा का सम्मान किया गया था।[7] इसी प्रकार ऋषि मुनिया आश्रम स्थला आर उनके समाधि-स्थला को भी सुग्रीव प्रणम्य मानता था। उसका

---

1 वा रा 4 26 17 2 वा रा 4 27 5 3 वा रा 5 51 9 4 वा रा 4 5 13 15 5 वा रा 4 8 4 6 वा रा 4 8 2 7 वा रा 4 26 29

विश्वास था कि इस प्रकार प्रणाम आदि के द्वारा व्यक्ति को दु खा और क्लेशा से मुक्ति मिलती ह। ऋष्यमूक पर्वत से राम आर लक्ष्मण के साथ जब सुग्रीव किष्किन्धा की ओर चला था तब मार्ग में उसने सप्तजन ऋषियों की तपस्या आदि का वर्णन करन हुए राम से उन दिवगत मुनियो को प्रणाम करने के लिए कहा था। उसन कहा था कि आप मन का एकाग्र करके दोना हाथ जोडकर लक्ष्मण क साथ उन मुनिया के उद्देश्य स प्रणाम कीजिए, जो उन पवित्र अन्त करणवाल मुनिया का प्रणाम करते ह, उनके शरीर मे किंचिन्मात्र भी अशुभ नहीं रह जाता है।[1]

सुग्रीव ने जब राम को सीता की खाज कर ला देने का आश्वासन दिया तब उसने सीता की तुलना वेदश्रुति से की थी।[2] अभिषेक के समय पर भी मन्त्रवेत्ता पुरुषों ने अग्निवेदी को प्रज्वलित कर उसके चारा ओर कुश बिछाये और मन पूत हविष्य के द्वारा आहुति दी थी। इसके पश्चात् मन्त्रोच्चारण करते हुए पूर्वाभिमुख बठे हुए सुग्रीव का समस्त तीर्थो आर समुद्रो से लाये गये जल से विधिपूर्वक अभिषक किया गया था।[3] मायावी द्वारा वाली को मृत समझन पर सुग्रीव ने उस जलाजलि दी थी आर राम के द्वारा उसके मारे जाने पर भी सुग्रीव ने शास्त्रानुकूल विधि से ही वाली का ओर्ध्वदेहिक सस्कार करने की आज्ञा दी थी।[4]

रामायण में उपर्युक्त दो चार प्रसग ही सुग्रीव की धार्मिक अथवा आचार-विषयक मान्यताओ के सन्दर्भ में प्राप्त होते ह। यद्यपि इनके आधार पर दृढतापूर्वक नहीं कहा जा सकता तथापि यह माना जा सकता है कि वेदश्रुति आर वेदिक विधान के प्रति सुग्रीव के मन में सम्मान की भावना विद्यमान थी।

समझाते के अनुसार प्रतिनाबद्ध होने पर भी सुग्रीव सीता की खाज करने के अपने दायित्व को जिस प्रकार भूल गया था उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। सद्धान्तिक रूप से सुग्रीव उपकार का बदला चुकाने पर लगातार जोर देता रहा ह। लक्ष्मण द्वारा फटकारे जाने पर जब उसका होश आया तब राम स उसने कहा था कि आप आर आपके भाई की कृपा से ही म वानर राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ हूँ। जो किये हुए उपकार का बदला नहीं चुकाता है वह पुरुषा म धर्म को कलकित करनेवाला माना गया ह।[5] सुग्रीव के इस प्रकार क कथनों पर विश्वास करना सहज नहीं। आरम्भ म उसके द्वारा जो असावधानी ओर उपक्षा भाव प्रदर्शित किया गया उससे स्पष्ट हो जाता हे कि सुग्रीव के मन वाणी ओर कर्म म एकरूपता नहीं रही। अपने दोषा को छिपाने क लिए बहानबाजी करने म भी वह चतुर रहा। लक्ष्मण के आक्रोश को शान्त करने के लिए पहले उसने राम के पराक्रम की प्रशसा करते हुए कहा कि राम स्वय ही रावण का वध करने मे समर्थ ह आर फिर अपनी असावधानी

---

1 वा रा 4 13 25 26 2 वा रा 4 6 5 3 वा रा 4 26 30 36 4 वा रा 4 9 20 4 25 30 5 वा रा 4 38 26

को क्षम्य सिद्ध करने के लिए कहा कि विश्वास अथवा प्रेम के कारण यदि कोई अपराध बन गया हो तो मेरा वह अपराध क्षमा कर दिया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा कोई सेवक नहीं है जिससे कभी कोई अपराध होता ही न हो।[1]

धर्म राजनीति और राजर्षियों की परम्परा एवं मर्यादा का उल्लंघन करके ही राम ने सुग्रीव को किष्किन्धा के राज्य पर अभिषिक्त किया था। सुग्रीव राम के साथ मैत्री सम्बन्धों और उनके द्वारा किये गये उपकार की याद करके ही सिहर उठता था। राम ने उसके प्रति जो उपकार किया था उससे उऋण होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस पर भी वानर यूथपतियों को चारों दिशाओं में सीता की खोज के लिए भेजते समय उसने कहा था कि यदि हम लोगों के द्वारा दशरथनन्दन श्रीराम का यह कार्य सम्पन्न हो जाए तो हम उनके उपकार के ऋण से मुक्त और कृतार्थ हो जाएँगे।[2] सुग्रीव का यह कथन प्रथमतः इसी निष्पत्ति को प्रमाणित करता है कि राम और सुग्रीव के बीच मैत्री सम्बन्ध नहीं वरन् पारस्परिक सहयोग से विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक निश्चित समझौता हुआ था और दूसरे यह कि सुग्रीव मित्र के द्वारा किये गये बड़े से बड़े उपकार का समझौते के अनुसार बदला चुकाकर अपने को ऋणमुक्त मानने के लिए तैयार था। सुग्रीव के इन मनोभावों को अथवा उसकी बदनीयती को लक्ष्मण ने समझा था और उन्होंने राम से कहा था कि सुग्रीव की बुद्धि मित्र धर्म के पालन में है ही नहीं तथा उपकार का बदला चुकाने की भी उसकी नीयत नहीं है।[3] लक्ष्मण ने राम से यह भी कहा था कि वानर जाति का होने के कारण सुग्रीव श्रेष्ठ पुरुषों के सदाचार पर स्थिर नहीं रह सकता वह कर्मफल को भी नहीं मानता और वह वानरों की राज्यलक्ष्मी का पालन और उपभोग भी नहीं कर सकेगा क्योंकि भोग विलास से आगे उसकी बुद्धि काम ही नहीं करती।[4] ध्यान करते हुए यद्यपि सुग्रीव सैद्धान्तिक रूप से मानता है कि कृतघ्न पुरुष सौहार्द का त्याग देता है किन्तु व्यवहार में स्वयं सौहार्द की परवाह नहीं करता।[5]

वाली और मायावी के युद्ध में वाली के मारे जाने के भ्रम में सुग्रीव ने राज्य पर अधिकार कर लिया था। यद्यपि इस अवधि के उसके शासन के विषय में कोई सन्दर्भ नहीं तथापि उसने राम को अपनी कहानी सुनाते हुए स्वयं कहा था कि मैं न्यायपूर्वक राज्य का संचालन करने लगा हूँ।[6] उसके इस कथन को प्रमाणित करने के लिए रामायण में एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं। सभी वानर उसे कठोर शासक अवश्य मानते रहे हैं। यह भी प्रतीत होता है कि किष्किन्धा की वानर जाति सुग्रीव को राजा बनाने के पक्ष में नहीं थी। इसीलिए वाली की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने एक स्वर से तारा से अनुरोध किया था कि आपको स्वयं ही कुमार अंगद का

---

1 वा रा 4.36 11 2 वा रा 4 43 5 3 वा रा 4 31.3 4 वा रा 4 31 2 5 वा रा 6 2 ? 6 वा रा 4 9 21

किष्किन्धा के राज्य पर अभिषेक कर शूरवीरों की सहायता से नगर की रक्षा करनी चाहिए। सभी वानरों ने अगद की सभी प्रकार से सेवा करने का आश्वासन दिया था।[1] राम ने ही समझोते ओर शर्त के अनुसार सुग्रीव को राजा बनाया था।

अगद के प्रति सुग्रीव के व्यवहार का स्मरण करके ही अत्यन्त दु ख होता है। परम्परा के अनुसार अगद के राज्याधिकारी होने पर भी सुग्रीव की राज्य पर इस प्रकार दृष्टि जमी रही कि उसने भूलकर भी अगद के अधिकार का कभी ख्याल ही नहीं किया। मायावी के साथ युद्धरत वाली को गुफा में बन्द कर लौटने के पश्चात् उसने अगद के विषय मे सोचे विचारे बिना ही राज्य पर अधिकार कर लिया था। वाली इस बात को जानता था कि सुग्रीव की किंचित् भी सहानुभूति अगद को प्राप्त नही रहेगी। इसलिए प्राण-त्याग के समय तारा के साथ अगद को रोता बिलखता देखकर उसकी ऑखे भर आयी थी। रोते हुए उसने राम से कहा था कि मुझे अपने लिए तारा के लिए और बन्धु बान्धवो के लिए उतना शोक नही जितना अगद के लिए है। उसका पालन पोषण बडे प्रेम के साथ किया गया है। यह अभी बालक है। आप सुग्रीव और अगद दोनो के प्रति समान रूप से सद्भाव बनाये रखे।[2] वाली को तारा के लिए भी राम से कहना ही पडा था कि सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे। तारा अगद की ओर देखकर और सुग्रीव के कटु व्यवहार की कल्पना कर बुरी तरह रो पडी थी। उसने रोते हुए कहा था कि लाड प्यार से पालित सुकुमार अगद जब क्रोध से पागल हुए चाचा के वश मे पड जाएगा तब न जाने उस बेचारे की क्या दशा होगी।[3] वाली को प्राण-त्याग के समय सुग्रीव से बार बार अगद की रक्षा करने की इच्छा प्रकट करनी पडी थी।

अनपत्य होते हुए भी[4] सुग्रीव के मन मे अगद को युवराज बनाने की भी इच्छा नहीं थी। वालि-वध के पहले जब उसने राज्य पर अधिकार कर लिया था तब भी अगद को युवराज बनाने का विचार तक उसने नहीं किया। अगद के प्रति उसकी असहिष्णुता से राम कदाचित् परिचित थे इसीलिए उन्होंने सुग्रीव से आग्रहपूर्वक कहा था कि कुमार अगद सदाचारसम्पन्न तथा पराक्रमी है अत अपने अभिषेक के समय तुम इनको भी युवराज के पद पर अभिषिक्त करो। ये तुम्हारे बडे भाई के ज्येष्ठ पुत्र है। पराक्रम मे भी ये उन्ही के समान है अतएव अगद युवराज पद के सर्वथा अधिकारी है।[5] राम की आज्ञा होने के कारण उसका पालन करते हुए ही सुग्रीव ने अगद को युवराज के पद पर अभिषिक्त किया था।[6]

सीता की खोज करते हुए जब सुग्रीव द्वारा निर्धारित अवधि बीत चुकी थी तब अगद ने अत्यन्त करुणाजनक स्वर मे यूथपतियो से कहा था कि सुग्रीव ने युवराज

1 वा रा 4 19 11 2 वा रा 4 18 50 55 3 वा रा 4.20 17 4 वा रा 4 54 22
5 वा रा 4 26 11 13 6 वा रा 4 26 38

पद पर अपनी इच्छा स मेरा अभिषेक नही किया ह। महान् कर्म करनेवाले राम ने ही इस प॰ पर मेरा अभिषेक करा दिया है।[1] इसी अवसर पर अगद ने इस रहस्य का भी उद्घाटन किया था कि सुग्रीव क मन म पहले से ही अगद क प्रति विद्वेष की भावना विद्यमान थी। उसने शायद किसी वहान की तलाश कर अग॰ का मरवा डालने का भी निश्चय किया था। इमलिए अग॰ के मन मे ओर भी अधिक भय व्याप्त हो गया था कि सीता की खोज म असफल हाने आर अवधि के भीतर न लोटन के अपराध के वहान सुग्रीव निश्चय ही उनको मरवा डालगा।[2]

हनुमान प्रारम्भ स ही सुग्रीव के सहयोगी आर हितपी रहे थे। वाली का वध करान क लिए राम सुग्रीव क बीच समझाता करान म उनका जवर्दस्त हाथ रहा। इस स्थिति म वह भी अगद के विरोधी ही दिखाई देते हे। इस कठिन समय में अगद के प्रति एक अन्य मन्त्री तार की पूरी सहानुभूति रही थी। यह तार कान थे इसकी जानकारी रामायण म नही होती। नाम साम्य के आधार पर इनके तारा के भाई होने की कल्पना की जा सकती हे। अगद तथा अन्य वानरो ने जब अनशन करते हुए प्राण त्याग का निश्चय किया था तब तार ने ही स्वयप्रभा तपस्विनी की गुफा मे निवास करने का परामर्श दिया था। इस गुफा मे इन्द्र, राम अथवा सुग्रीव के भय की आशका भी नही थी। अगद आदि वानरा ने तार के परामर्श का समर्थन किया था। इस अवसर पर हनुमान का भय हुआ था कि यदि तारा की वात अगद तथा अन्य वानरा ने मान ली तो ये सब सगठित होकर सुग्रीव से किष्किन्धा का राज्य छीनने मे भी सफल हो जाएग।[3] इसीलिए हनुमान न अगद को तथा अन्य वानरा का समझा बुझाकर आर भय दिखाकर सुग्रीव के पक्ष मे करने का प्रयास किया था। हनुमान ने अगद से कहा था कि सुग्रीव का विरोध करके कोई भी वानर तुम्हारे प्रति अनुरक्त नही होगा और न साम दाम और दण्ड के भय से ही वानरों को सुग्रीव से अलग किया जा सकता हे।[4] हनुमान ने सुग्रीव की अनेक प्रकार से प्रशसा करते हुए अगद को प्रलोभन दिया था कि सुग्रीव अपने बाद तुम्हीं का राजा बनाएँग। हनुमान के द्वारा सुग्रीव की प्रशसा सुनकर अगद के मन मे आग लग गयी थी। अगद ने हनुमान को उत्तर देते हुए जो कहा था वह सुग्रीव की अगद के प्रति दुर्भावनाआ का स्पष्ट प्रतिविम्ब ह।

प्रारम्भ स ही सुग्रीव अगद का शत्रु का पुत्र मानता रहा आर वह हमेशा उसको मरवा डालने के लिए उपाय करता रहा। विल क भातर युद्धरत वाली को गुहाद्वार वन्द करके शत्रु द्वारा मरवा डालने का ही सुग्रीव का प्रयास था। वाली को मायावी

---

1 वा रा 4.53 17 2 वा रा 4 53 18 3 वा रा 4 54 1 4 वा रा 4 54 10 12

द्वारा मृत समझकर ही उसने तारा को अपने अधिकार म कर लिया था। अगद को सुग्रीव शत्रुकुल मे उत्पन्न हुआ मानता था। सुग्रीव की इस दुर्भावना के कारण अगद प्रारम्भ स ही सुग्रीव से किसी प्रकार अलग होकर रहने की योजनाएँ बनाता रहा था किन्तु अपने इस आशय को उसने कभी प्रकट नहीं होने दिया था। अगद के अनुसार सुग्रीव इतना शठ क्रूर और निर्दयी था कि राज्य के लिए गुप्त रूप स अगद को दण्ड देने अथवा हमेशा के लिए जल म बन्द करने का ही विचार करता रहा। अगद यह सोचकर ही काप जाता था कि सीता की खोज म असफल होने और निश्चित समयावधि बीत जाने के पश्चात् यदि वह किष्किन्धा लौटता है तो निश्चय ही उसे जेलखाने म मरना पडेगा। इसलिए उसने कभी न लौटने और प्रायोपवेशन के द्वारा प्राण त्याग करने का निश्चय किया था। इस सन्दर्भ म अगद के विचारो को अविकल रूप से ही उद्धृत करना अधिक समीचीन प्रतीत होता ह

"राजा सुग्रीव म स्थिरता शरीर और मन की पवित्रता क्रूरता का अभाव सरलता पराक्रम और धर्य ह यह मान्यता ठीक नही जान पडती। जिसने अपने बडे भाई क जीते-जी उनकी प्यारी महारानी जो धमत उसकी माता के समान थी, कुत्सित भावना स ग्रहण कर लिया था वह धर्म को जानता है यह कैसे कहा जा सकता ह। जिस दुरात्मा ने युद्ध के लिए जाते हुए भाई के द्वारा बिल की रक्षा के कार्य म नियुक्त होने पर भी पत्थर स उसका मुँह बन्द कर दिया वह कैसे धर्मज्ञ माना जा सकता ह। जिन्होने सत्य को साक्षी देकर उसका हाथ पकड़ा और पहले ही उसका काय सिद्ध कर दिया उन महायशस्वी श्रीराम को ही जब उसने भुला दिया तब दूसरे किसके उपकार को वह याद रख सकता है। जिसने अधर्म के भय से डरकर नही लक्ष्मण के ही भय स भीत होकर हम दोनो को सीता की खोज के लिए भेजा ह उसम धम की सम्भावना कैसे हो सकती है। उस पापी कृतघ्न स्मरण शक्ति स हीन और चचल चित्त सुग्रीव पर कोई श्रेष्ठ पुरुष विशेषत जो उत्तम कुल मे उत्पन्न हुआ हो कभी भी किस तरह विश्वास कर सकता है। अपना पुत्र गुणवान हो या गुणहीन उसी को राज्य पर बिठाना चाहिए ऐसी धारणा रखनेवाला सुग्रीव मुझ शत्रुकुल मे उत्पन्न हुए बालक को कैसे जीवित रहने देगा? सुग्रीव से अलग रहने का जो मेरा गूढ विचार था वह आज प्रकट हो गया। साथ ही उसकी आज्ञा का पालन न करने क कारण म अपराधी भी हू। मेरी शक्ति भी क्षीण हो गयी है। म अनाथ के समान दुर्बल हूँ। ऐसी दशा में म किष्किन्धा मे जाकर कैसे जीवित रह सकूँगा। सुग्रीव शठ क्रूर और निर्दयी ह। वह राज्य के लिए मुझे गुप्त रूप से दण्ड देगा अथवा सदा के लिए मुझे बन्धन म डाल देगा। इस प्रकार बन्धनजनित कष्ट भोगने की अपेक्षा उपवास करके प्राण दे देना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है। अत मुझे सब वानर यहीं रहने की आज्ञा दे और अपने-अपने घर को चल जाएँ। म आप

लोगो से प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि मैं किष्किन्धा पुरी को नहीं जाऊंगा। यहीं मरणान्त उपवास करूंगा। मेरा मर जाना ही अच्छा है।[1]

सुग्रीव यद्यपि सिद्धान्तत यह मानता था कि पुरुष की परीक्षा करके ही उसके साथ मित्रता अथवा शत्रुता का सम्बन्ध बनाया जाना चाहिए किन्तु किसी की परीक्षा करने की योग्यता उसमें थी ही नहीं। ऋष्यमूक पर राम-लक्ष्मण की सदाशयता की परीक्षा हनुमान द्वारा की गयी थी। रावण से विद्रोह करने के पश्चात् जब विभीषण राम की शरण में आया था तब सुग्रीव उसे समझ ही नहीं सका। विभीषण के साथ मित्रता का विरोध करते हुए उसने राम से कहा था— विभीषण दुष्ट हो अथवा अदुष्ट हमसे कोई मतलब नहीं। वह निशाचर तो है। फिर जो पुरुष ऐसे संकट में पड़े हुए अपने भाई को छोड़ सकता है उसका दूसरा ऐसा कौन सम्बन्धी होगा जिसे वह त्याग न सके। इस प्रकार का विचार व्यक्त करते समय वह अपने इस दुर्व्यवहार को भूल गया जो उसने अपने बड़े भाई वाली के प्रति किया था।

रावण ने शुक के द्वारा सुग्रीव को सन्देश भेजा था कि हम लोगों में किसी प्रकार का द्वेष नहीं है और न मैंने तुम्हारा कोई अपकार ही किया है। इसलिए तुम किष्किन्धा को लौट जाओ। सुग्रीव ने इसका अत्यन्त फूहड़ उत्तर देते हुए रावण को कहलाया था— तुम न मेरे मित्र हो न दया के पात्र हो न मेरे उपकारी हो न मेरे प्रिय व्यक्तियों में से हो। तुम राम के शत्रु हो इसलिए मेरे लिए वाली की भांति ही वध्य हो।"[3] यह ध्यान देने योग्य है कि वाली की राम से कोई शत्रुता थी ही नहीं और इस प्रकार सुग्रीव का उत्तर निहायत ही तर्कहीन था।

राम के द्वारा वाली का वध किये जाने पर सुग्रीव ने विलाप करते हुए राज्य से विरति प्रकट की थी।[4] जिसने राज्य के लोभ में ही अपने भाई को मरवा डाला हो उसके द्वारा इस प्रकार विरति प्रकट करने में कोई सच्चाई मानी नहीं जा सकती। वस्तुत जब सुग्रीव ने देखा था कि तारा अंगद और किष्किन्धा के सभी नागरिक वाली के वध से दुखी होकर खीझ रहे थे तभी उसने इस प्रकार का विचार प्रकट किया था।

पूरी रामायण में दो चार प्रसंग ही ऐसे मिलते हैं जहाँ सुग्रीव ने कुछ समझदारी की बात की हो। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के समक्ष राम ने जब अपना दुख प्रकट किया तब सुग्रीव ने कहा था—"इस तरह मन में व्याकुलता लाना व्यर्थ है। आपके हृदय में स्वाभाविक रूप से जो धैर्य है उसका स्मरण कीजिए। इस तरह बुद्धि और विचार को हलका बना देना उसकी सहज गम्भीरता को खो देना आप जैसे महापुरुषों के लिए उचित नहीं है।[5] शोक में आर्थिक संकट में अथवा प्राणान्तकारी भय

---

1 वा रा 1 55 12 2 वा रा 6 18 5 3 वा रा 6 20 23 4 वा रा 4 ?4 5 7
5 वा रा 4 7 5

उपस्थित होने पर जा अपनी बुद्धि से दु ख निवारण के उपाय का विचार करते हुए धेय धारण करता है वह कष्ट नही भागता हे। जो मूढ मानव सदा घबराहट म ही पडा रहता ह वह पानी म भार से दबी हुई नाका के समान शाक म विवश हाकर डूब जाता ह। जा शोक का अनुसरण करते ह उन्हे सुख नहीं मिलता हे ओर उनका तज भी क्षीण हो जाता है। शाक से आक्रान्त हुए मनुष्य क जीवन म भी सशय उपस्थित हो जाता ह।[1] सीता का पता लग जाने के वाद जव राम ने समुद्र पार करन के लिए चिन्ता व्यक्त की थी तव भी सुग्रीव ने उनसे कहा था— आप साधारण मनुष्या की भाँति व्यथ ही सन्ताप कर रहे ह। आप बुद्धिमान् शास्त्रा क ज्ञाता विचारवान् आर पण्डित ह। अत कृतात्मा पुरुष की भाँति अर्थदूषक प्राकृत बुद्धि का त्याग कर देना चाहिए। जा पुरुष उत्साहशून्य दीन आर मन ही मन शाक से व्याकुल रहता ह उसके सभी काम बिगड जाते ह आर वह वडी विपत्ति म पड जाता ह।[2] आप इस व्याकुल बुद्धि का आश्रय न ल क्याकि यह समस्त कार्यो का बिगाड देनेवाली ह आर शोक इस जगत् म पुरुप क शाय का नप्ट कर देता ह। शोय का अवलम्बन कर्ता को शीघ्र ही अलकृत कर दता ह। शोक सब कामो को बिगाड देता ह इसलिए शूरवीर महापुरुषा का शोक नही करना चाहिए।[3]

सुग्रीव न अनेक शत्रुआ स पराक्रमी ओर शूरवीर की भाँति ही युद्ध किया ह किन्तु इससे उसकी धर्म आर आचार विपयक आस्थाआ से कोइ सम्वन्ध नही। उपर्युक्त विवचेन से यही कहा जा सकता हे कि सुग्रीव धर्म आचार राजर्पिया की परम्परा आदि किसी से भी अभिन्न नही था ओर न इनकी उसके जीवन मे कोई महत्ता ही रही। वह केवल एक शूरवीर पराक्रमी था आर परिस्थितिया के अनुसार स्वय अपने लाभ के लिए शास्त्र-मर्यादा क अनुकूल अथवा प्रतिकूल कुछ भी करने के लिए हमेशा तेयार रहता था।

---

1 वा रा 1 7 9 10 12 13 2 वा रा 6 2 2-6 3 वा रा 6 2 13-15

वाली की उदारता और आचारनिष्ठा

किष्किन्धा के राजा ऋक्षरजा की पत्नी के गर्भ से इन्द्र के सयोग से वाली का जन्म हुआ था। सुग्रीव भी ऋक्षरजा के क्षत्र पुत्र थे। ऋक्षरजा के कुल म अन्य क्षत्रिया के कुल म मान्य परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता था इसलिए ऋक्षरजा के देहावसान के पश्चात् मन्त्रवेत्ता मन्त्रिया ने वाली को ही किष्किन्धा के राज्य पर अभिषिक्त किया था।[1] ज्येष्ठ पुत्र होने के साथ ही वाली मे समस्त राजोचित गुण भी थे और पूरे राज्य में लोकप्रिय थे इसलिए ऋक्षरजा वाली का अधिक मानते भी थे। वाली का राजा बनाने के साथ ही उसके छोटे भाई सुग्रीव को युवराज बनाया गया था।[2] यह स्पष्ट नही है कि सुग्रीव को युवराज के पद पर अगद के जन्म के पहले अभिषिक्त किया गया था अथवा अगद के रहते हुए ही ऐसा किया गया। वाली के राजा बनने के बाद भी वाली और सुग्रीव के बीच पूरा सख्यभाव और स्नेह सम्बन्ध बना रहा था।

राज्य पर अभिषिक्त होने के पश्चात् ही वाली ने नीति और नियम के अनुसार राज्य का रक्षा और प्रजा पालन का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। समस्त वानर यूथपति वाली और सुग्रीव की सेवा म थे। नल नील हनुमान तथा अन्य वानरा के सहयोग से वाली ने पूरी योग्यता के साथ ऋक्ष गो पुच्छ और वानर जातियो की रक्षा की थी।[3] वनवासियो की कुशलता और उनके विकास के लिए वाली की चिन्ता उदाहरणीय है। दुन्दुभि को युद्ध म मारकर जब वाली ने उसकी लाश को घुमा कर दूर फेका तो वह मतग मुनि के आश्रम मे जा गिरी। मतग ने क्रोधवश समस्त वानरो का आश्रम प्रवेश निषिद्ध कर दिया और आश्रम मे घूमने फिरनेवाले सभी वानरो को दिनभर का समय देकर वहा से चले जाने का निर्देश दिया था। सभी वानरा को आश्रम से निकलते हुए भागते हुए देखकर वाली को विशेष चिन्ता हुई और उसने स्वय वानरा से जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया—"आप सब लोग भयभीत होकर इस प्रकार भाग कर मेरे पास क्या चले आ रहे हो ? वनवासियो की कुशल तो है न ?"[4] वानरो ने जब मतग ऋषि के क्रोध और उसके कारण के विषय म वाली को जानकारी दी तब वाली को अनजान म ही हुई अपनी गलती पर गहरा दुख हुआ और उसने

---

1 वा रा 4 9 2 7 36 39 2 वा रा 7 36.39 3 वा रा 1 17.39 35 4 वा रा 4 11 60

वानरो के कल्याण को दृष्टिगत रखकर ही मतग के सामन उपस्थित होकर माफी मागी थी।[1]

वाली न किष्किन्धा पुरी का इस प्रकार योजनाबद्ध रूप स विकास किया था कि वह एक बड समृद्ध राज्य की राजधानी जैसी ही दिखाइ दती थी। लक्ष्मण न जब उस पुरी म प्रवेश किया था तब उन्हाने देखा था कि वह अनेक रत्ना स भरी पूरी होने के कारण दिव्य शोभा स सम्पन्न थी। चारा आर हर्म्य प्रासाद उपवन उद्यान बन हुए थे आर पूग नगर चन्दन अगर तथा कमल पुष्पा की गन्ध से भरा रहता था। पुरी म बडी आर चाड़ी सडका का निमाण कराया गया था जो मरय आर मधु से महकती रहती थीं। राजमार्ग पर ही अगद, मन्द द्विविद हनुमान नल, तार सुषण जाम्बवान् आदि क बहुमंजिल भवन बन हुए थे। सुग्रीव का राजमहल इन्द्रसदन क समान ही दिखाई दता था आर उसका बाहरी फाटक साने का बना हुआ था।[2] लक्ष्मण किष्किन्धा का सान्दर्य देखकर ठग हुए से रह गय थ। राजमहल के भीतर अन्त पुर म चादी साने के पलग बिछ रहत थे तथा महला म निरन्तर मधुर सगीत गूजता रहता था।

वाली यद्यपि अपने समय का सबस अधिक शक्तिशाली अपराजेय आर अनुपम पराक्रमी योद्धा था आर उसने युद्ध के अवसरो पर भी सनापतिया की सहायता लिये बिना ही शत्रुआ को पराजित किया किन्तु पराक्रम क अभिमान म आकर उसने कभी किसी का निरादर नही किया। वह प्रत्यक कार्य मन्त्रिया के परामर्श से ही किया करता था। मायावी को युद्ध म परास्त कर किष्किन्धा लाटने पर यद्यपि उसके मन म सुग्रीव के प्रति आक्रोश था किन्तु कुछ भी निर्णय लन के पहले उसने समस्त प्रजाजना आर मन्त्रियो को बुलाकर उनस परामर्श लिया था। सुग्रीव ने ही यह सब जानकारी राम को दते हुए कहा था कि वाली ने प्रजाजना आर सम्मान्य मन्त्रिया को बुलाया आर सभी सुहृदो के बीच म मरी निन्दा की थी।[3] मन्त्रियो आर प्रजाजनो के परामर्श स ही सुग्रीव को युवराज पद से हटाकर राज्य से निष्कासित किय जाने का दण्ड दिया गया था।

शार्य ओर पराक्रम की दृष्टि से वाली रामायण के सभी पात्रो म बेजोड रहा है। सुग्रीव उसकी तुलना म इतना अशक्त ओर कमजोर था कि इन दोनो के युद्धो की चर्चा करना भी अर्थहीन है। राम से वाली का युद्ध हुआ ही नहीं था। इस दृष्टि से कवल रावण मायावी आर दुन्दुभि क साथ हुए युद्धो की चर्चा की जा सकती है। इन तीना ने अपने बल के घमण्ड म आकर स्वय ही 'युद्ध देहि' की गर्जना करते हुए किष्किन्धा के द्वार पर दस्तक दी थी। रावण यद्यपि अर्जुन के हाथा अपन पराभव को देख चुका था फिर भी उसने वाली की अनुपस्थिति से किष्किन्धा का द्वार

1 वा रा 4 11 62 2 वा रा 4 33 3 वा रा 4 10 12 13

खटखटाया था। वाली के मन्त्री तार सुषेण अगद और सुग्रीव ने हड्डियो के विशाल ढेर को दिखाते हुए रावण से कहा था कि ये हड्डियाँ तुम्हारे समान उन आक्रमणकारियो की है जो वाली के द्वारा मार डाले गये है। तात्पर्य यह कि वाली के शासनकाल मे अनेक शत्रुओ ने किष्किन्धा पर आक्रमण किया था किन्तु वे सभी वाली के हाथो मारे गये थे और किष्किन्धा के बाहर हड्डियो का ढेर लग गया था। उनको देखकर और तार सुषेण आदि के द्वारा समझाये जाने पर भी रावण को वाली के बल का विश्वास नही हुआ और वह उससे युद्ध करने के लिए दक्षिण समुद्रतट पर पहुच ही गया था। वाली ने सहज ही रावण को पकडकर अपनी काँख मे दबा लिया था और चारो दिशाओ के समुद्रतटो पर सन्ध्या-वन्दन करने के बाद किष्किन्धा लौटा। यहाँ उसने उपेक्षापूर्ण हँसी हँसते हुए ही रावण से 'आप कहाँ से आये है' जैसा प्रश्न किया था। इस अवसर पर रावण ने वाली के शौर्य की प्रशसा करते हुए कहा था—"अहो आप मे अद्भुत बल है अद्भुत पराक्रम है और आश्चर्यजनक गम्भीरता है। आपने मुझे पशु की तरह पकड़कर चारो समुद्रो पर घुमाया है। तुम्हारे सिवा दूसरा ऐसा शूरवीर कौन होगा जो मुझे इस प्रकार बिना थके मादे ढो सके। आपके समान गति तो केवल मन वायु और गरुड की ही सुनी गयी है। इस प्रकार के तीव्र वेगवाले आप ही चौथे है।[1] इसके पश्चात् अग्नि को साक्षी बनाकर रावण ने वाली से मित्रता कर ली थी। एक आक्रमणकारी को क्षमादान देते हुए उसके साथ भाई चारे के सम्बन्ध स्थापित करना निःसन्देह वाली की गम्भीरता सहिष्णुता और उदारता का ही परिचायक है।

दुन्दुभि को भी अपने बल का भारी अभिमान रहा था और वरदान के कारण उसे और भी अधिक शक्ति प्राप्त हुई थी।[2] अपने बल के अभिमान मे ही वह चारो दिशाओ मे सभी को युद्ध के लिए ललकारता रहा। सबसे पहले उसने समुद्र को युद्ध के लिए चुनौती दी थी किन्तु समुद्र ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उसे पर्वतराज हिमवान के साथ युद्ध करने के लिए भेज दिया था। हिमवान ने भी समुद्र की भाँति दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर माफी माँग ली और किष्किन्धानरेश वाली का पता बताकर अपना पीछा छुडाया था। दुन्दुभि ने बड़े ही विश्वास के साथ किष्किन्धा के द्वार पर गर्जना की। यद्यपि वाली ने उसे बहुत समझाया और अपने प्राणो की रक्षा करने की सलाह दी थी किन्तु दुन्दुभि को वाली के शौर्य का कदाचित् अनुमान भी नही रहा था इसलिए वह वाली को लगातार युद्ध के लिए उकसाता रहा। वाली ने सहज ही दुन्दुभि को पकडकर घुमा घुमाकर धरती पर गिराकर उसके शरीर को पीस दिया था।

---

1 वा रा 7 31.37 39 2 वा रा 4 11 8

मायावी दुन्दुभि की वंश परम्परा में ही दुन्दुभि का बड़ा भाई था।[1] यह दानो मय के पुत्र हेमा अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न सहोदर और मन्दोदरी के सगे भाई थे।[2] दुन्दुभि के पराभव से दुखी होकर ही उसने किष्किन्धा पर आक्रमण किया था। वाली और मायावी के बीच शत्रुता किसी एक स्त्री के कारण भी कही गयी है[3] किन्तु उसका पूरा और स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। जो कुछ भी कारण हो मायावी ने वाली को युद्ध के लिए ललकारा अवश्य था। जब वाली अपने अन्त पुर से बाहर आया तो उसे देखते ही मायावी भाग खड़ा हुआ और अपने विवर में छिप गया था। वाली को इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ और उसने अकेले ही उस विवर में घुसकर एक वर्ष तक निरन्तर युद्ध करते हुए मायावी को मार डाला था।

युद्ध की उपर्युक्त तीनों घटनाओं में वाली का अद्भुत पराक्रम शौर्य साहस और गम्भीरता दिखाई देती है। सुग्रीव ने वाली के पराक्रम के विषय में राम से कहा था कि वाली सूर्योदय के पहले ही पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक और दक्षिण सागर से उत्तर तक घूम आता है फिर भी वह थकता नहीं। वह पर्वत की चोटियों पर चढ़कर बड़े बड़े शिखरों को बलपूर्वक उठा लेता है और ऊपर उछालकर फिर उन्हें हाथों से थाम लेता है।[4] इसके बाद सुग्रीव ने साल साल वृक्षों की ओर इंगित करते हुए कहा था कि अनेक उत्तम शाखाओं से शोभित इन विशाल मोटे साल-वृक्षों को बलपूर्वक हिलाकर पत्रहीन करने में वाली समर्थ है।[5] वाली का शौर्य और पौरुष सर्वत्र विख्यात है। वह बलवान् वानर अभी तक किसी युद्ध में पराजित नहीं हुआ। देवताओं के लिए भी दुष्कर कर्म वाली के लिए सुकर है। वाली को जीतना दूसरों के लिए असम्भव है। उस पर आक्रमण अथवा उसका तिरस्कार भी नहीं किया जा सकता। वह शत्रु की ललकार को नहीं सह सकता।[6] वाली के इस प्रकार के साहस और शौर्य का स्मरण करने के कारण ही सुग्रीव को बड़ी कठिनाई से ही यह विश्वास हो सका था कि राम वाली से युद्ध करने में समर्थ हो सकेंगे।

युद्ध भूमि में राम ने वाली से युद्ध किया ही नहीं था। उन्होंने सुग्रीव से वाली के पराक्रम के विषय में सब-कुछ सुन लिया था। पहली बार भी वाली और सुग्रीव के युद्ध को वे छिपकर ही देखते रहे थे और सुग्रीव के प्राण बचाकर भाग जाने तक उन्होंने बाण नहीं चलाया। यह कहा जा सकता है कि वाली के विषय में सब-कुछ सुनकर भी वे उसके युद्ध-कौशल को अपनी आँखों से देखने के बाद ही उसके साथ युद्ध का खतरा मोल लेने की बात सोचते रहे और जब उन्होंने देखा तब शायद वे यह भी समझ गये थे कि वाली के सामने पहुँचकर युद्ध करने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। वाली ने भी यही कहा था कि यदि आप युद्ध स्थल में मेरी दृष्टि

---

1 वा रा 4 9 4 2 वा रा 7 12 12 3 वा रा 4 9 4 4 वा रा 4 11 4 5 5 वा रा 4 11 67 6 वा रा 4 11 74 76

के सामने आकर मेरे साथ युद्ध करते तो आज मेरे द्वारा मारे जाकर कभी के सूर्यपुत्र यम देवता का दर्शन करते होते।[1] यह एक विचारणीय प्रश्न है कि राम वाली को वध्य मानते थे और दुन्दुभि की अस्थियों को अनायास ही दूर फेंककर तथा सात साल वृक्षों को एक बाण से भेदकर उन्होंने स्वयं को वाली की अपेक्षा अधिक पराक्रमी सिद्ध करने का अभिनय भी किया था। इसके पश्चात् भी उन्होंने वाली को छिपकर मारने का रास्ता अख्तियार क्या किया था ? इस प्रश्न के समाधान के लिए कोई बहाना खोजना भी सरल नहीं। इस स्थिति में यह मानना असंगत नहीं होगा कि वाली के सामने उपस्थित होकर उसके साथ युद्ध करने से वे कतराते थे।

वाली के मन में सुग्रीव के प्रति भ्रातृत्व के सहज स्नेह की भावना विद्यमान थी। केवल सुग्रीव के दोषों के प्रति ही उसके मन में आक्रोश रहा था। यह लिखा ही जा चुका है कि अभिषेक के साथ उसने सुग्रीव को ही युवराज बनाया था। राज्य के प्रति सुग्रीव के मन में व्याप्त लोभ को देखते हुए भी उसने सुग्रीव को मारने का कभी विचार नहीं किया। बिलद्वार बन्द कर किष्किन्धा लौटकर सुग्रीव ने जब अपने आपको राजा घोषित कर लिया था तब भी वाली ने उसे केवल घर से ही निष्कासित किया था। वाली कभी यह नहीं चाहता था कि सुग्रीव उसके साथ युद्ध करता हुआ मारा जाय। सुग्रीव ने स्वयं राम से कहा था— बुद्धिमान् महात्मा वाली ने युद्ध के समय मुझसे कहा था कि तुम चले जाओ मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता।[2] वाली के मन में मेरे वध का विचार नहीं था क्योंकि इससे उनको अपनी प्रतिष्ठा को आघात पहुंचने का भय था।[3] जब कभी सुग्रीव की किसी गलती पर वाली को क्रोध आता था तब वह बड़े भाई के समान उसे डांटता फटकारता और आवश्यकता पड़ने पर पीट भी दिया करता था। इसके साथ ही वह सुग्रीव को बड़े प्यार से सान्त्वना देकर समझा दिया करता था। सुग्रीव ने ही कहा है कि जब वाली ने मुझे एक वृक्ष की शाखा से पीटा था और मैं दो घड़ी तक रोता रहा तब उन्होंने मुझे सान्त्वना देकर कहा था— जाओ अब फिर कभी ऐसी गलती नहीं करना। उन्होंने भ्रातृभाव आर्यभाव और धर्म की भी रक्षा की है परन्तु मैंने केवल वानरोचित चपलता का ही परिचय दिया है।[4] सुग्रीव के प्रति वाली का क्रोध वस्तुतः उसी समय उभरा जब सुग्रीव उसको विवर में बन्द कर स्वयं किष्किन्धा का राजा बन बैठा था। इसके पहले सुग्रीव की रक्षा के प्रति वह इतना सावधान रहा कि दुन्दुभि अथवा मायावी किसी से युद्ध करने तक के लिए उसने सुग्रीव को नहीं भेजा और सभी खतरों को स्वयं ही झेलता रहा। अन्तिम बार युद्ध के लिए चलते समय भी उसने तारा को आश्वासन दिया था कि वह केवल सुग्रीव के घमण्ड को दूर करेगा उसके जीवन को समाप्त नहीं करेगा।[5]

---

1 वा रा 4 17 47 2 वा रा 1 21 8 3 वा रा 4 21 10 4 वा रा 4 24 11 12
5 वा रा 4 16 7

वाली के मन में तारा और अगद के प्रति भी मानव स्वभाव के अनुरूप सहज स्नेह की भावना रही थी। यह होते हुए भी अतिशय प्रेम अथवा वात्सल्य के प्रभाव में आकर उसने कभी मर्यादा को भंग नहीं किया। सुग्रीव की भाँति वह हमेशा तारा को अपने आलिंगन पाश में बाँध नहीं रहा और अगद के होते हुए भी उसने सुग्रीव का ही युवराज पद पर बने रहने दिया था। तारा को वह केवल अपनी वासना-तृप्ति का साधन नहीं अपितु हितैषिणी मानता था। मृत्यु शैया पर लेटे हुए उसने राम से कहा था – मेरी स्त्री तारा सर्वज्ञ है। उसने मुझसे सत्य और हित की बात कही थी किन्तु मोहवश उसका उल्लंघन करके ही मैं काल के अधीन हो गया।"[1] वाली को यह भी सन्देह था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव का तारा के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं होगा। इस आशंकावश भी उसने राम से अनुरोध करते हुए कहा था–"बेचारी तारा की बड़ी शोचनीय अवस्था हो गयी है। मेरे ही अपराध से उसे अपराधिनी समझकर सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे उसकी व्यवस्था कर दीजिएगा।[2]

अगद के प्रति वाली के मन में जितना ममत्व था उसका अनुमान भी उसी के शब्दों से लगाया जा सकता है। वाली की मृत्यु के समय अगद की अवस्था अधिक नहीं थी। उसकी याद करके ही वाली की आँखों में आँसू छलक आये थे। अवरुद्ध कण्ठ से उसने राम से कहा था– मुझे अपने लिए, तारा के लिए तथा बन्धु बान्धवों के लिए उतना शोक नहीं है जितना श्रेष्ठ गुणसम्पन्न अगद के लिए हो रहा है। मैंने उसका बचपन से ही बड़ा दुलार किया है। मुझे देखकर वह बहुत अधिक दुखी होगा और जिसका जल पी लिया गया है उस तालाब की तरह सूख जाएगा। वह अभी बालक है। उसकी बुद्धि परिपक्व नहीं है। मेरा इकलौता बेटा होने के कारण वह मुझे बहुत अधिक प्रिय है। आप मेरे उस महाबली पुत्र की रक्षा कीजिएगा। सुग्रीव और अगद दोनों के प्रति आप सद्भाव बनाये रखें।' सुग्रीव से भी उसने बड़ी कातर वाणी में कहा था–'मेरा बेटा अगद धरती पर पड़ा है। उसका मुँह आँसुओं से भीग गया है। वह सुख में पला है और सुख भोगने योग्य है। बालक होने पर भी वह मूढ़ नहीं है। अगद मुझे प्राणों से बढ़कर भी प्रिय है। मेरे न रहने पर तुम इसे अपने पुत्र की भाँति ही समझना। इसके लिए किसी सुख सुविधा की कमी न होने देना और सदा सब जगह इसकी रक्षा करते रहना। मेरे ही समान तुम इसके पिता दाता सब प्रकार से रक्षक और अभय देनेवाले हो। यह तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। राक्षसों के वध के समय यह सदा तुम्हारे आगे रहेगा।' इसी के साथ अगद से भी उसने बड़ी ही दर्दभरी वाणी में कहा था–"बेटा अब देश-काल को समझकर कब कहाँ कैसा बर्ताव करना चाहिए इसका निश्चय करके तुम वैसा ही आचरण करते रहना। समयानुसार प्रिय-अप्रिय सुख-दुख जो कुछ भी पड़े,

1 वा रा 4 17 11 2 वा रा 4 18 55 3 वा रा 4 18 50 53 4 वा रा 4 22 8 11

उसको धर्यपूर्वक सहना। अपने हृदय म क्षमा भाव रखते हुए सुग्रीव की आज्ञा के अधीन रहना। मेरा दुलार पाकर तुम जिस तरह रहत आय हो यदि तुम वैसा ही बताव करोग ता सुग्रीव तुम्हारा आदर नही करग। तुम सुग्रीव के शत्रुआ का साथ मत देना। जो इनक मित्र न हा उनसे भी न मिलना और अपनी इन्द्रिया को वश मे रखकर सुग्रीव की आज्ञा क अधीन ही रहना।[1]

वाली के उपर्युक्त शब्दा म अगद के प्रति ममत्व भावना तो हे ही सुग्रीव के प्रति भ्रातृत्व स्नेह की झलक भी इनम स्पष्ट है। यद्यपि सुग्रीव न राज्य-लोभ के कारण उसे मरवा डाला था किन्तु मरत मरते वाली ने राम का चाहे जितना भला-बुरा कहा हो सुग्रीव क प्रति किसी प्रकार का आक्रोश उसने व्यक्त ही नहीं किया। एक मर्यादा शील भाई अपने छाट भाई से जा कह सकता है वही वाली ने कहा था। अन्तिम क्षणा मे सुग्रीव के प्रति भी उसक मन मे भ्रातृ स्नेह उमड पडा था। अपनी मृत्यु के लिए सुग्रीव के सभी षड्यन्त्रो को प्रत्यक्ष दखते हुए भी उसने सुग्रीव पर किसी प्रकार का आराप नहीं लगाया बल्कि सारा दोष पूर्व जन्म के कर्मो और प्रारब्ध के सिर मढ दिया था। उसने कहा था— सुग्रीव पूर्व जन्म के किसी पाप से बुद्धि-मोह ने मुझे बलपूर्वक आकृष्ट कर लिया था। इस कारण मेरे द्वारा तुम्हारे प्रति जो अपराध हुआ हो उसके लिए तुम्हे मेरे प्रति दाष-दृष्टि नहीं करना चाहिए। म समझता हू हम दाना क लिए एक साथ रहकर सुख भोगना बदा ही नही था। इसीलिए दो भाइयो म जो प्रेम हाना चाहिए था वह न हाकर हम लोगो मे विपरीत भावना पदा हा गयी।[2] मरे बाद तारा की सम्मति को तुम सवेन्रहित होकर मानते रहना। वह सूक्ष्म विषयो के निणय करने म निपुण है तथा उसकी सम्मति का परिणाम कभी अहितकर नही होता। रामचन्द्र का काम तुम्ह नि शक होकर करना चाहिए अन्यथा शर्त पालन न करने के कारण तुम अधर्म के भागी होगे और राम तुम्हे मार डालगे।[3] सुग्रीव से इस प्रकार कहते हुए ही वाली ने अपनी दिव्य माला भी उसको दे दी थी।

सुग्रीव तारा ओर अगद से वाली के उपर्युक्त कथन उसकी सदाशयता सहृदयता आर स्नेह क परिचायक ह। मानवीयता का यह आदर्श रामायण क किसी भी अन्य पात्र म दिखाई नही देता। प्रेम घृणा अथवा द्वेष के कारण उसने कभी मर्यादा का भग नही किया। न तो वाली ने किसी के पक्ष म ही काइ अनुचित काय किया ओर न किसी निरपराध को दण्ड ही दिया। उसने सुग्रीव को घर स निष्कासित *अवश्य किया था किन्तु रामायण म ऐसा कोई उल्लख नही मिलता जो सुग्रीव की* पत्नी रुमा के प्रति उसके अमर्यादित व्यवहार को प्रमाणित कर सके। रुमा को बलपूर्वक रोके जान का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। कथावस्तु के अनुसार सुग्रीव का जब घर से निकाल दिया गया तब रुमा ठीक उसी प्रकार किष्किन्धा के

---

1 वा रा 4 22 20 22 2 वा रा 4 22.3-4 3 वा रा 4 22 13 15

राजमहलों में बनी रही थी जिस प्रकार लक्ष्मण के वनगमन के बाद उर्मिला अयोध्या में रही। सुग्रीव व्यर्थ ही वाली को बदनाम करता रहा था और यह भी आश्चर्य ही है कि राम ने सुग्रीव पर उसकी प्रवृत्तियों को समझे बिना ही विश्वास कर लिया था। वस्तुत सीता के वियोग में व्याकुल राम ने धर्म, नीति मर्यादा आचार सब कुछ भूल कर निरपराध और आदर्श चरित्र वाली की हत्या कर दी थी।

धर्म नीति और आचार की दृष्टि से वाली ठीक उसी मार्ग का अनुसरण करता रहा है जो स्वयं राम का था। ब्राह्मणों ऋषियों अथवा राजर्षियों द्वारा दी गयी व्यवस्थाओं के प्रति वाली की आस्था नि सन्देह उदाहरणीय है। मुझे यह कहने में भी कोई संकोच नहीं होता कि वाली ने राम की अपेक्षा अधिक दृढ़तापूर्वक आर्य व्यवस्थाओं का निर्वाह किया था। राग द्वेष अथवा इन्द्रिय विषयों की कोई भी ऐसी कमजोरी उसमें दिखाई नहीं देती जिसके आधार पर उसे पथ से विचलित हुआ माना जा सके।

भ्रातृ स्नेह के होते हुए भी सुग्रीव को जिस कारण से वाली ने घर से निकाल दिया था उल्लेख किया जा चुका है। राज्य के प्रति लोभ अथवा रुमा के प्रति आसक्ति इसमें कारण नहीं। वाली ने किसी भी निरपराध व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। रावण जैसे भयंकर आक्रमणकारी को उसने कमजोर मानकर उसे क्षमा कर दिया था। वह केवल अपनी प्रजा के हित के लिए चिन्तित रहा और आक्रमणकारियों का साहस के साथ सामना करते हुए अपने राज्य की रक्षा की। राज्य विस्तार के लिए दूसरे लोगों को कष्ट देने के लिए अथवा किसी भी अन्य कारण से उसने कभी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं किया। दूसरे राज्य में जाकर उपद्रव करने अथवा आक्रमण करने का वाली सख्त विरोधी रहा। वह केवल आक्रमणकारी राज्य में उपद्रव मचानेवाले अथवा ऐसे ही अपराधी को वध्य मानता था। इसलिए उसने राम से कहा था कि जब मैं आपके राज्य में या नगर में कोई उपद्रव नहीं कर रहा था तथा आपका तिरस्कार भी नहीं करता था तब आपने मुझे निरपराध होते हुए भी क्यों मारा?[1]

राजधर्म की मर्यादाओं का वाली दृढ़ता के साथ पालन करता रहा था। राजाओं के आचार विचार धर्म नीति और व्यवहार के विषय में उसकी जानकारी कम नहीं थी तथा उन मर्यादाओं का उल्लंघन उसने कभी नहीं किया। मृत्यु शय्या पर लेटे हुए उसने राम से राजधर्म के विषय में जो कुछ कहा उससे एक ओर उन व्यवस्थाओं के प्रति उसकी निष्ठा प्रमाणित होती है और दूसरी ओर इस तथ्य का उद्घाटन भी होता है कि वह राम को धर्म और नीति की परम्परा से फिसला हुआ मानता था। राम के विषय में पहले तारा से उसने कहा था कि राम धर्म के ज्ञाता और

1 वा रा 4 17 24

कर्तव्याकर्तव्य को समझते है इसलिए यह सोचना ही नहीं चाहिए कि वह पाप करेगे।[1] उसकी आशा और विश्वास के विपरीत राजधर्म की मर्यादा को भंग करते हुए राम ने जब उसे बाण से घायल कर दिया तब उसे आश्चर्य हुआ था। उसने राम से कहा था कि इन्द्रिय निग्रह मन का संयम क्षमा धर्म धैर्य सत्य पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना ही राजा के गुण होते है।[2] यदि दो के बीच में युद्ध हो रहा हो तो तीसरे असम्बद्ध व्यक्ति को छलपूर्वक किसी युद्धरत व्यक्ति पर आक्रमण नहीं करना चाहिए।[3] पृथ्वी सोना और सुन्दरी स्त्री—ये तीन वस्तुएँ ही दो के बीच में विग्रह का कारण होती है और इन्हीं के लिए राजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करता है।[4] नीति और विनय दण्ड और अनुग्रह—ये राजधर्म है। राजाओं को विवेकपूर्वक ही अवसर के अनुसार इनका उपयोग करना चाहिए। राजाओं को कभी स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।[5]

राजधर्म के अतिरिक्त वाली ने व्यक्ति के आचार धर्म के विषय में जो विचार व्यक्त किये है उनसे वह एक ऋषि तुल्य धर्मनिष्ठ महापुरुष ही दिखाई देता है। ब्राह्मण ऋषियों का वह सबसे अधिक सम्मान करता रहा है। उसने अपने जीवन में कभी किसी ऋषि की तप साधना में किंचित् भी व्यवधान उपस्थित नहीं किया। भूलवश दुन्दुभि का खून से लथपथ शव जब उसने दूर फेंका और वह मतंग ऋषि के आश्रम में गिरा तब मतंग के क्रोध के समाचार को सुनकर उसे गहरा पश्चात्ताप हुआ था। यह सोचकर भी उसे दुःख हुआ था कि उसी की गलती के कारण किष्किन्धा के वनवासियों को मतंग का कोप भाजन बनना पड़ा है। उसने पूरी नम्रता के साथ मतंग से माफी मांगी थी। मतंग जब उसकी ओर से मुँह मोड़कर चले गये थे तब भी उसे उन पर क्रोध नहीं आया बल्कि एक अपराधी की भाँति वह चुपचाप लौट आया था। सुग्रीव जब लड़ झगड़ कर मतंग के आश्रम में छिप गया था तब भी उनके शाप से भयभीत होने के कारण वाली ने उनके आश्रम में प्रवेश नहीं किया। यह घटना इस बात का प्रमाण है कि वाली ऋषियों के प्रति श्रद्धावनत था।

धर्म का प्रसंग उपस्थित होने पर स्मार्त ऋषियों की शैली में ही वाली अपने विचार व्यक्त करता रहा है। पाप पुण्य स्वर्ग-नरक कर्म परिणाम और जन्मान्तर को वह धर्म व्यवस्थापकों की भाँति ही स्वीकार करता था। सुग्रीव के प्रति द्वेषभाव को पूर्वजन्मकृत कर्म का परिणाम मानते हुए उसने कहा ही था कि कदाचित् हम दोनों के भाग्य में कुछ ऐसा ही लिखा था जिसके कारण हम दोनों भाई मिल-जुलकर सुखपूर्वक नहीं रह सके।[6] वाली ने यद्यपि वैदिक परम्परा का कहीं भी विरोध नहीं किया किन्तु वह विशुद्ध रूप से स्मार्त परम्परा का ही अनुयायी रहा है। न तो उसने

---

1 वा रा 4 16 5 2 वा रा 4 17 19 9 3 वा रा 1 17 25 4 वा रा 4 17 31
5 वा रा 4 17 37 6 वा रा 1 22 3 1

इन्द्र यम कुवर आदि वदिक देवताआ क प्रति श्रद्धा ही व्यक्त की और न यज्ञ यागादि ही किये थ। य`न की वजाय सूर्योदय से पहल चारो समुद्रा के तट पर जाकर स`घ्या-वन्दन करना वाली का प्रतिदिन का नियम रहा है। उसने वडे से वडे कठिन समय म भी सन्ध्या वन्दन के अपने नियम का भग नही होने दिया। रावण ने युद्ध की इच्छा से जव किष्कि`धा के दरवाजे पर गर्जना की थी तव वाली स`ध्या `न्दन क लिए गया हुआ था।[1] रावण जव उसकी खोज करता हुआ दक्षिण समुद्रतट पर पहुँचा तव वाली वहाँ स`ध्या-उपासना म ही लीन था।[2] वह वदिक मन्त्रो का जप करता हुआ अविचल मान मुद्रा म आसी`न था।[3] रावण की युद्ध की अभिलापा का समझकर वाली ने उस अनायास ही अपनी कोख म दवा लिया था आर पूर्व की भाति ही सन्ध्या उपासना करता रहा। रावण यद्यपि वाली का नाचता-काटता रहा किन्तु उसको काख म दवाय हुए ही वाली ने नित्य नियम के अनुसार चारा समुद्रतटा पर स्नान, स`ध्या उपासना ओर जप का अनुष्ठान पूरा किया था।[4] नास्तिकता का वह जवरदस्त विरोधी रहा ह।

धर्म आर आचार सिद्धान्तो की चचा वाली ठीक इस प्रकार करता था मानो स्मृतियाँ आर धर्मशास्त्र उसे कण्ठस्थ रह हा। राम स उमन कहा था कि राजा का वध करनवाला ब्राह्मण का हत्यारा, गो को मारनेवाला चोर प्राणि हिसक नास्तिक आर परिवेत्ता—यह सभी नरकगामी हात है। चुगली करनवाला, लाभी मित्रघाती तथा गुरुपत्नीगामी निश्चित ही पापात्माआ के लोक में जाते ह।[5] इसके साथ ही मास भक्षण के विषय म भी उसने स्मृतिया की व्यवस्था को ही प्रमाण मानते हुए कहा था कि मनुष्या के लिए वानरा का चमडा रोम आर अस्थिया का उपयोग वर्जित ह। धर्माचारिया के लिए इनके मास का भक्षण भी निषिद्ध है। वेस पचनखिया का मास भक्षण भी वर्जित है किन्तु शल्यक श्वाविध गाधा शश (खरगोश) आर कूर्म (कछुआ) का मास भक्ष्य कहा गया है। मनीषी पुरुषा को वानर क चमडे आर अस्थियो का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। वानर का मास भी भक्ष्य नही हाता हे।[6]

वाली न राम की भर्त्सना करते हुए ओर उनको कडे शब्दा म फटकारते हुए जा कुछ कहा था उसस भी उसके धार्मिक विश्वासा आर आचार सिद्धान्ता पर पर्याप्त प्रकाश पडता ह। उसके कथन स यह भी साफ हा जाता हे कि स्मार्त परम्परा का उल्लघन उसके लिए किसी भी दशा म सह्य नही था। मन वाणी आर कर्म की एकरूपता का वह जवरदस्त समर्थक था ओर यह दखकर उस गहरा आश्चय हुआ था कि राम न जिस रास्ते को अख्तियार कर उसका वध किया था वह न केवल राजाओ की युद्धनीति के प्रतिकूल था वल्कि राम की ख्याति आर प्रतिष्ठा के भी

1 वा रा 7 34 6 2 वा रा 7 34 12 3 वा रा 7 34 18 4 वा रा 7 34 27 32
5 वा रा 4 36 37 6 वा रा 4 17 38-40

अनुरूप नहीं था। किष्किंधा तक पहुँचते पहुँचते राम के धर्मवान्, नीति मर्यादा और आचार सम्पन्न होने की ख्याति चारो ओर फैल चुकी थी। इसीलिए तारा ने राम और सुग्रीव की मैत्री के विषय म सुनकर वाली को जब युद्ध के लिए जाने से रोका था तब वाली ने बड ही विश्वासपूर्वक उससे कहा था कि धर्म नीति और मर्यादा का अनुसरण करनेवाले राम कभी पाप कर्म नहीं करेंगे।[1] राम ने वनवास की अवधि म जटाजूट वल्कल वस्त्र और मुनिवेष धारण किया था। इस दशा म उनके धर्मनिष्ठ होने का विश्वास करना भी उचित ही था किन्तु वाली को आखिर कहना ही पडा कि यह सब उनका पाखण्ड और छलावा था। वाली का कथन उसके आदर्शों का प्रतिबिम्ब ह। उसने कहा था

आप एक राजा के सुविख्यात पुत्र हैं। आपका दर्शन भी सबको प्रिय ह। मै आपसे युद्ध करने नहीं आया था बल्कि दूसरे क साथ युद्ध म उलझा हुआ था। इस दशा म मेरा वध करके आपने कौन सा गुण प्राप्त कर लिया है। जब मै दूसरे के साथ युद्ध कर रहा था तब आपने बीच म ही मुझे मारा है। इस पृथ्वी पर सभी लोग आपको कुलीन सत्त्व गुण-सम्पन्न तेजस्वी चरित्रवान्, करुणाशील प्रजा का हितैषी दयालु महान् उत्साही समयोचित कार्य करनेवाले दृढव्रती मानते ह। इन्द्रिय निग्रह मन का सयम क्षमा धर्म धैर्य, सत्य पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना ही राजा के गुण ह। आपमे इन गुणो का विश्वास करके ही तारा के मना करने पर भी म सुग्रीव से युद्ध करने चला आया था। जब तक मैने आपको नही देखा था तब तक मेरे मन मे यही विश्वास था कि दूसरे के साथ युद्ध करते हुए मेरे ऊपर आप धोखे मे प्रहार नही करेंगे परन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि आपकी बुद्धि मारी गयी ह। आप अधर्मी होते हुए भी धर्म का झण्डा लिये फिरते है। आपका आचार व्यवहार पापपूर्ण ह। आप घासफूस से ढके हुए कुए के समान धोखेबाज है। आपने साधु पुरुषो का सा वेष धारण कर रखा ह परन्तु पापकर्मी ह। राख से ढकी हुई आग क समान आपका पापकर्मो का असली रूप साधुवेष म छिप गया ह। म नही जानता था कि लोगो को छलने के लिए आपने धर्म का यह ढोंग रचा है। जब मैने आपके राज्य या नगर म कोई उपद्रव नहीं किया आपका कभी तिरस्कार भी नही किया तब बिना किसी अपराध के आपने मुझे क्यो मारा? आप एक सम्माननीय नरेश के पुत्र ह विश्वास क योग्य ह और देखने म भी प्रिय हैं। आपने धर्म के साधनभूत चिह्न भी धारण कर लिये ह। क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न शास्त्र का ज्ञाता सशय रहित और धार्मिक वेशभूषा धारण करके भी कौन मनुष्य तुम्हारे जैसे क्रूर कर्म कर सकता है। रघु क कुल म आपका जन्म हुआ है। आप धर्मात्मा क रूप म प्रसिद्ध ह। फिर भी ऊपर से विनीत और दयालु, साधु पुरुष जैसा भव्य

---

1 वा रा 4 16 5

रूप धारण करके भी इस प्रकार के क्रूर कर्म करते हुए इधर-उधर क्या घूम रहे हैं? राजाओं के आचार सिद्धान्तों के प्रतिकूल आप काम के दास, क्रोधी और मर्यादा का भंग कर व्यवहार करनेवाले हैं। राजाओं के धर्म का विचार किये बिना ही स्वेच्छाचारी की भाँति आप धनुष-बाण का प्रयोग करते फिरते हैं। आप न तो धर्म का ही आदर करते हैं और न अर्थसाधन में ही आपकी बुद्धि स्थिर है। आप स्वच्छाचारी हैं इसलिए आपको इन्द्रियाँ जहाँ चाहें आपको खींच ले जाती हैं। मैं सर्वथा निरपराध था तब भी मुझे बाण से मारने का घृणित कर्म करके सत्पुरुषों के बीच में आप क्या कहेंगे? जैसे सुशीला युवती पापात्मा पति से सुरक्षित नहीं हो पाती उसी प्रकार आप जैसे स्वामी को पाकर यह वसुधा सनाथ नहीं हो सकती। आप शठ अपकारी क्षुद्र और झूठे ही शान्तचित्त होने का ढोंग रचते हैं। राजा दशरथ ने आप जैसे पापी को कैसे उत्पन्न किया। जिसने सदाचार का रस्सा तोड़ डाला है सत्पुरुषों के धर्म एवं मर्यादा का उल्लंघन किया है धर्मरूपी अंकुश की अवहेलना कर दी है ऐसे राम रूपी हाथी के द्वारा मैं मारा गया हूँ। हम-जैसे उदासीन प्राणियों पर आप जैसा पराक्रम दिखाते फिरते हैं वैसा पराक्रम आप अपने अपकार करनेवालों पर भी प्रकट करते हो यह मुझे दिखाई नहीं देता। जैसे किसी सोये हुए पुरुष को साँप आकर डस ले और वह मर जाय उसी प्रकार रणभूमि में मुझको आपने छिपकर मारा है और इस प्रकार आप पाप के भागी हुए हैं। मेरे स्वर्गवासी होने पर सुग्रीव जो यह राज्य प्राप्त करेंगे यह तो उचित ही है किन्तु अनुचित यही है कि आपने मुझे युद्ध में अधर्मपूर्वक मारा है।[1]

वाली का उपर्युक्त कथन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह उन्हीं आचार सिद्धान्तों का अनुसरण करता था जिनका मनु आदि स्मार्त ऋषियों ने प्रतिपादन किया है। आस्तिकता इन्द्रिय निग्रह, शम दम दया, धैर्य धर्म आदि पर उसने सबसे अधिक जोर दिया है। राजकुल में उत्पन्न होने पर भी राम ने ऋषियों द्वारा प्रतिपादित राजधर्म परम्परा का उल्लंघन किया था इस पर उसे दुःख हुआ था। आडम्बर का वह सख्त विरोधी था। राम को फटकारते समय उसने अनेक स्मृति वाक्यों को ही यथावत् उद्धृत किया है। नास्तिक और परिवेत्ता को मनु ने नरकगामी कहा है वाली ने भी मनु के वाक्य का ही प्रमाण मानकर अपनी बात कही थी। इसी प्रकार वानरों के मांस को अभक्ष्य और शल्यक श्वाविध आदि पाँच पचनखियों के मांस को उसने भक्ष्य कहा था। इस विषय में वाली मनु के सिद्धान्तों को ही स्वीकार करता है। स्मार्त परम्परा के अनुसार वाली के कुल में मृतक को जलांजलि देने की प्रथा मान्य थी। स्वयं वाली को उसके पुत्र अंगद के द्वारा जलांजलि दी गयी थी। मद्यपान का भी वाली विरोधी रहा है। जब दुन्दुभि ने उसे मधुमत्त

---

1 वा रा 4 17 16

समझा था तब उसने साफ कहा था कि तुम यह न समझो कि वाली मधु पीकर मतवाला हो गया है बल्कि मेरे पान को तुम युद्ध मे उत्साहवर्धक वीरपान ही समझो।[1] तारा को धैर्य बधाते समय हनुमान ने वाली के धर्माचरण की प्रशसा करते हुए कहा था कि इन्होने नीतिशास्त्र के अनुसार अर्थ के साधन राज्यकार्य का सचालन किया है। ये उपयुक्त समय पर साम दाम ओर क्षमा का व्यवहार करते आये है। अत धर्मानुसार प्राप्त होनेवाले लोक की ही इन्हे प्राप्ति हुई है। इनके लिए तुम्हे शोक नही करना चाहिए।[2] वाली के धर्माचरण को ध्यान मे रखकर ही उसकी मृत्यु पर कहा गया हे कि वानरो और भालुओ के यूथपति वाली के धराशायी हो जाने पर यह पृथ्वी चन्द्ररहित आकाश के समान शोभाहीन हो गयी है।[3]

वस्तुत रामायण के रचना शिल्प कथावस्तु के रूपाकन राम के अवतारत्व राम के हाथो वाली की मृत्यु और अन्तत तुलसी के प्रभाव ने ही वाली के चरित्र को गौण बना दिया है अन्यथा वाली म वे सभी गुण विद्यमान थे जो रामायण जैसे महाकाव्य के नायक म अपेक्षित होते हे। वाली के विषय मे राम को जो कुछ भी जानकारी मिली थी वह सुग्रीव से ही मिली थी ओर उन्होने कबध के इशारे पर सीता की खोज के लोभ म तपाक से सुग्रीव के साथ शर्तपूर्ण समझौता कर लिया था। यदि उनको यह भी ज्ञात हो सका होता कि वाली में रावण को जीते जी सीता समेत पकड लाने की शक्ति थी तो कदाचित् उनकी मैत्री सुग्रीव से न होकर वाली से होती। वाली के पराक्रम को देख सुनकर और सुग्रीव के साथ निश्चित समझौते की शर्त पूरी करने के लिए ही उन्हे उसको छिपकर मारने के लिए मजबूर होना पडा। वाली को राम के द्वारा जो उत्तर दिया गया है वह निहायत ही कमजोर और *जबरदस्ती की बहानेबाजी रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि राम की विवशताओ पर* परदा डालने ओर उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ही यह पगु प्रयास किया गया है। आचार और धर्म की दृष्टि से वाली निश्चय ही रामायण का आदर्श पात्र है।

---

1 वारा 4 11 38 2 वारा 4 21 7 3 वारा 4 17 3

उदारमना तारा की प्रेम ओर समर्पण-भावना

रामायण मे कासल्या कैकयी सुमित्रा, सीता, उमिला माण्डवी श्रुतिकीर्ति तारा, मन्दादरी, मन्थरा अनसूया शवरी, शूर्पणखा ताटका अहल्या आदि अनेक नारी पात्रो को सम्मिलित किया गया हे। इनम स अनेक का मात्र नामोल्लेख ही किया गया ह। तारा यद्यपि वाली क प्रसग से ही जुडी हुई है किन्तु संक्षिप्त और सीमित वर्णन से ही उसका उदात्त चरित्र उभरकर प्रभावशाली वन गया है। जिन कारणा से वाली की प्रतिष्ठा गोण हो गयी है ठीक वही कारण तारा की महत्ता को कम करने के लिए उत्तरदायी रहे ह। आचार ओर धर्म की दृष्टि से वस्तुत तारा सभी नारी पाजो मे अग्रणी रही है। स्मार्त ऋपिया ने नारी के लिए आचार आर धर्म की जा व्यवस्थाएँ दी थीं तारा उनस कभी विचलित नहीं हुई।

तारा वरुण के पुत्र सुपेण[1] *की पुत्री थी। वाली ने स्वय उस सुपेणदुहिता कहा ह।*[2] वाली के साथ उसके विवाह का और अगद के जन्म का कुछ भी वर्णन रामायण में उपलब्ध नही। तारा के अगद ही एकमात्र पुत्र उत्पन्न हुआ था ओर जव उसकी आयु भी अधिक नही थी तभी वेचारी को वैधव्य का सामना करना पडा।

धर्म नीति आचार और व्यवहार का जितना सम्यक् ज्ञान तारा को रहा है उतना रामायण के किसी अन्य नारी पात्र को दिखाई नहीं देता। अनसूया केवल पातिव्रत धर्म का उपदेश देकर आर शवरी भक्ति की चर्चा करके ही शान्त हो जाती है। कौसल्या और कैकेयी के सम्वन्ध म अन्यत्र लिखा ही जा चुका है। सीता में भी व्यवहार क अनेक दोप दिखाई देते है। किन्तु तारा के चरित्र ओर व्यवहार के विपय म उँगली उठाने की भी गुजायश नही। वह परम विदुपी नीति और धर्मज्ञा थी। वाली उसके रूप सान्दर्य पर नही अपितु गुणो पर मुग्ध था। प्राण-त्याग के पहले उसने सुग्रीव से कहा था कि सुपेण की पुत्री तारा सूक्ष्म विपयो के निर्णय करने मे तथा सभी प्रकार के उत्पाता के पूर्व सकेतो का समझने मे अत्यन्त निपुण है। वह जिस कार्य को अच्छा वताये उसे सन्देहरहित होकर करते रहना। तारा की किसी भी सम्मति का परिणाम कभी उलटा नहीं होता।[3] वाली के मरने का समाचार सुनकर जव तारा फूट फूट कर रो पडी तव हनुमान ने भी उससे कहा था कि तुम स्वय

---

1 वा रा 1 17 15 2 वा रा 4 22 13 6 42 26 3 वा रा 4 22 13-14

था। तारा के चरित्र की यह विशेषता है कि न तो वाली अथवा अंगद के प्रति प्रेम के अतिरेक ने ही उसे विचलित किया न राजमहिषी के गौरव ने उसमें अभिमान की भावना उत्पन्न की, न परिवार के कलह ने उसके विवेक को नष्ट किया और न किसी अन्य परिस्थिति ने धर्माचरण से ही अलग किया। राज्य-व्यवस्था के संचालन में उसने कभी हस्तक्षेप नहीं किया बल्कि समय समय पर वाली को नेक सलाह ही देती रही थी। मायावी और दुन्दुभि-जैसे शत्रुओं के आक्रमण के समय वह अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों के साथ वाली को घेरकर खड़ी हो जाती और केवल अपनी गीली आँखों से ही मंगल कामना करती रहती थी।

वाली के प्रति तारा के मन में असीम प्रेम था। राज्य-व्यवस्था में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करते हुए भी प्रमुख घटनाओं की उसे पूरी जानकारी रहा करती थी। वाली के पराक्रम पर उसे पूरा विश्वास था और इसीलिए मायावी और दुन्दुभि के साथ युद्ध करने के लिए जाते समय उसने वाली को रोकने की आवश्यकता नहीं समझी। सुग्रीव जब पहली बार युद्ध के लिए आया था तब भी उसने कोई रुकावट नहीं डाली। उस समय तक कदाचित् उसे राम और सुग्रीव की मैत्री के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। सुग्रीव ने जब दूसरी बार युद्ध के लिए वाली को ललकारा था तब तारा के मन में शंका उत्पन्न हो गयी थी। उसने सोचा था कि लगातार अनेक बार पिटने के बाद भी सुग्रीव के फिर से युद्ध के लिए आने के पीछे अवश्य कोई रहस्य होना चाहिए। अंगद के द्वारा उसे राम लक्ष्मण के आने का समाचार मिल चुका था और राम के पराक्रम के विषय में भी उसने सुन लिया था। सुग्रीव के स्वभाव के विषय में वह जानती ही थी कि वह किसी अन्य के साथ बहुत सोच समझकर ही मैत्री करता है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर उसने वाली को समझाते हुए कहा था कि आप क्रोध का त्याग कर युद्ध में जाने का निर्णय लें। सुग्रीव पहले भी यहाँ आये थे और क्रोधपूर्वक उन्होंने आपको युद्ध के लिए ललकारा था। उस समय आपने नगर से निकलकर उन्हें परास्त किया और वे आपकी मार खाकर सभी दिशाओं की ओर भागते हुए मतंग वन में चले गये थे। इस प्रकार आपके द्वारा पराजित और पीड़ित होने पर भी वे पुनः यहाँ आकर आपको युद्ध के लिए ललकार रहे हैं। यह बात मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रही है। इस समय गरजते हुए सुग्रीव का दर्प और उपक्रम जैसा दिखाई देता है तथा उनकी गर्जना में जो उत्तेजना जान पड़ती है इसका कोई छोटा मोटा कारण नहीं होना चाहिए। मैं समझती हूँ कि सुग्रीव किसी प्रबल सहायक के बिना इस बार यहाँ नहीं आये हैं। किसी सबल सहायक को साथ लेकर ही आये हैं जिसके बल पर ये इस तरह गरज रहे हैं। सुग्रीव स्वभाव से ही कार्यकुशल और बुद्धिमान् हैं। वे किसी ऐसे पुरुष के साथ मैत्री नहीं करेंगे जिसके बल और पराक्रम को अच्छी तरह परख न लिया

हो।[1] इसके बाद राम के शौर्य की चर्चा करते हुए उसने सलाह दी थी कि आप सुग्रीव का युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दीजिए और राम के साथ भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लीजिए। छोटे भाई होने के कारण सुग्रीव आपका स्नेह पाने के अधिकारी है। वे कहीं भी रहें आपके भाई ही हैं। उनके समान भाई कोई दूसरा मुझे दिखाई नहीं देता। आप दान मान आदि सत्कारों के द्वारा उन्हें अपना अन्तरंग बना लीजिए जिससे वे इस वैर भाव को छोड़कर आपके पास रह सकें। इस समय भ्रातृ प्रेम का सहारा लेने के सिवा आपके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं है।[2]

तारा के उपर्युक्त विचार उसके नीतिविद्, व्यवहारविद् और विवेकशील होने के प्रमाण हैं। वाली के प्रति उसका अगाध प्रेम उसके विलाप से प्रकट होता है। वालि वध का समाचार सुनकर वह अपने बेटे अंगद को साथ लेकर बड़ी ही व्यग्रता के साथ रोती, सिर और छाती पीटती हुई उस स्थल पर पहुँची थी जहाँ वाली का शव पड़ा हुआ था। राम को उसने प्रत्यक्ष काल की संज्ञा देते हुए उनसे कहा था कि दूसरे के साथ युद्ध में लगे हुए वाली को मारकर आपने अत्यन्त निन्दित कर्म किया है और आश्चर्य है कि इस प्रकार का कुत्सित कर्म करके भी आप सन्तप्त या शर्मिन्दा नहीं हो रहे।[3] इसके साथ ही वह वाली को देखकर बुरी तरह से रो पड़ी थी। किष्किन्धा के वानर सुग्रीव से पहले से ही भयभीत थे। इसलिए उन्होंने तारा से कहा था कि राम रूपी यमराज ने वाली के प्राण ले लिये हैं। अब तुम शूरवीरों की सहायता से नगर की रक्षा करो और अंगद को किष्किन्धा के राज्य पर अभिषिक्त कर दो।[4] सुग्रीव पक्ष के वे वानर जो पहले राज्यसुख से वंचित कर दिये गये थे किष्किन्धा में प्रवेश कर महान् भय उपस्थित करेंगे।[5] इसके अतिरिक्त हनुमान लक्ष्मण और राम ने भी उसे सभी प्रकार से समझाने बुझाने की कोशिश की थी। यह सब होते हुए भी तारा का दुःख हलका नहीं हुआ। उसने वाली के साथ ही प्राण त्याग करने की कामना की थी। हनुमान से उसने कहा था कि अंगद के समान सौ पुत्र एक ओर और मरे हुए होने पर भी इस वीरवर स्वामी का आलिंगन करके सोती होना दूसरी ओर—इन दोनों में से वीर पति के शरीर का आलिंगन मुझे श्रेष्ठ जान पड़ता है। इसके बाद उसने राम से कहा था कि आपने जिस बाण से मेरे प्रियतम पति का वध किया है उसी बाण से आप मुझे भी मार डालिए। मैं मरकर उनके समीप चली जाऊँगी। मेरे बिना वाली कहीं भी सुखी नहीं रह सकेंगे।[6]

तारा के विलाप से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वाली तारा के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री से प्रेम करता ही नहीं था। उसने राम से कहा था कि वाली स्वर्ग में जाकर भी जब सभी ओर दृष्टि डालकर मुझे नहीं देखेंगे तब उनका मन वहाँ कदापि नहीं

---

1 वा रा 4 15 10 11 2 वा रा 4 15 23 28 3 वा रा 4 20 15 4 वा रा 4 19 14
5 वा रा 4 19 15 16 6 वा रा 4 21 33 40

लगगा। फूला स विभूषित चोटी धारण करनवाली तथा विभिन्न साज-शृगार स सुन्दर प्रतीत हानवाली अप्सराआ का भी व स्वीकार नहीं करग। स्वर्ग म वाली मर बिना शाक का अनुभव करग आर उनकी कान्ति फीकी पड जाएगी। वे उसी प्रकार दु खी रहग जिस तरह आप सीता क बिना दु खी ह।[1] यद्यपि तारा ने एक स्थल पर यह अवश्य कहा ह कि वाली ने सुग्रीव की पत्नी को छीनकर उसको घर स निकाल दिया था उसी का यह परिणाम ह[2] किन्तु उसक इस कथन म यह ध्वनि बिलकुल नही ह कि वाली क मन म रुमा क प्रति किंचित् भी वासनाजनित दुभावना रही थी। इसक बाद भी पता नही राम न किस आधार पर वाली पर कामी आर विलासी होन का आराप मढ दिया था।

तारा ने वाली के शव क चरणा पर अपना मस्तक रखकर अपनी भूला क लिए क्षमा माँगा थी। उसने रात हुए अवरुद्ध कण्ठ स कहा था कि यदि नासमझी के कारण मन आपका काइ अपराध किया हा ता आप उस क्षमा कर दे। मैं आपके चरणा म मस्तक रखकर यह प्राथना करती हूँ।[3] वाली की मृत्यु के समय अगद एक अबाध बालक ही था। वह पिता क शव आर माता को रात विलखत हुए दखकर चुपचाप राना हुआ खडा रहा था। तारा न ही उससे कहा था कि प्रात काल क सूर्य की भाँति अरुण आर गार शरीरवाले तुम्हार पिता राजा वाली अव यमलाक का जा पहुँच। य तुम्ह बडा आदर देते थे इनक चरणा म प्रणाम करा।[4] जब अगद न मे अगद हूँ कहते हुए वाली क चरणा का प्रणाम किया था तब फिर तारा फूटकर रोने लगी थी।

उल्लखनीय ह कि रामायण म दशरथ जटायु रावण कुम्भकण मघनाद कोसल्या मारीच तथा अनक पात्रो क मरन का वणन किया गया ह किन्तु वालि-वध आर तारा के विलाप का पढकर पत्थर भी पिघल जात ह। दशरथ के मरण क अवसर पर उनक शव की सुरक्षा भरत का बुलाय जाने आदि की तयारी हाती रही किन्तु कोसल्या आदि रानिया अथवा पुरवासिया को कोई दु ख हुआ था इसका पता ही नही चलता। पति प्रम पुत्र के प्रति ममत्व कुलमर्यादा के प्रति आदर आर व्यवहार के प्रति जो निष्ठा वाली आर तारा प्रकरण म दिखाइ दती है वह अन्यत्र दखने का नहीं मिलती। राम का आदर्श सीता के प्रति उनका प्रम आर मयादा पालन सब-कुछ वाली आर तारा के सामने फीक पड जात ह।

समाज की पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को ही तारा स्वीकार करती थी। रामायण क अन्य नारी पात्रो ने विविध प्रकार से नारी-अधिकारो के प्रति सकेत किया है। कैकेयी क चरित्र स ज्ञात होता हे कि वह पति या पुरुष को नारी की अपक्षा वरण्य मानने के लिए तयार ही नहीं थी। कोसल्या न पिता दशरथ की आज्ञा की अवहेलना

1 वा रा 4 24 34 3 2 वा रा 4 20 11 3 वा रा 4 20 25 4 वा रा 4 23 23

कर राम को माँ के रूप में स्वयं अपनी आज्ञा से वन जाने से रोकने का प्रयत्न किया था। सीता ने भी राम के अलावा दशरथ, लक्ष्मण, भरत किसी की कोई परवाह नहीं की। किन्तु तारा की आस्थाएं इन सबसे अलग रही है। वैधव्य को नारी के लिए वह सबसे बड़ा अभिशाप मानती थी। उसके अनुसार सन्तति वैभव और धन धान्य की समृद्धि विधवा नारी को न तो सुख ही दे सकते है और न समाज में उसकी प्रतिष्ठा की ही रक्षा कर सकते है। जब वानरों लक्ष्मण हनुमान और राम ने अंगद की ओर इंगित करते हुए शान्त होने की सलाह दी थी तब उसने बड़े ही दर्दभरे स्वर में कहा था कि पतिहीन नारी भले ही पुत्रवती एवं धन धान्य से समृद्ध हो फिर भी लोग उसे विधवा ही कहते है।[1] वानरों को भी उसने उत्तर दिया था कि जब मेरे महाभाग पतिदेव कपिसिंह वाली ही नहीं रहे तब मुझे पुत्र से राज्य से तथा अपने इस जीवन से भी क्या प्रयोजन है। मैं तो वाली के चरणों के समीप ही जाऊंगी।[2] वाली को देखकर रोते हुए उसने कहा था कि मैने कभी दीनतापूर्ण जीवन नहीं बिताया था कभी ऐसे महान् दुःख का सामना नही किया था किन्तु आज आपके बिना मैं दीन हो गयी। अब मुझे अनाथ की भाँति शोक सन्ताप से पूर्ण वैधव्य जीवन व्यतीत करना पडेगा।[3] निश्चय ही बुद्धिमान् को चाहिए कि वह अपनी कन्या कभी किसी शूरवीर के हाथों मे न दे। मैं शूरवीर की पत्नी होने के कारण ही तत्काल विधवा बना दी गयी।[4] वैधव्य के इस दुःख की अनुभूति कौसल्या कैकेयी और सुमित्रा को भी नहीं हुई थी। यद्यपि कौसल्या ने वैधव्य का स्मरण कर दुःख अवश्य प्रकट किया था किन्तु वह कैकेयी को गालियाँ देने में और राम की याद मे बदल गया था। प्रत्यनुगामिनी नारियों में तारा का जीवन ही आदर्श रहा है।

तारा के अनुसार समाज मे पुरुष का स्थान ही सर्वोपरि है। वह कदाचित् नारी को किसी भी प्रकार के अधिकार दिये जाने की समर्थक नहीं। परिवार की बूढी पुरानी स्त्री का उसके विचार से कोई महत्त्व नही वल्कि आयु मे सबसे ज्येष्ठ पुरुष को ही परिवार का मुखिया मानती थी। अन्यत्र लिखा जा चुका है कि वाली के वंश मे भी ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य का अधिकारी माना जाता था और इस प्रकार वाली के पश्चात् तारापुत्र अंगद ही राजा बनने का अधिकारी था। वह यह भी जानती थी कि क्रोध से पागल सुग्रीव के वश मे पडकर अंगद की दुर्दशा कर डाली जाएगी।[5] हनुमान ने तारा से कहा था कि तुम्हारे पुत्र अंगद जीवित है। अब तुम्हे इन्ही की ओर देखना चाहिए और इनके लिए भविष्य में जो उन्नति के साधक श्रेष्ठ कार्य हो उनका विचार करना चाहिए। ये सभी श्रेष्ठ वानर अंगद और वानर ऋक्षों का

---

1 वा रा 4 23 12 2 वा रा 4 19 18 19 3 वा रा 4 20 16 4 वा रा 4 23 8
5 वा रा 4 20,17 6 वा रा 4 21 4

यह राज्य तुमसे ही सनाथ है—तुम्ही इन सबकी स्वामिनी हो।[1] राम और सुग्रीव की संधि के विपरीत हनुमान ने अगद के राज्याभिषेक का सुझाव भी दिया था। उन्होने कहा था कि शोक सन्तप्त अगद और सुग्रीव को भावी कार्य के लिए प्रेरित करो और अगद ही तुम्हारे अधीन रहकर इस पृथ्वी का शासन करे। वानरराज का अन्त्येष्टि संस्कार और कुमार अगद का राज्याभिषेक किया जाए। बेटे को राज्य सिंहासन पर बैठा देखकर तुम्हे शान्ति मिलेगी।[2] तारा ने अपनी मान्यताओं के कारण ही हनुमान के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। उसने उत्तर में कहा था कि मैं न तो वानरों के राज्य की स्वामिनी हूँ और न मुझे अगद के लिए कुछ करने का अधिकार है। इसके चाचा सुग्रीव को इन सभी बातो का अधिकार प्राप्त है। आपके द्वारा अगद के विषय में दी गयी सलाह भी मेरे किसी काम की नही। आपको यह समझना चाहिए कि पुत्र के वास्तविक बन्धु पिता और चाचा ही होते है, माता नही।[3] यह स्मरणीय है कि मनु आदि स्मृतिकारो द्वारा भी ठीक यही व्यवस्था दी गयी है जो तारा को मान्य थी। अपने इन्हीं विश्वासो के बल पर उसने सुग्रीव का राज्याभिषेक बरदाश्त किया था।

नारी के प्रति पुरुषो द्वारा किये जाने योग्य व्यवहार के विषय मे भी मनु आदि स्मृतिकारो ने अनेक व्यवस्थाएँ दी है। इनके अनुसार परस्त्री की ओर देखने तक का निषेध किया गया है। लक्ष्मण जब किष्किन्धा पहुँचकर अन्त पुर के द्वार पर ठहर गये और तारा ने आकर उनका स्वागत किया था तब इन्हीं स्मार्त व्यवस्थाओं का स्मरण करते हुए उन्होने अपनी नजर नीची कर ली थी। यह देखकर तारा ने उनसे कहा था कि परस्त्री को देखना अनुचित समझकर आप अन्त पुर के भीतर नहीं आये। इस प्रकार आपने सदाचार की रक्षा की है किन्तु निष्कपट होकर मित्र भाव से स्त्रियो की ओर देखना सत्पुरुषो के लिए निषिद्ध नही है।[4] इसके साथ ही वह लक्ष्मण को अन्त पुर के भीतर लिवा ले गयी थी।

शस्त्र प्रहार करते हुए स्त्री की हत्या करने का भी स्मृतिकारो ने निषेध किया है। राम ने इस व्यवस्था का अतिक्रमण करते हुए पिता और गुरु की आज्ञा को महत्त्वपूर्ण मानकर ही निरपराध ताटका का वध कर डाला था। वालि-वध से दुखी होकर तारा ने भी राम से अनुरोध किया था कि वे उसको भी मार डाले ताकि वह पति वियोग के दुःख से बच सके। तारा की बात सुनकर भी राम मूर्तिवत् खडे रह गये थे। तारा को भ्रम हुआ था कि कदाचित् राम नारी हत्या के पाप से बचने के कारण ही उस पर बाण नहीं चला रहे। इस प्रसग में तारा ने पाप और हत्या की स्मृतियो द्वारा दी गयी व्यवस्थाओ को ही स्पष्ट करते हुए कहा था कि यदि आप चाहते है कि आपको स्त्री हत्या का पाप न लगे तो मुझे वाली की ही आत्मा समझकर

---

1 वा रा 4 21 8 2 वा रा 4 21 8 9 11 3 वा रा 4 21 14 15 4 वा रा 4 33 61

मेरा वध कर डालिए। ऐसा करने से आपको स्त्री हत्या का पाप नहीं लगेगा। शास्त्रोक्त यज्ञ यागादि कर्मों में पति और पत्नी दोनों को संयुक्त अधिकार होता है। वैदिक श्रुतियां भी पत्नी को पति का आधा शरीर ही बतलाती हैं। इस प्रकार यदि धर्म की ओर दृष्टि रखते हुए आप मुझे मेरे प्रियतम वाली को समर्पित कर देंगे तो आप मेरी हत्या करके भी पाप के भागी नहीं होंगे। मैं दुखिनी और अनाथ हूँ, पति से दूर कर दी गयी हूँ। ऐसी दशा में मुझे जीवित छोड़ना आपके लिए उचित नहीं है।'[1]

तारा केवल स्मार्त व्यवस्थाओं को ही नहीं अपितु वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञ-यागादि विधि विधान पुराण और इतिहास को भी भली भाँति जानती थी। बल्कि मन्त्रों का भी उसको अच्छा ज्ञान था। उसके द्वारा रोके जाने पर भी वाली जब सुग्रीव से युद्ध के लिए अन्त पुर से बाहर निकला था तब तारा ने मन्त्रपाठ सहित स्वस्तिवाचन करते हुए उसके लिए मंगल कामना की थी।[2] वह जानती थी कि पत्नी के बिना पुरुष के द्वारा अकेले ही यज्ञ करने का विधान ही नहीं इसलिए उसने वाली के शव के निकट उसको उलाहना देते हुए कहा था कि आपने युद्धरूपी यज्ञ का अनुष्ठान करके राम के बाणरूपी जल से मुझ पत्नी के बिना अकेले ही अवभृथ स्नान कैसे कर लिया।[3] लक्ष्मण से बात करते हुए उसने सहज ही विश्वामित्र और मेनका के प्रणय प्रसंग को सुना दिया था।[4]

तारा की आचार विषयक आस्थाओं पर लक्ष्मण और उसकी बातचीत से विशेष प्रकाश पड़ता है। काम और क्रोध के विषय में उसके विचारों को ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। असमय और आत्मीयजनों पर क्रोध करने को वह कभी उचित नहीं मानती। राजा की प्रतिष्ठा को मानते हुए उसके प्रति कठोर वचन बोलने का अधिकार स्मृतिकारों ने भी किसी को दिया हो नहीं। लक्ष्मण ने जब सुग्रीव पर क्रोध प्रकट करते हुए उसे बुरा भला कहा था तब तारा ने भी लक्ष्मण से कहा था कि सुग्रीव वानरों के राजा हैं। अतएव उनके प्रति इस प्रकार कठोर वचन बोलना आपके लिए उचित नहीं। विशेषत आप जैसे पुरुष से तो कटु वचन सुनने के ये किसी भी दशा में पात्र नहीं हैं।[5] काम और क्रोध के विषय में तारा ने लक्ष्मण को इतना अधिक समझाया था कि लक्ष्मण को चुपचाप सुनते रह जाना पड़ा था। आहार निद्रा भय और मैथुन को अन्य नीतिविद् आचार्यों की भाँति ही वह प्राणिमात्र का प्रकृतिगत देहधर्म मानती थी। काम के अधीन पुरुष कर्तव्याकर्तव्य को भूल जाता है और उस पर विजय पाना साधारण व्यक्ति के लिए सरल नहीं। सुग्रीव बहुत समय से रुमा से बिछुड़े हुए थे और बहुत ही परेशानी के बाद उनको रुमा की प्राप्ति हो सकी

---

1 वा रा 4 31 37 40 2 वा रा 4 16 1 3 वा रा 4 23 27 4 वा रा 4 35 6 8
5 वा रा 4 33 51 6 वा रा 4 35 2

थी। इस दशा म सुग्रीव का विलास-क्रीडाओ म मस्त होकर सन्धि के अनुसार सीता की खोज के लिए प्रयास करने के दायित्व का विस्मरण उसकी स्वाभाविक कमजोरी थी। इसी को ध्यान म रखकर तारा ने लक्ष्मण स कहा था कि यदि पहले से यहा अधिक परिश्रान्त और अतृप्त सुग्रीव दहधर्म के अधीन होकर काम-क्रीडाओं म रत ह तो राम की दृष्टि म यह क्षम्य ही होना चाहिए। आपको भी यथार्थ बात जाने-समझ बिना साधारण मनुष्यो की भाति सहसा क्रोध के अधीन नहीं होना चाहिए। आप जैसे सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्ति विचार किये बिना ही रोष के वशीभूत नही होते।[1]

तारा ने लक्ष्मण को रावण और लका के विषय म भी विस्तारपूर्वक जानकारी दी थी। यह जानकारी उसको अपने पति वाली से ही प्राप्त हुई थी। उसने कहा था—वानरराज लका के राक्षसो और उनकी सेना की सख्या स भली भाँति परिचित थे। उन्होने मुझसे राक्षसो के विषय म यह सब-कुछ बतलाया था। रावण ने इतनी अधिक सेना का सग्रह कैसे किया यह तो मुझे नहीं मालूम किन्तु वाली से जो कुछ मने सुना वही म बता रही हूँ।[2] इस जानकारी के अनुसार लका म सौ हजार करोड, छत्तीस अयुत छत्तीस हजार और छत्तीस सौ राक्षस रहते थ। व सभी कामरूपी अजेय थ। सीता का अपहरण करनेवाले रावण का वध करना सरल नहीं था। लक्ष्मण को यह सब जानकारी देते हुए तारा ने उनको सलाह दी थी कि इस काम म विशेष रूप स सुग्रीव की सहायता ही ली जानी चाहिए।[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तारा आप धर्म और स्मार्त धर्म की व्यवस्थाओं तथा आचार व्यवहार म केवल परिचित ही नहीं थी बल्कि उनको स्वीकार भी करती थी। वद स्मृति पुराण, इतिहास की तो उसे जानकारी थी ही समसामयिक और आधुनिक विषयो का ज्ञान भी उसको कम नही था। नये विषयो के प्रति जिज्ञासा उसके मन मे बनी ही रहती थी और वाली अगद किसी स भी उसे जो कुछ भी मिलता था उससे अपनी जानकारी म उसने सदव वृद्धि की। इसी आधार पर वह किसी भी विषय म वाली को परामर्श दने की स्थिति म रही और लक्ष्मण ने भी उसस कर्तव्य के बारे मे रास्ता पूछा था। परिस्थितियो के सभी पहलुओ पर पूर्ण विचार करते हुए ही वह कोई सलाह दिया करती थी इसीलिए वाली ने कहा था कि तारा की सम्मति स किये गये कार्य का परिणाम कभी उलटा नही होता।

गीता के अनुसार कर्म-अकर्म की बारीकी को समझने म बडे बडे पण्डितो स भी भूल हो जाती ह और महाभारत ने भी धर्म के तत्त्व को गुहा म निहित कहा है। तारा का विवेक इतना अधिक जाग्रत था कि विचिकित्सा की स्थिति मे भी वह सही रास्ते को खोज ही लेती थी। राम को नारी का वध करके भी उसके पाप से

1 वा रा 4 35 9 11 2 वा रा 4 35 18 3 वा रा 4 35 15 17

वचने की तरकीब काम के अधीन व्यक्ति को क्षम्य बताना अममय आर आत्मीय जनों पर क्रोध न करना मित्र भाव स नारी की ओर देखना पुरुष सत्तात्मक समाज-व्यवस्था भ्रातृ प्रेम राजा के प्रति व्यवहार, आदि के विषय म तारा के जो विचार सामने आय ह उनको दखते हुए वह नि सन्देह परम विदुषी धर्मज्ञा नीतिविद्, व्यवहारविद् आर विवेकशीला दिखाई देती ह। उसने कभी किसी धर्म अथवा नीति-व्यवस्था का न तो उल्लघन किया आर न एसा करन के लिए किसी को सलाह दी। यद्यपि रामायण म तारा क चरित्र का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन ही किया गया है किन्तु इतने स ही उसकी महानता चारित्रिक उदात्तता आचार निष्ठा धर्म-व्यवस्थाओ क प्रति आस्था आर वदुष्य प्रमाणित हो जाता ह। अन्य सभी नारी पात्रो की अपेक्षा नि सन्देह तारा बहुत अधिक आगे रही ह।

नैयायिक और विज्ञानवादी हनुमान

वर्तमान म हनुमान की गणना देवताओ मे की जाती है किन्तु इस वात की खाज की आवश्यकता आज भी वनी हुई है कि उनको देवत्व की प्राप्ति कव और कसे हुइ। अनुमान है कि आठवी-नोवीं शताब्दी म ही उनको देवत्व प्राप्त हुआ होगा। उसके पश्चात् जव अनेक स्तात्र-ग्रन्था की रचना हुई उपासना विधान निर्धारित किया गया आर हनुमान के मन्त्रा की भी रचना कर दी गयी तव उनका पहले का रूप उसी प्रकार ओझल सा हो गया जिस प्रकार श्रीमद्भागवत की रचना ने महाभारत के कृष्ण का रूप वदल दिया है। रामायण म भी यद्यपि उनके गुणा पर इतना अधिक लिखा गया ह कि वे असाधारण व्यक्ति की कोटि म पहुँच जाते ह। फिर भी आज क और उस समय के हनुमान का रूप सर्वथा अलग रहा है।

हनुमान केसरी वानर के क्षेत्रज आर वायु के आरस पुत्र थे। रामायण क एक सन्दर्भ के अनुसार केसरी सुमेरु पर्वत (जनपद) के राजा थे।[1] एक अन्य स्थल पर सुग्रीव क एक सनापति का नाम भी केसरी लिखा गया ह।[2] जिन वानर यूथपतिया को सीता की खाज क लिए भजा गया था केसरी भी उनम सम्मिलित थ।[3] पुंजिकस्थला अप्सरा ने शापवश वानरराज कुजर की पुत्री क रूप म जन्म लिया था जिसका नाम अजना था। उसी के साथ केसरी का विवाह हुआ था। एक समय रूप-यावन से सम्पन्न सुन्दरी अजना रेशमी साडी पहने विभिन्न साज शृगार से सजी धजी एक पर्वत पर घूम रही थी। उसके सुन्दर शरीर ओर अगा का देखकर वायु देव उस पर मोहित हो गये ओर उसे अपने वाहुपाश म वॉध लिया था। वायु और अजना स ही हनुमान का जन्म हुआ था।[4] हनुमान ने सीता को अपना परिचय देत हुए कसरी को माल्यवान पर्वत का निवासी आर शम्वसादन का उद्धार करनेवाला कहा ह।[5] शुक न जव राम-लक्ष्मण आर सुग्रीव के अन्य सेनानायको का रावण को परिचय दिया था तव उसने हनुमान के शार्य की प्रशसा करते हुए उनको कसरी का ज्यष्ठ पुत्र कहा हे।[6] इससे एसा आभास होता है कि हनुमान के कोई छोटे भाई भी रह हाग। रामायण म इनके विपय म अन्य कोई भी सन्दर्भ प्राप्त नहीं हाता।

---

1 वा रा 7 35 19 2 वा रा 6 4 33 3 वा रा 4 39 18 4 वा रा 4 66 8 ?0
5 वा रा 5 35 81 83 6 वा रा 6 28 10

विद्या का जैसा गम्भीर अध्ययन हनुमान ने किया वैसा किसी अन्य ने नहीं किया।

सूर्य ने उनको शास्त्र शिक्षा का वचन दिया ही था अतएव हनुमान ने प्रारम्भ में सूर्य से ही शास्त्र शिक्षा ग्रहण की थी। वे अपने ग्रन्थ लिये हुए उदयाचल से अस्ताचल तक अर्थात् सुबह से शाम तक सूर्य की ओर मुँह किये उनसे व्याकरण का अध्ययन करते रहे और जो समझ में न आया उसके विषय में प्रश्न करते रहे। उन्होंने पूरी लगन के साथ सूत्र वृत्ति वार्तिक महार्थ और संग्रह का विशेष अध्ययन किया था। छन्दशास्त्र और दूसरे शास्त्रों के ज्ञान में उस समय इनकी समानता करने वाला भी कोई नहीं रहा। नव-व्याकरण पर ब्रह्मा के समान इनका पूरा अधिकार था और विद्या ज्ञान तथा अनुष्ठानों के विधि विधान में देवगुरु बृहस्पति की बराबरी करते थे।[1]

व्याकरण छन्द और शास्त्र शिक्षा ने हनुमान को ऐसा वाक्पटु और वाक्य-कुशल बना दिया था कि ऋष्यमूक पर्वत पर पहली भेंट में ही राम उनकी बातों को सुनकर दाँतों तले उँगली दबाकर रह गये थे। हनुमान की बातचीत और बातों शैली से प्रभावित होकर ही राम ने लक्ष्मण से कहा था कि जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है वह इस प्रकार सुन्दर भाषा में बातचीत नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है क्योंकि बहुत सी बातें बोल जाने पर भी इनके मुँह से कोई अशुद्धि नहीं निकली। बातचीत के समय इनके मुख नेत्र ललाट भौंह तथा अन्य अंगों से भी कोई दोष प्रकट नहीं हुआ। इन्होंने थोड़े में ही बड़ी स्पष्टता के साथ अपना अभिप्राय प्रकट किया है। उसे समझने में कहीं कोई सन्देह नहीं हुआ। रुक रुककर अथवा शब्दों या अक्षरों को तोड़ मरोड़कर किसी ऐसे वाक्य का उच्चारण भी इन्होंने नहीं किया है जो सुनने में कर्ण-कटु हो। इनकी वाणी हृदय में मध्यमा रूप से स्थित है और कण्ठ से वैखरी रूप से प्रकट होती है। अतः बोलते समय इनकी आवाज न बहुत धीमी रही है न बहुत ऊँची। मध्यम स्वर में ही इन्होंने सब बातें कही हैं। ये संस्कार और क्रम से सम्पन्न अद्भुत अविलम्बित तथा हृदय को आनन्द प्रदान करनेवाली वाणी का ही उच्चारण करते हैं। यह कहते हुए ही राम ने लक्ष्मण को हनुमान से मधुर वाणी में बातचीत करने का निर्देश दिया था।

राज्याभिषेक के पश्चात् सुग्रीव जब क्रीड़ाओं में सब-कुछ भूल बैठा था तब हनुमान ने ही उसे अपने दायित्वों का स्मरण कराया था। वे शास्त्र के निश्चित अर्थ को तो जानते ही थे, देश-काल के अनुरूप कर्तव्याकर्तव्य का भी उनको विशेष ज्ञान था। बातचीत की कला के वे विशेष मर्मज्ञ थे। अपनी इस कला और ज्ञान का सहारा

1 वा रा 7 36 45-47 2 वा रा 4 3 27 32

लेकर ही उन्होंने सुग्रीव का रास्ता दिखाया।[1] जाम्बवान् ने जब उनको समुद्र लांघने के लिए प्रोत्साहित किया था तब 'सर्वशास्त्र विद्वर' कहकर ही सम्बोधित किया था।[2] दधिमुख ने जब वानरों द्वारा मधुवन को उजाड़ने की शिकायत सुग्रीव से की थी तब भी सुग्रीव ने सीता का पता लग जाने का अनुमान लगाते हुए यही कहा था कि वानरशिरोमणि हनुमान में कार्यसिद्धि की शक्ति और बुद्धि है। उद्योगी और पराक्रमी तो वे हैं ही साथ ही उनका शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान है।[3] लंकाविजय के पश्चात् जब उन्होंने सीता को राम का सन्देश दिया था तो सीता ने भी उनकी वाणी की प्रशंसा करते हुए उनकी बुद्धि को शुश्रूषा श्रवण ग्रहण धारण तर्क वितर्क विनिश्चय अर्थविज्ञान और तत्त्वज्ञान—आठ गुणों से युक्त बताया था।[4]

सीता खोज के प्रसंग से यह भी प्रमाणित होता है कि हनुमान ने न्यायशास्त्र का न केवल गहन अध्ययन किया था बल्कि उसके व्यावहारिक पक्ष का भी उनको अद्भुत ज्ञान था। अपने अध्ययन और ज्ञान का उन्होंने यद्यपि कहीं प्रदर्शन नहीं किया किन्तु जिस प्रकार उनकी बातचीत से ही राम स्वयं उनके शास्त्रज्ञान पर मुग्ध होकर रह गये थे, उसी प्रकार अनुमान प्रमाण का व्यवहार करते हुए उन्होंने सीता को पहचाना था। हनुमान ने सीता को पहले कभी देखा ही नहीं था। रावण द्वारा अपहरण किये जाते समय वे केवल उन पर एक दृष्टि ही डाल सके थे। राम-सुग्रीव की बातचीत में वे केवल सीता के गुणों के विषय में सुन सके थे। इसके अतिरिक्त सीता द्वारा ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर गिराये गये आभूषणों को उन्होंने देखा था। लंका में मन्दोदरी सहित उनको अनेक नारियाँ दिखाई दी थीं। इस स्थिति में सीता को पहचानना उनके लिए एक समस्या ही थी।

न्याय-दर्शन में अनुमान प्रमाण की जिस प्रकार विस्तृत व्याख्या की गयी है उसका उल्लेख आवश्यक नहीं। सोलह पदार्थों में संशय की भी गणना की गयी है। न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य में अनुमान प्रमाण की व्याख्या करते हुए कारण से कार्य के अनुमान को पूर्ववत अनुमान कहा है—'यत्र कारणेन कार्यमनुमीयते यथा मेघोन्नतया भविष्यति वृष्टिरिति' अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी हुई सीता को देखकर उनको पहचानने के लिए हनुमान ने संशय और अनुमान प्रमाण का ही सहारा लिया था। सीता को जिस रूप में उन्होंने देखा उसके कारण उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था।[5] इसके पश्चात् राम ने सीता के जिन गुणों की चर्चा की थी और सीता के जो वस्त्राभूषण हनुमान ने देखे थे उनका स्मरण करते हुए ही अनुमान प्रमाण के सहारे वे आगे बढ़े। सभी कारणों द्वारा उपपादन करते हुए उन्होंने राक्षसियों से घिरी सीता को पहचाना था।[6] इस प्रसंग का विस्तारपूर्वक वर्णन भी सम्भवत

---

1 वा रा 4 29 6 7 2 वा रा 4 66 2 3 वा रा 5 63 20 21 5 64 33-34 4 वा रा 6 113 26 5 वा रा 5 15 38 6 वा रा 5 15 40

हनुमान के महान् नैयायिक रूप को प्रकट करने के लिए ही किया गया है।

अशोक वाटिका मे सीता को पहचानने, उनसे बातचीत करने और उनको रावण की कैद से मुक्त कर लिया लाने आदि के प्रसगो मे हनुमान के नैयायिक रूप को बार बार उभारने का प्रयास स्पष्ट दिखाई देता है। प्रत्येक अवसर पर कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय लेने के पहले उनके मन मे सशय अथवा विचिकित्सा का भाव उत्पन्न होना है और उसके बाद पक्ष विपक्ष के समस्त तर्क वितर्को पर पूरी गम्भीरता के साथ विचार करने के पश्चात् ही उन्होने निर्णय लिये। सशय की अवस्था उनको किसी भी रूप मे पसन्द नहीं थी।[1] और इसीलिए पूरी तरह सोचने विचारने के बाद उन्होने हमेशा सही निर्णय लिया। युद्ध और राक्षसो से व्यवहार करते समय भी उनके नैयायिक का रूप प्रकट होता है।

विभीषण अपने चार सहयोगी राक्षसो के साथ रावण से लड झगड़कर राम के पास पहुँचा था। उसने पहले समुद्र के उत्तरी तट पर खडे रहकर ही ऊँची आवाज मे राम को अपना परिचय देकर उनकी शरण मे आने की बात कही थी। राम और अन्य सभी यूथपति इस उलझन मे पड गये थे कि विभीषण के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए। सुग्रीव अगद, जाम्बवान् आदि सभी ने अपने अलग-अलग विचार व्यक्त किये। अन्त मे हनुमान ने सभी के विचारो का स्पष्ट विरोध करते हुए अपनी सलाह दी थी। अपनी बात कहने के पहले उन्होने यह भी कहा था कि मै जो कुछ कहूँगा वह वाद विवाद या तर्क स्पर्द्धा अधिक बुद्धिमत्ता के अभिमान अथवा किसी प्रकार की कामना से नहीं कहूँगा। मै तो कार्य की गुरुता पर दृष्टि रखकर ही यथार्थ बात कहूँगा। इसके बाद अन्य सभी मन्त्रियो और सलाहकारो के विचारो का खोखलापन बताते हुए बिना किसी सोच विचार के विभीषण को शरण देने की उन्होने सलाह दी थी। जिन तर्को के द्वारा उन्होने दूसरो के विचारो की निरर्थकता सिद्ध की थी वह हनुमान के विवेकवादी होने को ही प्रमाणित करते है।[2]

सुग्रीव को घर से बाहर चारो दिशाओ मे भटकते रहने के परिणामस्वरूप ही भूगोल का ज्ञान हुआ था। हनुमान को यद्यपि किसी ऐसे ही कारण से भटकना भागना नही पडा किन्तु रामायण के अन्य पात्रो की अपेक्षा वे भूगोल और वन विज्ञान के बहुत अच्छे विशेषज्ञ रहे। सीता की खोज करने के लिए वानरो की शक्ति और सामर्थ्य पर विचार करते हुए सुग्रीव की दृष्टि हनुमान पर ही पडी थी। अन्य वानर यूथपतियो में भी यद्यपि शारीरिक बल का अभाव नही था किन्तु शक्ति तीव्र गति भूगोल का ज्ञान देशकाल के अनुसार कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय की क्षमता नीति के आचरण आदि सभी गुण केवल हनुमान मे ही रहे थे। इसलिए सुग्रीव ने

---

1 वा रा 5 30 35 2 वा रा 6 17 52

हनुमान से ही कहा था कि मैं पृथ्वी अन्तरिक्ष आकाश देवलोक अथवा जल में भी तुम्हारी गति का अवरोध नहीं देखता हूँ। असुर गन्धर्व नाग मनुष्य देवता समुद्र तथा पर्वतों सहित सम्पूर्ण लोकों का तुम्हें पूरा ज्ञान है। तुममें अपने पिता वायु के समान ही सर्वत्र अबाधित गति वेग तेजी और फुर्ती है और इस भू मण्डल में तुम्हारे तेज की समानता करनेवाला कोई दूसरा नहीं। तुम नीतिशास्त्र के पण्डित हो। एकमात्र तुम्हीं में बल बुद्धि पराक्रम देशकाल का अनुसरण तथा नीतिपूर्ण व्यवहार एक साथ देखे जाते हैं।[1] राम ने जब यह देखा था कि उनके कार्य का भार हनुमान को सौंपा जा रहा है तब उनको भी अपना काम पूरा हो जाने का विश्वास हो गया था।

हनुमान को 'कान्तार-वन-कोविद' अर्थात् वन विशेषज्ञ भी कहा गया है।[2] विन्ध्यगिरि की गुफाओं और घने जंगलों में सीता को खोजते हुए सभी वानर स्वयंप्रभा तापसी की गुफा में पहुँच गये थे। वहाँ के सघन और दुर्गम वन को देखकर उनके होश उड़ गये और प्यास के मारे सभी वानरों का गला सूखने लगा था। उस समय हनुमान का वन विज्ञान ही काम आया था। उन्होंने पेड़ पौधों और पक्षियों की चहचहाट के सहारे पानी भोजन और स्वयंप्रभा का आश्रम स्थल खोज लिया था।

हनुमान ने सामुद्रिक शास्त्र का अच्छा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। सीता ने स्वयं को आश्वस्त करने के लिए जब उनसे राम के रूप गुण के सम्बन्ध में प्रश्न किया था तब हनुमान ने सामुद्रिक सिद्धान्तों के अनुसार ही उनका परिचय दिया था। मांस से ढकी हुई जत्रु (Colore bone) लम्बी बाहें भुजाएँ और मेढ्र उभरा हुआ नाभितट लाल नख तलवे और नेत्रप्रान्त गम्भीर नाभि उदर गले पैरों की रेखाएँ मस्तक पर उभरी हुई भँवर पैर के अँगूठे के नीचे और ललाट की रेखाओं तथा विभिन्न अंगों के लक्षणों का हनुमान ने इस प्रकार वर्णन किया *था कि उनका सामुद्रिक ज्ञान छलक पड़ता है।*[3]

व्याकरण न्याय भूगोल वन विज्ञान नीति और अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त हनुमान का भाषा पर भी जबरदस्त अधिकार था। उन्होंने संस्कृत और साहित्य भाषाओं के अतिरिक्त अनेक जनपदों की भाषाओं का ज्ञान भी अर्जित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण-काल (घटना-काल) में वैदिक संस्कृत के अलावा लौकिक *संस्कृत भी व्यवहार में आ चुकी थी और उसे मानुषी संस्कृत कहा जाता था।* लंका का रावण परिवार तथा वहां के सभी नर नारी मानुषी संस्कृत का ही व्यवहार करते थे। हनुमान का वैदिक और मानुषी दोनों ही संस्कृत भाषाओं पर पूरा अधिकार था। अशोक वाटिका में सीता से बातचीत करने के पहले उन्होंने सभी प्रकार से इसी समस्या पर विचार किया था कि सीता से किस भाषा में बातचीत की जानी चाहिए।

---

1 वा रा 4 44 3 7 2 वा रा 4 50 13 3 वा रा 5 35 15 23

उनकी उलझन यह था कि यदि मानुषी सस्कृत का प्रयोग करते है तो सीता भ्रमवश उनको वानर रूपधारी रावण समझ बैठगी क्योंकि रावण बातचीत म शुद्ध मानुषी सस्कृत का ही प्रयोग करता रहा होगा। द्विजातियो और अवर जातियो द्वारा व्यवहृत सस्कृत भाषा म भी अन्तर था और हनुमान दोनो से भली भाँति परिचित थे।[1]

इनके अतिरिक्त अन्य जनपदीय भाषाए भी उस काल मे अवश्य रही होगी। हनुमान ने ऐसी भाषाओ का मानुष अर्थवत् वाक्यम् अथात् मनुष्य समाज द्वारा बोलचाल म प्रयुक्त अर्थमय भाषा कहा है। रामायण म वाक्य शब्द का जिस रूप म प्रयोग किया गया है उसे देखते हुए नि सन्देह कहा जा सकता है कि "वाक्य न अथवत् वाक्य अथात् जनपदीय भाषा म ही सीता से बातचीत की थी।

ल मण और ककयी को छोडकर रामायण के प्राय सभी पात्र धर्म सिद्धान्तो के प्रति आस्थावान रहे किन्तु हनुमान ने एक नैयायिक की भाँति सर्वत्र बुद्धि और विज्ञान का ही समर्थन किया। उनका पूरा जीवन क्रिया व्यापार और सफलताएँ बुद्धि और विज्ञान के प्रयोग से ही जुडी रही। ऋष्यमूक पर्वत पर राम और लक्ष्मण को आते हुए देखकर सुग्रीव को पसीना आ गया था और उसने वाली के आ जाने का सन्देह किया था। इस घबराहट म उसे यह ध्यान ही नही रहा कि वाली म शापवश उस पर्वत पर पहुचने की सामर्थ्य ही नहीं थी। सुग्रीव की इस घबराहट को देखकर हनुमान ने मानो उसका मजाक उडाते हुए ही कहा था कि इस समय आपने अपनी वानरोचित चपलता को ही प्रकट किया है। चचल चित्त होने के कारण आप बुद्धिमार्ग पर स्थिर नही रह पाते है। बुद्धि और विज्ञान से सम्पन्न होकर आपको दूसरो की चेष्टाओ द्वारा ही उनके मनोभावो को समझना और उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। जो राजा बुद्धि का आश्रय नही लेता वह प्रजा पर शासन करने म कभी समर्थ नही होता।[1]

यद्यपि हनुमान की धर्मविषयक आस्थाओ का उल्लेख आगे किया गया है किन्तु यह नि सकोच रूप से कहा जा सकता है कि धर्माचार्यो और ऋषियो द्वारा दी गयी व्यवस्थाओ का हनुमान ने अन्धे होकर अनुसरण नहीं किया। वैज्ञानिक आधार पर उनका पर्यालोचन और विश्लेषण करने के पश्चात् ही उन्होने उनको स्वीकार अथवा अस्वीकार किया। इसीलिए बार बार उनको देश-काल के अनुसार ही कार्य करनेवाला कहा गया है। सिंहिका को मारने के लिए उनको विचित्र सूझबूझ का सहारा लेना पडा था। उसके विशाल और विकराल मुँह म अपने शरीर को संक्षिप्त करके ही उन्होने प्रवेश किया और उसके हृदय को चीर डाला था। यह देखकर आकाशचारियो ने उनकी प्रशसा करते हुए कहा था कि जिस पुरुष म तुम्हारे समान धैर्य सूझबूझ

1 वा रा 5 30 17 18 2 वा रा 5 30 19 3 वा रा 4 2 17 18

बुद्धि और कौशल—ये चार गुण होते हैं वह कभी अपने कार्य में असफल नहीं हो सकता।

अशोक वाटिका में सीता से वार्तालाप करने के पश्चात् हनुमान सफलतापूर्वक लौट सकते थे। सीता की खोज का कार्य इस प्रकार से पूरा हो चुका था किन्तु हनुमान को इस बात का भी ध्यान रहा कि अगर बाद सीता को बन्धनमुक्त कर लिया जाने का काम फिर भी शेष था। इस उद्देश्य से उन्होंने कुछ और भी कदम उठाने का विचार किया था। उस समय बहुत सोचने विचारने के बाद भी उन्होंने साम-दाम और भेद नीति का प्रयोग समयानुकूल न समझकर पराक्रम का प्रयोग किया और रावण पक्ष की शक्ति बल-बुद्धि आदि सबका सहज ही पूरा पता लगाकर वापस लौटे थे।[1] अक्षकुमार को देखकर ही वे उसके युद्ध-कौशल पर मुग्ध हो गये थे और उसे मारने अथवा न मारने की उलझन में पड़ गये। अन्ततः भविष्य के विषय में विचार करते हुए ही उन्होंने उसको मार डाला था। इस प्रसंग में हनुमान को 'कर्म विशेष तत्त्वविद्' कहा गया है।[2]

दूत-कार्य में हनुमान इतने दक्ष थे कि उसका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा। उन्होंने दूत-कार्य का निर्वाह केवल सन्देश लाने-ले जाने के रूप में ही नहीं किया बल्कि जब भी वे दूत बनकर गये तो निहित उद्देश्य को भी बहुत अधिक सीमा तक पूरा किया। रावण के दूत शुक और सारण केवल राम की सेना को देखकर और उसकी शक्ति का अनुमान लगाकर ही वापस लौट गये थे। हनुमान भी केवल ऐसा ही अपने दायित्वों की इयत्ता मान सकते थे किन्तु इस प्रकार का दूत सामान्य सन्देश वाहक ही माना जाएगा। वह इस बात पर भली भाँति विचार करते थे कि उनको दूत बनाकर भेजने का क्या उद्देश्य रहा। उसे दूत के रूप में ही वे इस सीमा तक पूरा कर डालते थे कि उद्देश्य की प्राप्ति सहज हो जाती थी। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव ने उनको केवल राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त कर उनके विषय में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा था। न तो उसने राम-लक्ष्मण को कोई सन्देश ही भेजा था और न किसी प्रकार के उत्तर की अपेक्षा ही की थी। हनुमान चुपके चुपके भी यह कार्य कर सकते थे किन्तु उन्होंने भिक्षु रूप धारण कर दूत-कार्य तो किया ही साथ ही सुग्रीव को लक्ष्य प्राप्ति के समीप ले जाकर खड़ा कर दिया। राम-लक्ष्मण का पूर्ण परिचय और उनके सभी रहस्यों को जानकर उन्होंने राम और सुग्रीव के बीच मैत्री भी स्थापित कर दी थी। सुग्रीव ने यद्यपि राम के पास मैत्री का प्रस्ताव भेजा ही नहीं था और यह हनुमान का स्वयं का निर्णय था किन्तु उनको दूत बनाकर भेजने का उद्देश्य भी यही था और इससे अधिक सफलता भी सुग्रीव को क्या मिल सकती थी।

---

1 वाल्मी 5 1 20 1 2 वाल्मी 5 41 2 3 3 वाल्मी 5 47 25

समुद्र लाँघने के पश्चात् लंका में प्रवेश करने पर हनुमान ने अपने दूत-कार्य के सफल निर्वहण की समस्या पर बहुत ही गम्भीरता से विचार किया था। सीता का पता लगाकर राम द्वारा भेजी गयी मुद्रिका उन्हें देकर राम का समाचार उन तक पहुँचाने और सीता का सन्देश राम तक पहुँचाने का दायित्व उन्हें सौंपा गया था। लंका-जैसी नगरी में यह काम भी सरल नहीं था और जरा सी भूल पूरे उद्देश्य को चौपट कर सकती थी। हनुमान ने स्वयं इस समस्या पर विचार किया था कि किस रीति से सफलतापूर्वक यह कार्य किया जाना चाहिए। उन्होंने इस बात पर भी विचार किया था कि यदि कातर और अविवेकपूर्ण कार्य करनेवाला दूत देश-काल के विपरीत व्यवहार करता है तो बना-बनाया काम भी उसी तरह बिगड़ जाता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। कर्तव्याकर्तव्य के विषय में विचार करने के पश्चात् यदि अविवेकी दूत को कार्य सौंप दिया जाता है तो अपने आपको पण्डित समझनेवाला वह अविवेकी दूत सारा काम चौपट कर डालता है।[1] सीता से बातचीत करते समय भी ठीक यही विचार फिर से हनुमान के मन में उत्पन्न हुआ था।[2]

दूत-कार्य करते समय उपर्युक्त सिद्धान्त-वाक्य हनुमान का आदर्श रहा। सीता का पता लगाने और सन्देशों के आदान प्रदान का कार्य तो उन्होंने पूरा किया ही था साथ ही लंका को जलाकर अशोक वन को तहस नहस कर और अक्षकुमार-जैसे पराक्रमी को मारकर एक ओर रावण पक्ष का साहस भंग कर दिया और दूसरी ओर राम के सामने विजय का पूर्वरूप भी प्रस्तुत कर दिया। हनुमान-जैसा विलक्षण प्रतिभासम्पन्न दूत रामायण में ही नहीं अन्य साहित्य में कृष्ण के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं मिलता।

अद्भुत साहस पराक्रम और शारीरिक शक्ति के होते हुए भी हनुमान के कुछ निश्चित सिद्धान्त भी थे। प्रारम्भिक अवस्था में जैसाकि संकेत किया जा चुका है उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग भले ही मनमाने ढंग से किया हो किन्तु शिक्षा-दीक्षा के बाद उनका रास्ता बिलकुल बदल गया था। शक्ति का दुरुपयोग कर न तो उन्होंने कभी किसी निरपराध को परेशान ही किया और न उसका कोई अनुचित लाभ ही उठाया। उनकी आश्चर्यजनक गति निर्भीकता, साहस और पराक्रम के विषय में अनगिनत प्रसंग रामायण में उपलब्ध है। राम को अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं कहा था कि मैं अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ जा सकता हूँ और जैसा चाहूँ रूप धारण कर सकता हूँ।[3] सुग्रीव और जाम्बवान् उनके पराक्रम की प्रशंसा करते कभी थकते नहीं थे और लंका के बड़े-से-बड़े शूरवीर भी उनके बल को देखकर अपना साहस खो बैठे थे। पराक्रम का प्रयोग कब किस रूप में किया जाना चाहिए इस पर हनुमान बहुत गम्भीरता से विचार किया करते थे। प्रमदा-वन

---

1 वा रा 5 2.39-40 2 वा रा 5.30 37 38 3 वा रा 4 3 23

(अशोक वाटिका) के विध्वस के पहले उन्होने बार-बार इस पर विचार किया था। उनका विश्वास था कि जो पुरुष प्रधान कार्य के सम्पन्न हो जाने पर बहुत से दूसरे आनुषगिक कार्यो को भी पूरा कर डालता है और पहले के कार्य मे बाधा भी नहीं आने देता वही कार्य को सुचारु रूप से कर सकता है। छोटे छोटे कर्म की सिद्धि के लिए कोई एक ही साधक हेतु नहीं होता। जो पुरुष किसी कार्य या प्रयोजन को अनेक प्रकार से सिद्ध करने की कला जानता हो वही कार्य साधन म समर्थ हो सकता है।[1] इसी को आधार मानकर उन्होने विचार किया था कि यदि इसी यात्रा म म इस बात को भी ठीक ठीक समझ लूँ कि अपने और शत्रु पक्ष मे युद्ध होने पर कोन प्रबल होगा और कोन निर्बल तो भविष्य के कार्य का निश्चय भी सरलता स हो सकेगा और स्वामी की आज्ञा का भी पूर्ण रूप से पालन हुआ समझा जाएगा।[2] यह सब सोच विचार कर ही हनुमान ने अशोक वाटिका का उजाड डाला था और सहज ही रावण के सभी शूरवीरो की शक्ति का अनुमान लगा लिया था।

उत्साह की विशेषता और उपयोगिता को हनुमान सदैव स्वीकार करते रहे ह। सीता की खोज करते-करते सभी वानर थककर चूर हो गये थे। उनके मन मे राम का क्रोध और सुग्रीव द्वारा मारे जाने का भय भी समाया हुआ था। अगद ने तो अनशन करते हुए प्राण-त्याग तक का निश्चय किया था। इस अवस्था मे भी हनुमान का उत्साह कभी भग नहीं हुआ। समुद्र लाँघकर लका म पहुँचकर व इधर-उधर सभी जगह सीता की खोज करते हुए भटकते रहे थे और कहीं उनको सीता दिखाई ही नहीं दी। इस असफलता मे भी उनका उत्साह यथावत् बना रहा था। बुद्धि और विवेक के बिना उन्होने कभी कुछ किया ही नहीं अपनी असफलता को छिपाने के लिए पचास बहाने करते हुए भी वे लोट सकते थे। किन्तु उन्होने विचार किया था कि हताश न होकर उत्साह को बनाये रखना ही सम्पत्ति का मूल कारण है। उत्साह ही परम सुख का हेतु है अत मै पुन उन स्थानो की खोज करूँगा जहाँ अब तक खोज नहीं की गयी थी। उत्साह ही प्राणियो को सदैव सब प्रकार के कर्मो मे प्रवृत्त करता हे और उनको अपने-अपने कार्यो मे सफलता प्रदान करता है।[3] इसके साथ ही पूरे उत्साह के साथ प्रयत्न करके उन्होने सीता को खोज लिया था।

अभिजातवर्गीय शूरवीरो के युद्ध से भागने के हनुमान सख्त विरोधी थे। इन्द्रजित द्वारा मायामयी सीता के वध को देखकर सभी वानर युद्ध छोडकर भागने लगे थे। विषादग्रस्त और भयभीत होकर भागते हुए वानरो को रोकते हुए हनुमान ने कहा था कि तुम इस प्रकार मुख पर विषाद लिये हुए युद्ध विषयक उत्साह को छोडकर क्या भागे जा रहे हो? तुम्हारा शौर्य कहाँ चला गया? इसके साथ ही हनुमान स्वय युद्ध के लिए आगे बढे और सभी वानरो से कहा कि मे युद्ध में आगे-आगे

1 वा रा 5 41 5-6 2 वा रा 5 41 7 3 वा रा 5 12 10 11

चलता हूँ, तुम सब लोग मेरे पीछे चले आओ। उत्तम कुल मे उत्पन्न शूरवीरो के लिए युद्ध मे पीठ दिखाकर भागना सर्वथा अनुचित है।[1] किसी दूसरे के साथ युद्ध म व्यस्त शत्रु पर आक्रमण करना भी वे उचित नही मानते थे। प्रहस्त के मारे जाने पर रावण स्वय युद्ध क मैदान मे आ गया था और उसने सुग्रीव आदि अनेक वीरो को बेहोश कर दिया था। इसक बाद ही वह नील स भी उलझ गया था। इसी समय हनुमान के मन में भी रावण से लडने की इच्छा जाग उठी थी किन्तु रावण की लडाई नील से हो रही थी इसलिए हनुमान कुछ समय के लिए खड रह गये और रावण से उन्होने कहा था–"राक्षसराज! इस समय तुम नील के साथ युद्ध कर रहे हो। किसी दूसरे के साथ युद्ध करते समय तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना मेरे लिए उचित नहीं होगा।[2]

अपरिमय वल विक्रम होते हुए भी हनुमान व्यावहारिक दृष्टि से यही मानते थे कि किसी से शत्रुता मोल लेने के पहले सावधानीपूर्वक प्रतिपक्ष की शक्ति को भली भाँति समझ लेना चाहिए। अपनी अपेक्षा अधिक शक्तिमान और समर्थ व्यक्ति को किसी भी प्रकार नाराज करने के लिए वे तैयार नही थे। सीता की खोज में विलम्ब होने पर लक्ष्मण ने सुग्रीव के प्रति जब अपना क्रोध प्रकट किया था तव हनुमान ने सुग्रीव को भविष्य के दायित्वों के प्रति सचेत करते हुए कहा था कि जिस पुरुप को वाद मे हाथ पर जाडकर मनाना पडे ऐसे पुरुप को पहले से नाराज करना कदापि उचित नहीं ह। यह बात उस व्यक्ति के विपय मे और भी विशेप रूप से ध्यान म रखी जानी चाहिए जो मित्र के किये हुए पहले उपकार का याद रखता है।[3]

सीता की खोज म असफल होने पर स्वयप्रभा के आश्रम म अगद न जब सुग्रीव के अनुशासन की परवाह किये विना वहीं पर ठहरे रहन कभी किष्किन्धा न लौटने आर मर जान तक का निश्चय कर लिया था और जब तार आदि कुछ अन्य वानर यूथपति भी अगद का साथ देने के लिए तैयार हो गये थे तब हनुमान एक विभिन्न परेशानी मे पड गये थे। वे जानते थे कि यदि अगद आदि अपने निश्चय पर दृढ रहें ता एक ओर सीता की खाज का कार्य अवरुद्ध हो जाएगा और दूसरी ओर राम लक्ष्मण आर सुग्रीव के क्रोध का भयकर परिणाम सभी को भुगतना पडेगा। वे स्वय तो सुग्रीव के पक्षधर थे ही वे यह भी जानते थ कि अन्य वानर यूथपति सुग्रीव के विरोध मे अगद का आखिर तक साथ नहीं दे सकगे। अगद आर उनके सहयोगियो को अपने निश्चय से फुसलाने का भी उनका मन्तव्य रहा था। यह सब सोच विचार कर ही उन्होंने अगद से कहा था कि तुमको अपने निर्णय के विपय म फिर स सोच लेना चाहिए। म तुम्हारे सामन कहता हूँ कि कोई भी वानर सुग्रीव स विरोध करक तुम्हारे प्रति अनुरक्त नही हो सकता। जाम्बवान्, नील महाकपि

---

1 वा रा 6 82 3-4 2 वा रा 6 59 73-74 3 वा रा 4.32 20

सुहोत्र और स्वय म भी सुग्रीव स अलग नहीं हो सकते। तुम दण्ड के द्वारा भी हम लोगो को सुग्रीव स अलग नही कर सकते।[1] यह विचार प्रकट करते हुए हनुमान न यह स्पष्ट कर दिया था कि सुग्रीव अधिक शक्तिशाली है। अतएव अगद को सलाह दते हुए उन्हान कहा था कि यह तो सम्भव ह कि दुर्बल के साथ विरोध करके बलवान् पुरुष चुपचाप बठा रहे किन्तु किसी बलवान से विरोध कर कोई दुर्बल पुरुष चन स नहीं रह सकता। अत अपनी रक्षा चाहनेवाल दुर्बल पुरुष को बलवान् के साथ कभी विग्रह नहीं करना चाहिए।[2]

शत्रु की शक्ति को बढता हुआ देखकर भी उसकी उपेक्षा करने को हनुमान नासमझी मानते थे। युद्ध म शत्रुओ के पराक्रम को यद्यपि वे बडी दिलचस्पी से देखत थे और उनके शौर्य की प्रशसा भी करत थे किन्तु जब वह यह अनुभव करते थ कि उसे दबा देना चाहिए उसी समय व उसको दबा देत थ। अक्षकुमार के युद्ध-कौशल को देखकर व इस सीमा तक मुग्ध हो गये थे कि उसे मारन से विरत हो बैठे थे।[3] जब युद्ध करते-करते उसका हौसला बढता ही गया तब हनुमान को चिन्ता हुई थी। उन्होंने विचार किया था कि यदि इसकी इसी प्रकार उपेक्षा की गयी तो यह मुझे परास्त किये बिना नहीं रहेगा। अत अब इसे मार डालना ही हितकर होगा। बढती हुई आग की उपेक्षा करना कदापि उचित नही ह।[4] यह सोचकर ही उन्होने अक्षकुमार को मार डाला था। तात्पर्य यह कि हनुमान वर्तमान और भविष्य दोनो के प्रति पूर्ण सतर्क और सावधान थ।

वाली द्वारा निष्कासित किये जाने पर जब सुग्रीव को ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहना पडा था तब हनुमान ने भी सुग्रीव का साथ दिया था। महान् पण्डित विचारक बुद्धिवादी और नीतिज्ञ होते हुए भी हनुमान ने वाली की बजाय स्वार्थी कामी विलासी और गुणहीन सुग्रीव का साथ क्यो दिया था इसका कारण स्पष्ट नहीं। व अगद क समर्थक भी कभी नही रहे। तारा के प्रसग म लिखा जा चुका ह कि उन्होने वालि वध से दुखी तारा को सान्त्वना देते हुए अगद को राजा बनाने का प्रस्ताव भी किया था किन्तु उनका वह प्रस्ताव मात्र एक औपचारिकता का निर्वाह था। वालि वध और सुग्रीव को राजा बनाने की पूरी योजना हनुमान की ही थी और उन्होने अगद की अपेक्षा हमेशा सुग्रीव का ही समर्थन किया। स्वयप्रभा के आश्रम म उन्होने अगद से साफ शब्दो मे कह दिया था कि म तुम्हारा साथ नही द सकता। इसके अतिरिक्त सुग्रीव की प्रशसा करते हुए वे अगद को वापस किष्किन्धा चलने के लिए लगातार फुसलाते रहे थे।

सुग्रीव का साथ देने के लिए हनुमान के पास जो भी आधार रहे हो सुग्रीव ने ऋष्यमूक पर्वत पर उनको अपना मन्त्री बना लिया था। राम से पहली बार भेंट

---

1 वा रा 4 54 10 11 2 वा रा 4 54 12 3 वा रा 5 47 26 4 वा रा 5 47 29

करते समय अपना परिचय देते हुए उन्होंने स्वयं को सुग्रीव का सचिव बतलाया था।[1] अशोक वाटिका में सीता को अपना परिचय देते समय भी उन्होंने कहा था—मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान नामक वानर हूँ।[2] मन्त्री के रूप में उन्होंने अपने कर्तव्यों का पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ निर्वाह किया था। वे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही रूप में यह मानते थे कि मन्त्रियों को निर्भीकतापूर्वक राजा के हित की बात बतलानी चाहिए। लक्ष्मण ने जब क्रोध में आकर किष्किन्धा के द्वार पर धनुष की टंकार की थी तब अन्य वानरों के साथ सुग्रीव के दो अन्य मन्त्री—प्लक्ष और प्रभाव—भी सकपकाकर रह गये थे। वे केवल सुग्रीव को लक्ष्मण के आने की सूचना देने का साहस कर सके किन्तु हनुमान ने सुग्रीव से साफ कहा था कि प्रमादवश आप अपनी शर्त मैत्री और कर्तव्य सब-कुछ भूल बैठे हैं। आपसे निश्चय ही अपराध हुआ है और लक्ष्मण के क्रोध को सहन करते हुए उनके सामने हाथ जोड़कर उन्हें प्रसन्न करने के सिवा अब दूसरा कोई रास्ता नहीं। इसी के साथ हनुमान ने कहा था कि राज्य की भलाई के काम पर नियुक्त किये गये मन्त्रियों का यही कर्तव्य है कि वे राजा को उसके हित की बात अवश्य बताएँ। अतएव मैं निर्भीक होकर अपना विचार प्रकट कर रहा हूँ।[3] इस विचार के साथ ही उन्होंने सुग्रीव को राम का काम करने के प्रति सतर्क किया था।

सुग्रीव के परम हितैषी होने के कारण ही हनुमान को बार बार कपिराज हितकर कहा गया है।[4] राम लक्ष्मण से बात करते हुए उन्होंने बड़ी चतुराई से इस बात का पूरा पता लगा लिया था कि राम को भी सुग्रीव की सहायता की आवश्यकता है। राम-लक्ष्मण के शौर्य का भी उनको अनुमान हो गया था और इसलिए कुशलतापूर्वक उन्होंने यही कहा था कि सुग्रीव आपसे मित्रता करना चाहते हैं।[5] राम सुग्रीव के साथ मित्रता करने के प्रयास में थे ही इसलिए उन्होंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। राम और सुग्रीव दोनों के उद्देश्यों और उनकी पूर्ति के विश्वास को लेकर ही हनुमान ने इन दोनों के बीच मित्रता स्थापित की थी। दोनों के सहमत होने पर स्वयं हनुमान ने अरणियों को रगड़कर अग्नि को साक्षी बनाकर यह मित्रता करायी थी। इसमें हनुमान के मन में सुग्रीव के हित की लालसा ही काम कर रही थी। इस मैत्री के बहाने निर्दोष और निरपराध वाली को मरवा डालने के पीछे हनुमान के मन में क्या था इसका पता नहीं लगता।

हनुमान भले ही सुग्रीव के मन्त्री रहे हों किन्तु उनकी भूमिका एक ऐसे पथ प्रदर्शक की रही थी जो सुग्रीव की उँगली पकड़कर उसे हमेशा सही रास्ते पर चलाता रहे। अभिषेक के बाद सुग्रीव विलास-क्रीड़ाओं में मस्त रहने के कारण राम

---

1 वा० रा० 4.3.22 26 27 2 वा० रा० 5.31.33 3 वा० रा० 4.32.17 18 4 वा० रा० 5.4.38
5 वा० रा० 4.3.22

के साथ हुए समझाते और शर्तों को भूल बैठा था। हनुमान को इस बात का ध्यान था कि राम लक्ष्मण नाराज होकर पता नहीं क्या कर बैठेंगे और दूसरी ओर वे यह भी चाहते थे कि सुग्रीव को अपने दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। मैत्री धर्म का निर्देश करते हुए उन्होंने सुग्रीव से कहा था कि जो राजा कृतज्ञता की भावना से मित्रों का उचित समय पर प्रत्युपकार करता है उसके राज्य यश और वैभव की वृद्धि होती है। जिस राजा के कोष दण्ड मित्र और अपना शरीर सब-के सब उसके वश में रहते हैं वही विशाल राज्य का पालन एवं उपभोग कर सकता है। जो अपने कार्यों से छुटकर मित्र का कार्य सिद्ध करने के लिए उत्साहपूर्वक नहीं लग पाता उसको अनर्थ का भागी होना पड़ता है। उपयुक्त अवसर बीत जाने के बाद जो मित्र के कार्यों में लगता है वह बड़े से बड़े कार्यों को सिद्ध करके भी मित्र के प्रयोजन की सिद्धि करनेवाला नहीं माना जाता।[1] इस प्रकार हनुमान ने राजनीतिक दृष्टि से सुग्रीव को न केवल सही रास्ते पर चलाया बल्कि उसको और उसके राज्य को राम-लक्ष्मण के क्रोध से बचा भी लिया था। मन्त्री धर्म के रूप में हनुमान ने विशुद्ध रूप से उन मार्गदर्शी सिद्धान्तों के प्रति ही संकेत किया था जो दो राजाओं के बीच सन्धि पालन के लिए आवश्यक होते हैं। वस्तुत हनुमान ने ही सीता की खोज की पूरी योजना बनायी थी और सुग्रीव ने उसी के अनुसार काम किया था। वे सुग्रीव को लगातार प्रेरित करते ही रहे थे कि राम के साथ हुए समझाते की शर्तों को यथासमय पूरा किया जाना चाहिए।

हनुमान के नैयायिक होने का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उनकी दार्शनिक आस्थाएं अन्य पात्रों की अपेक्षा सर्वथा अलग रहीं। धर्म-अधर्म के विषय में वे किसी रूढ़ि परम्परा अथवा धर्माचार्यों द्वारा दी गयी व्यवस्थाओं से सहमत नहीं थे। उन्होंने नि शंकतया बुद्धि और विज्ञान पर आधारित परिभाषा को ही स्वीकार किया था। उनके विचार से कोई भी कर्म अपने आप में धर्म अथवा अधर्म या पाप पुण्य कुछ भी नहीं होता। कर्ता की मनोगत भावनाएँ और मनोविकार ही किसी कर्म को पाप अथवा पुण्य का रूप दे देते हैं। रागद्वेषादि विकारों से युक्त मन ही क्रिया को पापमूलक बना देता है ओर यदि स्थिर अथवा निर्विकार मन से कोई कार्य किया जाता है तो उसमें पाप होने का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। हनुमान स्त्री को देखना अनुचित अथवा धर्म विरुद्ध मानते थे। इस पर भी सीता की खोज करते समय लंका में रावण के अन्त पुर में उनको अनेक स्त्रियों को देखने के लिए विवश होना पड़ा था। इस अवस्था में उनके मन में एक उलझन उत्पन्न हुई थी और उनको ऐसा लगा था मानो स्त्रियों को देखने में उनसे अधर्म हुआ हो। अपनी इस परेशानी को दूर करने की दृष्टि से ही उन्होंने विचार किया था कि यद्यपि रावण की स्त्रियाँ नि शंक

1 वा रा 4 29 10 11 13 14

होकर सो रही थी और उसी अवस्था में मैंने उनको देखा है किन्तु उनको देखते समय मेरे मन में किसी प्रकार की कलुषित भावना नहीं रही थी। मन और मनोगत विकार भावनाएँ ही इन्द्रियों को शुभ और अशुभ कर्मो की ओर प्रेरित करती हैं। यदि मन स्थिर हो उसमें राग द्वेषादि विकार की भावना न हो तो कर्तव्य की दृष्टि से किया गया कार्य धर्म अथवा अधर्म की कोटि में नहीं आता।[1] सीता को नारियों के बीच में ही खोजा जा सकता था अतएव हनुमान ने निर्विकार दृष्टि से रावण के अन्त पुर की स्त्रियों को देखते हुए उनको खोजने में किसी प्रकार का अधर्म नहीं माना था।

हनुमान कर्म परिणाम के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। वालि वध से दु खी तारा को समझाते हुए उन्होंने कहा था कि जीव के द्वारा गुणबुद्धि से अथवा दोषबुद्धि से किये गये जो अपने कर्म है वही सुख दु खरूप परिणाम के जनक होते है। प्रत्येक प्राणी अपने शुभ और अशुभ कर्म फलों को ही भोगता है।[2] आत्मा के अस्तित्व अनस्तित्व अथवा उसके नित्यत्व के विषय में हनुमान ने कही भी अपने विचारों को स्पष्ट नहीं किया। जन्मान्तर के विषय में भी वे प्राय मौन ही है। वे शरीर को अनित्य और प्राणी का मरणधर्मी होना ही स्वीकार करते है और इसलिए लगातार उन्होंने इसी बात पर जोर दिया है कि व्यक्ति को जीवन में न्याय सिद्धान्तों के अनुसार ही आचरण करना चाहिए। शरीर को नश्वर मानते हुए व उसे शोचनीय नहीं मानते किन्तु गीता के समान आत्मा की नित्यता के विषय में मौन रहते है। तारा से उन्होंने कहा था कि तुम स्वय शोचनीय हो फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो। स्वय दीन होकर किस दीन पर दया करती हो। पानी के बुल-बुले के समान इस शरीर में रहकर कौन किसके लिए शोचनीय है। तुम विदुषी हो अत जानती हो कि प्राणियों के जन्म और मृत्यु का कोई समय निश्चित नहीं है इसलिए व्यक्ति को अपने जीवन में शुभ कर्म ही करना चाहिए और दूसरे लौकिक कर्म करना व्यर्थ है। वाली ने न्याय के अनुसार अर्थ का साधन राज्य-कार्य का सचालन किया है। वे साम दाम और क्षमा का व्यवहार करते रहे है। वे धर्मानुसार प्राप्त होनेवाले लोक में गये है। अतएव उनके विषय में शोक करना उचित नहीं।[3]

उल्लेखनीय है कि गीता के समान ही हनुमान ने नैन शोचितुमर्हसि जैसी शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी आत्मा की नित्यता का बहाना नहीं किया। शरीर की नश्वरता के प्रति सकेत करके ही वे आगे बढ गये। उन्होंने यद्यपि सांकेतिक भाषा में 'लोकों' के प्रति इंगित अवश्य किया है किन्तु मोक्ष स्वर्ग नरक जैसे लोको अथवा शब्दों का कहीं भी उपयोग नहीं किया। उदाहरण के लिए मायामयी सीता के वध को देखकर इन्द्रजित से उन्होंने कहा था

---

1 वा रा 5 11 41-42 2 वा रा 4 21 2 3 वा रा 4 21.3 5 7

ये च स्त्रीघातिना लोका लोकवध्येश्च कुत्सिता।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रति लप्स्यसे ॥ –6 81 22

उपर्युक्त उद्धरण म लोको के प्रति सकेत होते हुए भी यह स्पष्ट नहीं कि किस रूप म लोका को व स्वीकार करत थ। आत्मा के विषय म हनुमान के मान और जन्मान्तर तथा स्वर्ग नरक आदि क उल्लेख न होने से ऐसा प्रतीत होता है कि हनुमान का विश्वास यही था कि शुभ और अशुभ कर्मो के परिणाम प्राणी को इसी जन्म म भोगना पड़त है।

ईश्वर अथवा परात्पर सत्ता का भी हनुमान ने कहीं किसी भी रूप म प्रतिपादन नहीं किया। व केवल काल को ही सर्वोच्च शक्ति के रूप म मानते रह। व्यक्ति के सुख-दुःख कालजनित सयोग क ही परिणाम है। लका म सीता के कष्टमय जीवन को देखकर दुःख कारणो पर विचार करत हुए व एक विचित्र वचारिक उलझन में पड गय थ और अन्तत इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि गुरुजनो स शिक्षाप्राप्त विनीत लक्ष्मण क बड भाई राम जैस महापुरुष की पत्नी सीता को भी विपत्तियो म उलझना पडता है तो यही मानना पड़ेगा कि काल का उल्लघन करना अत्यन्त कठिन ह।[1] तात्पर्य यह कि व्यक्ति के सुख-दुःखो को हनुमान पाप पुण्य का प्रतिफल अथवा प्रारब्ध का परिणाम नहीं बल्कि काल का सयोग मानते ह। हनुमान की दार्शनिक आस्थाएँ अनेक दृष्टि से रामायण क अन्य पात्रो से सर्वथा भिन्न ह।

हनुमान क पूरे जीवन मे यज्ञ यागादि हवन सन्ध्या वन्दन तर्पण अथवा अन्य किसी क्रिया विधान का एक बार भी उल्लेख कहीं मिलता ही नहीं। वैदिक अथवा स्मार्त किसी भी कर्म म उनकी न तो किंचित् आस्था ही रही और न कभी उन्होने इसका पालन ही किया। वदिक देवताओ–सूर्य चन्द्र वायु, वसु आदित्य मरुत्, अश्विनाकुमार रुद्र यम अग्नि–के प्रति उनके मन म यत्किंचित् श्रद्धा अवश्य विद्यमान थी। समुद्र लाँघने के पहले उन्होने सूर्य इन्द्र वायु ब्रह्मा और समस्त भूतो का हाथ जोडकर नमस्कार किया था।[2] इसी प्रकार सीता को खोजते हुए जब वे थक गये थे तब भी राम लक्ष्मण सीता क साथ रुद्र इन्द्र यम वायु चन्द्र अग्नि और मरुद्गणो को नमस्कार कर फिर से उनकी खोज म लग गय थे।[3] अपनी सफलता के लिए भी उन्होंने ब्रह्मा अग्नि वायु वरुण सोम आदित्य अश्विनी कुमार का ही स्मरण किया था।[4] हनुमान की बाह्य क्रिया विधान म कोई आस्था दिखाई ही नहीं देती और न उन्होने कहीं भी इसका प्रतिपादन ही किया। सीता से बातचीत करत हुए उन्होने एक स्थल पर यह अवश्य कहा है कि मै आपको आज ही राम के पास उसी प्रकार पहुँचा दूँगा जिस प्रकार अग्नि हविष्य को इन्द्र के पास

1 वा रा 5 16 3 2 वा रा 5 1 8 3 वा रा 5 13 56 59 4 वा रा 5 13 65-67

पहुँचा देता ह' किन्तु उन्हाने किसी भी यज्ञ अथवा हवन क्रिया मे भाग लिया हो इसका कोई भी प्रमाण मिलता ही नही।

यह भी एक आश्चर्य का विषय हे कि उपर्युक्त वदिक देवताओ के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए आर उनका नमन करते हुए भी हनुमान इनके प्रति विशेष श्रद्धावान् नही दिखाइ देते। कुवेर के प्रति उन्हाने सम्मान की भावना भी प्रकट नही की। रावण के दरबार म प्रहस्त ने पूरा परिचय प्राप्त करन के लिए उनसे अनक प्रश्न किय थे। उनके उत्तर में हनुमान ने स्पष्ट कहा था कि मे इन्द्र यम अथवा वरुण का दूत नही हूँ। विष्णु की प्रेरणा से भी म यहाँ नही आया। इसके साथ उन्होने साफ शब्दा म यह भी कहा था कि कुबेर के साथ मेरी कोई मित्रता नहीं ह।[1] तात्पर्य यह कि हनुमान इन्द्र यम विष्णु आदि का दूत कहलाने के लिए भी तयार नही थे ओर कुवर को वे प्रणम्य तो मानते ही नही थे, उनसे दोस्ती का रिश्ता ही हो सकता था जिसको भी उन्हाने स्वीकार नही किया।

कमकाण्ड के स्थान पर हनुमान आचार की पवित्रता पर ही जोर देत रहे है। निर्विकार मन स किये गय कर्मो के प्रति उनके विचार स्पष्ट किये जा चुके ह। विभिन्न सन्दर्भो के आधार पर यह निश्चित रूप स कहा जा सकता है कि वे आचार परमो धम का ही धर्म की सही परिभाषा मानत थ। 'धर्मो रक्षति रक्षित सिद्धान्त वाक्य को स्वीकार करते हुए वे इस बात को दृढतापूर्वक मानते थ कि आचार की पवित्रता व्यक्ति की इस सीमा तक रक्षा करती हे कि अग्नि मे भी उसको जलाने की सामर्थ्य नहीं होती। लका म आग लगा देने और चारा ओर आग की लपटो में सब-कुछ भस्म हाते हुए देखकर उन्ह सीता की चिन्ता हुई थी। वे स्वय अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए विषादग्रस्त होकर सोचते रह थे कि उस फेलती हुई आग म सीता भी जलकर नष्ट हो जाएँगी और इस प्रकार बना वनाया काम चापट हो जाएगा। साचते सोचते उनको सीता की आचारगत पवित्रता का भी स्मरण हुआ था। सीता के पातिव्रत आर चारित्रिक पवित्रता से वे भली भाति परिचित थे ओर यह भी जानते थे कि तप सत्य ओर पति मे अनन्य श्रद्धा की दृष्टि स सीता नारियो म अग्रणी ह। इसी आधार पर वे इस निश्चय पर पहुँचे थ कि स्वय अपने चरित्र वल स सुरक्षित सीता को अग्नि छू भी नहीं सकती। वडी दृढतापूर्वक उन्हाने कहा था कि सत्य क पालन अखण्ड पातिव्रत आर आचार पालन म सभी कष्टो को सहत रहन अर्थात् तप के कारण सीता में इतनी शक्ति हे कि वे स्वय ही अग्नि को जला सकती ह ओर अग्नि मे उनको जलाने की सामर्थ्य हो ही नही सकती।[3] स्पष्ट है कि हनुमान के अनुसार आचार आर व्यक्ति का स्वय का चरित्र ही विपत्ति क समय उसकी रक्षा करता हे।

---

1 वा रा 5 37 25 2 वा रा 5 50 13 3 वा रा 5 55 23 28

क्रोध को हनुमान सबसे बडा विकार मानते थे और उनकी धारणा थी कि अन्य दोषो पर विजय प्राप्त करके भी क्रोध को जीतना सरल नही होता। यद्यपि लका मे आग लगाने के पहले उन्होने इस विषय मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया था किन्तु राक्षसो के प्रति आक्रोश की भावना भी उनके मन मे विद्यमान रही थी। आग लगाने के बाद ही उनको अपनी क्रोध भावना का ज्ञान हुआ था और उसे अपने द्वारा किया गया एक कुत्सित कर्म मानते हुए उन्होने कहा था कि जो महापुरुष उठते हुए क्रोध को अपनी बुद्धि के द्वारा जल से प्रज्वलित अग्नि की भाँति शान्त कर देते है वे ही इस ससार मे धन्य है। क्रोध मे आकर कौन पुरुष पाप नहीं करता ? क्रोध के वश मे मनुष्य गुरुजनो की भी हत्या कर डालता है। क्रोधी मनुष्य सत्पुरुषो पर भी कटु वचनो द्वारा आक्षेप करने लगता है। क्रोधी मनुष्य को कहने अथवा न कहने योग्य किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता। क्रोधी मनुष्य की दृष्टि मे कोई भी काम अकरणीय और कोई भी बात अकथ्य नहीं रह जाती। क्षमा के द्वारा हृदय मे उत्पन्न क्रोध को साप की केचुल के समान निकालकर फेक देनेवाला ही सचमुच पुरुष कहलाने का अधिकारी है।[1]

क्रोध भावना के वे इतने विरुद्ध थे कि उन्होने इस कारण स्वय की भर्त्सना करने मे भी सकोच नहीं किया। वे सोचते रहे थे कि मेरी बुद्धि बडी खोटी है। मै निर्लज्ज और महान् पापाचारी हू। सीता की रक्षा का विचार किये बिना ही मैने लका मे आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामी की ही हत्या कर डाली। क्रोध से पागल होकर मैने रामचन्द्रजी के कार्य को ही चौपट कर दिया। क्रोध के आवेश मे मैने वानरोचित चपलता का ही प्रदर्शन किया है। मेरा हृदय रोष के वश मे हो गया इसलिए समस्त लोक के विनाश का दोष मुझे लगेगा।[2] अपने क्रोधी स्वभाव पर विचार करते हुए हनुमान को इतनी अधिक ग्लानि हुई थी कि उन्होने राम और सुग्रीव को मुँह दिखाने की बजाय प्राण-त्याग श्रेयस्कर समझा।

शक्ति और सामर्थ्य के होते हुए भी हनुमान राजस भाव के विरुद्ध थे और उनकी धारणा थी कि राजस-गुणमूलक प्रवृत्ति कार्यसिद्धि मे कभी सहायक नहीं होती बल्कि काम को बिगाड देती है। रजोगुण बुद्धि और विवेक पर एक ऐसा आवरण डाल देता है कि कर्तव्याकर्तव्य के विषय मे निर्णय प्राय गलत हो जाते है। उन्होने कहा था कि राजस भाव कार्य साधन मे असमर्थ है और इससे कार्य सिद्धि की व्यवस्था भग हो जाती है। रजोगुणमूलक क्रोध के कारण ही समर्थ होते हुए भी मै सीता की रक्षा नहीं कर सका। इस राजस भाव को धिक्कार है।[3] हनुमान का पूरा आचार-दर्शन सत्वगुणमूलक विवेक पर ही आधारित है।

इन्द्रजित ने मायामयी सीता को युद्ध क्षेत्र मे जब निर्दयतापूर्वक पीटने केश

---

1 वा रा 5.55.3-6 2 वा रा 5 55 7 10 15 20 3 वा रा 5 55 16

पकडकर घसीटन आर मार डालन का छलपूर्ण प्रदर्शन किया था तब भी हनुमान ने इन्द्रजित के इस व्यवहार के प्रति रोष प्रकट करते हुए कहा था कि सीता न तुम्हारे प्रति कोई अपराध नही किया ह फिर भी इस प्रकार निर्दयतापूवक इनको तुम क्या पीट रह हो? नृशस अनार्य, पापकर्मी तेरे हृदय मे तनिक भी दया नहीं है।[1] तात्पर्य यह कि निरपराध का दण्डित करने के भी हनुमान विरुद्ध थे।

आचार का ही धर्म मानने की स्थिति म हनुमान का यह दृढ विश्वास रहा ह कि विहित आचार क विपरीत कृत्या के परिणाम कभी शुभ हो ही नहीं सकते। सदाचार स अजित अनुकूल प्राप्तियाँ भी दुराचरण के कारण थाड म ही नष्ट हा जाती ह। हनुमान यह मानने थे कि रावण का जन्म ब्रह्मर्षिया क कुल मे हुआ था आर वह धम तथा अर्थ के तत्त्व को भी भलीभाँति जानता था। उन्हे यह भी ज्ञात था कि रावण ने कठिन तपस्या आर धमाचरण के द्वारा ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा ही अर्जित नही की थी वल्कि चिरकाल तक शरीर आर प्राणा का धारण करन की शक्ति भी प्राप्त की थी। इसक बाद भी सीता हरण का जा आचार विरुद्ध कार्य उसन किया था वह रावण की मान प्रतिष्ठा एश्वय आदि के साथ उसके जीवन को भी नष्ट कर दगा। अपनी इसी आस्था के सहार उन्हाने रावण से कहा था कि धर्मविरुद्ध कार्यो म बहुत स अनर्थ भर रहत ह आर वे कर्ता का जड मूल से नाश कर डालते है। अतएव तुम जसे बुद्धिमान् पुरुष कभी आचार विरुद्ध कार्यो म प्रवृत्त नही होते। जो पुरुष प्रबल अधर्म क फल से बँधा हुआ है उसे धर्म का फल कभी मिल ही नही सकता। यदि उस अधर्म के बाद किसी प्रवल कर्म का अनुष्ठान किया जाता है ता अवश्य वह पहल क अधर्म फल को नष्ट कर देता है।[2] हनुमान के उपर्युक्त कथन का आशय केवल यही था कि सीता का हरण आचार विरुद्ध कार्य था आर रावण को उसका भयकर परिणाम भागना ही पड़ेगा। उन्हान स्पष्ट कहा था कि धर्म आर अर्थ के तत्त्व को समझते हुए भी परायी स्त्री का वलपूर्वक अपने पास रोक रखना किसी भी दशा म उचित नही।[3]

नारी के प्रति हनुमान के विचार यद्यपि स्मार्त ऋषिया के अधिक निकट ह किन्तु उनका आधार समाज की विशिष्ट व्यवस्था ही रहा हे। मनु आदि आचार्यो ने पुरुष आर नारी के बीच अन्तर का स्वीकार करत हुए नारी प्रकृति का जा रूप प्रस्तुत किया ह हनुमान उसका समर्थन करते हुए दिखाई देते ह। नारी म चरित्र वल को मानते हुए भा व कदाचित् उस शक्ति ओर सामर्थ्य स रहित अवला ही मानत थे। उन्होने सीता का अपने कन्धे पर बैठाकर लका स लिया लान आर राम क पास पहुँचाने का प्रस्ताव किया था। इसका सीता न मुख्यतया तीन कारणा से अस्वीकार कर दिया था। पहली वात सीता ने यही कही थी कि हनुमान की गति इतनी तेज ह कि वे

1 वा रा 6 81 19 20 2 वा रा 5 51 18 28 3 वा रा 5 51 17

उसके वेग को सहने मे असमर्थ होने के कारण उनके कधो पर से समुद्र मे गिर सकती है। और यदि राक्षसो ने पीछा किया तो हनुमान को उनसे युद्ध करना अथवा युद्ध करते हुए सीता की रक्षा करना कठिन हो जाएगा।[1] दूसरे, यदि हनुमान सीता को राम के पास पहुँचाने मे सफल हो जाते हैं तो राम सीता को मुक्त कराने के सुयश से वचित रह जाएँगे। तीसरे सीता राम के अतिरिक्त किसी पर पुरुष का स्वेच्छा से स्पर्श करने के लिए भी तैयार नही थीं। इन कारणो को सुनकर हनुमान ने यद्यपि सीता की पातिव्रत भावना और राम के प्रति अनन्यनिष्ठा की प्रशसा की थी किन्तु यह भी कहा था कि नि सन्देह स्त्री होने के कारण आप मेरी पीठ पर चढ़कर सौ योजन विस्तृत समुद्र के पार जाने मे समर्थ नहीं है।[2] इसके साथ ही पर पुरुष के स्पर्श की शका को लेकर हनुमान ने अनेक प्रकार से अपनी सफाई देते हुए कहा था कि पीठ पर बैठाकर ले जाने के पीछे उनका कोई अन्यथा उद्देश्य नही रहा था।[3]

नारी को अबला मानने के कारण ही उसके प्रति क्रोध करना हनुमान उचित नही मानते। लका मे उनके प्रवेश करने के पहले वहा की अधिष्ठात्री देवी 'लका' ने उन्हे रोकना चाहा था और उनके एक थप्पड भी जमा दी थी। हनुमान ने इसके बदले उसको बाये हाथ से एक घूसा मार दिया था। उसे स्त्री समझकर ही हनुमान ने उस पर क्रोध नहीं किया और उनको उस पर दया आ गयी थी। नारी को किसी भी दशा मे वध के योग्य वे मानते ही नही थे।[4] मायामयी सीता को मारने पीटने और मार डालने के दृश्य को देखकर इन्द्रजित की कडे शब्दो मे उन्होने भर्त्सना की थी। स्त्री हत्यारे को वे पुण्यलोक का अधिकारी नही मानते थे।[5] यह बात इससे भी स्पष्ट है कि सीता को डराने धमकानेवाली राक्षसियो को देखकर हनुमान ने किसी के प्रति रोष प्रकट नहीं किया और लका जैसी राक्षसी को भी जो उनको खा जाने के लिए उद्यत थी उन्होने जीवित छोड दिया था।

नारी के चरित्र बल के प्रति हनुमान इतने अधिक आस्थावान् थे कि उसके अनुसार सती साध्वी नारियाँ ही अपनी तपस्या के बल से लोको को धारण करती है और यदि वे क्रुद्ध हो जाएँ तो लोक को नष्ट भी कर सकती है। वानरो को लका पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए उन्होने सीता के सन्दर्भ मे अपने उपर्युक्त विचार प्रकट किये थे। सीता का स्पर्श होने के बाद भी रावण का शरीर जल नही गया था इस पर हनुमान को आश्चर्य हुआ था और उन्होने कहा था कि हाथ से छू जाने पर आग की लपट भी वह काम नही कर सकती जो क्रोध में आकर सीता कर सकती है।

---

1 वा रा 5 37 45 51 2 वा रा 5 38 3 3 वा रा 5 38 9 4 वा रा 5 3 41 42
5 वा रा 6 81 22 6 वा रा 5 59 3-5

परस्त्री के स्पर्श की बात तो दूर उसको देखना भी हनुमान आचार-मर्यादा के प्रतिकूल मानते थे। सीता की खोज करते समय रावण के अन्तःपुर मे उनकी दृष्टि अनेक नारियो पर पड़ी थी। वे अलसायी हुई एक-दूसरे से लिपट कर सो रही थी और उनके वस्त्र भी इधर-उधर उड़ गये थे। उनको देखकर हनुमान के मन मे विषाद और पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न हुई थी। वे सोचते रहे थे कि इस प्रकार नींद मे सोनी हुई परायी स्त्रियो का देखना उचित नहीं है। इससे मेरे धर्म का ही सत्यानाश हो जाएगा। मेरी दृष्टि अब तक किसी परायी स्त्री पर नहीं पडी थी। यहाँ आकर मुझे इनको और इनके अपहरणकर्ता रावण को देखना पडा है।[1] इसी प्रकार सीता ने जब उनकी पीठ पर बैठकर राम के पास लौटने से इनकार कर दिया था तब भी हनुमान ने स्त्री और पुरुष के लिए पर पुरुष तथा पर-स्त्री स्पर्श को अनुचित बताकर सीता के पातिव्रत की प्रशंसा की थी।[2] परस्त्री के अपहरण को भी वे आचार विरुद्ध ही मानते थे। रावण को सीता लौटा देने की सलाह देते हुए उन्होने कहा था कि तुम कार्य और अर्थ के तत्त्व को भली भाँति जानते हो और तुमने स्वयं बड़े भारी तप का संग्रह किया है। अतः दूसरे की स्त्री को घर मे रोक रखना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं। इसलिए तुम्हे धर्म और अर्थ के अनुकूल मेरी बात को मानकर सीता को रामचन्द्र के पास लौटा देना चाहिए।[3]

हनुमान पति को ही नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण मानते है। पातिव्रत धर्म की श्रेष्ठता के प्रति उनके विचार ऊपर लिखे जा चुके है। अशोक वाटिका मे राम के विषय मे सोचमग्न सीता को देखकर वे सोचने लगे थे कि सीता समस्त सुखोपयोगों का त्याग कर पति प्रेम के कारण ही विपत्तियो का कुछ भी विचार न करके राम के साथ वन मे चली आयी थीं। निश्चय ही पति नारी के लिए आभूषण की अपेक्षा भी अधिक शोभा का हेतु है। सीता शोभा के योग्य होने पर भी पति से अलग होने के कारण ही शोभाहीन दिखाई दे रही है।[4]

नारी के सम्बन्ध मे हनुमान के उपर्युक्त विचार स्मार्त ऋषियो की व्यवस्था के सर्वथा अनुरूप ही है। पति पत्नी के सम्बन्ध परायी स्त्री के प्रति पुरुष की आचार मर्यादा पर पुरुष के प्रति स्त्रियो के धर्म तथा पातिव्रत धर्म के विषय मे उनके विचारो से यह भी स्पष्ट है कि वे समाज की उसी व्यवस्था को स्वीकार करते थे जो आश्रम व्यवस्था के निश्चित होने के बाद अपनायी गयी थी। वर्ण-व्यवस्था के प्रति हनुमान ने कहीं संकेत नहीं किया और न ब्राह्मणों के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा ही प्रकट की। आश्रम-व्यवस्था को वे अवश्य स्वीकार करते रहे थे। सीता की लगातार खोज करते हुए भी जब उनको वे कहीं दिखाई नहीं दीं तब उन्होने वानप्रस्थ अथवा सन्यास आश्रम को ग्रहण कर किष्किन्धा के बाहर ही अपना पूरा जीवन

---

1 वा रा 5 11 38 39 2 वा रा 5 38 4 5 3 वा रा 5 51 17 21 4 वा रा 5 16 19 26

व्यतीत करने का विचार किया था। उन्होंने सोचा था कि सीता को न खोज सकने पर मैं यहीं पर वानप्रस्थी हो जाऊँगा। अपने आप जो भी खाद्य सामग्री मेरे हाथों में आ जाएगी या मेरे मुँह में जो भी फल आदि आ जाएँगे उन्हीं को खाकर नियमों का पालन करता हुआ मैं वृक्षों के नीचे निर्वाह करूँगा।[1] अथवा अब मैं नियमपूर्वक वृक्षों के नीचे निवास करनेवाला तपस्वी हो जाऊँगा किन्तु कजरारे नेत्रोंवाली सीता को देखे बिना यहाँ से कभी नहीं लौटूँगा।[2] मैं यहीं नियमपूर्वक इन्द्रियों को वश में रखकर निवास करूँगा ताकि मेरे कारण दूसरे नर और वानर नष्ट न हों।[3]

वस्तुतः हनुमान के सभी कार्य और निर्णय बुद्धि और विज्ञान पर ही आधारित रहे। धर्म-अधर्म, पाप पुण्य, स्वर्ग-नरक, रीति परम्परा अथवा राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों की व्यवस्थाओं पर उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया। प्रत्येक प्रसंग उनको *बुद्धिवादी और विज्ञानवादी ही सिद्ध करता है। यदि कभी धर्म के नाम पर उन्होंने* कुछ कहा भी है तो उनका मन्तव्य ब्राह्मणों की परम्परा नहीं बल्कि समाज की आचार व्यवस्था ही रहा। न उन्होंने ब्राह्मणों ऋषियों को प्रणम्य माना, न देवताओं की पूजा-आराधना की, न यज्ञ हवन-तर्पण के प्रति श्रद्धा व्यक्त की और न किसी वाह्य क्रिया में ही उलझे। देशकाल के अनुरूप बुद्धि और विवेक के अनुसार जो भी तर्क सगत दिखाई दिया उन्होंने उसे पूरी शक्ति लगाकर पूरा किया।

---

1 वा रा 5 13 40 2 वा रा 5 13 45 3 वा रा 5 13 54

विभीषण का आचार और गुणहीनता

रामकथा को वर्तमान में जो रूप प्राप्त है उसके और रामचरितमानस क प्रभाव के परिणामस्वरूप विभीषण का एक महत्वपूर्ण पात्र मानकर उसके प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की जाती ह उसे दखते हुए भी वाल्मीकीय रामायण के अनुसार उसके आचार विचार नीति आर व्यवहार म कोई ऐसी विशेषता दिखाई ही नहीं देती जिसके आधार पर उसके प्रति सहानुभूति भी व्यक्त की जा सक। न तो धर्म और नीति से ही उसका विशप सम्बन्ध रहा आर न शौर्य की दृष्टि स ही उसे उल्लखनीय माना जा सकता है।

महर्षि पुलस्त्य को प्रजापति ब्रह्मा का पुत्र आर ब्रह्मा क समान ही महान् तेजस्वी कहा गया ह। धर्माचरण क उद्देश्य से यह राजर्षि तृणविन्दु के आश्रम मे जाकर रहने लगे थे। सयोगवश तृणविन्दु की सुन्दरी कन्या से पुलस्त्य का सम्बन्ध स्थापित हो गया आर तृणविन्दु के प्रस्ताव पर दोनो का विवाह भी हुआ। रामायण म पुलस्त्य की पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं किया गया। इन दोना से ही विश्रवा का जन्म हुआ था। विश्रवा वेद के विद्वान्, समदर्शी व्रत आर आचार का पालन करनेवाले आर अपने पिता के समान ही महान् तपस्वी थे।[1] विश्रवा का पहला विवाह महामुनि भरद्वाज की कन्या से हुआ था। इसक गर्भ से वैश्रवण कुबेर का जन्म हुआ। इन्हीं दिना सुकेश का पुत्र सुमाली अपनी कन्या ककसी के लिए योग्य वर की खोज मे भटक रहा था आर उसकी दृष्टि कुबेर पर पडी। सुमाली ने निर्णय किया कि कुबेर के समान ही सन्तान प्राप्त करने के लिए केकसी का विवाह कुबर के पिता विश्रवा से किया जाना चाहिए आर उसने कैकसी के सामने अपना प्रस्ताव रखा जिसे उसने स्वीकार कर लिया था। विश्रवा ओर केकसी से ही क्रमश रावण कुम्भकर्ण शूर्पणखा आर विभीषण का जन्म हुआ था। इस प्रकार विभीषण रावण का सबसे छोटा सहोदर आर कुबेर का सोतेला भाई था। माल्यवान सुमाली का बडा भाई था आर शायद इसी कारण माल्यवान को भी रावण का मातामह कहा गया है।[2] विश्रवा ने केकसी को आश्वस्त करते हुए कहा था कि तुम्हारा अन्तिम पुत्र मेरे वश के अनुरूप धर्मात्मा होगा।[3] विभीषण के जन्म के समय आकाश से फूलो की वर्षा हुई ओर देवताओ

---

1 वा रा 7 2 31 2 वा रा 6 35 6 3 वा रा 7 9 27

की दुन्दुभिया बज उठी थीं। उस समय आकाश म चारा आर साधु साधु की ध्वनि गूज उठी थी।[1]

अवस्था प्राप्त हाने पर माँ ककसी के निर्देश का मानकर रावण आर कुम्भकण क साथ विभीषण भी तपस्या करन क लिए गाकण आश्रम पर चला गया था। पहल वह नित्यधर्मपरायण रहकर शुद्ध आचार विचार का पालन करत हुए पाच हजार वप तक एक पर स खड़ा रहा था। उसका यह नियम समाप्त हान पर उसक सामन अप्सराए नृत्य करन लगी आर दवताआ न भी स्तुति करत हुए आकाश स फूला की वर्षा की थी। इसक बाद भी विभीषण न तपस्या का परित्याग नहीं किया आर वह अपनी दाना बाँहे आर मस्तक ऊपर उठाकर स्वाध्यायपरायण रहते हुए पाँच हजार वर्षो तक सूय की आराधना करता रहा था।[2] तपस्या स प्रसन्न हाकर ब्रह्मा न जब विभीषण स वर याचना क लिए कहा तब विभीषण ने आपत्तिया मे धर्म स विचलित न हान बिना सीखे ही ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हाने आर आश्रमधर्म का पालन करने का वरदान मागा था। ब्रह्मा न उपर्युक्त वरदाना के साथ विभीषण का अमरत्व भी प्रदान किया था।[3] विभीषण का विवाह गन्धर्वराज शैलूष की कन्या सरमा क साथ हुआ था।[4] विभीषण आर सरमा की सन्तानों म कवल ज्येष्ठ पुत्री 'कला' का ही सन्दर्भ प्राप्त हाता है। सरमा क मन म सीता के प्रति सहानुभूति थी इसलिए वह अपनी पुत्री कला के जरिये रावण के राजमहला की सभी खबर सीता के पास पहुँचा दिया करती थी।[5]

विभीषण के लिए 'बुद्धिमता वरिष्ठ' 'आचारकोविद' 'धर्मार्थकामपुनिविष्ट बुद्धि' आर बृहस्पति के समान बुद्धिमान् जस विशेषणा का प्रयाग किया गया है[6] किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य ह कि ये प्रयोग स्वय कवि के द्वारा ही किये गय ह। इन विशेषणो की सार्थकता किसी सीमा तक कुछ प्रसगा म देखी जा सकती ह। दूत के प्रति किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए इस विषय का विभीषण का अच्छा ज्ञान था। रावण न जब हनुमान का राम आर सुग्रीव का दूत जानत हुए भी मार डालन की आज्ञा दे दी तब विभीषण ने ही उसके क्रोध को शान्त करते हुए कहा था कि ऊच नीच का ज्ञान रखनेवाल श्रेष्ठ राजा कभी दूत का वध नहीं करत। इस वानर का मारना धर्म के विरुद्ध आर लोकाचार की दृष्टि से भी निन्दनीय ह।[7] उचित अनुचित का विचार करते हुए आपको दूत के याग्य किसी अन्य दण्ड का विधान करना चाहिए।[8] इस पर भी रावण ने जब हनुमान को मार डालने का अपना निर्णय दुहराया तब फिर विभीषण ने कहा था—आप मेरी धर्म आर अर्थ तत्त्व से

---

1 वा रा 7 9 36 2 वा रा 7 10 6 8 3 वा रा 7 10 30 31 4 वा रा 7 12 24 25
5 वा रा 5 37 11 6 वा रा 5 52 12 6 10 11 6 14 9 6 15 1 7 वा रा 5 52 5-6
8 वा रा 5 52 9

युक्त बात को ध्यान स सुन। सत्पुरुषा का कथन है कि दूत किसी भी समय वध करने योग्य नहीं होता। इसमे सन्देह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है आर इसने ऐसा अपराध भी किया हे जिसकी तुलना नहीं की जा सकती तथापि सत्पुरुषो के मतानुसार दूत का वध करना उचित नहीं। दूत के लिए अन्य दण्ड विधाना की व्यवस्था की गयी है। किसी अग को भग या विकृत कर देना कोड़े से पिटवाना, सिर मुँडवा देना तथा शरीर म कोई चिह्न दाग देना यही दण्ड दूत के लिए बताये गये है। उसके लिए वध का दण्ड ता मैने कभी सुना ही नहीं। यह अच्छा हो या बुरा शत्रुआ ने इसे भेजा है अत यह उन्हीं के स्वार्थ की बात करता है। दूत सदा पराधीन हाता है अतएव वध के योग्य नहीं होता।[1]

उपर्युक्त प्रसग इस तथ्य को प्रकट करता है कि विभीषण दण्ड विधान को अच्छी तरह जानते थे। इसी प्रकार सीता को लौटाने और लका तथा राक्षसो के हित को ध्यान म रखकर उसने समय-समय पर रावण को जो परामर्श दिये ह उनस भी यही प्रकट हाता कि वह कर्तव्याकर्तव्य के विषय म समय के अनुसार पूरी गम्भीरता से विचार किया करता था। प्रहस्त आर रावण को समझाते हुए सीता को लौटा देने की उसन जो सलाह दी थी उसका सम्बन्ध नीति ओर तर्क से कम, राम के पराक्रमी होने से अधिक हे। उसने सीधे शब्दा मे यही कहा था कि राम को युद्ध मे जीतना सम्भव नहीं इसलिए उनसे शत्रुता मोल लेना भी उचित नहीं।

राक्षस धर्म का विस्तृत विवेचन पुस्तक के प्रारम्भ में और 'रावण का आचार-दर्शन' अध्याय मे किया गया हे। इस विवेचन स यह स्पष्ट हे कि एक-दो अन्तर का छोडकर राक्षसो का धर्म ठीक वही रहा है जिसे आर्य धर्म कहा जाता ह। आर्य धर्म के विपरीत आचार व्यवहार की रावण कुम्भकर्ण मघनाद प्रहस्त ओर सभी राक्षसो ने वडे ही कठोर शब्दों म निन्दा की है आर विहित आचार के प्रतिकूल व्यवहार को देखकर वडे से वडे व्यक्ति का अनार्य कहकर वे उसकी भर्त्सना करते रहे है। रावण ओर मघनाद विभीषण को अनार्य ही मानते थे। मायामयी सीता को पीटने ओर वध करने के दृश्य को देखकर जव हनुमान को क्रोध हुआ था तब इन्द्रजित न उनको फटकारते हुए कहा था—म सुग्रीव राम और तुम सब लोग जिसके लिए यहाँ तक आये हो उस वदेही सीता को अभी तुम्हारे देखते देखते मार डालूँगा। इसे मारकर मे राम-लक्ष्मण का तुम्हारा सुग्रीव का ओर उस अनार्य विभीषण का भी वध कर डालूँगा।[2]

यद्यपि विभीषण का अनेक स्थानों पर प्रकारान्तर से धर्मात्मा कहा गया है किन्तु जहाँ कही उसके आचार-व्यवहार का उल्लेख हुआ है वहाँ उसे प्रतिकूल आचरण करते हुए ही देखा जाता है। विभीषण ने कदाचित् अपने प्रारम्भिक जीवन से ही

1 वा रा 5 52 13-15 21 2 वा रा 6 81 27

राक्षस धर्म का परित्याग कर दिया था। राम के आश्रम मे शूर्पणखा ने जब अपना ओर अपने भाइया का परिचय दिया था तब भी उसने विभीषण के विषय मे यही कहा था कि राक्षसा के आचार विचार का वह कभी पालन नहीं करता।[1] रावण विभीषण म आर्यजनोचित गुणा का सर्वथा अभाव ही देखता था। सोहार्द आर अपने बन्धु बान्धवा के प्रति सुहृद्-जनोचित स्नेह भावना को रावण आर्यधर्म का विशेष लक्षण मानता था आर विभीषण म इनके अभाव को देखकर ही उसने विभीषण को फटकारा था। राम की अनेक प्रकार से प्रशसा करते हुए विभीषण ने जब सीता को लाटा देन की सलाह दी तब विभीषण को फटकारते हुए उसने कहा था कि जैस कमल के पत्ते पर गिरी हुई पानी की बूँदे उस पर ठहरती नहीं उसी प्रकार अनार्यो के हृदय म सोहार्द नहीं ठहरता। जेसे शरद् ऋतु म गरजते आर बरसते हुए मेघा के जल से धरती गीली नही होती उसी प्रकार अनार्यो के हृदय मे स्नेहजनित आर्द्रता नही होती। जैसे भारा वडी चाह से फूला का रस पीता हुआ भी वहाँ ठहरता नहीं उसी प्रकार अनार्यो मे सुहृद्-जनोचित स्नेह नही टिक पाता। तुम भी ऐसे ही अनार्य हो। जसे भ्रमर रस की इच्छा से काश के फूल के रस का पान करे तो उसमे रस नही पा सकता उसी प्रकार अनार्यो की स्नेह भावना किसी के लिए भी लाभदायक नही हाती।[2]

विभीषण की इन्द्रजित ने जिन तीखे शब्दा म भर्त्सना की हे उससे एक ओर राक्षस धर्म की विशेषताओ पर प्रकाश पडता हे ओर दूसरी ओर यह भी स्पष्ट होता हे कि विभीषण ने उन सभी गुण धर्मो का परित्याग कर दिया था आर ऐसे आचार व्यवहार को अपना लिया था जिनसे पूरा राक्षसवश कलकित होता हो। पुत्रा ओर परिजनो के प्रति आत्मीयता का भाव अपनी जाति ओर कुल का अभिमान कर्तव्याकर्तव्य का विवेक भ्रातृ प्रेम, दूसरा की गुलामी न करना आदि राक्षसो की विशिष्ट आचार मर्यादा रही। विभीषण म या तो यें गुण प्रारम्भ से ही नहीं रहे अथवा उसने स्वार्थवश इनका छोड दिया था। लक्ष्मण को जब वह इन्द्रजित के वध का उपाय बतलाते हुए उसके साधना स्थल निकुम्भिला नामक स्थान पर ले पहुँचा ता यह सब देखकर इन्द्रजित क्रोध मे उबल पडा था। वह इस बात को समझ गया था कि लक्ष्मण को इस रहस्य की जानकारी विभीषण के द्वारा ही दी गयी हे। अतएव उसने विभीषण से कहा था कि—तुम मेरे पिता रावण के सगे भाई ओर मेरे चाचा हा। यही तुम्हारा जन्म हुआ आर यहीं बढकर तुम इतने बडे हुए हो। फिर भी तुम मुझसे जो तुम्हार पुत्र के समान हे द्रोह क्या करते हो ? तुम्हारे मन मे न तो कुटुम्बीजना के प्रति अपनेपन का भाव हे न आत्मीयजना के प्रति स्नेह है ओर न अपनी जाति का अभिमान ही है। तुमम कर्तव्य-अकर्तव्य की मर्यादा भ्रातृ प्रेम आर

---

1 वा रा 3 17 23 2 वा रा 6 16 11 14

धम कुछ भी नहीं ह। तुम राभस धर्म को कलंकित करनेवाले हो। तुमने स्वजनो का परित्याग करके दूसरा की गुलामी स्वीकार की ह अत तुम सत्पुरुषा द्वारा निन्दनीय आर शाचनीय हो। तुम अपनी शिथिल बुद्धि के द्वारा इस महान् अन्तर को नहीं समय पा रहे हो कि कहाँ तो स्वजना के साथ रहकर आनन्द से रहना ओर कहा दूसर नीचपुरुषा की गुलामा करते हुए जीना। दूसर लोग कितन ही गुणवान् क्या न हा आर स्वजन गुणहीन ही क्या न हा गुणहीन स्वजन दूसरा की अपेक्षा श्रष्ठ ही ह। क्याकि दूसरा दूसरा ही होता है। जा अपने पक्ष का छाडकर दूसरे लोगो की सवा करता ह वह अपन पक्ष क नष्ट हा जाने पर फिर उन्ही लोगा द्वारा मार डाला जाता है। तुमन लक्ष्मण का इस स्थान तक ल आकर मेरा वध कराने के लिए प्रयत्न करके जसी निर्दयता दिखाई ह यह पुरुषार्थ तुम्हारे जसा स्वजन ही कर सकता ह।'[1] इन्द्रजित को उत्तर देते हुए विभीषण ने स्वय भी स्वीकार किया था कि यद्यपि मेरा जन्म क्रूरकमा राभसा क कुल म हुआ ह तथापि मेरा शील स्वभाव राक्षसा जेसा नही ह। सत्पुरुषा का जा प्रधान गुण सत्य ह उसी का मेने आश्रय ले रखा ह।'[2]

आयु की दृष्टि स विभीषण अपन सभी भाइया म सवस छोटा था किन्तु उसके मन म राज्य की लिप्सा इतनी अधिक थी कि उसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तेयार था। प्रारम्भ म रावण ने न तो कभी उसका अपमान ही किया आर न उपक्षा ही की। रावण राज्य से सम्बन्धित समस्याआ पर प्रहस्त आदि मन्त्रिया सनापतिया आर अन्य हितपिया के साथ विभीषण स भी सलाह लिया करता था आर यदि विभीषण ने नीतिसम्मत सत्परामर्श दिया तो उसे रावण ने स्वीकार भी किया। दूत को अवध्य बतलाकर जब विभीषण द्वारा हनुमान को प्राण दण्ड क बदले नीति अनुसार कोई अन्य दण्ड देने का परामर्श दिया गया था तव रावण न उत्तर म यही कहा था कि विभीषण तुम्हारा कहना ही ठीक हे। वास्तव म दूत क वध की बडी निन्दा की गयी हे।'[3] रावण के मन मे विभीषण के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना भी नही रही। सम्मानपूर्ण स्थिति म रहत हुए भी विभीषण क मन मे राज्य प्राप्ति का लाभ लगातार पलता रहा किन्तु उसने इसे कभी प्रकट नही होने दिया।

विभीषण क राज्य-लाभ को राम ओर हनुमान ने अच्छी तरह समझ लिया था। इसे सबसे पहले हनुमान ने ही इगित किया था। राम के पास विभीषण के आगमन को सुग्रीव सहित सभी यूथपतियो ने सन्देह की दृष्टि से दखा था। किसी ने उसे राभस स्वभाव का मानकर किसी ने रावण द्वारा भेजा गया कपट वेषधारी कहकर ओर किसी न अन्य तर्को के आधार पर विभीषण को शरण देन का विराध किया था। इस ऊहापाह आर सन्देह की स्थिति का निवारण हनुमान ने किया। उन्हाने

1 वा रा 6 87 11 17 2 वा रा 6 87 19 3 वा रा 5 53 2

सभी के मतो को निराधार बताते हुए कहा था कि विभीषण आपके उद्योग को देखकर और रावण के मिथ्याचार को दृष्टि मे रखकर ही आपके पास चला आया है। उसने यह सुन समझ लिया है कि आपके द्वारा वाली का वध किया जाकर किष्किन्धा के राज्य पर सुग्रीव का अभिषेक कर दिया गया है। विभीषण भी बहुत सोच विचार कर राज्य प्राप्त करने की लालसा से ही आपके पास चला आया है। इसलिए इसका स्वागत करते हुए इसे शीघ्र ही अपना बना लेना चाहिए।[1]

हनुमान की बात सुनकर भी जब सुग्रीव ने विभीषण को शरण देने का विरोध किया तब राम ने राजनीति की जटिलता को स्पष्ट करते हुए हनुमान के विचार से ही सहमति व्यक्त की थी। उन्होंने कहा था कि राज परिवार मे स्वार्थ हानि की आशका प्राय अपने परिजनो से ही हुआ करती है। विभीषण को हमारे परिवार से किसी प्रकार का भय नही हो सकता है इसलिए इससे कपटपूर्ण विरोध की आशका भी नहीं होनी चाहिए। इसके साथ ही राम ने कहा कि विभीषण राज्य प्राप्त करने की आकाक्षा से ही यहाँ आया है अतएव इसको अपना बना लेना ही उचित है।[2] राम के व्यवहार से विभीषण को विश्वास हो गया था कि उसे निश्चय ही राज्य प्राप्त हो जाएगा। इसलिए राम के द्वारा अपनाये जाने पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए राज्य प्राप्ति की अपनी लालसा को भी उसने प्रकट कर दिया। उसने कहा था कि मै लका सभी मित्र और धन सम्पत्ति को छोडकर आपके पास आया हूँ। अब मेरा जीवन सुख और मेरा राज्य सब-कुछ आप पर ही निर्भर है।[3]

रावण के विरोध मे विभीषण की पूरी सहायता प्राप्त करने की राम की योजना थी। विभीषण के पास सैन्यशक्ति तो नही थी किन्तु रावण की सेना और उसकी शक्ति तथा लका की सुरक्षा व्यवस्था के सभी रहस्यों को वह जानता था। उसने राम के सामने उन सभी रहस्यो को प्रकट कर दिया था। राम विभीषण की राज्य लिप्सा से परिचित थे ही अतएव उन्होने उसकी इस मानसिक दुर्बलता का पूरा लाभ उठाया। उन्होने विभीषण को पहले तो आश्वस्त किया कि—मै रावण को मारकर तुमको निश्चय ही लका का राजा बनाऊँगा और इसके पश्चात् रावण से युद्ध होने तथा उस पर विजय प्राप्त करने के बहुत पहले ही उन्होने विभीषण को लका का राजा घोषित कर उसका अभिषेक कर दिया था।[4] लक्ष्मण को समुद्र से जल लाने और विभीषण को लका के राज्य पर अभिषेक करने का निर्देश दिया गया और लक्ष्मण ने तुरन्त ही उसका पालन कर उसे राजा बना दिया था। इस प्रकार राजा बनने पर विभीषण को हार्दिक प्रसन्नता हुई थी।[5] शुक ने राम की सेना का रावण को परिचय देते हुए बताया था कि राम ने विभीषण को लका के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया है।[6]

---

1 वा रा 6 17 66-67 2 वा रा 6 18 13 3 वा रा 6 19 5 4 वा रा 6 19 19
5 वा रा 6 19 24 26 6 वा रा 6 28 27

अनल अनिल हर ओर सम्पाति को विभीषण का मन्त्री कहा गया है। ये शायद वे ही चार राक्षस थे जो रावण द्वारा विभीषण के निष्कासित किये जाने पर उसके साथ चले आये थे। राजा बनने की स्थिति म इन चारों को सम्भवत विभीषण का मन्त्री घोषित कर दिया गया था।[1]

विभीषण का राज्य लोभ उस समय बहुत की स्पष्ट होकर ऊपर आ गया जब उसन दु ख के आवेश म स्वय उसे प्रकट कर दिया। इन्द्रजित के बाणो से घायल होकर राम ओर लक्ष्मण दोना ही खून से लथपथ बेहोश होकर जमीन पर गिर पडे थे। इन्द्रजित दोनो भाइयों को मरा हुआ समझकर लकापुरी को लोट गया था ओर पूरी वानर सेना म भगदड़ मच गयी थी। विभीषण को राम-लक्ष्मण की यह दशा देखकर गहरा आघात पहुँचा ओर उसकी आँखे भर आयी थीं। इस स्थल पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि विभीषण को राम के प्रति श्रद्धा अथवा ममत्व के कारण नहीं बल्कि इस कारण दु ख हुआ था कि राम-लक्ष्मण के मारे जाने पर उसे लका का राज्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। उसने बडे ही विषाद के स्वर म कहा था कि जिनके बल पराक्रम का आश्रय लेकर मने प्रतिष्ठा प्राप्त करने की अभिलाषा की थी वे दोनो भाई देह-त्याग के लिए जमीन पर सो रहे ह। आज म जीते-जी मर गया ओर मेरा राज्य विषयक मनोरथ भी नष्ट हो गया। विभीषण का दु खी हृदय तभी शान्त हुआ था जब सुग्रीव ने उसे अपने हृदय से लगाकर पूरी तरह आश्वस्त करते हुए कहा था कि--धर्मज्ञ विभीषण तुमको लका का राज्य प्राप्त होकर रहेगा इसमे किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।[2] ये सभी सन्दर्भ इस बात को ही प्रमाणित करते ह कि विभीषण राज्य प्राप्ति की कामना से ही रावण से लड झगड कर राम के पास चला आया था।

उपर्युक्त उल्लख के साथ यहां इस बात के प्रति सकेत करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि राम की शरण मे आने के पहले विभीषण के मन म उनके प्रति किंचित् भी श्रद्धा का भाव विद्यमान नहीं था। रामचरितमानस म भले ही हनुमान को विभीषण के भवन की दीवारों पर राम के आयुधों के चिह्न दिखाई दिये हो अथवा विभीषण के मुख से राम की प्रशसा सुनाई दी हो किन्तु वाल्मीकि रामायण के सन्दर्भ दूसरे ही तथ्यो को उद्घाटित करते है। यह सकेत किया जा चुका हे कि रावण विभीषण को पूरा सम्मान देता था उससे सलाह लेता था और उसे स्वीकार भी करता था। इस समय तक विभीषण राम को युद्धप्रिय दुर्विनीत और मूर्ख मानता रहा था। रावण ने जब हनुमान को मरवा डालने का निर्णय दिया तब विभीषण ने दूत के वध को नीति के प्रतिकूल बतलाते हुए रावण के गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की थी। उसने रावण को धर्म और अर्थ नीतिविद्, अच्छे बुरे का विचार करते हुए

1 वा रा 7 5 45 2 वा रा 6 50 18 19,21

कर्तव्य के प्रति विवेकशील नीतिज्ञ धर्म और लोकाचार का ज्ञाता शास्त्र सिद्धान्तों का पण्डित आदि अनेक गुणों से सम्पन्न बताया था। विभीषण को यह विश्वास था कि युद्ध मे रावण के हाथ से राम लक्ष्मण निश्चय ही मारे जाएँगे। यह समझ मे नही आता कि विभीषण के इस विश्वास मे कुछ सच्चाई भी थी या वह केवल घर फूँक कर तमाशा देखना चाहता था। जो भी हो उसने रावण से कहा था कि हनुमान के मारे जाने पर मै किसी ऐसे अन्य प्राणी को नहीं देखता जो उन युद्धप्रिय और दुर्विनीत राजपुत्रो को आपसे युद्ध करने के लिए तैयार कर सके। इस समय राक्षसो के मन मे युद्ध करने का जो उत्साह दिखाई देता है उसे भग करना उचित नही। मेरी राय तो यही है कि कुछ थोडे से हितैषी सावधान शस्त्रधारियो को भेजकर उन मूर्ख राजकुमारो को कैद कर लेना चाहिए।[1] इसके साथ ही विभीषण ने यह भी कहा था कि हनुमान को मारने की बजाय जिन्होने इसको यहाँ दूत बनाकर भेजा है उन्ही को दण्डित किया जाना चाहिए।[2] विभीषण की इस सलाह को रावण ने मान लिया था। इससे यह साफ जाहिर होता है कि रावण के पास से भाग आने के पहले तक विभीषण न तो राम के किन्ही गुणो के प्रति आस्थावान् ही था और न वह किसी कर्तव्य भावना से ही उनके पास आया था। उसके मन मे राज्य की लालसा हो रही थी और उसे पूरी करने के लिए उसने ऐसे लोगो का सहारा लेने मे भी सकोच नही किया जिनको वह युद्धप्रिय दुर्विनीत मूढ और दण्डनीय मानता रहा था।

अनेक प्रसगो मे विभीषण को भीमकर्मा वीर, महाद्युति धर्म और अर्थ के तत्त्व को जाननेवाला तथा देशकाल के अनुरूप कार्य को समझनेवाला कहा गया है।[3] इन्द्रजित के साथ बातचीत के प्रसग मे शस्त्रभृता वरिष्ठ[4] जैसे विशेषण का प्रयोग भी उसके लिए किया गया है किन्तु जब उसके आचार और व्यवहार पर दृष्टि जाती है तो इन शब्दो के प्रयोग की सार्थकता सिद्ध नही होती। पराक्रम के विषय मे विभीषण की मान्यताएँ निहायत ही निकम्मी और राजाओ तथा वश की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल थी। सिद्धान्तत वह यही मानता था कि प्रत्येक प्राणी को जिस किसी भी प्रकार अपने प्राणो की रक्षा करनी ही चाहिए।[5] ऐसा कोई भी काम करने का उसमे साहस ही नही था जिसमे किसी खतरे की आशका हो और इसीलिए कलह को टालने की दिशा मे ही उसका दिमाग जाता था। सीता को लौटा देने की सलाह देते हुए उसने रावण से कहा था कि सीता को तुरन्त ही लौटा दिया जाना चाहिए अन्यथा हम लोगो को बडा भारी खतरा उत्पन्न हो सकता है। कलह करने से आखिर क्या लाभ होगा।[6]

---

1 वा रा 5 52 24 27 2 वा रा 5 52 20 3 वा रा 6 10 17 13 4 वा रा 6 15 8
5 वा रा 6 9 14 6 वा रा 6 9 15

प्राणा के प्रति ममत्वशील आर कलह के भय से काँप जानेवाले व्यक्ति से पराक्रम की आशा नहीं की जा सकती। त्रिभीपण भी शत्रु के प्रति साम दाम ओर भेद नीति को अपनाने पर ही सबसे अधिक जोर देता था। उसका यह भी विश्वास था कि पराक्रम प्रत्येक अवस्था में सफल नहीं होता बल्कि असावधान होनी अथवा भाग्य क मारे हुए लागो पर ही पराक्रम द्वारा सफलता पायी जा सकती हे। रावण के दरबार म जब निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु आदि सेनापतियो ने आवेश मे आकर राम-लक्ष्मण और हनुमान को मार डालने के लिए अपने शस्त्र सँभाले थे तब विभीषण डर के कारण काँप गया था। उसने हाथ जोडकर कहा था कि जो काम साम दाम आर भेद इन तीन उपाया से पूरा न हो सक उसी के लिए पराक्रम करने की बात कही गयी हे। पराक्रम भी भली-भाँति सोच विचार कर विधिपूर्वक किया जाय तो भी कवल उन्ही व्यक्तिया पर सफल हाता है जो स्वय असावधान हो जिन पर पहले से दूसरे शत्रुआ न आक्रमण किया हो अथवा अन्य प्रकार से भाग्य के मारे हुए हा।[1] विभीपण के इन विचारा से स्पप्ट है कि पराक्रम मे उसकी किंचित् भी आस्था नहीं थी आर वह केवल असहाय निर्बल असावधान व्यक्तिया पर ही पराक्रम दिखाने की बात सोच सकता था। रामायण क अन्य पात्र किसी अन्य के साथ युद्धरत शत्रु पर आक्रमण करन का विरोध करते रहे ह ओर सभी ने अपने शत्रुआ को ललकारकर उनको पूण सावधान करन के बाद ही उन पर पराक्रम प्रकट किया है किन्तु विभीषण की आचार नीति ऐसी रही जो पराक्रमशील पुरुषो के सर्वथा विपरीत हे।

विभीपण के विषय म रामायण में उल्लिखित प्रारम्भिक प्रसगो से यह साफ जाहिर होता ह कि राम-लक्ष्मण के शार्य पराक्रम और उनके धनुर्धर रूप से वह इतना अधिक भयभीत था कि उनके नाम से ही उसका साहस लडखडा जाता था। जब भी उसन सीता को लाटा देने की सलाह दी तो मुख्य रूप से उसके मन में इस भय की व्याप्ति रही कि सीता को न लाटाने की स्थिति मे राम अपने पौरुष से लका नगरी को तो ध्वस्त कर ही डालगे लका निवासी समस्त राक्षसो का जीवन भी खतरे मे पड जाएगा। अन्य सेनापतियो द्वारा युद्ध के लिए उत्साह दिखाये जाने पर भी विभीषण ने कहा था कि शत्रुओ के पास असख्य सेनाएँ है उनमे असीम बल आर पराक्रम है इस बात को जान बूझकर भी उनकी शक्ति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जब तक राम अपने बाणो से हाथी घोडो आर अनेक रत्नो से भरी पूरी लका को ध्वस्त नहीं कर डालत उसके पहले ही सीता को लोटा दिया जाना चाहिए। यदि हम लाग अपने आप ही सीता को नहीं लोटा देते तो लका पुरी नप्ट हा जाएगी ओर समस्त शूरवीर राक्षस मार डाले जाएँगे।[2] सीता का अपहरण लका की जनता राक्षसा आर अन्त पुर सभी क लिए अशुभ दिखाई देता ह।[3] प्रहस्त निश्चय ही

---

1 वा रा 6 9 8-9 2 वा रा 6 9 12 17 19 3 वा रा 6 10 24

पराक्रमी ओर साहसी था। उसने बडे साहसपूर्वक कहा था कि भय नाम की वस्तु को हम जानते ही नही। हमें युद्ध मे यक्षा गन्धर्वो नागों और सर्पो से भी भय नहीं होता फिर राम से भला भयभीत होने का कोई कारण ही नहीं हे।[1] प्रहस्त की इन ओजपूर्ण वाता को सुनकर भी विभीपण साहस नहीं जुटा सका और उसने अपने उत्तर मे फिर यही कहा था कि जब तक राम के दुर्जय ओर तीखे वाण तुम्हारे शरीर को विदीर्ण नहीं कर डालते तभी तक तुम ऐसी बाते कर सकते हो। रावण निशिरा निकुम्भ इन्द्रजित देवान्तक नरान्तक अतिकाय कोई भी शूरवीर राम के सामने युद्ध मे टिकन मे समर्थ नहीं। इसलिए सीता को लौटा देना ही उचित होगा।[2] लका की प्राय सभी राक्षसियों इस बात को जानती थीं कि विभीषण राम के डर के कारण ही उनके आश्रय मे चला गया हे। कुम्भकर्ण मेघनाद तथा अन्य राक्षसा के मारे जाने पर विलाप करते हुए उन्होने कहा था कि पुलस्त्यनन्दन विभीपण ने ही समयोचित कार्य किया ह। उन्हे जिनसे भय दिखाई दिया व उन्हीं की शरण मे चले गये।[3] विभीपण को वस्तुत पराक्रम पर उतना भरोसा कभी नही रहा जितना उद्यम पर रहा था। उद्यम से उसका आशय 'तरकीब निकालने' से ही प्रतीत होता है। इन्द्रजित पर विजय प्राप्त करने के लिए उसने राम को उद्यम करने की ही सलाह दी थी[4] ओर इसी सलाह के साथ लक्ष्मण को इन्द्रजित के यज्ञस्थल निकुम्भिला' के पास पहुँचा दिया था। इन्द्रजित और रावण का वध कराने म विभीषण ने पराक्रम का नहीं बल्कि तरकीबो का सहारा लिया था।

रावण ने विभीषण के विचारो को सुनकर उसे केवल आर्य जनोचित स्नेह भावना से रहित माना था किन्तु इन्द्रजित ने साफ शब्दो म उसको कायर ओर डरपोक कहा। विभीषण जब बार बार राम से झगडा मोल न लेने और सीता को लोटा देने की बात को दुहाराता रहा तो इन्द्रजित से न रहा गया। उसने सबके सामने ही कहा था कि–छोटे चाचा आप बहुत डरे हुए की तरह यह केसी निरर्थक बात कह रहे हो। जिसने इस कुल मे जन्म न लिया हागा वह भी ऐसी बात नहीं करेगा ओर न ऐसा काम ही करेगा। हमारे इस कुल मे केवल यह छोटे चाचा विभीषण ही बल वीर्य पराक्रम धैर्य ओर तेज रहित है।[5] यह उल्लेखनीय है कि प्रहस्त ओर अनेक अन्य सेनापति भी सीता के अपहरण के समर्थक नही थे किन्तु फिर भी उन्होने लका ओर रावणकुल की प्रतिष्ठा बचाने के लिए युद्ध करना ही उचित समझा था। विभीपण ने वश की प्रतिष्ठा पर कोई ध्यान ही नही दिया। विभीषण क विपय मे इन्द्रजित के ही शब्द याद आते है जो उसने कहा था कि तुम्हारे मन में स्वजनो के प्रति कोई स्नेह नहीं आर तुम दूसरों की गुलामी करते हो।

---

1 वा रा 6 14 7 8 2 वा रा 6 14 13-15 3 वा रा 6 94 40 4 वा रा 6 85 9
5 वा रा 6 15 2 3

आचार मर्यादा के विषय म विभीषण का रवैया बिल्कुल ही अजीव रहा है। धर्म ओर नीति का नाम लेकर ही वह अपनी वाते कहता रहा किन्तु यह कहना भी सरल नहीं कि धर्म ओर नीति की कौन सी परम्परा अथवा कौन सा सिद्धान्त उसे मान्य था। रामायण म कोई भी ऐसा पात्र नहीं है जो अपन से ज्येष्ठ के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार न करता रहा हो। लक्ष्मण ने दशरथ केकेयी अथवा भरत के प्रति जव आक्रोश प्रकट किया था तव उन्होने अपने मूल्या के प्रति सकेत भी किया था। विभीषण के मूल्या को समझना भी कठिन है। रावण ने जव उसे अनार्य कहकर फटकारा था तव वह अपने चार सहयोगी राक्षसों के साथ उठकर खडा हो गया था। इस समय एक ओर तो वह रावण को वडा भाई आर पिता के समान आदरणीय कहता रहा और दूसरी ओर साफ शब्दो में यह भी कह दिया कि तुम्हारे अग्रज होने पर भी म ऐसे कठोर वचना को कभी वरदाश्त नहीं कर सकता। यह कहकर ही वह भागकर राम के पास चला आया था।[1] इसके पहल प्रहस्त आदि राक्षसा के सामने उसने यहाँ तक कहा था कि रावण व्यसना के वश म ह इसलिए साच विचार कर काम नहीं करते। सभी सुहृद राक्षसो को चाहिए कि इनके साथ वलात्कार करके भी इनकी रक्षा करे। यदि आवश्यकता पड़े तो आप सव एकमत होकर इनके केश पकड़कर घसीट कर भी इनकी रक्षा करे।[2] इस प्रकार के विचार व्यक्त करनेवाले के विषय म यह केसे माना जा सकता है कि उसके मन मे अपने से ज्येष्ठ के प्रति स्नेह आर सम्मान की भावना विद्यमान थी। युद्ध स्थल म रावण कुम्भकर्ण और अन्य राक्षसो का परिचय देते समय भी विभीषण के द्वारा ऐसे वाक्या का ही प्रयोग किया गया हे जो उसके हृदय मे स्नेह आर सौजन्य के अभाव को प्रमाणित करते ह।

विभीषण की छुटपुट आचार विषयक मान्यताएँ जहाँ-तहाँ स्फुट वाक्यो म अवश्य मिलती हैं किन्तु उसका व्यवहार इनसे अलग कुछ दूसरा ही रहा। उसकी मान्यता थी कि शास्त्र का ज्ञाता विद्वान्, नीति को समझनेवाला और वलवान् पुरुष कभी क्रोध के वश में नहीं होता। रावण ने जव हनुमान को मरवा डालने का निश्चय किया था तव विभीषण ने कहा था कि आप धर्म के ज्ञाता उपकार को माननेवाले ओर राजधर्म के विशेषज्ञ है। भले-बुरे का ज्ञान रखनेवाले परमार्थ के ज्ञाता हे। यदि आप जेसे विद्वान् भी रोष के वशीभूत हो जाएँ तो शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त करना भी व्यर्थ का श्रम ही समझा जाएगा।[3] आपकी बुद्धि धर्म ओर अर्थ की शिक्षा से युक्त है। आप ऊँच-नीच का विचार करके कर्तव्य का निश्चय करते है। आप जसा नीतिज्ञ पुरुष क्रोध के अधीन केसे हो सकता है? क्योंकि शक्तिशाली पुरुष कभी क्रोध नहीं करते।[4] विभीषण के अनुसार काल के वशीभूत अजितेन्द्रिय पुरुष मे नीतियुक्त वात सुनने का विवेक भी शेष नहीं रहता। रावण द्वारा फटकारे जाने पर उसने अपना

---

1 वा रा 6 16 19 2 वा रा 6 14 18 19 3 वा रा 5 52 7 8 4 वा रा 5 52 16

यही विचार प्रकट किया था।' उसने यह भी कहा था कि मीठी मीठी बात करनेवाले लोग तो आसानी से मिल जाते हैं किन्तु अप्रिय और हितकर बात कहने सुननेवाले दोनों ही दुर्लभ होते हैं।'

इन्द्रजित को उत्तर देते समय अपनी आचार विषयक आस्थाओं के सम्बन्ध में विभीषण ने स्वयं ही विस्तारपूर्वक कहा है। पहले तो उसने इन्द्रजित से कहा था कि तुमको मेरे स्वभाव का पता ही नहीं। इसके बाद ही उसने बताया था कि क्रूरतापूर्ण कर्म में मेरा मन नहीं लगता। अधर्म में मेरी कोई रुचि नहीं। यदि अपने भाई का शील स्वभाव अपने अनुकूल न भी हो तब भी एक भाई दूसरे को कैसे निकाल सकता है। जिसका शील स्वभाव धर्म से भ्रष्ट हो गया हो जिसने पाप करने का दृढ़ निश्चय कर लिया हो ऐसे पुरुष का त्याग करके प्रत्येक प्राणी उसी प्रकार सुखी होता है जिस प्रकार हाथ पर बैठे हुए सर्प को त्यागकर मनुष्य निर्भय हो जाता है। जो दूसरों का धन लूटता हो और परायी स्त्री को हाथ लगाता हो उस दुरात्मा का जलते हुए घर की भाँति त्याज्य ही कहा गया है। पराये धन का अपहरण परस्त्री के साथ संसर्ग और अपने हितैषी सुहृदों के प्रति अविश्वास—ये तीन दोष विनाशकारी हैं। महर्षियों का वध देवताओं के साथ विरोध अभिमान रोष वैर और धर्म के प्रतिकूल चलना ये सभी दोष मेरे भाई में मौजूद हैं। इन्हीं के कारण मैंने अपने भाई का त्याग किया है।'

इन्द्रजित के साथ युद्ध के अवसर पर विभीषण ने उसके प्रति कुछ ममत्व की भावना भी प्रकट की है। वानर यूथपतियों को राक्षसों की बची खुची सेना का संहार करने के लिए प्रोत्साहित करते समय इन्द्रजित की ओर संकेत करते हुए उसने कहा था कि यह मेरे पितृतुल्य भाई का पुत्र है अतः मेरे लिए इसका वध करना उचित नहीं है। किन्तु फिर भी राम के हित के लिए अपने भतीजे को मार डालने के लिए भी मैं उद्यत हूँ। जब मैं स्वयं इसे मारने के लिए हथियार उठाता हूँ तो आँसुओं से मेरी दृष्टि अवरुद्ध हो जाती है इसलिए लक्ष्मण ही इसका विनाश करेंगे।'

विभीषण की उपर्युक्त आस्थाओं में विचित्रता और विरोध साफ दिखाई देता है। रावण द्वारा निष्कासित किये जाने पर तो उसने व्यंग्य किया किन्तु वह इस बात को भूल गया कि राक्षसों द्वारा अपने बड़े भाई को बाल पकड़कर घसीटने की सलाह देना उसके लिए कहाँ तक उचित था? इसी प्रकार अपने भतीजे को मारने में यदि उसे कुछ दुःख होता था तो दूसरे के हाथों उसे मरवा डालने में उसको दुःख क्या नहीं हुआ? क्रूरता भ्रातृ द्रोह सुहृदों के प्रति अविश्वास आदि की वह निन्दा करता है जबकि यह सभी दोष उसके आचरण में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

---

1 वा रा 6 16 8 26 2 वा रा 6 16 21 3 वा रा 6 87 18 25 4 वा रा 6 89 17 18

स्वग के अस्तित्व मे विभीषण का विश्वास था आर वह यह भी मानता था कि धर्मात्मा पुरुष ही स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी होते ह। प्रहस्त ने जब राम-लक्ष्मण को मार डालने की बात कही थी तक विभीषण ने कहा था कि जिस प्रकार अधम बुद्धि पुरुषो की स्वर्ग तक पहुँच नहीं होती उसी प्रकार प्रहस्त, महादर कुम्भकर्ण आदि के लिए राम को मारना भी असम्भव है।[1]

रावण की मृत्यु पर विलाप करते हुए विभीषण ने ही कहा था कि आज इस धरती पर स धम का मूर्तिमान विग्रह उठ गया है। और जब रावण के दाह सस्कार का प्रश्न उपस्थित हुआ तो उसने साफ इनकार कर दिया था। राम स ही उसने कहा था कि जिस रावण ने धर्म आर सदाचार का त्याग कर दिया था जो क्रूर निर्दयी असत्यवादी ओर परस्त्री का स्पर्श करनेवाला था उसका दाह सस्कार करना भी मे उचित नहीं समझता। सबके अहित म सलग्न रहनेवाला यह रावण भाई के रूप म मेरा शत्रु ही था। यद्यपि ज्येष्ठ हाने से यह गुरुजनोचित गारव के कारण मेरा पूज्य था तथापि यह मुझसे सत्कार पाने योग्य नही। मेरी यह बात सुनकर ससार के लोग मुझे क्रूर अवश्य बताथगे किन्तु जब वे रावण क दुर्गुणो को सुनगे तब मेरे विचार क आचित्य को स्वीकार करगे।[2] इसके बाद राम ने जब फिर से उसको समझाया तभी उसन रावण का दाह सस्कार सम्पन्न किया था।

उपर्युक्त विवेचन से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि विभीषण की आचार विषयक मान्यताएँ कभी साफ आर निश्चित नही रहीं। न वह किसी विशिष्ट दार्शनिक अथवा धार्मिक परम्परा का ही अनुसरण करता ह न राजर्षियो की परम्परा को स्वीकार करता ह ओर न कुलधर्म की ही परवाह करता ह। ऊल-जलूल तरीक से ही उसका व्यवहार रहा। यदि रावण ओर इन्द्रजित को मरवा डालन मे उसका हाथ न हाता और रावण के पास स भागकर राम के पास न आ गया होता तो राम-कथा म उसका काइ महत्त्व होता ही नहीं। राम की शरण म आने के कारणो का देखकर भी उसक आचार-व्यवहार के प्रति कोई आस्था उत्पन्न नही होती।

---

1 वा रा 6 14 10 2 वा रा 6 111 93 94

छोडकर कैलाश पर रहने के लिए चले गये। कुबेर के वहाँ से चले जाने पर सुमाली, प्रहस्त और अन्य राक्षसो ने रावण को लका के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

यद्यपि रावण के अन्त पुर म अनेक अपहृता अथवा अपने पतियो को छोडकर स्वच्छा से भागकर उसके पास आकर रहनेवाली नारियो का वर्णन विस्तार से किया गया ह तथापि रावण की दो पत्नियों का सन्दर्भ स्पष्ट रूप से उपलब्ध है। उसका पहला विवाह मय दानव और हैमा अप्सरा की सुन्दरी कन्या मन्दोदरी के साथ हुआ था। मय ने अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की खोज करते हुए रावण के व्यक्तित्व स प्रभावित होकर स्वय ही उसके साथ मन्दोदरी का विवाह कर दिया था। स्मरणीय ह कि मायावी और दुन्दुभि भी मन्दोदरी के सगे भाई थे और व दोनो किष्किन्धा पर आक्रमण करने के अवसर पर वाली के हाथों पराजित होकर मारे गये थे। मन्दोदरी के गर्भ से महान् तपस्वी तेजस्वी ओर पराक्रमी पुत्र इन्द्रजित का जन्म हुआ था। रावण की दूसरी पत्नी का नाम धान्यमालिनी था। इसी के गर्भ स अतिकाय का जन्म हुआ था।[1] अक्षकुमार देवान्तक नरान्तक और त्रिशिरा का भी रावण का पुत्र कहा गया था। किन्तु यह स्पष्ट नही कि यह किसके गर्भ से उत्पन्न हुए थे।[2] रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा का विवाह कालका के पुत्र विद्युज्जिह्व के साथ कुम्भकर्ण का विरोचन कुमार बलि की दोहित्री वज्रज्वाला के साथ तथा विभीषण का गन्धर्वराज शैलूष की कन्या सरमा के साथ कर दिया था।[3] राज्याभिषेक के बाद अनेक राज्यो पर आक्रमण करते हुए रावण ने कालकेया के अश्म नगर पर भी आक्रमण किया था। इस युद्ध म हजारो कालकेया के साथ शूर्पणखा का पति विद्युज्जिह्व भी रावण के हाथो मारा गया था और इस प्रकार धोखे म आकर रावण ने अपनी बहिन को ही विधवा बना दिया था। बाद म शूर्पणखा के परितोष के लिए ही रावण ने उसे अपने मौसेरे भाई खर के साथ सुखपूर्वक रहने क लिए जनस्थान भेज दिया था।

रावण की माँ केकसी राम रावण युद्ध के समय जीवित थी। वृद्ध मन्त्रियो के अतिरिक्त केकसी ने भी रावण को सीता को लौटा देने की सलाह दी थी। विभीषण की पत्नी सरमा ने सीता को रावण और उसके परिवार के विषय म विस्तृत जानकारी दी थी। उसी के साथ यह भी बताया था कि रावण को उसकी माँ केकसी भी सभी तरह समझा बुझा चुकी है।[5]

वशपरम्परा पिता के सस्कार अथवा जो भी स्थिति रही हो किन्तु इतना निर्विवाद है कि रावण ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे ही वेद शास्त्र राजनीति धर्म और अर्थनीति का गहन अध्ययन किया था। विभिन्न प्रसगो म उसके द्वारा व्यक्त

---

1 वा रा 6 71 30 2 वा रा 6 68 7 3 वा रा 7 12 4 वा रा 7 12 23 24
5 वा रा 6 34 20 23

विचार और धर्मनीति तथा आचार मर्यादाओं के प्रमाणों की प्रतीति ही इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह अपने समय का एक महान् पण्डित था। जगह-जगह उसको महात्मा तो कहा ही गया है 'महात्मा' और 'वाक्यकोविद' जैसे विशेषणों का प्रयोग उसके लिए किया जाता रहा।[1] हनुमान स्वयं यह मानते थे कि रावण धर्म और अर्थ के तत्त्व का मर्मज्ञ है और उसने बड़े भारी तप का संग्रह भी किया है।[2] उन्होंने उसे स्पष्टतया बुद्धिमान् भी कहा।[3] दूत के वध को अनुचित बताते हुए परामर्श देते समय विभीषण ने भी रावण से कहा था कि आप धर्म के ज्ञाता, कृतज्ञ राजधर्म के विशेषज्ञ, अच्छे बुरे का ज्ञान रखनेवाले और परमार्थविद् हैं। यदि आपके समान विलक्षण पुरुष भी रोष के वशीभूत हो जाएँ तो शास्त्रों का पाण्डित्य प्राप्त करना एक व्यर्थ का श्रम ही समझा जाएगा।[4] आपकी बुद्धि धर्म और अर्थ की शिक्षा से युक्त है। ऊँच-नीच का विचार करके ही आप कर्तव्य का निश्चय करते हैं। आप जैसा नीतिज्ञ पुरुष कोप के अधीन कैसे हो सकता है। धर्म की व्याख्या करने लोकाचार का पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्त को समझने में आपके समान दूसरा कोई भी नहीं।[5]

रावण बोलचाल में भी द्विजातियों के समान सुसंस्कृत भाषा का ही प्रयोग करता था। अशोक वाटिका में सीता से बात करने के पहले हनुमान को यह परेशानी हुई थी कि यदि वे बातचीत में सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं तो सीता उनको रावण समझकर भयभीत हो जाएगी।[6] पंचवटी में सीता को देखकर उसने उनकी तुलना श्री, ह्री और रति से की थी[7] जो उसके शास्त्रज्ञान का ही प्रमाण है।

रामकथा के विकास और परिवर्तन के साथ रावण के व्यक्तित्व के विषय में भी लोगों की धारणाएं बदलती चली गयीं। उसके दस मुख और बीस भुजाओं के बारे में लोगों की धारणा इतनी दृढ़ हो गयी है कि उसके सामान्य मनुष्य की भाँति दो भुजाओं और एक मुखवाले शरीर की कल्पना ही पीछे छूट गयी। दशग्रीव, दशानन जैसे नामों के अलावा उसकी बीस भुजाओं के होने का उल्लेख भी अनेक स्थलों पर किया गया है। राम-लक्ष्मण के द्वारा विरूपित होने के बाद शूर्पणखा जब उसके पास पहुँची थी तब एक ओर उसके भव्य और आकर्षक रूप का वर्णन है और उसी के साथ दस ग्रीवाओं और बीस भुजाओं का सकेत भी किया गया है।[8] इसी प्रकार कुछ अन्य स्थलों पर भी उसकी बीस भुजाओं का वर्णन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके दशग्रीव नाम का संस्कृत शैली के अनुसार दशानन, दशमुख जैसे पर्याय देने के साथ उसकी संगति बढ़ाने के लिए ही उसकी बीस भुजाओं की कल्पना भी कर ली गयी। सीता की खोज करते समय जब हनुमान ने उसका शयनागार

1 वा रा 3 31 39 2 वा रा 5 51 17 3 वा रा 5 51 18 4 वा रा 5.52 7 8 5 वा रा 5 52 16 17 6 वा रा 5 30 18 7 वा रा 5 46 17 8 वा रा 3 3? 8

म सोते हुए देखा था तब उनको केवल एक मुख आर दो भुजाए दिखाई दी थीं। उसके इस रूप का जा वर्णन किया गया है उसके अनुसार रावण अत्यन्त रूपवान् था। सुन्दर आभूषणा स विभूषित चन्दन आर अगराग स सुवासित उसका शरीर किसी का भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। हनुमान ने स्वय देखा था कि बाजूबन्दा से विभूषित उसकी दोना भुजाएँ इन्द्रध्वज के समान दिखाई देती थीं। वे सभी ओर स समान सुन्दर कन्धोंवाली तथा स्वस्थ थीं। उनकी सन्धियाँ सुदृढ थीं आर वलिष्ठ तथा उत्तम लक्षणवाले नखा और अगुष्ठा से सुशोभित थीं।

वे सुगठित और पुष्ट परिघ के समान गोल आर हाथी की सूँड के समान दिखाई दती थी। सुन्दरी स्त्रियाँ उसकी दोना भुजाओ को दबा रही थी।[1] इसी प्रकार अशोक वटिका मे सीता से बात करने के लिए जब वह गया था तब भी वह अपनी दो परिपुष्ट भुजाओ से दा शृगो से शोभित मन्दराचल के समान ही दिखाई दिया था।[2] यह सहज ही अनुमान किया जा सकता ह कि रावण क राक्षस रूप को सिद्ध करने ओर राम की विजय प्रतिष्ठा म वृद्धि करने के उद्देश्य स ही रावण की बीस भुजाआ आर दस मुख हाने की कल्पना जाड दी गयी हा।

हनुमान का जब रावण के दरबार मे उपस्थित किया गया तब वे उसके रूप सान्दय को देखकर मुग्ध हो गय थे। रामायण म इस अवसर का परस्पर विरोधी वणन उपलब्ध होता है। उसके दस मस्तक होने का भी सकेत है और दूसरी ओर विभिन्न आभरणा से अलकृत उसक सुन्दर शरीर का भी वर्णन किया गया है। अन्त म उस दीप्तिशाली राक्षसेश्वर को देखकर उसके तेज पर मोहित होकर हनुमान ने अपन मन म कहा था—अहो इस राक्षसराज का कैसा अद्भुत रूप है! कैसा अनोखा धैर्य ह कसी अनुपम शक्ति है ओर कैसा आश्चर्यजनक तेज है! इसका सम्पूर्ण राजोचित लक्षणा स सम्पन्न हाना कितने आश्चर्य की बात है![3]

लका के राज्य पर अभिषिक्त होने के पश्चात् रावण ने अपने राज्य का विस्तार लका की सुरक्षा ओर लका नगरी के विकास की ओर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ किया। जो लोग अपने ऐश्वर्य और वैभव क बल पर समाज के लिए पूज्य देवता अथवा समादरणीय ऋषि बनकर बेठे हुए थे उन सबसे रावण को प्रारम्भ से ही नफरत रही थी। उसने ऋषियो देवताओ यक्षो आर गन्धर्वो को परेशान करना शुरू कर दिया था तथा देवताआ के विहार स्थल नन्दनवन और अन्य उद्याना को भी उजाडकर नष्ट कर दिया था।[4] कुबेर को जब यह समाचार मिला तो उन्होने एक दूत भेजकर रावण को समझाने का प्रयास भी किया था। उन्होंने शिव की महान् शक्ति का उल्लेख करते हुए उनसे अपनी मैत्री क प्रति सकेत भी किया। रावण कुबेर से सहमत नहीं हुआ और

---

1 वा रा 5 10 15 17 18 0 21 2 वा रा 5 22 27 3 वा रा 5 49 16 17 4 वा रा 7 13 8 9

उसने उस दूत का भी मरवा डाला था। इसके पश्चात् रावण ने अपने छ मन्त्रिया के साथ कैलाश पर आक्रमण किया। कुबेर तथा यक्षा के द्वारा अपनी रक्षा के लिए भयकर युद्ध किया गया किन्तु वे सब रावण के समक्ष युद्ध म ठहर न सके। कैलाश आर कुबर के पुष्पक विमान पर रावण का अधिकार हो गया। इसके बाद रावण न 'शरवण' नामक स्थान पर आक्रमण किया था किन्तु इस युद्ध मे रावण को शकर के द्वारा पराम्त हाना पडा था। जब उसने स्तुतिया द्वारा शकर का प्रसन्न कर लिया तब उन्हान उसको चन्द्रहास नामक खग आर अन्य आयुध देकर लाटा दिया था। यह भी उल्लेखनीय ह कि रावण क्षत्रिय राजाआ का विराधी था। उसने अपने पराक्रम से क्षत्रिया को पराजित कर सेना ओर परिवार सहित नष्ट कर दिया था।[1]

समस्त पृथ्वी को अपन अधिकार म कर लने की कामना से रावण ने कुशीर बीज नामक देश के राजा मरुत्त को युद्ध के लिए ललकारा था। जब रावण न उन पर आक्रमण किया तब व समस्त देवताआ क साथ माहेश्वर यज्ञ कर रहे थ। मरुत्त रावण की चुनाती का जवाब दन के लिए धनुष बाण लेकर युद्ध के लिए तयार हो गये परन्तु सवत ऋषि न यज्ञ म दीक्षित राजा को युद्ध करने से रोक दिया था। इस स्थिति का लाभ उठाकर रावण के मन्त्री शुक ने मरुत्त के पराजित होन की घोषणा कर दी ओर रावण भी अपने का विजयी मानकर दूसर देशो पर आक्रमण के लिए चल दिया। उसने सभी राजाआ को युद्ध के लिए खुली चुनोती दी आर दुष्यन्त सुरथ गाधि गय आर पुरुरवा न बिना युद्ध किय ही उसके समक्ष अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी।

अनेक राज्या को जीतने क बाद रावण ने अयाध्या पर भी आक्रमण किया था। उस समय इक्ष्वाकुवश म उत्पन्न महाराज अनरण्य अयोध्या के शासक थ। अनरण्य न रावण दिग्विजय यात्रा के विषय म पहले से सुन रखा था इसलिए उन्हाने रावण का मुकाबला करन की भी पूरी तेयारी कर ली थी। जब रावण ने उनको युद्ध के लिए ललकारा तब अनरण्य दस हजार हाथी एक लाख अश्वारोही कइ हजार रथी आर पैदल सेनिका के साथ युद्ध के मैदान म आ डट थे। रावण आर अनरण्य के बीच भयकर युद्ध हुआ किन्तु आखिरकार अनरण्य की सना के पर उखड गय आर स्वय अनरण्य भी इस युद्ध म मारे गये। उल्लेखनीय ह कि अनरण्य इक्ष्वाकुवश मे राम स कई पीढी पहले अयाध्या के राजा हा चुके थे। इस स्थिति म अनरण्य आर राम दोना के साथ रावण का युद्ध एक ऐसा प्रश्न उपस्थित कर देता ह जिसका उत्तर रामायण के आधार पर खोजना सरल नही। अनरण्य न प्रतिशोध के रूप मे इक्ष्वाकुवश म उत्पन्न राम क द्वारा रावण के मारे जाने का शाप दिया था।

नारद न बडी चतुराई स रावण का ध्यान मर्त्यलोक के दुःखी प्राणिया की आर

---

1 वा रा 7 16 47-49

स हटाकर यम तथा अन्य देवताओ की ओर मोड़ दिया था। रावण का इसम कुछ भी परेशानी नहीं हुइ और उसने जबरदस्त सघर्ष करते हुए काल वरुण वायु तथा अन्य सभी देवताओ को अपने अधिकार म कर लिया था। नागराज वासुकि की भोगवती पुरी को जीतने के बाद जब उसने मणिमयी पुरी पर आक्रमण किया तब वहा के निवात-कवच नामक दत्यो से उसे सधि कर लेनी पडी। इसी समय अश्म नामक नगर म कालकेया के साथ युद्ध करते हुए उसने अपनी बहिन शूर्पणखा क पति विद्युज्जिह्व को भी मार डाला था। वरुणपुत्रा को परास्त कर वरुणालय पर अपना अधिकार कर लने क बाद रावण लकापुरी को लौट आया था।

रावण जब अपनी दिग्विजय पर निकला था कुम्भकर्ण नींद मे सो रहा था। मघनाद यज्ञ करने म और विभीषण तपस्या म सलग्न था। उसी समय अवसर पाकर मधुपुरी के शासक मधु ने लका पर आक्रमण कर रावण की मोसेरी बहिन कुम्भीनसी का अपहरण किया। रावण के लौटने पर जब विभीषण ने उसको घटना की जानकारी दी तब रावण ने मेघनाद कुम्भकर्ण के साथ एक विशाल सेना को लेकर मधुपुरी पर आक्रमण कर दिया। कुम्भीनसी युद्ध के दुष्परिणामा से बचना चाहती थी इसलिए उसन प्रयत्नपूर्वक मधु ओर रावण के बीच सधि करा दी थी। यह अन्यत्र लिखा ही जा चुका हे कि राक्षस इन्द्र की परम्परा के विरोधी रहे है। रावण ने मधु की सहायता प्राप्त कर अपनी पूरी सेना के साथ इन्द्रलोक पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध म रावण के अनेक सेनानायकों के साथ उसका नाना सुमाली भी मारा गया था। इस पर क्रुद्ध होकर युद्ध की बागडोर मेघनाद ने अपने हाथो मे सँभाल ली थी। देवताओ की ओर से इन्द्रपुत्र जयन्त आगे आया किन्तु मेघनाद के बाणो ने जब उसको बुरी प्रकार स घायल कर दिया तब इन्द्र का श्वशुर दैत्यराज पुलोमा अपने दाहित्र जयन्त को युद्ध में से एक सुरक्षित स्थान म भगा ले गया। इन्द्र ओर रावण के बीच एक लम्बी अवधि तक भयकर सग्राम चलता रहा। इसम अनगिनत राक्षस मारे गये थे। अन्त मे मघनाद न इन्द्र को कैद कर लिया था। रावण मघनाद द्वारा बन्दी बनाये गये इन्द्र को लकापुरी ले गया। इसके पश्चात् समस्त देवताओ की प्रार्थना स्वीकार कर स्वय ब्रह्मा ने इन्द्रजित मेघनाद से इन्द्र को मुक्त कर देने का अनुरोध किया। इसके लिए ब्रह्मा ने देवताओ की ओर से मेघनाद को यथेष्ट विनिमय देना भी स्वीकार किया था[1] और मेघनाद ने युद्ध म विजय प्रदान करनेवाले रथ की प्राप्ति का वरदान लेकर इन्द्र को मुक्त कर दिया था।

यम वरुण कुबेर इन्द्र ओर अन्य राजाओ पर विजयी होनेवाले रावण को दो युद्धो म बुरी प्रकार परास्त होना पडा था। अपनी शक्ति के अभिमान म आकर उसने नर्मदा-तट पर बसी हुई माहिष्मती पुरी पर आक्रमण कर दिया। उस समय हैहयवश

---

1 वा रा 7 30 7

म उत्पन्न अर्जुन माहिष्मती का शासक था। जब रावण माहिष्मती पहुँचा तब अर्जुन नर्मदा म स्त्रियो के साथ विहार क लिए गया हुआ था। अर्जुन क मन्त्रियो से बातचीत कर रावण भी नर्मदा की ओर चला गया। वह पुष्प सामग्री के साथ नर्मदातट पर शिवपूजा म लग गया। इसी बीच पश्चिम की ओर बहनेवाली नर्मदा म ऐसी बाढ आयी कि उसका पानी पूर्व की ओर बहने लगा आर उसम रावण की सारी पूजन सामग्री बह गयी। रावण के मन्त्रियो द्वारा पता लगाये जाने पर उसे ज्ञात हुआ कि माहिष्मती नरश ने क्रीड़ा करते हुए अपनी सहस्र भुजाओ से नमदा के प्रवाह को रोककर उस विपरीत दिशा म मोड दिया था। रावण उसके साथ युद्ध करने के लिए वहाँ पहुँच गया। सहस्रबाहु अर्जुन क सामन रावण ठहर न सका और उस बन्दी बनाया जाकर माहिष्मती ले जाया गया। पुलस्त्य को जब अर्जुन के द्वारा रावण के बन्दी बनाये जाने का समाचार मिला तो वे स्वय सन्तति क प्रति मोहवश माहिष्मतीनरेश अर्जुन के पास पहुँचे थ। पुलस्त्य के अनुरोध पर अर्जुन ने रावण को मुक्त कर दिया आर उसके साथ मैत्री का सम्बन्ध जोड लिया था।

अर्जुन से परास्त हाने पर भी रावण को अपनी शक्ति पर अभिमान बना ही रहा। उसन किष्किन्धा जाकर वाली का युद्ध के लिए चुनौती दी थी। वाली देवार्चन के उद्देश्य स बाहर गया हुआ था किन्तु रावण उसकी खोज करता हुआ उसी स्थल पर जा पहुँचा जहाँ वाली देवताओ के लिए तर्पण कर रहा था। रावण को युद्ध करने का अवसर ही न मिला और वाली ने उसको अनायास ही अपनी कोख म दबा लिया। रावण का इस प्रकार कोख म दबाये वाली चारा समुद्रतटो पर देव-तर्पण करने के पश्चात् किष्किन्धा लौटा था। रावण को अपनी इस पराजय पर बेहद लज्जित होना पडा था ओर वाली को प्रसन्न करत हुए उसने उसके साथ मत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इसके बाद रावण को शायद राम के साथ ही युद्ध मे उलझना पडा था जिसम वह मारा गया।

रावण के निरन्तर सघर्षमय जीवन का देखते हुए यह कहना उचित ही होगा कि वह अपने समय का एक महान् पराक्रमी योद्धा था। अदम्य साहस शक्ति आर सैन्यबल के होते हुए भी उसे सदैव इस बात का ध्यान रहा कि युद्ध मे विजय अनिश्चित होती हे। अशोक वाटिका उजाड देने के बाद हनुमान ने जब रावण के अनक सेनापतियो को भी मार डाला तब उसने विरूपाक्ष यूपाक्ष आदि पाँच सनापतिया को हनुमान को कद कर लेने के निर्देश दिये थे। उन सेनापतियो से रावण ने कहा था कि तुमको हनुमान को वानर समझकर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। युद्ध म विजय की इच्छा रखनेवाले नीतिज्ञ पुरुष को यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि *युद्ध म सफलता अनिश्चित होती है*।[1] प्रहस्त के मारे जाने पर भी उसने

1 वा रा 5 46 16

यही वात दुहरायी थी कि शत्रुओ को नगण्य समझकर उनकी अवहेलना करना उचित नही होता।[1] वह युद्ध के लिए सदव उत्सुक बना रहता था आर प्राय उसने स्वय ही अर्जुन वाली तथा अन्य शत्रुओ के पास जाकर युद्ध की माग की थी। विजय अथवा पराजय की चिन्ता स सर्वथा मुक्त रहकर उसका अविचलित बना रहना उसके स्वभाव की विशेषता थी। हनुमान ने राम का जव रावण की सन्य शक्ति आर सुरक्षा व्यवस्था का परिचय दिया था तव रावण के विषय म उन्हाने कहा था कि वह युद्ध के लिए उत्सुक हाते हुए भी स्वय कभी क्षुब्ध नहीं होता। वह सदव स्वस्थ चित्त आर धीर बना रहता ह आर सनाओ के बार-बार निरीक्षण के लिए पूरी तरह सावधान एव उद्यत रहता है।[2]

ऋषियो ब्राह्मणो आर देवताओ के प्रति रावण के विरोध के विषय म आगे लिखा गया ह। यहाँ यह लिखा जाना युक्तिसगत हागा कि रावण क्षत्रिय राजाओ का परशुराम जसा ही प्रवल विरोधी था। पास पडास अथवा दूरवर्ती राज्यो के क्षत्रिय नरशो पर आक्रमण कर उनको जीतने के लिए उसकी तलवार हमेशा खुली रहती थी। अगस्त्य ने ही राम का उसका परिचय देते समय कहा था कि रावण ने अपनी दिग्विजय क अवसर पर वहुत स महापराक्रमी क्षत्रियो को परेशान कर दिया था। अनेक तेजस्वी ऋषियो को जा वडे ही शूरवीर और रणोन्मत्त थे रावण के राज्य शासन का स्वीकार न करने के कारण सेना ओर परिवार सहित नष्ट हो जाना पडा था। दूसर बहुत से बुद्धिमान् क्षत्रियो ने उसको अजय मानकर अधीनता स्वीकार कर ली थी।[3] राम स युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करते समय सेनापतियो ने भी रावण के क्षत्रिय विराध के प्रति सकेत किया है। उन्होने रावण से कहा था कि पहले यह पृथ्वी विशाल वृक्षो की भाँति इन्द्र के समान पराक्रमी क्षत्रिय वीरो स भरी हुई थी। जव आपने उन समर दुर्जय वीरो का भी मार डाला तव राम पर विजय पाना आपके लिए कोन सी वडी वात ह।[4]

रावण के पराक्रम स वडे वडे राजा आतंकित होकर चुप वेठ जाते थे। अयोध्यानरेश दशरथ तो उसके नाम से कॉपते थे। विश्वामित्र ने राम को अपने साथ ले जाने क लिए दशरथ से अनुरोध करते समय जव रावण की चर्चा की तो दशरथ ने स्पष्ट शब्दो म अपने को रावण की अपेक्षा कमजोर वतलाते हुए कहा था—म उस दुरात्मा रावण के सामने युद्ध म नहीं ठहर सकता। आप मेरे पुत्र पर आर मुझ मन्दभागी पर कृपा कीजिए क्योंकि युद्ध म रावण का वेग तो देवता दानव गन्धर्व यक्ष गरुड आर नाग भी नहीं सह सकते फिर मनुष्यो की तो वात ही क्या है। रावण युद्ध म वलवानो के वल का अपहरण कर लेता है अत म अपनी सेना ओर पुत्रो

1 वा रा 6 59 4 2 वा रा 6 3 19 3 वा रा 7 16 47-49 4 वा रा 6 7 16 17

क साथ रहकर भी उसस तथा उसक सनिको से युद्ध करने म असमर्थ हू।' रावण अपन प्रतिपक्षी के सामन झुकने के लिए कभी तयार ही नहीं हाता था। यह उसका स्वाभाविक दोप था जिस स्वीकार करते हुए भी वह दूर नहीं कर सका। माल्यवान न जव राम की अजेय शक्ति क विपय म कहत हुए सीता को लोटा देन और राम से सन्धि करन का परामर्श दिया तव रावण ने उत्तर म कहा था कि मर स्वभाव का ही यह दोप ह कि वीच स दो टुकड़े हो जाने पर भी म किसी के सामने झुक नहीं सकता आर स्वभाव किसी क लिए भी अलघ्य होता है।[2] निरापद जीवन की उपयोगिता को रावण ने सद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से कभी स्वीकार ही नही किया। आपत्तियो को निमन्त्रण देकर उनसे टकरान म ही उसे आनन्द आता था। युद्ध मे सफलता सन्दिग्ध मानकर भी उसन स्वय अर्जुन ओर वाली जेस शक्तिशाली नरशो से युद्ध की याचना की थी। सीता को न लाटान के भयकर परिणामो स भी उसे सभी प्रकार से अवगत कराया गया किन्तु इस पर भी युद्ध को टालने की वात उस कभी रुचिकर नही लगी। प्रहस्त को युद्ध क लिए भजने स पहले उसने अपनी मान्यता का स्पष्ट करत हुए कहा था कि जीवन को सशय मे डाले विना अथवा खतरा माल लिये वगर कोई भी व्यक्ति श्रेय का भागी नही वन सकता आर सशयपूर्ण अथात् खतरो स भरी हुई जिन्दगी वितान पर ही श्रेय की प्राप्ति सम्भव ह।[3]

लका यद्यपि कुवेर के राज्य-काल म ही एक सम्पन्न ओर समृद्ध नगरी वन चुकी थी किन्तु रावण न दिग्विजय क वाद उसकी सीमा सुरक्षा सैन्य शक्ति के विकास तथा नगरी क नव निमाण पर सवस अधिक ध्यान दिया था। सीता हरण के पश्चात् अपना अन्त पुर दिखलाते समय रावण ने लका का विस्तार सो योजन वतलाया था।[4] सीता की खोज करते समय हनुमान लका की सुरक्षा व्यवस्था ओर उसके विकास को देखकर दाता तले उँगली दवाकर रह गये थे। राम की विजय क प्रति उनका विश्वास कॉप गया था ओर वे सोचन लग थे कि लका पर विजय प्राप्त करना सरल नहीं ह आर राम का समुद्र पार करने का श्रम भी व्यर्थ ही चला जाएगा। सीता से भेंट करने के वाद लाटकर उन्होने राम का लका की सीमा सुरक्षा आर सैन्य शक्ति के विपय म जा जानकारी दी थी उसक अनुसार लकापुरी एक अलघ्य परकोटे से घिरी हुइ थी। उसमें चार विशाल दरवाजे थ जिनम मजवूत किवाड ओर मोटी मोटी अगलाए लगी हुई थी। इन दरवाजो क ऊपर ऐसे विशाल ओर शक्तिशाली यन्त्र लगाय गये थे जो वाण ओर पत्थरो के गोल वरसाते थे जिससे आक्रमणकारी शत्रुओ की सेना को लका म प्रवेश करना भी सम्भव नहीं होता था। यन्त्रो के अतिरिक्त इन दरवाजो पर काले लोहे की वनी हुई भयकर आर तीखी सेकडो शतघ्नियां भी

---

1 वा रा 1 20 20 23 2 वा रा 6 36 11 3 वा रा 6 57 11 4 वा रा 3 55 19

रखी गयी थीं। चहारदीवारी के चारो ओर ठण्ड जल से भरी हुई अगाध गहराई से युक्त खाइया बनी हुई थी जिनमे बडे बडे मगर और विशाल मछलियाँ छोड दी गयी थी। प्राचीर के द्वारो के सामने ही खाइया पर चार विस्तृत सक्रम (अस्थायी पुल) बनाये गये थे। इन सक्रमो मे ऐसे यन्त्रो की व्यवस्था भी की गयी थी जो शान्तिकाल मे उनकी रक्षा करते थे और शत्रुओ के आक्रमण के समय उन यन्त्रो के द्वारा ही सक्रमो को शत्रुसेना सहित खाइयो मे गिरा दिया जाता था। नदी पर्वतो वनो और खाइयो से सुरक्षित लका मे प्रवेश करना भी सरल नहीं था। हनुमान ने अपने कौशल और पराक्रम से इन चारो सक्रमो को तोडकर खाइयो को पाट दिया था और इसीलिए लका मे वानरसेना का प्रवेश सम्भव हो सका था।[1]

प्राचीर के चारो दरवाजो पर सेना की विशेष व्यवस्था की गयी थी। पूर्व द्वार पर दुर्जय युद्धवीर शूल और खड्गधारी दस हजार राक्षस नियुक्त थे। दक्षिण द्वार पर हाथी घुडसवार रथी और पैदल सिपाहियो को मिलाकर सबकी सख्या एक लाख थी। पश्चिम द्वार पर अस्त्र शस्त्रो के प्रयोग मे निपुण ढाल तलवार से सुसज्जित दस लाख राक्षस नियुक्त किये गये थे। उत्तरी सीमा से ही लका पर शत्रुओ के आक्रमण की आशका रहती होगी इसलिए उत्तरी द्वार पर सुरक्षा के लिए दस करोड़ ऐसे राक्षसो को नियुक्त किया गया था जो अभिजात वर्गीय वीरता के लिए प्रख्यात और अच्छे रथी अथवा घुडसवार थे। सीमा द्वारो के अतिरिक्त लका के मध्य भाग मे भी एक करोड से भी अधिक सैनिको को नियुक्त किया गया था। सीमा सुरक्षा की इस प्रकार की व्यवस्था से लका शत्रुओं के लिए सर्वथा एक अजेय नगरी बन गयी थी।[2]

त्रिकूट पर्वत के शिखर पर खडे होकर हनुमान ने जब लका के बाहर प्रवेश मार्गों की व्यवस्था देखी तो वे मुग्ध होकर रह गये थे। स्वच्छ चाडी सडके (प्रतोली) नगरी को चारो ओर से घेरे हुए थीं ओर सडकों के किनारे सुन्दर उद्यान लगाये गये थे।[3] हनुमान ने जिस किसी प्रकार छिपकर उत्तर द्वार से रात्रि मे लका नगरी मे प्रवेश किया था। उन्होने स्वय देखा था कि नागरिको के सतमजिले आठमजिले मणि और सुवर्णजटित भव्य प्रासादो की पक्तियाँ दूर तक चली गयी है और इनकी ऊँची अट्टालिकाओ पर ध्वजाएँ फहराती रहती है। सोने और मोतियो से बनाई गयी जालियाँ स्फटिक मणियो से जडे हुए फर्श दरवाजो पर नीलम के बने हुए चबूतरे सोने ओर चाँदी के दरवाजे साफ और चान्दी सडके क्रौच मयूर राजहसो का कलरव आभूषणो और वाद्यो की झनकारो से लका अमरावती के समान ही दिखाई देती है। लका के नागरिक इच्छानुसार स्वाध्याय जप तप मे लगे रहते है। आमोद प्रमोद सगीत वाद्यो की झनकार उसकी समृद्धि और वैभव को प्रकट करती है। रामायण मे अनेक नगरो और राज्यो का वर्णन उपलब्ध है तथा अयोध्या

1 वा रा 6 3 29 2 वा रा 6 3 3 वा रा 5 2 17

किष्किन्धा कैकय मिथिला नन्दिग्राम सकाश्या आदि राजधानिया का भी उल्लेख हुआ ह किन्तु लका क सामने ये सभी स्थल उजड हुए गाँव-जस ही दिखाई देत ह। यदि वास्तव म लका उपलब्ध वणन के अनुरूप नगरी थी तो उसके विकास का श्रेय रावण का देना ही पडेगा।

लका अयोध्या के समान एक परम्परागत राज्य कभी रहा ही नहीं था। पुलस्त्य आर विश्रवा भी राजा नही थ। कुबेर को भी तपस्या के बाद विश्वकर्मा द्वारा निर्मित इस नगरी म रहने भर क लिए भेज दिया गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट ही हे कि रावण का लका का राज्य वशानुगत क्रम से नही मिला था वरन् उसने स्वय अपने पराक्रम स इस राज्य की स्थापना की थी। महान् पराक्रमी ओर अजय याद्धा हान के नाते वह स्वच्छन्द निरकुश तानाशाह बन सकता था किन्तु उसे अधिनायकवादी मानना भी सरल नहीं। वह इस बात का अवश्य मानता था कि मन्त्रिया को राजा क हित का ध्यान रखते हुए उसके निर्णय का समर्थन ही करना चाहिए किन्तु छाटी बडी किसी भी समस्या को अन्तिम निर्णय के लिए वह सदेव मन्त्रिपरिषद् म ही विचारार्थ प्रस्तुत करता रहा। उसकी मन्त्रिपरिषद् के सदस्या की सख्या भी कम नहीं थी आर माल्यवान प्रहस्त, विभीषण कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा अन्य बहुत से मनीषी राक्षस विचार विमर्श के लिए परिषद् की बेठक मे सम्मिलित हाते थे। बठक का आयाजन इस उद्देश्य से नियत सभाभवन मे ही हुआ करता था। किसी अधिक गम्भीर समस्या के उत्पन्न होने पर मन्त्रिया के अतिरिक्त सम्भ्रान्त नागरिका को भी परामर्श के लिए आमन्त्रित किया जाता था। राज्य की समस्याओं पर वह इतनी गम्भीरता स विचार करता था कि प्राय सदेव मन्त्रिया से घिरा रहता था। यह उसके जनतन्त्रवादी होने का ही प्रमाण हे।

राम लक्ष्मण के द्वारा अपमानित किये जाने पर ओर खर दूषण त्रिशिरा आदि के युद्ध म मारे जाने पर शूर्पणखा जब रावण के पास पहुँची तब वह मन्त्रियो से घिरा हुआ बैठा था।[1] अकम्पन न पहले ही उसको राम द्वारा जनस्थान के उजाडे जान का समाचार दे दिया था और सीता हरण का परामर्श भी दिया था। रावण सीता का अपहरण करने के लिए चला भी था किन्तु मार्ग मे मारीच के समझाने बुझाने पर लका का वापस लोट आया था। शूर्पणखा से विस्तृत समाचार पाकर उसने अपने मन्त्रियो से इस विषय म सलाह ली थी आर इसके बाद ही फिर से सीता हरण क लिए रवाना हुआ था।[2] इन्द्रजित द्वारा पकड जान पर हनुमान को जब रावण के समक्ष लाया गया था तब उन्होने भी उसको सभासदा आर मन्त्रिया से घिरा हुआ ही देखा था।[3] रावण ने अपन मन्त्रिया से ही हनुमान का परिचय पूछने की आज्ञा दी थी।[4]

1 वा रा 3 32 4 24 3 33 1 3 34 1 2 वा रा 3.35 1 3 वा रा 5 49 11 13 4 वा रा 5 48 60 5 50 5

राम के साथ युद्ध करने का निश्चय भी रावण के मन्त्रियो और सभासदों द्वारा पर्याप्त विचार विमर्श के बाद लिया गया था। राम की सेना ने जब लंका पर आक्रमण करने के लिए समुद्रतट पर पडाव डाल दिया तब रावण ने कर्तव्याकर्तव्य के विषय में परामर्श करने और निर्णय करने के लिए मन्त्रियों सेनापतियों और राक्षसों की एक विशेष सभा आमन्त्रित की थी। रावण स्वयं रथ में बैठकर अन्तःपुर से काफी दूर बने हुए उस सभाभवन में पहुचा था। इस सभा में विभिन्न विभागो के प्रभारी मन्त्री-अमात्यों तथा विचारवान् शूरवीर राक्षसों ने सैकडो की संख्या में भाग लिया था। विभीषण कुम्भकर्ण मेघनाद प्रहस्त आदि प्रमुख मन्त्री भी इसमे उपस्थित थे। सबके यथास्थान बैठ जाने पर रावण ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा था कि आप लोग धर्म अर्थ और काम विषयक संकट उपस्थित होने पर प्रिय-अप्रिय सुख दुःख लाभ हानि और हित-अहित का विचार करने में समर्थ हैं। आप लोगो ने सदा परस्पर विचार करके जिन जिन कार्यो का प्रारम्भ किया वे कभी निष्फल नही हुए। मैंने जो काम किया है उसे मै पहले ही आप सबके सामने रखकर उसका आपके द्वारा समर्थन चाहता था परन्तु कुम्भकर्ण के सोते रहने के कारण यह नहीं किया जा सका। एक वानर ने लंका में आकर महान् उपद्रव मचा दिया इसलिए कार्यसिद्धि के उपायो का समझना कठिन दिखाई दे रहा है। अतः जिसको अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा उचित जान पडे वह वैसा ही बताए। आप सब लोग अपने विचार अवश्य व्यक्त करें। आप लोग परामर्श कर कोई ऐसी नीति बताएँ जिससे सीता को न लौटाना पडे और दोनो दशरथकुमार भी मारे जाएँ।[1]

उत्तम मध्यम और अधम श्रेणी के पुरुषो तथा इसी प्रकार मन्त्रणा के स्तर का ध्यान रखते हुए उत्तम श्रेणी के मन्त्रियों द्वारा उत्तम परामर्श दिये जाने की ही रावण अपेक्षा करता था। उसने कभी इस बात को पसन्द ही नही किया कि कोई मन्त्री उसके प्रभाव में आकर राज्यहित के प्रतिकूल उसका मनचाहा परामर्श दे। सभासदों का अभिमत जानने के पहले ही उसने अपने इस आधार सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए कहा था कि मन्त्रनिर्णय में समर्थ मित्रों समान सुख दुःखवाले बान्धवों और अपने हितैषियों के साथ सलाह करके दैव के प्रति आस्थावान् रहकर कार्य का प्रारम्भ करनेवाला व्यक्ति ही उत्तम प्रकार का पुरुष होता है और उस कोटि की मन्त्रणा भी वही होती है जो शास्त्रविधि के अनुकूल हो तथा जिससे सभी मन्त्री सहमत हो।[2] विभिन्न मन्त्रियो के बीच प्रारम्भ में मतभेद होते हुए पर्याप्त वाद विवाद के पश्चात् अन्त मे सर्वसम्मति से लिए गये निर्णय को भी वह मध्यम कोटि का ही निर्णय मानता था।[3] इस प्रकार मन्त्रणा विषयक सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए ही उसने

1 वा रा 6 11 5 26 2 वा रा 6 12 7 8 10,21 22 3 3 वा रा 6 6 7 8 12 4 वा रा 6 6 13

सभासदों से कहा था कि सभी बातों पर विचार करते हुए आप लोग बताएँ कि मुझे क्या करना चाहिए। आपको जो उचित जान पड़े और जिसका परिणाम भी हितकर निकले उसी का सुझाव दें। मनस्वी पुरुषों का कहना है कि मन्त्रियों द्वारा दिया गया सत्परामर्श ही विजय का कारण होता है। इसलिए राम के विषय में आप सबकी सलाह लेना ही मैं उचित मानता हूँ। आप सब लोग परम बुद्धिमान् हैं। इसलिए अच्छी तरह सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें। उसी को मैं अपना कर्तव्य समझूँगा।[1] वानरों से विरोध को ध्यान में रखकर आप ऐसी सलाह दें जो नगर और सेना दोनों के लिए हितकर हो।[2]

रावण द्वारा प्रस्तुत समस्या पर मन्त्रियों और सभासदों के द्वारा पूरी गम्भीरता के साथ विचार किया गया था। कुम्भकर्ण और विभीषण ने सभा के बीच में ही सबके सामने रावण द्वारा सीता के अपहरण का विरोध किया था। कुम्भकर्ण की गम्भीर विचारणा शक्ति का परिचय इसी से मिलता है कि उसने रावण की कड़े शब्दों में निन्दा करते हुए कहा था कि सीता हरण का निश्चय करने के पहले ही आपको इस विषय पर सब लोगों के साथ मिलकर विचार करना चाहिए था। बिना विचार किये गये लोक और शास्त्रों के विपरीत कर्म अपवित्र आभिचारिक यज्ञों में होमे गये हविष्य की भाँति ही अशुभ फलदायी होते हैं। अपने इन विचारों के साथ ही उसको राजा की गरिमा, राज्य की प्रतिष्ठा और अपने बड़े भाई की मानमर्यादा का भी स्मरण हुआ अतएव अन्त में उसने कहा था कि—जो कुछ हो चुका है उस पर विचार करने की अब कोई सार्थकता नहीं। मैं शत्रुओं का नष्ट करके सब-कुछ ठीक कर दूँगा।[3] प्रहस्त ने भी सीता हरण को अपराध ही माना था तथापि राज्य का हितैषी होने के कारण[4] उसने भी रावण को दुखों से मुक्त रखने के लिए ही युद्ध करने का निश्चय किया था। केवल विभीषण ही ऐसा रहा था जो रावण और लंका के हित में युद्ध करने के लिए तैयार नहीं हुआ था। वस्तुतः रावण ने मन्त्रियों और सभासदों से परामर्श लेने में इतना अधिक विलम्ब कर दिया था कि स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो चुकी थी। हनुमान के द्वारा अशोक वाटिका का विध्वंस, लंका के जलाने, अक्षकुमार, मन्त्रियों के पुत्र और अनेक सेनापतियों के मारे जाने तथा राम के सेना सहित समुद्रतट तक पहुँच जाने के बाद सीता को लौटाने का अर्थ निश्चय ही रावण द्वारा अपनी पराजय को स्वीकार करना होता और उससे रावण, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित जैसे अजेय शूरवीरों तथा लंका राज्य की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता। इसी कारण सीता हरण को अनुचित मानते हुए भी कुम्भकर्ण, प्रहस्त और माल्यवान आदि ने युद्ध करने का निश्चय किया था।

मन्त्रियों द्वारा व्यक्त किये गये शास्त्रसम्मत नीतियुक्त विचारों को अपने निश्चय

---

1 वा रा 6 6 4,5 15 2 वा रा 6 6 18 3 वा रा 6 12 29,31,35 4 वा रा 6 12 6

के प्रतिकूल होते हुए भी स्वीकार करने मे रावण ने कभी सकोच नही किया। अकम्पन क परामर्श से सीता हरण के लिए चलने पर भी बीच म मारीच ने जब उसके निश्चय का गलत बताया तो वह चुपचाप लका को लौट गया था। बाद म शूर्पणखा के अपमान को न सह सकने क कारण ही उसने अपने पूर्व निश्चय के अनुसार सीता का अपहरण किया। इसी प्रकार हनुमान के वध करने के उसके निश्चय का विभीषण ने विरोध किया था ओर दूत के वध को शास्त्र-मर्यादा एव दण्डनीति के प्रतिकूल बतलाते हुए कोई अन्य शास्त्रविहित दण्ड देने का परामर्श दिया था। रावण ने विभीषण की सराहना करते हुए कहा था– विभीषण। तुम्हारा कहना ही ठीक ह। वास्तव म दूत वध की बडी निन्दा की गयी है।[1] राम के द्वारा जनस्थान के उजाडे जाने खर-दूषण और त्रिशिरा सहित हजारो राक्षसो के वध तथा शूर्पणखा के प्रति किये गये व्यवहार ने ही रावण को सीता हरण के प्रति प्रेरित किया था और इसके बाद हनुमान ने लका म जाकर जो कुछ किया उसने रावण के सामने युद्ध क अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प छोडा ही नहीं था। सभा परिषद् मे मन्त्रियो सेनापतियो सभासदो आर राक्षसो के विचार विमर्श को देखते हुए रावण को जनतान्त्रिक परम्परा का अनुयायी मानना असगत नहीं होगा।

जनतान्त्रिक प्रणाली को मानते हुए भी राजा की मान मर्यादा और प्रतिष्ठा को दृष्टिगत रखते हुए उसके प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार का ही रावण पक्षधर था। प्रकारान्तर स यह कहना भी युक्ति सगत ही होगा कि सभासदो से परामर्श लेने की प्रक्रिया अपनाते हुए भी वह इस प्रकार की परिस्थितियो का निर्माण कर देता था कि उनको उसके निश्चय को मानने के लिए विवश होना ही पड़ता था। सीता हरण के उद्देश्य से दूसरी बार जब वह मारीच के पास पहुचा आर मारीच ने पहले की भाँति ही उसके निर्णय का विरोध किया तो उसने राजा के प्रति व्यवहार-नीति के प्रति सकेत करते हुए कहा था कि बुद्धिमान् मन्त्री का यही कर्तव्य ह कि राजा से उसके पूछने पर ही अपना विचार प्रकट करे। राजा के सामने सवदा अनुकूल मधुर उत्तम हितकर बात को ही सम्मानपूर्ण ढग स कहना चाहिए। राजा अग्नि इन्द्र सोम यम और वरुण–इन पाच देवताओ का रूप होता है इसलिए उसम स्वभावत इन पाँचो देवताओ क गुण–प्रताप पराक्रम सौम्यभाव दण्ड आर प्रसन्नता–विद्यमान रहते है। राजा का सर्वदा सम्मान और पूजन ही किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उसने मारीच स कहा था कि मैंने तुमसे अपने निश्चय क गुण-दोष सिद्धि म सम्भावित विघ्न अथवा उसकी पूर्ति क उपायो के विषय में प्रश्न ही नहीं किया फिर तुमको इन सब बातो क कहने की आवश्यकता ही क्या है। इन विचारो के साथ ही उसने मारीच को राम का छलपूर्वक आश्रम से दूर ले जाने की आज्ञा दी थी। उसकी मान्यता यही

---

1 वा रा 5 53 2

थी कि राजा के प्रतिकूल चलनवाला पुरुष कभी सुखी नही रह सकता।[1]

शुक और सारण ने वानरसेना की शक्ति का पता लगाकर रावण को राम की अजेयता का परिचय दिया था। ये दोनो पहले ही विभीषण तथा अन्य वानरो के हाथो अपनी दुर्दशा भोग चुके थे। इसलिए रावण के प्रति निष्ठावान रहकर ही उन्होने राम की सेना की प्रशसा की थी। रावण इसे सहन नहीं कर सका था और अपनी राजशक्ति का अभिमान लेकर ही उसने शुक और सारण को फटकारते हुए कहा था कि राजा निग्रह और अनुग्रह करने मे समर्थ होता है। उसके आश्रय मे जीविका चलानेवाले मन्त्रियो को ऐसी कोई बात नही कहनी चाहिए जो अप्रिय लगे। जो अपने शत्रु है और युद्ध के लिए अपने सामने खडे है उनकी इस प्रकार प्रशसा करना उचित नहीं। तुम लोगो ने आचार्य, गुरु और वृद्धो की व्यर्थ ही सेवा की है क्योकि राजनीति के सार को तुम ग्रहण नहीं कर सके। तुम लोग केवल अज्ञान का बोझ ढो रहे हो। ऐसे मूर्ख मन्त्रियो के रहते हुए भी मै जो अपने राज्य को सुरक्षित रख सका हूँ यह सौभाग्य की ही बात है। वन मे दावानल का स्पर्श करके भी वृक्षो का खडा रह जाना सम्भव है किन्तु राजदण्ड के पात्र अपराधियो का बचना कठिन होता है। इन विचारो को व्यक्त करने के साथ ही रावण ने शुक और सारण को निकाल दिया था।[2]

उपर्युक्त प्रसग इस तथ्य को ही प्रमाणित करते है कि रावण एक ओर मन्त्रियो और सभासदो से परामर्श लेने की जनतान्त्रिक प्रणाली अपनाता था और दूसरी ओर उन सबको स्वयं अपने निश्चय के अनुकूल अभिमत प्रकट करने के लिए बाध्य भी करता रहा था। राजा के रूप मे उसमे ऐसे कुछ अन्य दोष भी थे जिनके कारण शूर्पणखा ने उसकी बडे ही तीखे शब्दो मे आलोचना की है। राजा होकर भी गुप्तचरो की नियुक्ति न करना उसकी प्रशासनिक अक्षमता का ही द्योतक है। जनस्थान के नष्ट हो जाने और खर दूषण सहित सहस्रो राक्षसो के मारे जाने की खबर उसको अकम्पन और शूर्पणखा के द्वारा ही मिल सकी थी। एक ओर उसका पूरा बडा उपनिवेश—जनस्थान नष्ट होता रहा भाई और हजारो राक्षस भी मारे जाते रहे और वह लका मे बैठा रगरेलियॉ मनाता रहा था। शूर्पणखा ने उसे बुद्धिहीन राजोचित गुणो से रहित गुप्तचरो की नियुक्ति कोष और नीति के प्रति असावधान गँवार मन्त्रियो से घिरा हुआ लोभी प्रमादी निरकुश अभिमानी क्रोधी और अनेक ऐसे दोषो से युक्त कहा है जिनके कारण उसमे राजा बने रहने की योग्यता ही नही थी।[3] प्रारम्भ मे अपने पराक्रम के बल पर भले ही उसने यम इन्द्र वरुण आदि पर विजय प्राप्त कर ली हो किन्तु इतने बडे राज्य की सुरक्षा की योग्यता उसमे थी ही नहीं। इसी कारण लका का राज्य बनते बनते ही नष्ट हो गया था।

---

1 वा रा 3 40 9 10 12 13 26 2 वा रा 6 29 7 14 3 वा रा 3 33

पूजन-अर्चन के लिए बेठ गया था। वह इतना कट्टर शिव भक्त था कि युद्ध के लिए यात्राआ पर जाते समय भी अपने साथ जाम्बूनदमय शिवलिंग सदेव साथ ले जाता था।[1]

वदा के प्रति रावण की अविचलित आस्था म किंचित् भी सन्देह नहीं किया जा सकता। पूरी रामायण म एक भी एसा सन्दर्भ उपलब्ध नहीं जो रावण के वेद विरोधी हान के प्रति सकेत कर सके। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उसने विधिपूर्वक वेद विद्या का अध्ययन किया था आर उसी के अनुसार अपने कर्तव्या के निवहण म जीवन भर लगा रहा। मेघनाद के मारे जान पर जब उसने क्राधपूर्वक सीता को मार डालने का निश्चय किया था तब उसके एक मन्त्री सुपार्श्व ने उसे रोकते हुए कहा था– तुम कुबेर के साक्षात् भाई हो तुमने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदा का अध्ययन किया हे आर सदेव अपने कतव्यपालन म सलग्न रहे फिर भी आज धर्म का परित्याग कर क्रोध के वश म आकर नारी के वध को किस प्रकार उचित मान रहे हो?[2] सुपार्श्व की बात सुनकर रावण सीता वध का विचार छाडकर चुपचाप लाट गया था। सीता हरण के लिए जब वह उनके आश्रम मे पहुँचा ता भी प्रवेश क समय उसने ब्रह्मघोप (वद मन्त्रा) का ही उच्चारण किया था।[3] रावण के समय म लका मे वेद पाठ को इस सीमा तक सम्मान दिया जाता था कि सूर्योदय से पहले रात्रि क अन्तिम प्रहर म प्राय पूरी लका वेद-मन्त्रां से गूँज उठती थी। यह वेदपाठ छहा अगा सहित सम्पूर्ण वेदो क पण्डित यज्ञ कर्ताआ द्वारा ही किया जाता था। रावण को मगल वाद्या की मधुर ध्वनि तथा वेद-मन्त्रा क पाठ द्वारा ही जगाया जाता था। यह सब हनुमान ने स्वय देखा था।[4] विचार विमर्श क लिए आयाजित मन्त्रि परिषद् की बेठक म भाग लेने के बाद विभीषण जब सीता का लोटा देने की सलाह देने के लिए रावण के भवन म गया था तब उसन भी यही देखा था कि रावण की विजय की कामना से वेदवेत्ता ब्राह्मण पुण्याह वाचन के पवित्र मन्त्रा का उच्चारण कर रहे ह। उन ब्राह्मणा की पहले फूलो-अक्षता से पूजा की जाती थी दधि आर घी के पात्र भेट किये जाते थे आर इसके पश्चात् ही वे वेदपाठ में लग जाते थे।[5] इसके अतिरिक्त आर भी एसे सन्दर्भ प्राप्त होते ह जिनको देखते हुए रावण को वेदो के प्रति आस्थावान मानना ही पडेगा।

यह भी एक वैचित्र्य ही है कि वेदो के प्रति आस्थावान होत हुए भी रावण ने वदिक कर्मकाण्ड अथवा यज्ञ यागादि क प्रति अपनी लेश मात्र भी श्रद्धा व्यक्त नही की। यज्ञो के द्वारा मेघनाद का प्राप्त लाभा को देखकर भी उसने जिस प्रकार यज्ञा का विराध किया था उसका उल्लख ऊपर किया जा चुका है। उसके द्वारा यज्ञ किये

---

1 वा रा 7 31 42 2 वा रा 6 92 63-64 3 वा रा 3 46 14 4 वा रा 5 18 2 3
5 वा रा 6 10 8 9

जाने का प्रसग भी रामायण म उपलब्ध नहीं। लका पर वानर सेना के आक्रमण के पहले अपशकुना का सकेत करते हुए विभीषण ने अवश्य कहा था कि यज्ञ के स्थानों पर सॉप आर हवन-सामग्री म चीटियाँ दिखाई दे रही है[1] किन्तु मात्र इसक सहारे रावण की यज्ञ के प्रति आस्था मानना जबरदस्ती की खींचतान ही होगी।

रावण को सामान्य धारणा के अनुसार यन-कार्यो मे विघ्न उपस्थित करनेवाला माना जाता है। रामायण मे भी उसके लिए 'यन विघ्नकर जैसे शब्दो का प्रयोग किया गया हे। यह लिखा गया हे कि वह सब प्रकार के दिव्यास्त्रो का प्रयोग करनेवाला आर सदा यज्ञा म विघ्न डालनेवाला था।[2] यज्ञा म द्विजातियो द्वारा वेद मन्त्रा के उच्चारणपूर्वक निकाले गय तथा वेद मन्त्रो से सुसस्कृत एव स्तुत हुए पवित्र सोम को नष्ट कर देता था।[3] समाप्ति के निकट पहुँचे हुए यज्ञो का विध्वस करने वाला वह दुष्ट निशाचर ब्राह्मणा की हत्या तथा दूसरे क्रूर कर्म करता था।[4] इन *सन्दर्भो को उद्धृत करते हुए भी यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि रावण द्वारा* स्वय किसी यन म विघ्न उपस्थित करने का एक भी प्रमाण रामायण में उपलब्ध नहीं होता। इसके साथ ही यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि—महर्षि विश्वामित्र के अनुसार रावण कभी यन मे विघ्न उपस्थित करता ही नहीं था। जब वे दशरथ से राम को मॉगने के लिए आये थे तब उन्होने स्वय कहा था कि महाबली रावण स्वय कभी यज्ञ मे विघ्न नहीं डालता वरन् उसकी प्रेरणा से मारीच और सुबाहु यन मे विघ्न उपस्थित करते ह।[5] पूजन और श्रद्धादिक कार्यो मे रावण की आस्था के प्रति सन्देह निराधार ही हागा। माहिष्मती पर आक्रमण के समय नर्मदा के तट पर स्नानादि से पवित्र होकर सफेद धुल हुए वस्त्र पहनकर फूलो से उसने शिव की अर्चना की थी। मेघनाद की मृत्यु पर बडे विषादपूर्ण स्वर मे उसने कहा था कि—उचित तो यह था कि मे पहले यमलोक मे जाता और तुम यहॉ रहकर मेरे प्रेत-कार्य करत परन्तु यह ऐसी विपरीत स्थिति उत्पन्न हो गयी कि मुझको तुम्हारे प्रेत-कार्य करना पड रहे है।[6]

रावण पर धर्म का उच्छेदक होने का आरोप भी बहुश लगाया गया हे।[7] उसकी मृत्यु पर विलाप करते समय मन्दोदरी ने भी यह कहा था कि—आपन बहुत से यन नष्ट कर डाले हे और धर्म की व्यवस्था को तोडनेवाले सग्राम मे माया की सृष्टि करनेवाले और देवताआ असुरा ओर मनुष्यो की कन्याआ के अपहरणकर्त्ता है।[8] राम ने भी अगद के द्वारा रावण को जा सन्देश भेजा था उसमे भी कहा था कि—राभसराज तुमने मोहवश अभिमान म आकर ऋषि देवता गन्धर्व अप्सरा नाग यक्ष और राजाआ का वडा अपराध किया है।[9] इस प्रकार के यद्यपि कुछ और

---

1 वा रा 6 10 16 2 वा रा 3 32 13 3 वा रा 3 32 19 4 वा रा 3 32 20 5 वा रा 1 20 18 6 वा रा 6 92 14 7 वा रा 3 32 12 8 वा रा 6 111 52 53 9 वा रा 6 41 62

भी सन्दर्भ प्राप्त होते है किन्तु इनकी सत्यता प्रमाणित नहीं होती। वस्तुत रावण की धर्मविपयक मान्यताएँ राम की मान्यताओं से कुछ अलग रही थीं और वह राम द्वारा समर्थित धर्म की अनेक मान्यताओ को स्पप्ट रूप से अस्वीकार भी करता रहा। कदाचित् इसी कारण उसे धर्म का उच्छेदक कहा गया है। किन्तु यह कहना भी उचित होगा कि रावण की मान्यताएँ तर्कहीन नहीं रहीं।

रावण की क्षत्रिया के प्रति विरोध भावना का सकेत ऊपर किया जा चुका ह। लका मे निरन्तर चदन ब्राह्मणो द्वारा वेदपाठ होते रहन की स्थिति म रावण का ब्राह्मणा का विरोधी मानना संगत प्रतीत नही होता। माहिष्मती म नमदा के तट पर भी उसे अनेक मुनि आर तपस्वी दिखाई दिये थे किन्तु उसने किसी का भी पीडा नही पहुँचायी। रामायण क सन्दर्भो के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता हे कि रावण उन ऋषि मुनियो का जबरदस्त विरोधी था जो यन आदि कर्मकाण्ड का पाखण्ड रचकर स्वय को शेप मानव समाज से श्रेप्ठ सिद्ध करते हुए समस्त सुख सुविधाआ पर एकाधिकार करने का प्रयत्न करते थे। अनेक ऋपि-मुनि अपने आपको मानवापरि श्रेणी म मानने लगे थे ओर समाज के शेप वर्गो पर उनकी पूजा-अर्चना का दायित्व डाल दिया गया था। अपने आपको देवता माननेवाले वर्ग ने मानव समाज को पूर्ण तथा उपेक्षित छोडकर नन्दन-वन म निरन्तर क्रीडारत रहना ही अपना कर्तव्य मान लिया था। शेप मानव समाज का कर्तव्य केवल यही रह गया था कि वह उन देवताओ ओर ऋपि-मुनियो की विहार-क्रीडाओ म किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न करते हुए उसमे अपना सहयोग दे और सभी यातनाआ को कर्मफल मानकर सहते हुए अपना सर्वस्व उनको समर्पित करता रहे। रावण मानव समाज की इस दुर्दशा को सहन नहीं कर सका आर उसने देवताओ ऋपियो मुनियों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। रावण ने ब्रह्मा से देवताओं यक्षों गन्धर्वो असुरों आदि से अवध्य होने का वरदान माँगते समय मनुष्यो के प्रति किसी प्रकार का भय व्यक्त नहीं किया। इसका अर्थ यह लगाया जाता ह कि मनुष्या को वह नगण्य मानता था किन्तु मेरे विचार से इसका तात्पर्य यह हे कि वह स्वय को मनुष्य ही मानता था आर देवताओ यक्षा, गन्धर्वो असुरो राक्षसो ने अपने आपको मानवो से अलग कर लिया था। रावण ने जितने भी युद्ध किये वे सभी देवताओ अथवा बडे-बडे राजा महाराजाआ के विरुद्ध लडे गये। उससे केवल देवताओ और ऋपि मुनिया को ही शिकायत रही किन्तु एक भी सन्दर्भ ऐसा नहीं मिलता कि उसने मनुष्यो को परेशान किया है। और न मनुष्यो को उसके खिलाफ कोई शिकायत ही रही। नन्दन वन में अप्सराओं के साथ देवताओ गन्धवो यक्षो आदि की विहार-क्रीडाआ ने आर उनके द्वारा मानव समाज की उपेक्षा ने रावण के मन मे उनके प्रति एक द्वेप भावना उत्पन्न कर दी थी। इसी समय ऋपियो ने धर्म की व्यवस्था देते समय जब यह भी घोपित कर दिया कि ऋपि-मुनियों का श्रद्धास्पद वरेण्य ओर

रगरेलिया मनाते हुए लोगो के कानो पर जू तक नहीं रेगती थी। रावण मनुष्य-जाति की इस करुणाजनक अवस्था का बरदाश्त नही कर सका। उसने मनुष्यो का इस प्रकार निर्ममता के साथ कष्ट देनेवाले यमराज के सभी सैनिको की गर्दन नाप डाली थी और यमराज स्वय रथ और घोडा सहित प्राण बचाकर भाग गये थे। जिन लोगो को यमराज के सैनिक पापकर्मी का नाम लेकर सभी प्रकार के कष्ट दे रहे थे, उन सभी लोगो को रावण ने अपने पराक्रम से दु खो से मुक्त कर दिया था। उन लोगों को कल्पनातीत सुख की अनुभूति हुई थी और यमराज तथा उसके सैनिक एव पुण्यकर्मो के नाम पर रगरेलिया मनानेवाले लोग दाँत पीसकर रह गये थे।[1]

रावण पर दूसरा बडा भारी आरोप नारियो के अपहरण का लगाया जाता है। रामायण के सन्दर्भो के अनुसार उसके अन्त पुर मे *अगणित स्त्रियाँ थीं*। यहाँ यह भी विचारणीय है कि दशरथ की साढे तीन सौ रानियो का उल्लेख भी रामायण मे ही किया गया है और सुग्रीव के अन्त पुर मे भी इतनी अधिक स्त्रियाँ थी कि उनकी किंकिणियो और नूपुरो की झनकार त्रिकूट पर्वत के शिखर तक गूँजती रहती थी किन्तु इस पर भी दशरथ और सुग्रीव को इसके लिए दोषी तक नहीं ठहराया गया। रावण के लिए कामवृत निरकुश कामवृत्तो हि दु शील[2] मदनेन मदोत्कट[3] काम पराधीन[4] जैसे विशेषणो का अनेक बार प्रयोग किया गया है। यद्यपि ये प्रयोग प्राय सीता के प्रसग को लेकर ही किये गये है किन्तु रावण द्वारा देव-कन्याओ के अपहरण की कथाएँ भी रामायण मे लिखी गयी है। देवताओ ने विष्णु से जब रावण वध के लिए अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना की थी तब उन्होने यह शिकायत भी की थी कि रावण तीनो लोको को पीडा देता है और स्त्रियो का अपहरण कर लेता है।[5] दण्डकारण्य मे जब वह सीता हरण के उद्देश्य से उनके आश्रम मे गया तब अपना परिचय देते हुए उसने स्वय कहा था कि—मै इधर-उधर से बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियो को हर लाया हूँ। उन सबमे तुम मेरी पटरानी बनो।[6] सीता की खोज करते समय हनुमान ने जब रावण के अन्त पुर को देखा था तब उन्हें भी दिखाई दिया था कि उसका राजमहल अनेक राक्षस-जातीय पत्नियों तथा बलपूर्वक अपहरण कर लायी हुई राज-कन्याओं से भरा हुआ था।[7] इनके अतिरिक्त अनेक नागकन्याएँ भी वहाँ दिखाई दी थी।[8] दिग्विजय के पश्चात् जब रावण लकापुरी को लौटा था तब भी वह अपने विमान में देवताओं ऋषियो नागो और यक्षों की अनेक कन्याओं को बलपूर्वक भर लाया था। वे बेचारी रोती चीखती अपने भाग्य को कोसती हुई और मन ही मन रावण को गालियाँ देती हुई विवश चली आयी थीं। वेदवती के प्रति दुर्व्यवहार और रम्भा के साथ बलात्कार की कथाएँ भी रावण के साथ जुडी हुई है।

---

1 वारा 7 21 21 22 2 वारा 3 37 6 7 3 वारा 5 18 5 4 वारा 5 18 19
5 वारा 1 16 7 6 वारा 3 47 28 7 वारा 5 9 6 8 वारा 5 12 29

ये सन्दर्भ रावण को नारियो का अपहरणकर्ता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त माने जा सकते है।

उपर्युक्त आरोपो को ध्यान मे रखते हुए नारी के सम्बन्ध मे रावण की व्यवहार मान्यताओ पर दृष्टि डालना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसको समझे बगैर उसकी नारी विषयक आचार मान्यताएँ स्पष्ट नहीं होतीं। उसने समाज की उस व्यवस्था को कभी स्वीकार ही नहीं किया जो ब्राह्मणो और स्मार्त ऋषियो द्वारा दी गयी थी। नारी को पुरुष के समकक्ष वह मानता ही नहीं था और किसी भी स्त्री के सामने अपना सिर झुकाकर प्रणाम करने के लिए भी वह तेयार नहीं था। सीता को अपने अन्त पुर मे ले जाने और उनसे प्रणय निवेदन करते समय ही उसने कहा था कि म केवल तुम्हारे सामने ही अपना मस्तक झुका रहा हूँ अन्यथा म किसी स्त्री के सामने सिर झुकाकर प्रणाम नही करता।[1] यह विचार उसकी पुरुष जाति के प्रति सम्मान भावना को ही प्रकट करता है।

काम के विषय मे रावण के विचार अन्य दर्शनाचार्यो से सर्वथा अलग रहे हैं। वह उसको वासना अथवा विकारो का जनक नहीं मानता। गीता के अनुसार काम स क्रोध की उत्पत्ति होती ह किन्तु रावण की मान्यता थी कि काम मनुष्य के हृदय मे क्रोध की नहीं वरन् करुणा ओर स्नेह की भावना उत्पन्न करता है। अशोक वाटिका म बार बार फुसलाये डराये ओर धमकाये जाने पर भी जब सीता ने रावण के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया ओर उसके प्रति अनेक कटु वाक्य कहते हुए उसकी भर्त्सना की तो रावण का क्रोध उभर सकता था। इसके विपरीत काम की विशेषताओ आर नारी प्रकृति की व्याख्या करते हुए उसने कहा था—लोक मे पुरुष जब स्त्रियो से अनुनय विनय करता हुआ उनसे मीठी बात करता है वेसे ही वैसे स्त्रियाँ उसके वश मे होती चली जाती है। किन्तु मे तुमसे जितनी मीठी बाते करता हूँ तुम उतना ही मेरा तिरस्कार करती जा रही हो। इस कारण मेर मन मे तुम्हारे प्रति क्रोध उत्पन्न हो सकता है। फिर भी जिस प्रकार एक अच्छा सारथी गलत रास्ते पर दोडते हुए घोडो को नियन्त्रित कर रोक देता हे उसी प्रकार तुम्हारे प्रति मेरे मन मे उत्पन्न काम भावना मेरे क्रोध को शान्त कर देती है। मनुष्यो मे काम की गति कुछ ऐसी टेढी अथवा विचित्र हे कि जिस किसी के प्रति काम भावना उत्पन्न होती है उसके प्रति करुणा और स्नेह की भावना भी सहज ही उत्पन्न हो जाती है।[2] अपने इन्हीं विचारो के परिणामस्वरूप उसने सीता को मार डालने का विचार त्याग दिया था।

रावण यह स्वीकार करता था कि रूप योवन से सम्पन्न सुन्दरी नारियों के प्रति पुरुष के मन मे आकर्षण उत्पन्न होना एक स्वभावगत प्रक्रिया है। सीता से उसने

---

1 वा रा 3 55 36 2 वा रा 5 22 2-4

कहा था कि--तुम जेसी सुन्दरी को देखकर वडे से वडे पुरुषो का यहाँ तक कि साक्षात् पितामह ब्रह्मा का भी धैर्य विचलित हो सकता हे।' कालिदास ने भी 'नात स्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ' कहकर मानव प्रकृति की इसी दुर्वलता के प्रति सकेत किया ह। यह होते हुए भी यह आश्चर्य ही हे कि रामायण क समीक्षक रावण के विषय म लिखते समय एक वडे तथ्य की ओर से अपनी दृष्टि फेरते ही रह। इस सन्दर्भ म रावण के अन्त पुर का वह वर्णन विशेष रूप से द्रष्टव्य हे जो स्वय हनुमान के वहाँ पहुँचने ओर देखने के अवसर पर किया गया हे। हनुमान को रावण के अन्त पुर म अनेक सुन्दरियाँ दिखाई दी थी। वे सभी रति-क्रीडा से क्लान्त होकर वेसुध अवस्था मे सो रही थी। उनकी मुखाकृतियो ओर सौन्दर्य को देखकर हनुमान के मन मे इसकी आशका भी उत्पन्न नहीं हुई थी कि उनम से एक भी स्त्री वलपूर्वक हरण करके लायी जाने के कारण खिन्नमना अथवा दु खी हो। उनको रावण से इतना अधिक प्रेम था कि उनींदी अवस्था मे अपनी सोत को ही रावण समझकर वे उसी के साथ आलिगनपाश म वँध जाती थीं। कितनी ही तरुणी पत्नियाँ रावण के मुख के धोखे मे अपनी सोता के मुखो को ही सूँघती रहती थीं।[2] उनका मन रावण म इतना अधिक आसक्त था कि उसके आलिगन सुख की कामना से वे अपनी सौता स ही लिपट जाती थी।[3] इस प्रकार की आनन्दानुभूति वलपूर्वक अपहता नारियों का कभी हो ही नही सकती। हनुमान ने स्वय यह अनुभव किया था कि राजर्षिया ब्रह्मर्षियो, देत्यो गन्धर्वो तथा राक्षसा की कन्याएँ काम के वशीभूत होकर स्वय ही रावण की पत्नियाँ वन गयी थीं। यद्यपि रावण ने युद्ध की इच्छा से अनेक नारिया का अपहरण भी किया था किन्तु अधिकाश मदमत्त रमणियाँ काम से मोहित होकर स्वय ही भागकर उसके पास चली आयी थीं।[4] हनुमान ने यह भी देखा था कि वहाँ ऐसी एक भी स्त्री नहीं थी जिसे रावण अपने वल पराक्रम से उसकी इच्छा के विरुद्ध हर लाया हो। वे सब-की सब उसे अपने अलोकिक गुण से ही उपलब्ध हुई थी। सीता तो वहाँ थी ही नहीं किन्तु ऐसी एक भी स्त्री वहाँ नही थी जिसके मन मे रावण के अतिरिक्त किसी अन्य क प्रति आसक्ति रही हो अथवा जिसका पहल कोई दूसरा पति रहा हो। रावण की सभी पत्नियाँ उत्तम कुल मे उत्पन्न सुन्दरी उदारमना चतुर, वस्त्राभूषणा से अलकृत अपने प्रियतम की लाडली प्रेयसी थीं।[5] अशोक वाटिका मे सीता को डरा धमकाकर ओर उनको राक्षसिया के नियन्त्रण म छोडकर धान्यमालिनी के कहने से जब वह अपने महला की ओर लोटा था तव भी दवताओ गन्धर्वो ओर नागा की अनेक कन्याएँ उसके साथ लोट आयी थीं।

1 वा रा 5 20 14 2 वा रा 5 9 57 3 वा रा 5 9 -8 4 वा रा 5 9 68-69
5 वा रा 5 9 70 71

इससे प्रतीत होता है कि गन्धर्वों आदि की कन्याओं ने ही नहीं वरन् देव-कन्याओं ने भी रावण का प्रियतम के रूप में वरण किया था।[1]

रावण ने पहले नारियों का अपहरण कर उनके साथ बलात्कार भले ही किया हो किन्तु उसे अपने इस कृत्य पर पश्चात्ताप भी होता रहा था। दिग्विजय के पश्चात् जब वह अनेक कन्याओं को अपने साथ लाया था और उन्होंने रोते चीखते हुए उसकी निन्दा करते हुए स्त्री के कारण ही उसके वध का शाप दिया था तो वह निस्तेज निष्प्रभ और खिन्नमना होकर रह गया था। विभीषण और शूर्पणखा द्वारा भी जब उसके द्वारा नारियों के अपहरण की निन्दा की गयी और मधु द्वारा कुम्भीनसी के अपहरण को भी उसके इसी दुष्कृत्य का परिणाम बताया गया तब उसे गहरा दुःख हुआ था। इसके बाद भी रम्भा के साथ बलात्कार करने से वह अपने को रोक नहीं सका। बेचारी रम्भा बार बार स्वयं को उसकी पुत्रवधू बतलाती रही और उसके भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर के प्रति अपने को समर्पिता भी कहा तब भी रावण अपनी काम-वासना को नियन्त्रित नहीं कर सका। रम्भा ने इस घटना की पूरी जानकारी अपने प्रियतम नलकूबर को दे दी थी। इससे क्रुद्ध होकर नलकूबर ने शाप दिया था कि यदि भविष्य में रावण कामपीडित होकर उसे न चाहनेवाली युवती पर बलात्कार करेगा तो तत्काल उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जाएँगे।[2] जब रावण को इस शाप का पता लगा तो उसने सदैव के लिए उसको न चाहनेवाली स्त्रियों के साथ बलात्कार करना छोड़ दिया था।[3] सीता को अनेक प्रलोभन देने और डराने धमकाने के बाद भी उनसे उसने यही कहा कि जब तक तुम मुझे न चाहोगी तब तक काम भले ही मेरे शरीर पर अत्याचार करता रहे किन्तु मैं तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करूँगा।[5]

रम्भा के साथ रावण की बातचीत का एक अंश विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। अप्सराओं द्वारा पातिव्रत धर्म के निर्वाह का तो प्रश्न था ही नहीं उस युग में कदाचित् देवताओं गन्धर्वों तथा अन्य वर्गों की नारियों के लिए भी आचार और धर्म की कोई विशेष मर्यादा स्थापित नहीं हो सकी थी। न तो पुरुष के लिए एक पत्नीव्रत होने की ही कोई व्यवस्था रही थी और न नारियों के लिए पातिव्रत धर्म की ही मर्यादा थी। राम और सीता के चरित्र-आदर्शों के माध्यम से समाज में इस प्रकार की मर्यादा स्थापित करने का सम्भवतः यह सबसे पहला प्रयास वाल्मीकि द्वारा ही किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि रावण की वंश परम्परा में एक पत्नीव्रत तथा पातिव्रत की महत्ता को स्वीकार कर लिया गया था। कुम्भीनसी का यद्यपि मधु के द्वारा बलपूर्वक अपहरण किया गया था किन्तु जब रावण ने प्रतिशोध के लिए मधु पर आक्रमण किया था तब स्वयं कुम्भीनसी ने ही मधु की

---

1 वा रा 5 22 45 2 वा रा 7 24 22 3 वा रा 7 26 55 4 वा रा 7 26 59 5 वा रा 5 20 6

रक्षा की थी। रम्भा ने अपने आपको रावण की पुत्रवधू बतलाते हुए कहा था कि आप मेरे माननीय गुरुजन ह अत आपको मेरी रक्षा करनी चाहिए। इस पर रावण ने वडी विनम्रतापूर्वक रम्भा को उत्तर देते हुए कहा था कि तुम अपने को जो मेरी पुत्रवधू बतला रही हो वह ठीक नही जान पडता। यह नाता रिश्ता तो उन स्त्रियो के लिए लागू होता ह जो किसी एक ही पुरुप की पत्नी बनकर रहती हा। तुम्हारे देवलोक की तो स्थिति ही दूसरी ह। वहाँ सदा से यही नियम चला आ रहा है कि अप्सराओ का कोई पति नही होता। उस लोक म कोई एक स्त्री के साथ विवाह करके भी नहीं रहना।[1] यह कहने क बाद ही उसने रम्भा के साथ समागम किया था। इस प्रसग से स्पष्ट होता ह कि रावण एक पत्नीव्रत आर पातिव्रत धर्म की महत्ता को स्वीकार करता था। जब उसने देखा कि देवलोक की अप्सराओ म ओर देवा गन्धर्वो आदि मे इस प्रकार की कोई मर्यादा ही नही है तो उसने उनके अपहरण म कोई दोप नही माना।

राक्षस धर्म आर उसकी व्यवस्थाओ का स्पष्ट रूप आज हम उपलब्ध नही होता अतएव यह कहना भी सम्भव नहीं कि ब्राह्मण ऋपियो द्वारा प्रवर्तित आर राक्षसो द्वारा मान्य धर्म व्यवस्थाओ म क्या और कितना अन्तर रहा ह। रावण की सीता के साथ हुई बातचीत मे यह सकेत मिलता ह कि नारी क प्रति व्यवहार के विपय म राक्षसो की धर्म व्यवस्थाए कुछ दूसरी ही रही हे। सीता को अपने अन्त पुर म ले जाकर रावण ने उनको अनेक प्रलोभन देत हुए लका का राज्य उनको समर्पित करते हुए वहाँ की समस्त समृद्धि आर राक्षसो तथा अन्त पुर की सहस्रो नारिया की स्वामिनी बनकर क्रीडा विनोद म मन लगाकर रहने क लिए कहा था। उसने यह भी कहा था कि तुम्हारा पहल का जो दुष्कर्म था वह वनवास का कष्ट देकर समाप्त हो गया है अब जो तुम्हारा पुण्य कर्म शेप है उसी का फल यहाँ प्राप्त करो। इन समस्त प्रलोभनो से भी जब सीता का मन विचलित नहीं हुआ ओर वे खिन्नमना होकर आँसू बहाती रही तब रावण न धर्म-व्यवस्था के प्रति सकेत करते हुए कहा था कि अपने पति के त्याग आर पर पुरुप के अगीकार स तुम्हारे मन मे यदि धर्मलाप की आशका होती ह तो उसक कारण भी तुमको लज्जा नहीं होनी चाहिए। तुम्हार साथ मेरा जो स्नेह सम्बन्ध होगा वह आर्प धर्म शास्त्रो द्वारा समर्थित ह।[2] इसी प्रकार अशोक वाटिका मे भी सीता को फुसलाने का एक बार पुन प्रयत्न करते समय भी रावण ने राक्षसों की धर्म व्यवस्था का प्रमाण देते हुए कहा था कि यदि तुम यह समझती हो कि तुम्हारा अपहरण कर मेने कोई अधर्म किया हे तो तुम्हारी यह आशका भ्रान्तिमूलक ही होगी। परायी स्त्रिया के पास जाना अथवा बलपूर्वक उनका

1 वा रा 7 26.39-40 2 वा रा 3 55 27 28 3 वा रा 3 55.34

अपहरण करना राक्षसो का सदा ही अपना धर्म रहा है इसमे सन्देह नही करना चाहिए।[1]

उपर्युक्त उद्धरण इस बात के प्रति सकेत करते है कि या तो राक्षसा की कोई अलग धर्म-व्यवस्था रही हे अथवा स्मार्त ऋषियो द्वारा दी गयी राक्षस आर आसुर विवाह व्यवस्था की आर ही रावण का सकेत रहा है। रावण न पहले प्रसग मे स्पष्टतया आर्ष शब्द का प्रयोग किया हे। इससे यही अनुमान होता है कि उसका सकेत राक्षस आर आसुर विवाह के प्रति ही रहा हे जिसकी व्यवस्था स्वय स्मृतिकारो द्वारा दी गयी थी। भले ही इस प्रकार के विवाहो को निन्दनीय कहा गया हो किन्तु विवाह की यह भी एक व्यवस्था ही थी इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'स्त्री रत्न दुष्कुलादपि जसे स्मृति वाक्य भी नारी के प्रति तत्कालीन व्यवहार व्यवस्था का सकत करत ह। सम्भव ह राम ओर सीता के आदर्शो की स्थापना के पश्चात् ही नारी क प्रति आचार व्यवस्था का रूप निश्चित हुआ हो ओर उसके बाद ही नारी-अपहरण आदि का निन्दनीय माना गया हो।

रावण नारियो के विशेष रूप स तरुणियो के द्वारा तपस्वी जीवन विताये जाने का प्रवल विरोधी था। उसकी मान्यता यही थी कि स्त्रिया को अपने यावन-काल म पूर्ण सुखोपभोग का जीवन विताने का अवसर मिलना चाहिए। उनको भरपूर शृगार सामग्री आभूषण अगराग आदि सजी धजी रहकर अपनी जवानी का पूरा सुख भागना चाहिए। सीता का अपहरण करते समय उसने कहा था कि तीना लोका मे तुम्हारे अनुपम सोन्दर्य सुकुमारता आर नयी अवस्था को दखते हुए आर तुम्हारे दुर्गम वन म निवास को देखते हुए मरे मन का कष्ट होता ह।[2] तुम्हे तो रमणीय राजमहलों समृद्ध नगरा आर सुगन्धयुक्त उपवना म निवास करना चाहिए।[3] सीता को अपन अन्त पुर म ल जाकर रावण ने फिर उनसे कहा था कि यावन चिरस्थायी नही होता अतएव उस अवस्था का पूरा उपभोग करना चाहिए आर तुम यहा रहकर मेरे साथ रमण करा।[4]

रावण के उपयुक्त विचार उसकी वेदवती के साथ हुई वातचीत म आर भी अधिक स्पष्ट हात ह। जव उसने वेदवती का काला मृगचर्म पहन हुए सिर पर जटा धारण किय तपस्या म सलग्न देखा तो उसे आश्चर्य हुआ था। वदवती से उसने कहा था कि--तुम अपनी युवावस्था के विपरीत यह केसा वर्ताव कर रही हो। तुम्हारे इस दिव्य रूप के लिए ऐसा आचरण कदापि उचित नही। तुम्हारा तप म सलग्न होना उचित नहीं। वेदवती न जव अपनी तपस्या का उद्देश्य प्रकट किया तव रावण ने फिर अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए कहा था कि--तुम गर्वीली जान पड़ती हो इसीलिए तुम्हारी वुद्धि ऐसी हो गयी ह। इस प्रकार का पुण्य-सग्रह तो वृद्धा स्त्रिया

1 वा रा 5 20.5 2 वा रा 3 46 23-24 3 वा रा 3 46 25 4 वा रा 3 55 22

को ही शामा देता है, तुम जसी युवती को नहीं। तुम सर्वगुण सम्पन्न अद्वितीय सुन्दरी हो। तुम्हारी जवानी बीती जा रही है इसलिए तुमको तपस्या की बात नहीं कहनी चाहिए।[1]

उपर्युक्त उद्धरण इसी बात के प्रति सकेत करते है कि रावण युवतियो द्वारा तपस्वी जीवन बिताना का समाज-व्यवस्था की दृष्टि से हितकर नहीं मानता था। यद्यपि आर्यधर्म मे भी स्त्रिया के लिए सन्यास की स्पष्ट व्यवस्था नहीं है किन्तु अनेक पौराणिक कथाओ मे कन्याओ आर युवतियो द्वारा तपस्वी जीवन बिताने का उल्लेख किया गया है। रावण ने स्वय पुरुरवा ओर उर्वशी का उदाहरण देते हुए सीता से कहा था कि जिस प्रकार पुरुरवा का तिरस्कार कर उर्वशी को पछताना पडा था उसी प्रकार तुमको भी पछताना पडेगा।[2] यह भी सम्भव है कि बौद्ध धर्म ने जब नारियो को भिक्षुणी बनने का अधिकार दे दिया था तो उस व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप ही रावण के माध्यम मे रामायणकार ने यह विचार व्यक्त किये हा।

पुस्तक के प्रारम्भ म लिखा जा चुका है कि राक्षस वर्ग जाति आर वर्ण-व्यवस्था के विरोधी थ। रावण भी जाति-व्यवस्था को समाज के लिए हितकर नहीं मानता था। यद्यपि वह ब्राह्मणों का सम्मान करता था ओर लका म तथा रावण क महलो म सदव ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्म घोष हाता रहता था किन्तु यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ऐसे सन्दर्भो म ब्राह्मण शब्द का प्रयोग प्राय सर्वत्र ही वेदज्ञ अथवा वेदपारगा विशेषणों के साथ किया गया है। इससे यही प्रमाणित होता है कि वह जन्मना जाति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता था। रावण आर राक्षसा के प्रसग म ब्राह्मणा क अतिरिक्त अन्य किसी जाति का उल्लेख नही किया गया है। राम ओर भरत के सन्दर्भ म चारा वर्णो ओर शूद्रा तथा शिल्पियो की अनेक उपजातिया का उल्लेख हुआ ह किन्तु रावण के राज्य म इस प्रकार की जातियो उपजातियो का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता।

विभीषण ने राम को अजेय बताकर सीता को लोटा देने का परामर्श देते हुए जब रावण का विराध किया था तब रावण ने विभीषण को लक्ष्य कर जाति प्रथा की कटु आलोचना की ह। रावण का विश्वास था कि जाति के आधार पर परस्पर एक-दूसरे के प्रति सहयोग आर सहानुभूति की भावना उत्पन्न ही नहीं होती वरन् इसके विपरीत यदि जाति का एक व्यक्ति ऊँची स्थिति प्राप्त कर लेता है तो उस जाति के अन्य व्यक्ति उससे ईर्ष्या करने लगते है ओर उसको नीचे गिराने की कोशिशें करते है। इस सन्दर्भ मे रावण क शब्दा को ही उद्धृत करना अधिक सगत होगा। उसने कहा था

1 वा रा 7 17 4 5 21 22 2 वा रा 5 48 18

समस्त लोका मे सजातीय व धुआ का जो स्वभाव होता है उसे म अच्छी तरह जानता हू। जातिवाल सदा अपनी जाति के लागा को विपत्तियो म फँसा हुआ देखकर हर्षित हात ह। जा ज्येष्ठ होने के कारण राज्य पाकर सवम प्रधान हो गया हो राज्य कार्य का अच्छी तरह चला रहा हो आर विद्वान्, धर्मशील तथा शूरवीर हो उसे भी उसकी जातिवाल अपमानित करत ह ओर अवसर पाकर उसे नीचा दिखाने की कोशिश करत ह। जातिवाल सदा एक दूसरे पर सकट आने पर हर्ष का अनुभव करते ह। व बड आततायी होते ह। मौका पडने पर आग लगाने विष देने जसी चेष्टाओ म भी सकोच नहा करत। एक-दूसर से अपना मनोभाव छिपाये रहने है आर अत्यन्त क्रूर आर भयकर हात ह।[1]

उपर्युक्त विचार प्रकट करते हुए रावण ने हाथिया की एक प्राचीन कथा को भी उद्धृत किया था। इस स्थल पर उसने यह भी कहा था कि यह कथा श्लोका के रूप म गायी ओर सुनी जाती ह। तात्पर्य यह कि रावण प्राचीन साहित्य स शिक्षा सामग्री सकलित करन के प्रति भी रुचिशील था। जाति व्यवस्था क दाप वतलाते हुए कथा के व्याज स उसने कहा था

पूर्वकाल की बात है—पद्मवन में हाथिया ने अपने विचार प्रकट किय थ जो श्लोको के रूप म गाये ओर सुन जाते ह। एक बार कुछ लागा को हाथ म पाश लिय आते देख हाथिया ने परस्पर जो बात की थी उस सुनो। हाथिया ने कहा था कि हम अग्नि आर दूसरे अस्त्र शस्त्र तथा पाश भय नहीं द सकते। हमारे लिए ता अपन स्वार्थी जाति भाई ही भय और खतरा उत्पन्न कर सकते ह। ये ही हमारे पकडे जान का उपाय बता देग इसम सशय नही। अत सम्पूर्ण भाइया की अपेक्षा हम अपन जाति क लोगा स प्राप्त हानेवाला भय ही अधिक कष्टदायक जान पड़ता है। जैस गाया मे सम्पत्ति होती ह स्त्रिया मे चपलता होती है उसी प्रकार जाति क लोगा स भय अवश्य प्राप्त होता ह।[2]

उपर्युक्त अश इसी तथ्य का प्रमाणित करते है कि रावण जाति ओर वर्ण व्यवस्था का कट्टर विरोधी था। प्रारम्भ म यह भी लिखा जा चुका है कि राक्षस कहा जानवाला वग आश्रम व्यवस्था का भी विरोधी रहा है। विशेष रूप स वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था का शूपणखा मघनाद विराध वाली सभी ने विरोध किया ह आर राम को तापस वेष में सीता के साथ देखकर इन सबको आश्चर्य हुआ था। यद्यपि इस विषय म रावण क विचार स्पष्ट नहीं हुए किन्तु राम को त्यक्तधर्मा अधमात्मा मानन के पीछ कदाचित् उसकी यही भावना रही थी। मारीच स राम के विषय म उसने कहा था कि वह शीलरहित क्रूर तीख स्वभाववाला मूर्ख लोभी अजितेन्द्रिय त्यक्तधर्मा अधर्मात्मा आर समस्त प्राणिया क अहित म तत्पर रहनेवाला

---

1 वा रा 6 16 3 5 2 वा रा 6 16 6-9

ह। जिसने बिना किसी वर विरोध के केवल बल का आश्रय लेकर मरी बहिन के नाक-कान काटकर उसको विरूपित कर दिया उससे बदला लेने क लिए उसकी देव-कन्या के समान सुन्दरी पत्नी सीता का जनस्थान से बलपूर्वक हर लाऊँगा।[1] तपस्या क महत्त्व को स्वीकार करते हुए आर महान् तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए भी सन्यास आश्रम की आर्य-व्यवस्था क प्रति भी रावण ने कहीं कोई आस्था व्यक्त नहीं की।

जिस प्रकार रावण राम को त्यक्तधर्मा अधमात्मा आर शीलरहित मानता था उसी प्रकार राम के शब्दा म रावण न ता धम का जानता था न सदाचार को ही समझता था आर न कुल की मयादा का उसे ध्यान था। वह केवल राक्षसोचित नीच बुद्धि क कारण मीता-अपहरण जेसा निन्दनीय कर्म करता था।[2] राम क अतिरिक्त रामायण के अन्य पात्रा ने रावण पर अधर्मा मा हान का आरोप नही लगाया। रावण के समक्ष उपस्थित किय जान पर हनुमान ने कहा था कि तुमने तपस्या का कष्ट उठाकर धर्म के फलस्वरूप जा एश्वर्य का सग्रह किया हे उमका विनाश करना उचित नहीं। देवताआ आर असुरा द्वारा तुम्हारी अवध्यता तपस्याजनित धर्म का ही परिणाम ह।[3] मन्दोदरी के अनुसार उमने इन्द्रियजयी हाने क कारण ही तीना लोको पर विजय पायी थी।[4] धम व्यवस्था के प्रति वह कभी-कभी इतना अधिक आस्थावान दिखाई दता हे कि वह अपनी इच्छाआ का दमन करके भी धर्म का पालन करता था। मघनाद क वध से दु खी हाकर जब उसने सीता के वध का निश्चय किया तब उसक मन्त्री सुपार्श्व न उसे समझात हुए कहा था कि विधिपूवक ब्रह्मचर्य का पालन कर वद विद्या का अध्ययन करके भी धर्म का तिलाजलि दकर तुम नारी-वध का पाप किस प्रकार उचित समझते हो।[5] सुपार्श्व की बात सुनकर ओर धर्म व्यवस्था का स्मरण कर वह सीता वध का विचार त्यागकर चुपचाप लोट गया था।[6]

रावण की दृष्टि म अभ्यागत अतिथि का सम्मान करना धम की विशष मर्यादा रही ह। मारीच के आश्रम मे जाकर जब उसने सीता हरण का अपना मन्तव्य प्रकट किया आर मारीच ने उसका विरोध किया तब रावण न उससे कहा था—"तुम धर्म को न जानकर केवल मोहवश इस प्रकार की बात कह रहे हो। म तुम्हारा अभ्यागत हूँ फिर भी तुम दुष्टतावश इस प्रकार की कठोर बात कह रहे हो। [7]

रावण के आचार विचार पूणतया आर्य धर्म और आर्यो की परम्परा के अनुकूल ही रह हे। उसके अन्त पुर म काले अगरू और चन्दन से नित्यप्रति अचना की जाती थी।[8] भेरी आर मृदग की ध्वनि के साथ शखा की ध्वनि स अन्त पुर गूँजता रहता था नित्य पूजा हानी था आर पर्वो के अवसर पर राक्षसा द्वारा सामूहिक रूप स

1 वा रा 3 36 11 12 2 वा रा 6 38 5 3 वा रा 5 51 25 26 4 वा रा 6 111 15
5 वा रा 6 9? 63-64 6 वा रा 6 92 68 7 वा रा 3 40 14 15 8 वा रा 5 4 0

अर्चना की जाती थी।[1] उसके विमान म भी इसी प्रकार की विशेष व्यवस्था की थी। हनुमान ने स्वय देखा था कि विमान मे निर्मित कमल मण्डित सरोवर मे हाथी बनाये गये थे जा लक्ष्मी के अभिषेक कार्य म नियुक्त थे। उनकी सूँडे सुन्दर थीं। उनके अगो मे कमलो के केसर लगे हुए थे तथा वे अपनी सूँडो में क क फूल लिये हुए थे। उनके बीच मे तेजस्वी लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित थी जिस उन हाथियो द्वारा अभिषेक किया जा रहा था।[2]

कर्म परिणाम आर स्वर्ग क अस्तित्व में उसको इतनी गहरी आस्था थी कि अप पुत्र मघनाद के वध को भी उसी के आधार पर सह लिया था। पुत्र शोक से विह्व होते हुए भी उसने कहा था कि समस्त दवताओ म भी अच्छे योद्धाओ का यही मा ह। जो अपने स्वामी क लिए युद्ध मे मारा जाता है वह पुरुष स्वर्गलोक मे जात है।[3] कर्म की गति को दुर्ज्ञेय मानते हुए भी[4] वह इतना अवश्य मानता था कि दुष्कम के परिणाम क्लेशकर और सत्कर्मो के निश्चय ही सुखप्रद होत ह। इसी विश्वास के साथ उसन सीता से कहा था कि—तुम्हारा पहले का जो दुष्कर्म था वह वनवास का कष्ट दकर समाप्त हो गया। अव जो तुम्हारा पुण्यकर्म शेष ह उसके फल का उपभोग करो।[5] तपस्वियो आर ऋषियो के प्रति भी उसकी आस्था कम नही थी। राम के शौर्य से अपना धर्य खाकर उस वेदवती उमा नन्दीश्वर रम्भा और वरुण कन्याआ के शाप का स्मरण हुआ था आर बडे विषादपूर्वक उसने कहा था—उन्होने जैसा कहा था वैसा ही परिणाम मुझ प्राप्त हो रहा है। सच हे ऋषियो की बात कभी झूठी नहीं होती।

रावण ने आप धर्म की व्यवस्थाओ का कभी उल्लघन नही किया तथापि उसके पूर जीवन दर्शन को दृष्टिगत रखते हुए उसे क्षात्र धर्म का अनुयायी कहना ही अधिक समीचीन होगा। मेघनाद को हनुमान के साथ युद्ध करने के लिए भेजते समय यद्यपि उसका हृदय पुत्रस्नेह से भर गया था किन्तु उसने यही कहा था कि—तुमको इस प्रकार सकट म डालना यद्यपि उचित नहीं है किन्तु मेरा यह विचार राजनीति आर क्षत्रिय धर्म क अनुकूल ही ह।[7] विभीषण को विलाप करता हुआ देखकर राम ने भी रावण के क्षात्र धर्म के अनुसरण की प्रशसा की थी। उन्हाने कहा था कि जो लोग अपन अभ्युदय की इच्छा से क्षत्रिय धर्म में स्थित हो समरागण म मारे जाते ह उनक विषय म शाक नही करना चाहिए। जिस बुद्धिमान् वीर ने इन्द्र सहित तीना लाका को युद्ध म परेशान कर रखा था वही यदि इस समय काल के अधीन हो गया ता यह उसक लिए शाक करन का अवसर नहीं। आज रावण को जो गति प्राप्त हुई है वह पूर्व काल के महापुरुषो द्वारा बताई गयी उत्तम गति हे। क्षात्र वृत्ति

---

1 वा रा 5 6 12 2 वा रा 5 7 14 3 वा रा 6 92 9 4 वा रा 6 12 22 5 वा रा 3 55 27 6 वा रा 6 60 11 7 वा रा 5 48 13

का आश्रय लनवाले वीरा के लिए यह बड़े आदर की वस्तु है। क्षत्रिय वृत्ति स रहनवाला वीर पुरुष यदि युद्ध म मारा गया है तो वह शोक के योग्य नहीं हे यही शास्त्र का सिद्धान्त है।[1] विभीषण की पत्नी सरमा अवश्य ही उसकी बुद्धि और कर्मो की निन्दा करती रही। वह उसे समस्त प्राणिया का विरोधी क्रूर और मायावी मानती थी।[2] रावण स्वय पापियो का वध करने म कोई पाप नहीं मानता था। हनुमान का वध करने के विषय म अपना विचार व्यक्त करते हुए उसने विभीषण से कहा था कि इस वानर ने वाटिका का विध्वस किया और राक्षसा का वध करके वडा भारी पाप किया है। इस प्रकार के पापिया के मारने म कोई पाप नहीं होता।[3]

रावण किसी भी काम को करने के पहले पूरी गम्भीरता से उस पर विचार किया करता था। शूपणखा की वात सुनकर उसने सीता हरण के प्रश्न पर मन ही-मन विचार किया था। फिर उसक गुण-दोषो पर सम्यक् विचार करत हुए अपनी ओर राम की शक्ति का भी अनुमान किया आर अन्त म जव वह इस निश्चय पर पहुँचा कि इस काम को करना हा चाहिए तभी वह प्रस्थान की तैयारी के लिए अपनी रथशाला म गया था।[4] देशकाल के अनुरूप कार्य करने को वह इतना अधिक महत्त्व देता था कि अपने सभी सेनापतिया को भी इस दिशा मे सावधान कर देता था। हनुमान के द्वारा जव पाँच सेनापति आर मन्त्री के पुत्र मार डाले गये तव उसने विरूपाक्ष यूपाक्ष आदि को युद्ध के लिए भेजते समय उनसे कहा था कि उस वनचारी वानर के पास पहुँचकर तुम सव लोगा को सावधान ओर अत्यन्त प्रयत्नशील हो जाना चाहिए तथा वही काम करना चाहिए जो देश आर काल के अनुरूप हो।[5]

रावण को जितना क्रूर आर निर्मम कहा जाता हे वस्तुत वह वसा कभी नहीं रहा। विभीषण के प्रसग म लिखा जा चुका ह कि रावण आर्य हान के नात स्नेह आर साहार्द की भावना को इतना अधिक महत्त्व देता था कि इन गुणो से रहित व्यक्ति को वह अनार्य ही मानता था। सुग्रीव यद्यपि युद्ध म राम की पूरी सहायता कर रहा था किन्तु यह जानकर भी रावण के मन म उसके प्रति किसी प्रकार की द्वेष भावना नहीं रही। सुग्रीव युद्ध करन के लिए जव उसके सामने खडा हो गया तव रावण ने उससे कहा था कि—आप एक महाराजा के कुल म उत्पन्न आर ऋक्षरजा क पुत्र हो। तुम स्वय भी वडे वलवान् हो ओर म तुमको अपने भाई के समान ही मानता हू। यदि मुझसे आपको कोई लाभ नही हुआ ह ता मने आपका कोई अनर्थ भी नहीं किया है। यदि म राजपुत्र राम की पत्नी को हर लाया हूँ तो इसम आपकी क्या हानि ह। अतएव आप किष्किन्धा को लोट जाएँ तो अच्छा

---

1 वा रा 6 109 15 16 18 2 वा रा 6 33 13 3 वा रा 5 52 11 4 वा रा 3 35 2 3
5 वा रा 5 46.5

हागा।[1] कुम्भकर्ण के निधन पर शोक सन्तप्त होकर उसने कहा था कि—अब मुझे राज्य से काई प्रयोजन नही हे। सीता को प्राप्त करके भी अब म क्या करूँगा। कुम्भकर्ण के विना जीवित रहने का मरा मन नहीं है। मन धर्म परायण विभीपण का घर स निकाल दिया था उसी का यह शोकदायक परिणाम मुन भोगना पड रहा ह।[2] प्रारम्भ म कुवर के प्रति भी उसके मन म भ्रातृ स्नेह आर सम्मान की भावना रही थी। सुमाली न जब उसे कुबेर को हटाकर लका पर अधिकार करने की सलाह दी थी तब उसन साफ शब्दा म सुमाली को उत्तर दे दिया था कि धनाध्यक्ष कुबेर हमार बडे भाई ह अत उनके सम्बन्ध म आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।[3] इसक बाद फिर प्रहस्त ने ही उसे कुबेर के विरुद्ध भडका दिया था।

राम के विषय म रावण के विचार कुछ अलग ही प्रकार के थे। उसको अयाध्या के राजमहला की राजनीति ओर राम के निवासित किये जान के विषय म सम्भवत पूरी जानकारी थी। मारीच को राम के विषय म जानकारी देते हुए उसने बताया था कि उसके पिता (दशरथ) न कुपित होकर उसको पत्नी सहित घर से निकाल दिया है। उसका जीवन क्षीण हो चला ओर उसी क्षत्रिय कुलकलक राम ने खरदूषण तथा राक्षसा की सेना का सहार किया ह।[4] रावण के अनुसार राम एक स्त्री (कैकेयी) की मूर्खतापूर्ण बाता का सुनकर राज्य मित्र माता आर पिता को छोडकर वन म चले आये थ। वह राम को अत्यन्त दीन हीन मानता था। सीता से उसने कहा था कि राम तप स बल स पराक्रम से धन तेज अथवा यश के द्वारा मरी समानता नहीं कर सकते।[6] वह उनको सर्वथा दीन तपस्वी राज्य भ्रष्ट शक्तिहीन बसहारा मानता था।[7]

रावण के चरित्र म मारीच को सबसे अधिक दोष दिखाई दते थे। किन्तु यह भी विचारणाय है कि वह वेचारा राम से इतना अधिक भयभीत था कि एकान्त मे अथवा स्वप्न म भी राम की कल्पना से उसके प्राण काँप जात थ। राम अथवा रथ जस रकारादि शब्द काना म पडते ही वह भय से काँप उठता था।[8] इस स्थिति म राम की तुलना म रावण में दोष मानना उसकी एक स्वाभाविक कमजोरी ही थी। रावण की मृत्यु क अवसर पर मन्दोदरी ने भी उसम नारी-अपहरण आदि अनेक दोषा के होने का उल्लेख किया ह फिर भी वह उसके बल और पराक्रम से इतनी अधिक प्रभावित थी कि उस शोच्य नहीं माना।[9]

विभीषण ने जीवन भर रावण का विरोध किया था आर उसको तथा पूरे वश को मरवा डालने म उसने राम की पूरी सहायता की थी। रावण की मृत्यु पर विलाप

---

1 वा रा 6 20 10 11 2 वा रा 6 68 17 23 3 वा रा 7 11 11 4 वा रा 3 36 10 5 वा रा 3 40 5 6 वा रा 5 20 31 7 वा रा 3 55 21 23 6 30 4 8 वा रा 3 39 17 18 9 वा रा 6 111 74

करते हुए उसन जो कुछ कहा था वह रावण के पूर जीवन पर पयाप्त प्रकाश डालता ह। अतएव अन्त म उसके शब्दो को ही यथावत् उद्धृत करना उचित होगा

"विख्यात पराक्रमी, कार्यकुशल और नीतिज्ञ भाई तुम सदा बहुमूल्य बिछानो पर सोया करते थे। आज इस तरह मारे जाकर भूमि पर क्या सो रहे हो? आज शास्त्रधारियो म श्रेष्ठ वीर रावण के धराशायी होने स सुन्दर नीति पर चलनेवालो की मयादा टूट गयी धर्म का मूर्तिमान विग्रह चला गया। बल के सग्रह का स्थान नष्ट हो गया सुन्दर हाथ चलानेवाले वीरो का सहारा चला गया सूर्य पृथ्वी पर गिर पडा चन्द्रमा अधेरे म डूब गया प्रज्वलित आग बुझ गयी आर सारा उत्साह निरर्थक हो गया। इस लोक का आधार और बल समाप्त हो गया अब यहा शेप ही क्या रहा? धर्य ही जिसक पत्त थ पराक्रम ही फूल थे तपस्या ही बल आर शोर्य ही मूल था उस रावण रूपी महान् वृक्ष का राम रूपी प्रचण्ड वायु न रौद डाला।"[1] अन्त में विभीषण ने राम स फिर कहा था कि रावण ने याचको को दान देकर सन्तुष्ट किया भोग भागे और भृत्यो का भी भरण पोषण किया मित्रो को धन देकर सम्पन्न बनाया आर शत्रुओ से वर का बदला लिया। यह अग्निहोत्री महातपस्वी वेदान्तवेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मो म श्रेष्ठ शूर परम कर्मठ रहा है। अतएव मे ही इसका प्रेत कर्म करना चाहता हूँ।[2]

विभीषण क उपर्युक्त वाक्यो म रावण का पूरा जीवन दर्शन स्पष्ट हो जाता है।

---

1 वा रा 6 109 26 9 2 वा रा 6 109 22 23

सीता का पातिव्रत धर्म, त्याग ओर आचारनिष्ठा

राम ओर सीता के चरित्र-आदर्शो अथवा उनके आचार विषयक सिद्धान्तो की समीक्षा करने के पूर्व यह कहना आवश्यक है कि महर्षि वाल्मीकि ने समाज मे विशिष्ट आदर्शो की स्थापना के उद्देश्य से ही इन दोनो के चरित्रा का विशेष रूप से प्रस्तुत किया हे। राम के माध्यम से पुरुष-वर्ग के लिए और सीता के व्याज से नारी-जाति के लिए आचार-व्यवस्था देना उनका निश्चित ही उद्देश्य रहा है। रामकथा मे लगभग शताधिक पात्रा का समावेश किया गया हे ओर वसिष्ठ विश्वामित्र अगस्त्य भरद्वाज जेसे महर्षि अनसूया शबरी उर्मिला जेसी आदर्श नारियाँ जनक जटायु निषादराज गुह हनुमान अगद जेसे अन्य महापुरुष भी महत्त्वपूर्ण पात्र ही हैं किन्तु इन सबको राम का सहयोगी मित्र, दास अथवा अन्य श्रेणी मे रखकर आनुषगिक पात्र ही माना गया हे। वस्तुत राम आर सीता के द्वारा समस्त पुरुष ओर नारी जाति लक्ष्मण भरत के द्वारा भाई हनुमान के द्वारा श्रद्धावान सहायक सुग्रीव के द्वारा कर्तव्यनिष्ठ मित्र ओर वसिष्ठ विश्वामित्र के द्वारा गुरु आचार्य के आदर्शो की स्थापना ही वाल्मीकि का उद्देश्य रहा। यही कारण ह कि राम आर सीता के आदर्शो से किंचित् भी अलग आचार व्यवस्था के माननेवाले पात्रा का पराभव ही दिखाया गया हे।

सीता का जन्म विद्वाना ओर शोधकर्त्ताओ के लिए हमेशा ही एक पहेली रहा हे। इस स्थिति मे रचनाकारा को उनके जन्म के विषय मे विविध प्रकार की कल्पनाएँ करने का अवसर मिलता ही गया। यह ता निर्विवाद ही हे कि सीता जनक की औरस पुत्री नहीं थी ओर न जनक की पत्नी के गर्भ से ही उनका जन्म हुआ था। रामायण के अनुसार रावण ने जब वेदवती के साथ दुर्व्यवहार किया आर उसके केश पकड लिये तव वेदवती ने पहले तो उन केशो को स्वय अपने हाथो स काटकर फेक दिया ओर फिर रावण के दखत देखते अग्नि म प्रवेश कर गयी थी। इस अवसर पर उसने रावण से कहा था कि तूने मरा अपमान किया हे। इसलिए तेरे वध क लिए म फिर से जन्म ग्रहण करूँगी। यदि मेने कुछ भी सत्कर्म दान आर होम किये हो तो अगले जन्म म म सती साध्वी अयोनिजा कन्या के रूप म जन्म ग्रहण करूँ आर किसी धर्मात्मा पिता की पुत्री बनूँ। उसके पश्चात् दूसरे जन्म में वह एक कमलपुष्प से प्रकट हुई थी किन्तु रावण उसे पुन प्राप्त कर अपने यहाँ ले गया था। रावण के मन्त्री बालक बालिकाओ के लक्षणा के विशेषज्ञ थ। उन्होने उस कमल कन्या को

देखकर कहा कि यदि यह कन्या घर में रही तो यही आपके वध का कारण होगी। यह सुनकर भयभीत हो रावण ने उसे समुद्र में फेंक दिया था। तत्पश्चात् वह भूमि को प्राप्त होकर जनक के यज्ञ-मण्डप के मध्यवर्ती भू भाग में जा पहुँची थी। वहाँ राजा के हल के मुख भाग से उस भू भाग के जोते जाने पर वह कन्या फिर से प्रकट हो गयी।[1] जनक ने भी विश्वामित्र को सीता के विषय में यही बतलाया था कि एक दिन जब वह यज्ञ के लिए भूमिशोधन करते समय खेत में हल चला रहे थे उसी समय हल के अग्रभाग से जोती गयी भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। पृथ्वी से प्रकट उस कन्या का नाम सीता रखा गया और जनक ने अपनी आत्मजा पुत्री के समान ही उसका पालन पोषण किया था।[2]

बाल्यावस्था में सीता को माता पिता के द्वारा आचार और नारी धर्म की पूरी शिक्षा दी गयी थी। उन आचार-उपदेशों का अपने जीवन में उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ निर्वाह किया। उन आचार सिद्धान्तों के विपरीत राम की बात भी सुनने के लिए वे कभी तैयार नहीं हुई। वनगमन के पूर्व जब राम ने उनको अयोध्या में रहकर सास-ससुर की सेवा करने की बात कही तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि पिता माता भाई-पुत्र और पुत्रवधू—ये सब अपने भाग्य के अनुसार ही जीवन निर्वाह करते हैं केवल पत्नी ही पति के भाग्य का अनुसरण करती है। मुझे किसके प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिए इस विषय में मेरी माता और पिता ने मुझे अनेक प्रकार से शिक्षा दी है। इसलिए इस समय इस विषय में मुझे कोई उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है।[3] कौसल्या ने भी सती और असती स्त्रियों के लक्षणों की विवेचना करते हुए जब सीता से वनवास की अवधि में राम का सदैव सम्मान करते रहने का उपदेश दिया था तब भी सीता ने उनको यही उत्तर दिया था कि पति के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए इसे मैं भली-भाँति जानती हूँ। इस विषय को मैंने पहले ही सुन रखा है अतएव आप मेरे लिए जो उपदेश दे रही हैं मैं उसका पूर्ण रूप से पालन करूँगी।[4] मैंने बड़ी-बूढ़ी श्रेष्ठ स्त्रियों से नारी के सामान्य और विशेष धर्मों की शिक्षा ग्रहण की है। इस प्रकार पातिव्रत का महत्त्व जानकर भी मैं पति का अपमान नहीं कर सकती।[5]

अत्रि के आश्रम में अनसूया ने भी सीता का ध्यान पातिव्रत धर्म की महत्ता की ओर आकृष्ट किया था। अनसूया के वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनने के बाद सीता ने कहा था कि—आप मुझको जो उपदेश दे रही हैं वह मुझे पहले से ही ज्ञात है।[6] मेरे विवाह-काल में अग्नि के समीप मेरी माँ ने मुझे जो शिक्षा दी थी वह मुझे अच्छी तरह से याद है। इसके अतिरिक्त मेरे अन्य स्वजनों ने मुझे जो भी उपदेश दिया

---

1 वा रा 7 17 — 2 वा रा 1 66 13-14 3 वा रा 2 27 4 5 10 4 वा रा 2 39 27
5 वा रा 2 39 31 6 वा रा 2 118 2

जानना चाहा था कि सीता के विवाह के लिए उन्होंने पराक्रम प्रदर्शन का कौन-सा रूप निश्चित किया है। जनक के घर में शिव द्वारा उनके पूर्वजों को प्रदत्त एक ऐसा धनुष रखा हुआ था जिसको उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाना बड़े-बड़े पराक्रमियों के लिए भी दुष्कर था। उन्होंने उस धनुष को उठाने और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने को ही सीता विवाह के लिए पराक्रम का प्रमाण निश्चित कर दिया था। अनेक राजा इस उद्देश्य से समय-समय पर मिथिला आते रहे किन्तु कोई भी इसमें समर्थ नहीं हो सका था। राजाओं ने संगठित होकर मिथिला पर आक्रमण भी कर दिया और एक वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा था। अन्त में देवताओं की सैन्य सहायता से जनक ही इस युद्ध में विजयी रहे थे।

सीता विवाह के लिए जनक द्वारा कोई विशेष स्वयंवर समारोह आयोजित नहीं किया गया था और न विश्वामित्र ही राम को किसी स्वयंवर समारोह में भाग लेने के लिए मिथिला लिवा ले गये थे। शिव के उस धनुष की और उसे चढ़ाने में राजाओं के असमर्थ रहने की खबर चारों ओर फैल चुकी थी। विश्वामित्र को भी यह खबर मिल चुकी थी और उत्सुकतावश वे राम को वह धनुष दिखाने मात्र के लिए ही मिथिलापुरी ले गये थे। राम-लक्ष्मण का परिचय देते हुए जनक से उन्होंने कहा था कि ये दोनों दशरथ पुत्र विश्वविख्यात क्षत्रिय वीर हैं और आपके यहाँ रखे हुए श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं। धनुष को देखने मात्र से यह सन्तुष्ट होकर अपनी राजधानी लौट जाएँगे।[1] धनुष दिखलाने के पूर्व जनक ने ही सीता को 'वीर्य शुल्का' घोषित किये जाने और पराक्रम की उपर्युक्त शर्त के विषय में जानकारी दी थी। राम को वह धनुष दिखाया गया। वे अपने युग के अद्वितीय पराक्रमी थे ही अतएव धनुष को देखकर जब उन्होंने उसको उठाने और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने का उपक्रम किया तो वह सहज ही टूट तक गया। परिणामस्वरूप जनक ने पूर्व निश्चय के अनुसार 'वीर्य शुल्का' सीता का विवाह राम के साथ कर दिया था।

विवाह के समय सीता की आयु अधिक नहीं थी। सीता ने मोटे तौर पर दो स्थलों पर बाल्यावस्था में ही अपना विवाह हो जाने का संकेत किया है। जब रावण ने अशोक वाटिका में राम का माया निर्मित कटा हुआ मस्तक सीता के सामने डाल दिया था तो सीता ने रोते हुए कहा था— राजन्! आपने अपनी छोटी अवस्था में ही जब कि मेरी अवस्था भी छोटी ही थी मुझे पत्नी रूप में प्राप्त किया था। अब आप मेरी ओर क्यों नहीं देखते अथवा मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते हो।[2] इसी प्रकार रावण वध के पश्चात् जब राम ने सीता से अपनी पवित्रता प्रमाणित करने के लिए अथवा कहीं भी अन्यत्र चली जाने के लिए कहा तब भी सीता ने उपालम्भपूर्ण स्वर में पूरे रोष के साथ उनसे कहा था कि—बाल्यावस्था में आपने मेरा

1 वा रा 1 66 5 6 2 वा रा 6 32 20

पाणिग्रहण किया है आपके प्रति मेरे मन मे जा भक्ति है उसक तथा मेरे शीलस्वभाव की आर आपका ध्यान क्या नहीं जा रहा?'[1] इन स्थूल सन्दर्भो के अतिरिक्त सीता ने अपहरण किये जाने क पूर्व रावण को अपना जो परिचय दिया था उससे भी आयु विपयक स्थिति पूरी तरह स्पष्ट हा जाती ह। यह स्मरणीय है कि विश्वामित्र जव राम को दशरथ स माँग कर अपने साथ ले गये थे उस समय राम पन्द्रह वर्ष की आयु पूरी कर सोलहव वर्ष म प्रवेश कर चुके थे।[2] विश्वामित्र के साथ वन म रहते हुए मिथिला पहुचने म उनका कितना समय व्यतीत हुआ था इसका स्पष्ट ज्ञान सम्भव नहीं। यदि इसम एक-दा वर्ष का समय भी मान लिया जाय ता विवाह के समय राम की आयु सत्रह-अठारह वर्ष की ही मानना पडेगी। स्वय सीता के कथनानुसार विवाह के पश्चात् अयोध्या लाटकर राम सीता बारह वप तक सुखपूर्वक रहे थे आर तरहव वप म दशरथ के द्वारा उनके अभिपेक का विचार किया गया था।[3] तात्पय यह कि वनगमन क समय राम की आयु तीस वर्ष रही होगी। सीता ने इस समय राम की आयु पच्चीस वर्ष आर स्वय अपनी आयु केवल अठारह वप वतलायी है।[4] राम की आयु म यह अन्तर क्या दिखाया गया इस सम्बन्ध म कुछ भी कहना कठिन ही ह। किन्तु वनगमन के समय यदि सीता की आयु अठारह वर्ष की थी आर विवाह क बारह वर्ष पश्चात् ही यह अवसर आया था ता यह भी मानना ही पडगा कि उनका विवाह केवल छह वप की आयु मे ही हो गया था।

सीता ने विवाह क पश्चात् अयाध्या म बारह वर्ष तक सुखपूर्ण जीवन बिताने की बात अवश्य कही किन्तु यह भी एक विचारणीय प्रश्न ह कि इतनी अल्प आयु म उनका सुखमय जीवन कैसा रहा होगा। यद्यपि भरत आर शत्रुघ्न को ननिहाल भज दिया गया था किन्तु उस समय राजमहल म राम की विशिष्ट स्थिति का भी कोई वणन नहीं किया गया। ककेयी की तुलना म कासल्या पूर्णतया उपेक्षिता थीं आर सीता के अतिरिक्त उर्मिला माण्डवी ओर श्रुतिकीर्ति तीन वहुएँ ओर भी थी। इस स्थिति म सीता का जीवन भी अन्य वहुआ क समान ही व्यतीत हुआ होगा। उनक सुखमय जीवन का प्रारम्भ राम के अभिपेक के पश्चात् ही होता किन्तु उसके पहल ही उन्हाने स्वय एसे कष्टमय जीवन का वरण किया जिसको पढकर भी प्राण काप जाते है। प्रारम्भ स ही भूमिप्रवेश पर्यन्त अर्थात् अपने पूरे जीवन भर जितना अधिक कष्ट सीता को भोगना पडा है उसका उपमान इतिहास पुराण अथवा काव्य ग्रन्था म खोजने पर भी मिल नही सकता। इस जीवन का वरण उन्हाने स्वय ही किया था अतएव उनके आदर्श ओर आचारगत विशेषताएँ उभरकर ऊपर आ गयीं।

सकत किया जा चुका है कि सीता को नारी धर्म आर पातिव्रत धर्म की शिक्षा

---

1 वा रा 6 116 16 2 वा रा 1 20 2 3 वा रा 3 47 4 5 4 वा रा 3 47 10

प्रारम्भ से ही माता पिता तथा मिथिला की बूढ़ी-बड़ी सती साध्वी स्त्रियो द्वारा दी गयी थी। रामायण-काल मे पातिव्रत धर्म को इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं रही थी आर समाज के अलग-अलग वर्गो म नारी धर्म का अलग-अलग रूप मान्य था। इसलिए यह भी मानना ही पडेगा कि सीता ही सबसे पहली एसी आदर्श नारी ह जिन्होने न केवल पातिव्रत धर्म को प्रतिष्ठा दी अपितु नारी धर्म के आदर्श प्रतिमान स्थापित किये। रामायण म कोसल्या सुमित्रा कैकेयी उर्मिला माण्डवी श्रुतिकीर्ति तारा रुमा मन्दोदरी धान्यमालिनी अहल्या शवरी अनसूया शूर्पणखा ताटका त्रिजटा सरमा मन्थरा आदि अनक नारी पात्रा का उल्लेख हुआ है किन्तु इनम से किसी की भी सीता से तुलना नही की जा सकती। पति के प्रति इतनी जवरदस्त आस्था किसी दूसरी नारी के मन म दिखाई ही नहीं दती। राम ने सीता के प्रति जो व्यवहार किया उसे शान्त अविचलित भाव से सहन करते हुए भी उन्होने राम के लिए अपने जीवन को होम दिया। मृत्यु अपने वड पैन आर भयकर दाँत निकाले हुए उनको चबा जाने के लिए उनके सामने मुँह वाये नाचती रही माया छल और कपट के द्वारा उनको विचलित करने के सभी प्रयास किये गये लका जसी वैभवशाली स्वर्णनगरी के राजमहला की पटरानी बनकर कल्पनातीत सुख भोगने के प्रलोभना से फुसलाने की कोशिशे की गयी किन्तु किसी भी दशा मे वे अपन आदर्शो से विचलित नहीं हुई। राम क मन मे उनके प्रति जो भी प्रेम रहा था उसका आभास केवल उनकी वियोग अवस्था म ही दिखाई देता है किन्तु लका विजय के पश्चात् राम ने ही उनकी सभी आशाआ को धूल म मिला दिया। राम के ही कारण उनको अपनी पवित्रता प्रमाणित करन के लिए अग्नि मे प्रवेश करना पडा अयोध्या लोटने क तुरन्त बाद गर्भवती होने की अवस्था म भी निर्वासित होना पड़ा और जब इस पर भी राम का हृदय आश्वस्त नहीं हुआ ता अन्त म उनको भूमि प्रवेश के द्वारा अपने जीवन का अन्त भी कर देना पडा। किन्तु अन्तिम क्षण मे भी उनके मुह से यही निकला—

यथाह राघवादन्य मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति।
मनसा कर्मणा वाचा यथा राम समर्पये।
तथा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति ॥
यथैतत् सत्यमुक्त मे वेद्मि रामात् पर न च।
तथा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति ॥ —वा रा 7 97 14 16

यदि म राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का मन से भी स्मरण नहीं करती यदि मन वचन कर्म से म राम के प्रति समर्पित हूँ, यदि राम के अतिरिक्त किसी अन्य को म जानती भी नहीं हूँ तो पृथ्वी माँ मुझे अपनी गोद म ले ले।

स्मृतिकारो ओर पाराणिक ऋपियो ने पातिव्रत धर्म को प्रतिष्ठित करने का जो प्रयास बहुत बाद म किया ह, उसका आदर्श सीता पहले ही प्रस्तुत कर चुकी थीं। वे नारी क लिए पति क अतिरिक्त किसी अन्य आराध्य दवता का अस्तित्व स्वीकार नहीं करतीं। राम ने जब उनको वनगमन स रोकते हुए अयाध्या म ही रहकर सास ससुर की सेवा करने के लिए कहा था तब उन्हाने उनको उत्तर देते हुए कहा था कि आप ही मेरे स्वामी हे आपके पीछे प्रेम भाव से वन मे जाने पर मेरे सभी पाप नष्ट हो जाएँगे, क्योकि पति ही नारी के लिए परात्पर देवता होता है।[1] कौसल्या क उपदेशा को सुनकर भी उन्होंने उनको आश्वस्त करते हुए कहा था कि म इस बात को जानती हूँ कि पति ही स्त्री के लिए देवता होता हे तब फिर वन मे उनके साथ रहते हुए म उनका अपमान क्यो करूँगी ?[2] सीता की आस्था के अनुसार केवल इस लोक मे ही नहीं परलाक म भी नारी के लिए पति ही एकमात्र गति अथवा आराध्य होता हे। राम ने उनको भरत के अनुकूल बर्ताव करने व्रत ओर उपवास म सलग्न रहने प्रतिदिन प्रात काल उठकर देवताओ की विधिवत् पूजा करन दशरथ ओर कौसल्या आदि का सम्मान करते रहने आदि का परामर्श देकर अकले ही वन जाने का विचार किया था। राम की बातो को सुनकर सीता को क्रोध आया ओर हँसी भी आयी। इन बातो को उन्होने अस्त्र शस्त्रो के नाता वीर राजकुमारो के आचरण व्यवहार क प्रतिकूल ही माना ओर राम से कहा था कि पिता, माता भाई पुत्र आर पुत्रवधू—ये सब अपने कर्मो का फल भोगते हुए अपने भाग्य के अनुसार जीवन निर्वाह करते ह केवल पत्नी ही पति के भाग्य का अनुसरण करती है। नारियो के लिए इस लोक ओर परलाक मे एकमात्र पति ही आश्रय देनेवाला होता हे। पिता पुत्र माता सखियाँ तथा उसकी अपनी आत्मा भी उसकी सच्ची सहायक नही होती। अतएव आपके साथ मुझको वन जाने की आज्ञा सहज ही प्राप्त हो गयी ह।[3] अच्छ महलो मे रहना, विमानो म चढकर घूमना आकाश मे घूमना इन सबकी अपेक्षा स्त्री के लिए सभी अवस्थाआ म पति के चरणो की छाया म रहना विशेष महत्त्व रखता है।[4]

अत्रि के आश्रम मे पहुँचने पर अनसूया ने सीता को पातिव्रत धर्म का विशेष उपदेश दिया था। अनसूया के मन म भी कौसल्या की भाँति कदाचित् यह सन्देह रहा था कि राज्य ओर समस्त सुख सुविधाओं से वंचित राम के प्रति सीता की प्रेम भावना म कमी आ सकती है। उनके उपदेशो को सम्मानपूर्वक सुनकर सीता ने कहा था कि देवि यद्यपि आपके मुँह से ऐसी बातो का सुनना कोई आश्चर्य की बात नहीं ह किन्तु यह बात मुझे पहले से ही ज्ञात ह कि पति ही नारी का गुरु होता ह। यदि मेरे पति अनार्य ओर जीविका के साधनो से रहित भी होते तो भी

1 वा रा 2 29 16 2 वा रा 2 39 31 3 वा रा 2 27 4-6 4 वा रा 2 27 9

म बिना किसी दुविधा के इनकी सेवा म लगी रहती। फिर जब य अपन गुणा क कारण ही सबकी प्रशसा के पात्र ह तब ता इनकी सेवा के लिए कहना ही क्या ह। ये परम दयालु जितेन्द्रिय दृढ अनुरागी धर्मात्मा तथा माता पिता क समान ही प्रिय ह।'[1] उपयुक्त उद्धरण इस बात का प्रमाण ह कि सीता पति को ही देवता गुरु माता पिता मानती थीं। वे यह भी मानती थीं कि अनार्य आचरणहीन और साधनहीन पति की भी प्रत्येक अवस्था मे पूरी निष्ठा के साथ सेवा करते रहना ही स्त्री का परम धर्म है। पति सेवा के अतिरिक्त स्त्री के लिए किसी अन्य तप का विधान उनके मतानुसार हो ही नहीं सकता।[2] अयोध्या की स्त्रिया सीता की पति भक्ति को देखकर स्तम्भित रह गयी थीं। राम के साथ उनका वन जाते हुए देखकर व मन ही मन सोचती रहीं कि पतिव्रत धर्म म तत्पर सीता पति के पीछे पीछ छाया की भाँति चलकर कृतकृत्य हो गयीं।[3]

राम के प्रति सीता क मन म इतनी अटूट श्रद्धा थी कि बड से बड़ा कारण भी उसको भग नहीं कर सकता था। राजपरिवार म पापिता, दशरथ जस नरश का पुत्रवधू ओर राम जसे राजकुमार की पत्नी होकर भी राम के प्रति अनुराग के अतिरिक्त उनके मन म राजमहला का सुखी जीवन बिताने की लेश मात्र भी इच्छा दिखाई नही देती। राज्याभिषेक का समाचार ज्ञात होने पर भी वे प्रसन्नता मे अपने नित्य कर्तव्या को भूली नही ओर सदा की भाँति प्रात काल दवपूजन मे लग गयी थी। जब राम ने आकर उनको सक्षिप्त रूप म यह समाचार दिया कि पिता मुझको वन भेज रहे ह तब भी वे किचित् भी विचलित नही हुई। उन्होन राम स वनवास दिये जाने का कारण जानने की भी इच्छा प्रकट नही की आर जब राम ने ही सूत्र रूप मे दशरथ द्वारा केकेयी को वरदान दिये जाने की घटना सुनायी तब भी सीता के मन म दशरथ कैकेयी अथवा भरत किसी के प्रति कोई दुर्भावना उत्पन्न नही हुई। उन्होन विस्तारपूर्वक घटना की जानकारी प्राप्त करने की भी परवाह नहीं की। कोई भी दूसरी नारी इस अवस्था मे सास ससुर आर परिवार के सभी लोगा को गालियाँ देती हुई पूरे नगर मे ओर चारों ओर कुहराम मचा दती मरने-मारन के लिए उद्धत हा जाती आर फिर भी पतिव्रता होने का दम्भ करती किन्तु सीता का मन इस सीमा तक राममय हा गया था कि राम का अनुगमन करते हुए निरन्तर पति की सेवा म रत रहने क अतिरिक्त कोई दूसरी बात उनके हृदय मे न तो शेष थी आर न उत्पन्न ही होती थी। राम ने जब उनसे अयोध्या म ही रहने के लिए कहा तो उन्होने आर कुछ भी न कहते हुए केवल साथ चलने का अपना निश्चय प्रकट कर दिया। पति सेवा क सुख की तुलना म अयोध्या के राजमहलो के सुख का तो प्रश्न ही नहा त्रलोक्य क एश्वय का भी वे त्याज्य मानती थी। उन्होने राम से कहा

---

1 वा रा 2 118 2-4 2 वा रा 2 118 9 3 वा रा 2 40 24

था कि म जिस प्रकार अपने पिता के घर म रहा करती थी उसी प्रकार वन म भी सुखपूर्वक निवास करूँगी। तीनो लोको के ऐश्वर्य को भी कुछ न समझती हुई पातिव्रत धम का पालन करती हुई आपकी सेवा करती रहूँगी। म आपके साथ अवश्य ही वन चलूँगी मुझ किसी तरह भी रोका नहीं जा सकता।'[1]

जिस प्रकार राम को राज्याभिषेक अथवा वनवास की कल्पना से सुख और दुःख की लेश मात्र भी अनुभूति नहीं हुई थी ठीक उसी प्रकार सीता भी दोनो स्थितियो म पूणतया अविचलित आर निर्विकार रहीं। केवल राम का वियोग ही उनका कष्टकर था आर राम के साथ रहते हुए व किसी कष्ट की कल्पना भी नही करती थीं। राम के सामने अपनी मन स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्हाने कहा था कि—म व्रत परायण पतिव्रता आपकी पत्नी हूँ फिर क्या कारण ह कि आप मुझे अपने साथ नहीं ले जाना चाहत? म आपकी भक्त ह, पातिव्रत का पालन करती हूँ, आपसे अलग हाने की कल्पना से भी मुझ दुःख हाता हे तथा आपके सुख-दुःखा म समान रूप से सहभागिनी हू। मुझे सुख मिले या दुःख म दोना अवस्थाओं म समभाव से ही रहूँगी। अत आप मुझे अपने साथ अवश्य ही ल चल।'[2]

पातिव्रत धर्म के प्रति सीता की अविचलित आस्था की केवल हनुमान जस सहायक ही नही शूर्पणखा तक प्रशसा करती थी। हनुमान ने सीता के विषय में पहल थाडा बहुत सुना अवश्य था, किन्तु उनको प्रत्यक्ष देखने का सवस पहला अवसर अशोक वाटिका मे ही मिला। एक ओर उनको सीता का कष्टमय जीवन दखकर गहरा दुःख हुआ आर दूसरी आर, उनके शील स्वभाव को देखकर वे चकित हाकर रह गय थे। उनका दखकर ही वे समझ गये कि सीता पातिव्रत धर्म मे इतनी दृढ ह कि कवल पतिप्रम के कारण समस्त सुखोपभोगा का परित्याग कर आपत्तिया की कुछ भी परवाह न करते हुए राम के साथ निर्जन वन म चली आयी थी। फल मूला स ही सन्तुष्ट रहकर निरन्तर पति की सेवा मे लगी रही और वन मे उसी प्रकार सुख का अनुभव किया जसे राजमहला मे रहती हो।'[3] शूर्पणखा ने अपमानित हाते हुए भी रावण का सीता का परिचय दते समय कहा था कि राम की पत्नी की बडी बडी आँख ओर मुख पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर है। वह सदा अपने पति का प्रिय तथा हित करन म ही लगी रहती ह।'[4]

पातिव्रत धर्म को सीता मात्र एक बाह्य आचार ही नहीं मानती थीं अपितु उनका यह भी दृढ विश्वास था कि नारी के लिए इससे बढकर अदम्य शक्ति का स्रोत कोई दूसरा नहीं। विश्वास के आधार पर उन्हाने रावण से कहा था कि जिस प्रकार द्विजाति के मन्त्रो द्वारा पवित्र सुक्, सुवा आदि स सुशोभित यज्ञवदी पर चाण्डाल अपना पर भी नहीं रख सकता उसी प्रकार म नित्य धर्मपरायण हाकर

1 वा रा 2 27 12 2 वा रा 2 29 19-20 3 वा रा 5 16 19 20 4 वा रा 3 34 15

लिए अग्निप्रवेश के समय भी उन्होने देवताओ और ब्राह्मणो को नमस्कार किया था।[1] हनुमान ने यद्यपि सीता को देवपूजा करते हुए कभी देखा न था तथापि उनका विश्वास था कि सीता सन्ध्या-उपासना का पालन अवश्य करती होगी।[2] हनुमान की पूछ मे आग लगाकर जब उनको लका मे घुमाया गया तो उनकी कल्याण कामना से सीता ने अग्नि की विशेष प्रार्थना की थी।[3] वन के लिए प्रस्थान करते समय जब राम सीता और लक्ष्मण ने नाव मे बैठकर गगा को पार किया था तब सीता गगा की हाथ जोडकर प्रार्थना करती रही थीं। अपनी प्रार्थना मे उन्होने गगा से राम के सकुशल अयोध्या लौट आने की कामना की थी और लौटने पर तट पर अवस्थित तीर्थो तथा देवताओ की पूजा करने का व्रत लिया था।[4] इसी प्रकार यमुना को पार करते समय उनका मन यमुना और श्याम वट की प्रार्थना करने मे लग गया था।[5] रावण द्वारा अपहरण किये जाने पर उन्होने गोदावरी और उसके तट पर खडे हुए सभी वृक्षो को प्रणाम किया था। वस्तुत वे इतनी निष्कपट सरल और पवित्र हृदया थी कि किसी को भी देवोपम समादरणीय मानकर उसके सामने हाथ जोड देती थी किन्तु सबसे बडी विशेषता यही थी कि उन्होने कभी अपने मगल की कामना से बडी से बडी शक्ति के सामने सिर नही झुकाया और पति के कल्याण के लिए नदी नाले पहाड वृक्ष सबको देवता मानकर हाथ जोड लिये। अशोक वाटिका मे रावण और अनेक राक्षसियो द्वारा डराये धमकाये जाने पर भी वे राम का स्मरण करती हुई निरन्तर उपवास करती रही थीं।[7]

सीता धर्म के रहस्यो को भली भाँति जानती थी और धर्म नियमो का अनुसरण भी करती थी।[8] कौसल्या ने जब उनको धर्म-आचरण का उपदेश दिया था तो उन्होने बडी दृढता से उनको उत्तर दिया था कि आपको मुझे दूसरी असती स्त्रियो के समान नही मानना चाहिए। जिस प्रकार चन्द्रमा से उसकी प्रभा अलग नहीं हो सकती उसी प्रकार मै भी कभी धर्म से विचलित नही हो सकती।[9] रावण के बन्धन मे रहकर उनको कल्पनातीत कष्टो को सहन करना पडा और प्राणत्याग की इच्छा का भी उनके मन मे उदय हुआ किन्तु इस पर भी धर्म नियमो के परित्याग के विषय मे वे सोच भी नहीं सकी। धर्मपालन के सत्परिणामो के प्रति उनका विश्वास अटल था। अशोक वाटिका मे जब उनको राक्षसियो द्वारा मार-काटकर खा जाने की धमकी दी गयी वहाँ की राक्षसी यातनाएँ उनके लिए असह्य हो गया और अपने धर्मपालन को जब उन्होने निष्फल होते हुए देखा तब भी उनके मन मे प्राण-त्याग की इच्छा ही उत्पन्न हुई थी किन्तु धर्म के प्रति न[illegible] [illegible]ी भावना उत्पन्न हुई

न इस प्रकार का विचार ही उनके मन मे उत्पन्न हुआ। सीता के समान धर्मपालन की परीक्षा रामकथा के ही नहीं विश्व वाड्मय के किसी भी पात्र को नहीं देनी पड़ी और वे प्रत्येक परीक्षा म और भी अधिक निखरती ही चली गयीं।[1] अपने जीवन म उनको जितने अधिक कष्ट सहन पड उनके विषय म विचार करते हुए हृदय काँप जाता है फिर भी उन्होने धर्म के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। इनके सामने रावण द्वारा मस्तक होम दिये जाने अथवा किसी के द्वारा हजारो वर्ष तक कठोर तपस्या करने की कहानियाँ निहायत ही बचकानी सी लगने लगती है।

सद्धान्तिक रूप स सीता प्रिय-अप्रिय सुख दुःख सयोग वियोग हर्ष विषाद के द्वन्द्व से परे की स्थिति को आदर्श मानती थी। राक्षसियो द्वारा सभी प्रकार के कष्ट दिये जाने पर व अपने जीवन से पूर्णतया निराश हो गयी थीं किन्तु राम को भूल नहीं सकीं। प्राण त्याग के विषय म सोचते हुए उन्होने कहा था कि सत्यस्वरूप परमात्मा को ही अपनी आत्मा माननेवाले और अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले महात्मा महर्षिगण ही धन्य है क्योकि उनके कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं होते। जिन्हे प्रिय के वियोग से दुःख नहीं होता और अप्रिय का सयोग प्राप्त होने पर कष्ट का अनुभव नहीं होता उन द्वन्द्वजयी महापुरुषो को मेरा नमस्कार है।[2] वेदविद्या ही सीता के अनुसार, आत्मज्ञानी ब्राह्मण की सम्पत्ति है।[3]

उपर्युक्त दार्शनिक मान्यताओ को सद्धान्तिक रूप से स्वीकार करते हुए भी सीता ने दार्शनिक के शुष्क जीवन को अपनाने के स्थान पर धर्म व्यवस्था के अनुसार आचरण और व्यवहार को ही स्वीकार किया था। राम के प्रति अनन्य आस्था और पातिव्रत धर्म स अलग उन्होने न किसी सिद्धान्त की परवाह की और न किसी कर्मकाण्ड का ही विधान अपनाया। यज्ञ विधान और ब्राह्मणो के प्रति उनके मन म आस्था अवश्य थी किन्तु व्यवहार म इन सबसे भी उन्हे कोई मतलब नही रहा। बचपन म उन्होने ब्राह्मणो से सुना था कि उनको वनवास का जीवन बिताना पड़ेगा। ब्राह्मणो की बात पर उनको इतना अधिक विश्वास था कि उसी समय स वे वनवास के लिए उत्साहित रहने लगी थीं। इसके साथ ही व यह भी चाहती थीं कि ब्राह्मणो की बात झूठी सिद्ध न हो।[4]

कर्म परिणाम के सिद्धान्त को पूरी निष्ठा के साथ स्वीकार करते हुए सीता ने सदाचार पर सबसे अधिक बल दिया है। प्रत्येक दशा म उनकी दृष्टि मन-वचन-कर्म स केवल अपने कर्तव्य पर ही केन्द्रित रही और बडी स बडी प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उनके मन म प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न नहीं कर सकीं। उनको जो भी कष्ट सहने पडे उन सबको उन्होने पूर्व जन्मकृत कर्मो का परिणाम ही माना और कैकेयी मन्थरा दशरथ भरत रावण अथवा उन राक्षसियो को भी जो अशोक वाटिका म

---

1 वा रा 5 28 12 13 2 वा रा 5 26 47-48 3 वा रा 5 21 17 4 वा रा 2 29.8 13

उनको खा जाने के लिए मुँह बाय खडी रहा करती थीं दिन रात डराती धमकाती हुई गालिया की बौछार करती रहती थी उन्होंने सर्वथा निर्दोष ओर क्षम्य माना। राक्षसिया की धमकी को सुनकर वे आँसू बहाती हुई केवल यही कहती रहीं कि मैने पूर्व जन्म म बहुत थोडे पुण्य किये थे इसलिए इस दीन दशा म पडकर मै अनाथ की भाँति मारी जाऊगी। पता नही मेने पूर्व जन्म म कौन से महान् पाप किये थे जिनके फलस्वरूप यह अत्यन्त कठोर घोर ओर महान् दु ख मुझ प्राप्त हुआ हे।[1] इससे भी आगे सीता के आदर्श का निखरा हुआ प्रतिविम्ब उनके उन विचारो म झलकता ह जो उहाने लका विजय के पश्चात् अशोक वाटिका मे हनुमान के प्रश्न क उत्तर म व्यक्त किय थ। राम की विजय का समाचार दते समय राक्षसिया के प्रति अपना क्रोध प्रकट करते हुए हनुमान ने उन सबको मार डालने के लिए सीता की अनुमति चाही थी। वे सीता के प्रति राक्षसिया के दुर्व्यवहार को देख चुके थे। सीता उस दुर्व्यवहार को यद्यपि भोगती रही और रोती रही किन्तु हनुमान के प्रस्ताव को उन्हाने सदाचार के प्रतिकूल मानकर अस्वीकार कर दिया था। उहाने कहा था

कपिश्रेष्ठ य बेचारी राजा के आश्रय में रहन के कारण पराधीन थी। दूसरो की आज्ञा स ही सब कुछ करती थीं। अत स्वामी की आज्ञा का पालन करनेवाली इन दासियो पर कौन क्रोध करेगा? मरा भाग्य ही अच्छा नही था तथा मेरे पूर्व जन्म के दुष्कर्म अपना फल देने लगे थे इसी स मुझ यह कष्ट भोगना पडा हे। सभी प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मो का फल ही भोगते ह अत तुम इन्हे मारने की बात न कहो। मर लिए दव का ही ऐसा विधान था। मुझे अपन पूर्व कर्मजनित कर्मा के योग से यह सारा दु ख निश्चित ही भोगना था। इसलिए रावण की दासियो का यदि कुछ अपराध भी हो तो म उसे क्षमा करती हूँ, क्योकि इनके प्रति दया क उद्रेक से म दुर्बल हो रही हूँ। उस राक्षस की आज्ञा से ही ये मुझे धमकाया करती थीं। जबसे वह मारा गया हे तब स ये बेचारी मुझसे कुछ नही कहती। इन्होने डराना धमकाना छोड दिया ह।[2]

इस सन्दर्भ म सीता ने रीछ ओर व्याध से सम्बधित किसी पूर्व प्रचलित कथा के निम्नलिखित श्लोक को प्रमाण रूप मे उद्धृत किया था–

न पर पापमादत्ते परेषा पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषण ॥ –वा रा 6 113 44

श्रेष्ठ पुरुष दूसर की बुराइ करनवाले पापिया के पापकर्म को नहीं अपनाते ह–बदल म उनके साथ स्वय भी पापपूर्ण बर्ताव नही करना चाहते। अत अपनी

1 वा रा 5 25 14 18 2 वा रा 6 113 38-42

प्रतिना आर सदाचार की रक्षा ही करना चाहिए क्याकि साधु पुरुप अपन उत्तम चरित्र से ही विभूपित हान ह। सदाचार ही उनका आभूपण ह।

उपर्युक्त सिद्धान्त वाक्य क साथ ही सीता ने अपनी मान्यताआ आर आचार सिद्धान्ता क विपय म कहा था—

श्रेष्ठ पुरुप का चाहिए कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा व वध के योग्य अपराध करनेवाले ही क्या न हा उन सब पर दया करे। क्याकि ऐसा काई भी प्राणी नहीं हे जिससे कभी अपराध होता ही न हो। जो लोगा की हिसा म ही रमते और सदा पाप का ही आचरण करते ह उन क्रूर स्वभाववाले पापिया का भी कभी अमगल नही करना चाहिए।[1]

उपर्युक्त पंक्तिया म सीता का पूरा आचार-दशन प्रतिविम्बित ह। रामायण का शायद ही कोई ऐसा पात्र हा जिसस उनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप स कष्ट न पहुँचा हो। राम न उनको रावण के वन्धन स मुक्त कराने क लिए युद्ध अवश्य किया किन्तु उन्हाने सीता के सुख के लिए कभी कुछ किया ही नहीं। सीता के पूर जीवन पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह भी कहा जा सकता है कि उनको सबसे अधिक कष्ट राम की आर स ही प्राप्त हुआ था। रावण वध के पश्चात् सीता को यह आशा रही होगी कि राम उनको देखते ही पुलकित होकर हृदय से लगा लगे। किन्तु जब वह राम के सामन पहुँचीं तो राम न साफ कह दिया कि तुम्हे यह मालूम हाना चाहिए कि मन जो यह युद्ध का परिश्रम उठाया ह तथा मित्रा क पराक्रम से इसम जा विजय पायी ह वह सब तुमका पाने के लिए नहीं किया गया। अपवाद का निराकरण करने ओर सुविख्यात वश पर लगे हुए कलक का परिमार्जन करने के लिए ही यह सब मन किया हे।[2] इसके साथ ही राम ने जब उनसे कोई मतलब न हाने आर भरत लक्ष्मण विभीषण सुग्रीव के सरक्षण मे अथवा दसा दिशाओ म कहीं भी चली जाने के लिए कहा तब सीता के हृदय का कितना जबरदस्त आघात लगा होगा इसकी कल्पना भी नहा की जा सकती। इस प्रकार की मुसीबते सहने के लिए उन्हे बार-बार मजबूर किया जाता रहा। व इन सब कष्टो को सहती रही किन्तु कभी किसी को दोपी न बताकर अपने भाग्य को कासती हुई उसे पूर्व कर्मो का परिणाम ही मानती रहीं। अशाक वाटिका मे राम के शार्य की सभी प्रकार स प्रशसा करते हुए उन्हाने हनुमान से कहा था कि निस्सन्देह मरा ही कोई पाप उदित हुआ ह जिससे दानो पराक्रमी वीर—राम-लक्ष्मण मेरा उद्धार करन म समर्थ होते हुए भी मुझ पर कृपा नहीं कर रहे ह।[3] रावण ने जब राम का माया निर्मित कटा हुआ मस्तक सीता क सामने डाल दिया था तब भी सीता ने इन सब कष्टा के लिए स्वय अपने को ही दोपी माना था आर रोते हुए कहा था कि—"दशरथ नन्दन श्रीराम मुप जैसी

---

1 वा रा 6 113 45-46 2 वा रा 6 115 15 16 3 वा रा 5 38 46

कुलकलंकिनी नारी को मोहवश ब्याह लाये। पत्नी ही पति की मृत्यु का कारण बन गयी। जान पडता है मैंने निश्चय ही अपने पूर्व जन्म में दान धर्म में बाधा उपस्थित की होगी।[1]

सीता काम को अधर्म की दिशा में प्रेरित करनेवाला सबसे बड़ा विकार मानती थीं। उनके अनुसार केवल परस्त्री गमन ही नहीं असत्य भाषण और प्राणि हिंसा जैसे दोष भी काम के कारण ही उत्पन्न और विकसित होते हैं। सभी के प्रति दया और अहिंसा की भावना उनके मन में इतनी सुदृढ थी कि उन्होंने उन राक्षसियों को भी क्षमा करने में प्रसन्नता का अनुभव किया था जिन्होंने उनको प्राणान्तक कष्ट दिया था। प्राणि हिंसा की वे विरोधी थीं और निरपराध प्राणियों की हिंसा को बड़ा भारी अधर्म मानती थीं। राम की आचार निष्ठा के प्रति पूर्णतया आश्वस्त रहते हुए भी उनके धनुष बाण और खड्ग को देखकर उनके मन में सन्देह बना ही रहता था कि वे अवसर पड़ने पर उन शस्त्रों का प्रयोग निरपराध निरीह प्राणियों पर भी कर सकते हैं। राम ने धनुष बाण के बल पर ही अपनी और सीता की विराध-जैसे राक्षस से रक्षा की थी फिर भी राम के वानप्रस्थ जीवन और तपस्वी वेष को देखकर उनके द्वारा धनुष धारण करना सीता को पसन्द नहीं था। उनका विचार यही था कि वनवास की अवधि में राम के द्वारा क्षात्र धर्म का अनुसरण अधर्म है। अत्रि शरभंग और सुतीक्ष्ण के आश्रम में राम ने वानप्रस्थ मुनियों की रक्षा करने और राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा की थी। इससे सीता के मन का सन्देह और भी दृढ हो गया था कि राम निरपराध वनचारियों की भी हत्या कर सकते हैं। उस समय दण्डकारण्य वनवासी राक्षसों का ही प्रदेश था इसलिए सीता दण्डकारण्य की ओर चलने के पक्ष में भी नहीं थीं। इस पर भी राम सुतीक्ष्ण के आश्रम से जब दण्डकारण्य की ओर चलने लगे तब सीता ने उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण करते हुए उनका ध्यान विशेष रूप से अहिंसा के पालन की ओर आकृष्ट किया था। उन्होंने कहा था

अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर मुझे ऐसा लगता है कि आप अधर्म की ओर उन्मुख हो रहे हैं। समस्त कामजनित व्यसनों से बचने में आप समर्थ हैं तब इस अधर्म से भी बच सकते हैं। इस जगत् में काम से उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन होते हैं। मिथ्या भाषण बहुत बडा व्यसन है किन्तु उससे भी बड़े दो व्यसन और हैं। परस्त्री गमन और बिना वैर के क्रूरतापूर्ण बर्ताव। इनमें से मिथ्या भाषण का व्यसन न आप में कभी रहा है और न आगे होगा ही। इसी प्रकार आपके मन में परस्त्री विषयक अभिलाषा न कभी उदित हुई है और न उसकी कल्पना ही की जा सकती है। परन्तु दूसरों के प्राणों की हिंसारूप जो तीसरा सबसे बडा दोष है जिसे लोग बिना वैर विरोध के ही किया करते हैं वही आपके सामने उपस्थित हुआ

1 वा रा 6 32 30

है। आपने दण्डकारण्य निवासी ऋषियो की रक्षा के लिए राक्षसो के वध की प्रतिज्ञा की है और हाथ मे धनुष बाण लेकर भाई के साथ वन मे आये है। सम्भव है यहाँ के वनचारियो को देखकर आप उन पर बाणो का प्रयोग कर बैठे। जैसे आग के समीप रखे हुए ईधन उसके तेज और बल को और उद्दीप्त कर देते हैं उसी प्रकार यदि क्षत्रिय के हाथ मे धनुष हो तो वह उनके बल को उद्दीप्त कर देता है। शस्त्र का सयोग शस्त्रधारियो के मन मे विकार को ही उत्पन्न करता है। आपको धनुष लेकर किसी तरह बिना वैर के ही दण्डक निवासियो के वध का विचार नहीं करना चाहिए। बिना अपराध के ही किसी को मारना लोग अच्छा नहीं मानेगे। मन और इन्द्रिय को वश मे रखनेवाले क्षत्रियो के लिए वन मे धनुष धारण करने का इतना ही प्रयोजन है कि सकट मे पड़े हुए प्राणियो की रक्षा करे। कहाँ शस्त्र धारण और कहाँ वनवास। कहाँ क्षत्रिय का हिसामय कठोर कर्म और कहाँ तप—ये परस्पर विरुद्ध ही है। हम लोगो को देश धर्म अर्थात् वनवास धर्म का ही आदर करना चाहिए। केवल शस्त्र का सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि कृपण पुरुषो के समान कलुषित हो जाती है अत आप अयोध्या लौटने के बाद ही क्षात्रधर्म का निर्वाह कीजिएगा। राज्य त्यागकर वन मे आ जाने पर यदि आप मुनिवृत्ति से ही रहे तो इससे मेरी सास और ससुर को अक्षय प्रसन्नता होगी। (सीता को पता था कि उनके ससुर का देहावसान हो चुका है) धर्म से अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से सुख का उदय होता है और धर्म से ही मनुष्य सब-कुछ पा लेता है। इस ससार मे धर्म ही सार है। चतुर मनुष्य अनेक नियमो के द्वारा अपने शरीर को क्षीण करके यत्नपूर्वक धर्म का सम्पादन करते है। सुख के साधनभूत उपायो से ही सुख की प्राप्ति नहीं होती। प्रतिदिन शुद्धचित्त होकर तपोवन मे धर्म का ही अनुष्ठान कीजिए। त्रैलोक्य मे जो कुछ भी है उसे आप यथार्थ रूप से जानते ही है।[1]

इसी प्रसग मे एक मुनि की कथा को उद्धृत कर सीता ने अपने उपर्युक्त विचारो की सत्यता प्रमाणित की थी। सीता की आस्थाएं सत्य और अहिंसा की जिस ऊंचाई को छूती है वह उन-जैसी असाधारण देवी के लिए ही सम्भव है। धर्म और आचार-बल के सामने वे शस्त्र-बल को नगण्य मानती है और किसी प्रकार का मिथ्याचरण उन्हे प्रिय नहीं रहा।

मन और इच्छाओ पर विजय पाना सीता के आचार का एक विशिष्ट अग रहा है। इच्छाओ से प्रेरित होकर किसी काम का करना वे उचित नही मानती और उसे नारीधर्म के प्रतिकूल मानती है। मारीच के सुन्दर रूप को देखकर उनके मन मे उसको जीवित पकड लाने अथवा उसके चमडे को प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हुई थी। उन्होने राम को इसके लिए प्रेरित भी किया था किन्तु यह भी कहा था कि

1 वा रा ३ ९ ३

इच्छा के वशीभूत होकर इस प्रकार के काम करना यद्यपि नारी के लिए उचित नहीं है तथापि इसके सुन्दर शरीर ने मेरे हृदय में विस्मय उत्पन्न कर दिया है। रावण से भी उन्होंने कह दिया था कि मैं कलंक लगानेवाला कोई भी काम करने के लिए तैयार नहीं।[2]

पतिव्रता की पवित्रता में विश्वास[3] और यूप से बँधे हुए पशु के उपमान[4] से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म के प्रति वे कुछ आस्थावान अवश्य रहीं। किन्तु नारी के लिए पति सेवा के अतिरिक्त किसी आचार विधान को आवश्यक न मानने की स्थिति में उन्होंने धर्म के प्रति विशेष विचार व्यक्त नहीं किये। परलोक, पाप पुण्य और शुभाशुभ परिणामों को वह अवश्य स्वीकार करती थी। राम के साथ वन चलने का आग्रह करते हुए उन्होंने कहा था वनवास का जीवन बिताकर मैं अपने भाग्य के विधान का भाग लूँगी[5] और परलोक में भी आपके साथ मेरा संयोग बना रहेगा।[6]

काल शक्ति पर सीता को इतना अखण्ड विश्वास था कि उसको वे सर्वथा अलघ्य और अजेय मानती रहीं। राम के मायारचित कटे हुए मस्तक को देखकर उन्हें पहले तो आश्चर्य हुआ था कि राम के समान अजेय योद्धा और धर्मनिष्ठ पुरुष की मृत्यु पापाचारी रावण के द्वारा कैसे सम्भव हो सकी? वे इसी निश्चय पर पहुँचीं कि काल ही समस्त प्राणियों के जन्म मरण का हेतु है। वही प्राणिमात्र के शुभाशुभ कर्मों का फल देता है।[7] मेघनाद द्वारा राम-लक्ष्मण के मारे जाने का समाचार सुनकर भी उन्होंने कहा था कि युद्धस्थल में राम के सामने कोई भी शत्रु ठहर नहीं सकता है परन्तु काल के लिए कुछ भी अशक्य नहीं है। दुर्जय काल ही सबका अन्त कर डालता है।[8] हनुमान ने अशोक वाटिका में सीता से कहा था कि राम उनके वियोग में चिन्तित रहकर उनको प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं तब भी सीता ने उनसे कहा था कि कृतान्त रूप काल ही सब-कुछ करता है। कोई बड़े भारी ऐश्वर्य में स्थित हो अथवा भयंकर विपत्ति में पड़ा हो काल मनुष्य को इस प्रकार खींच लेता है मानो उसे रस्सी में बाँध रखा हो। दैव के विधान को रोकना प्राणियों के वश की बात नहीं है। राम लक्ष्मण के समान युद्धवीरों को विपत्ति में देखकर काल की अजेय शक्ति का ज्ञान होता है। काल को अलघ्य मानने की दशा में अकालमृत्यु पर भी उनको विश्वास नहीं था। राक्षसियों द्वारा बार-बार डराये धमकाये जाने पर उनके मन में प्राण त्याग की इच्छा उत्पन्न हो जाती थी। किन्तु वह भी सम्भव न होने पर भारी मन से उन्होंने कहा था कि पण्डितों द्वारा समर्थित यह लोक विश्वास ही सही है कि स्त्री अथवा पुरुष की अकालमृत्यु नहीं होती। इस मानव-जीवन और

---

1 वा रा 3 45 21 2 वा रा 3 56 22 5 21 4 3 वा रा 3 56 18 4 वा रा 3 66 9
5 वा रा 2 9 11 6 वा रा 2 29 17 18 8 वा रा 6 3 13 8 वा रा 6 48 19
9 वा रा 5 37 3-4

इस परवशता को भी धिक्कार है जहा अपनी इच्छानुसार प्राणों का परित्याग भी सम्भव नहीं होता।[1] सन्त जन ठीक ही कहते है कि इस लोक मे बिना समय आये किसी की मृत्यु नहीं होती। तभी तो इस प्रकार धमकायी जाने पर भी मै यहाँ जीवित बनी हुई हू।[2]

पातिव्रत धर्म की आचार मर्यादाओ से अलग नारी के विषय मे सीता के विचारो को केवल समाज व्यवस्था के सन्दर्भ मे ही देखा जा सकता है। पति के अतिरिक्त किसी अन्य के प्रति नारी के कर्तव्यो के विषय मे सीता ने कहीं कोई संकेत नहीं किया। इसके विपरीत नारी के प्रति पुरुषो के कर्तव्य के विषय मे अवश्य ही उनके कुछ विचार व्यक्त हुए है। मनु आदि स्मार्त ऋषियो के समान सीता भी नारी को रक्षणीया मानती थी। उनके अनुसार पुरुष जिस प्रकार अपनी पत्नी की रक्षा करता है उसी प्रकार उसे दूसरी नारियो की भी रक्षा करनी चाहिए और किसी भी स्थिति मे किसी स्त्री को उसके पति से अलग होने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए। पुरुष का यह भी नैतिक दायित्व है कि वह केवल अपनी पत्नी से ही सन्तुष्ट रहे। सती साध्वी नारी का भी यह कर्तव्य है कि पर पुरुष की ओर वह आख उठाकर भी न देखे। अशोक वाटिका मे रावण ने सीता को सभी प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी भार्या बन जाने के लिए फुसलाने का प्रयत्न किया था किन्तु सीता ने उसको उत्तर देते हुए कहा था कि—तुम धर्म की ओर देखो और सत्पुरुषो के आचार का ही पालन करो। जिस प्रकार तुम्हारी स्त्रियां तुमसे संरक्षण पाती है उसी प्रकार दूसरो की स्त्रियो की भी तुमको रक्षा करनी चाहिए।[3] मेरी ओर से तुम अपना मन हटा लो और आत्मीयजनो (अपनी ही पत्नियो) से प्रेम करो।[4] मै सती और परायी स्त्री हू, तुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ। तुम अपने को आदर्श बनाकर अपनी ही स्त्रियो मे अनुरक्त रहो। जो अपनी ही स्त्रियो से सन्तुष्ट नहीं रहता उस चचल इन्द्रियवाले पुरुष को परायी स्त्रियाँ पराभव को पहुचा देती है। क्या यहाँ सत्पुरुष नहीं रहते अथवा तुम उनका अनुसरण नहीं करते जिससे तुम्हारी बुद्धि ऐसी विपरीत एव सदाचारशून्य हो गयी है?[5] तात्पर्य यह कि सीता के अनुसार अपनी स्त्री से ही सन्तुष्ट रहना और परस्त्री की ओर आख उठाकर भी न देखना सत्पुरुषो की आचार-मर्यादा है।

पति से अलग अकेली और असहाय नारी का अपहरण सीता के अनुसार एक अक्षम्य दुष्कर्म और अपराध है। तत्कालीन समाज ने भी नारी मे इतना अधिक शारीरिक बल स्वीकार ही नहीं किया था कि वह स्वय अपनी रक्षा के लिए भी पापाचारी पुरुष का सामना कर सके। नारी की रक्षा का पूरा भार पुरुष पर ही माना

---

1 वा रा 5 25 12 20 2 वा रा 5 28 3 3 वा रा 5 21 7 4 वा रा 5 21 3 5 वा रा 5 21 6 6 वा रा 5 21 8-9

गया था। वदवती क रूप मे अपने पूर्व जन्म म सीता ने रावण के दुर्व्यवहार को महन करते हुए कहा था कि स्त्री अपनी शारीरिक शक्ति से किसी पापाचारी पुरुष का वध नही कर सकती।[1] उस समय वेदवती ने अग्नि मे प्रवेश करके ही अपनी पतिष्ठा की रक्षा की थी। अपहरण के समय सीता न यद्यपि रावण को सभी प्रकार से फटकारा पचासो कटु वचन कहकर उसकी भर्त्सना भी की किन्तु शारीरिक शक्ति का कोई उपयोग नही किया। पति विरहित अकेली नारी का अपहरण पुरुष की आचार मर्यादा के सर्वथा प्रतिकूल था। सीता ने रावण से कहा था कि स्वामी से रहित अकली आर असहाय अवस्था म मेरा अपहरण करने म तुझे लज्जा नहीं आती? तू वडा कायर ओर डरपाक हे। जहाँ कोई रक्षक न हो ऐसे स्थान पर परायी स्त्री के अपहरण-जेसा निन्दित कर्म करके तुझे लज्जा क्या नहीं आ रही ? ससार क सभी वीर पुरुष तर इस कर्म को घृणित क्रूरतापूण आर पापरूप ही मानग।[2] लोक द्वारा मान्य आचार मर्यादाओ का उल्लघन भी सीता की दृष्टि म अधर्म ही हे। अशोक वाटिका म राक्षसिया न सीता को रावण को पति रूप म स्वीकार करन क लिए सभी प्रकार के प्रयत्न किय किन्तु सीता ने यही उत्तर दिया था कि तुम सब मिलकर जो लोक विरुद्ध पस्ताव कर रही हो तुम्हारा यह पापपूर्ण वचन मेरे हृदय म एक क्षण क लिए भी नही ठहर पाता।[3]

सीता की निष्ठा पातिव्रत धर्म पालन पर ही केन्द्रित थी। वह किसी भी स्थिति म उससे विचलित नही हुई आर मन वाणी-कर्म से उसका अनुसरण किया। हनुमान उनके इस शील स्वभाव को देखकर आश्चर्य म पड गय थे। अपने वानर सहयागिया से उन्हाने कहा था कि सीता का उत्तम शील स्वभाव देखकर मेरा मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हे। जिस नारी का शील स्वभाव आर्या सीता के समान होगा वह अपनी तपस्या से सम्पूर्ण लोको को धारण कर सकती ह अथवा तीना लोका को जला सकती है।[4]

सीता वदिक तथा स्मार्त धर्म व्यवस्था का भली भाँति जानती थी इसमे सन्देह नहीं किन्तु उन्हाने पातिव्रत धर्म के अतिरिक्त किसी भी व्यवस्था के प्रति विशेष आस्था प्रकट नहीं की। राजधर्म की व्यवस्थाआ से भी व पूरी तरह परिचित थीं आर इसक प्रति उन्हाने अपनी आस्था व्यक्त भी की है। उनको राजधर्मो की अभिन्ना कहा गया ह।[5] राम ने जब उनको पिता द्वारा वनवास दिये जाने की सर्वप्रथम सूचना दा थी आर इसक साथ उनको अयोध्या म ही रहकर भरत की इच्छा के अनुसार व्यवहार करत हुए उनको सदैव प्रसन्न बनाय रखने का परामर्श दिया तो राम के प्रति सीता का आक्रोश भडक उठा था। उनक विचार से राम का परामर्श व्यावहारिक

---

1 वा रा 7 17 3 2 वा रा 3 ,3 3-8 3 वा रा 5 24 7 4 वा रा 5 59 2 3 5 वा रा 2 26 4

जब वन से लाटगे तब निर्भय एव सफल-मनोरथ हो विशाल नत्रावाली बहुत-सी सुन्दरिया के साथ सुखपूर्वक रमण करने मं लग जाएग।' यह सब सोचने क पश्चात् भी राम क प्रति उनकी निष्ठा म कमी नहीं आयी। उन्हाने राम से कहा था कि म ता केवल आपस ही अनुराग रखती हू आर चिरकाल तक मरा हृदय आपसे ही बधा रहेगा।[2]

राम क प्रति सबस अधिक तीखे वचन सीता को उस समय कहने पडे जब उनको अपन चरित्र की शुद्धता प्रमाणित करने के लिए अग्नि म प्रवेश कर परीक्षा दन क लिए विवश होना पड़ा था। विभीषण, सुग्रीव हनुमान अगद तथा सभी यूथपतिया की भरी सभा म भी राम न सीता के चरित्र पर सन्दह व्यक्त करने म थाडा भी सकोच नहीं किया था। उन्हाने यहा तक कह दिया था कि तुम-जसी दिव्य रूप सान्दय से सुशाभित मनारम नारी को अपन घर म देखकर भी रावण चिरकाल तक तुमस दूर रहन का कष्ट सहन नही कर सका हागा।[3] राम की इस प्रकार की कठोर आर अपमानजनक बाता को सीता किसी भी प्रकार सहन नही कर सकीं आर वे पूर आक्रोश के साथ उन पर टूट पड़ी थी। उन्हाने कहा था कि—आप एसी कठोर अनुचित कणकटु आर रूखी बात मुझसे किस प्रकार कह रह ह' कोई नीच श्रेणी का पुरुष नीच कोटि की स्त्री से जिस प्रकार की बाते करता है ठीक उसी प्रकार की बात आप भी मुझस कह रह ह' आप मुझ जसी समझते हे वैसी नही हूँ। मे अपने सदाचार की शपथ खाकर कहती हू कि म सन्देह के योग्य नही हूँ। नीच श्रेणी की स्त्रिया का आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री-जाति पर ही सन्देह करते ह तो यह उचित नहीं है। यदि आपने मुझे अच्छी तरह परख लिया हो तो यह सन्देह मन स निकाल दीजिए। लका म मुझ देखने के लिए जब आपने हनुमान को भेजा था उसी समय मुझे क्या नही त्याग दिया? आपने निम्न कोटि के मनुष्य की भाति केवल रोष का ही अनुसरण करक मर शील स्वभाव का विचार छोडकर निम्न कोटि की स्त्रिया के स्वभाव को ध्यान मे रखकर ही इस प्रकार की ओछी बात कही हे।[4] इस प्रकार राम को खरा उत्तर देकर ही वे अग्नि म प्रवेश कर गयी थी।

यह एक वैचित्र्य ही ह कि सीता नारी को पति के प्रति एकनिष्ठ होकर रहने के सिद्धान्त को इस सीमा तक स्वीकार करती ह कि सास ससुर माता पिता देवर बहिन किसी के प्रति नारी के कर्तव्या का उन्होने सकत भी नही किया। परिवार के अन्य सदस्या का नारी स व शायद कोई सम्बन्ध मानतीं ही नहीं। दशरथ-कासल्या का वे भाग्य के सहारे छाडकर चली गयी थी। लक्ष्मण ने राम के लिए अपने समस्त सुखो को ओर अपने पूरे जीवन का समर्पित कर दिया था। राम के लिए पिता दशरथ को कैद कर लेन अथवा मार डालने का प्रस्ताव करने म भी उन्हाने सकोच नही

1 वा रा 5 28 14 2 वा रा 5 28 15 3 वा रा 6 115 24 4 वा रा 6 116 5 6 11 14

राजोचित व्यवहार ही करना चाहिए। उन्होने रावण से भी यही कहा था कि जिसका मन अपवित्र है जो नीति का अनुसरण नही करता ऐसे अन्यायी राजा के हाथों मे पडकर बडे बड़े समृद्धिशाली राज्य और नगर भी नष्ट हो जाते है।[1]

स्वभाव की दृष्टि से सीता को रामायण के अन्य नारी पात्रो से बहुत कुछ अंशो मे भिन्न मानना पड़ेगा। यह संकेत किया ही जा चुका है कि राम के अतिरिक्त परिवार के किसी भी अन्य सदस्य के प्रति उनके मन मे कोई विशेष श्रद्धा अथवा सम्मान की भावना नहीं थी। वनगमन के समय राम के द्वारा समझाये बुझाये जाने पर भी वे दशरथ-कौसल्या आदि को अपने भाग्य के भरोसे छोडकर राम के साथ वन चली आयी थी। इसका तात्पर्य भी यही है कि राम के प्रति समर्पित होते हुए भी वे उनकी प्रत्येक बात को चुपचाप मानने के लिए तैयार नही रहीं। यदि राम ने उनकी धर्मनिष्ठा के प्रतिकूल व्यवहार करने का कभी परामर्श दिया तो उन्होने राम को भी तीखी वाणी मे उत्तर देने मे संकोच नहीं किया। राम ने जब उनको भरत की सेवा करते हुए अयोध्या मे रहने की ही सलाह दी तब उन्होने राम से कहा कि क्या मेरे पिता मिथिलानरेश विदेह राजा जनक ने आपको जामाता के रूप में पाकर कभी यह भी समझा था कि आप केवल शरीर से ही पुरुष है कार्यकलाप से तो स्त्री ही है। मुझे छोड़कर आपके चले जाने पर संसार के लोग अज्ञानवश यदि यह कहने लगे कि सूर्य के समान दिखाई देनेवाले राम मे तेज और पराक्रम का अभाव है तो उनकी यह असत्य धारणा मेरे लिए कितने दु ख की बात होगी। जैसे कोई दूसरी कुल-कलंकिनी स्त्री पर पुरुष पर दृष्टि रखती है, मै वैसी नहीं हूँ। मै तो आपके सिवा किसी दूसरे को मन से भी नहीं देख सकती। इस पर भी मुझ सती साध्वी स्त्री को आप औरत की कमाई खानेवाले नट की भाँति दूसरो के हाथो मे क्यो सौंपना चाहते है? आप मुझे जिसके अनुकूल चलने की शिक्षा दे रहे है और जिसके लिए आपका राज्याभिषेक रोक दिया गया है उस भरत के वशवर्ती और आज्ञापालक आप ही रहिए मै नही रहूंगी।[2]

राम की पुरुष स्वभावोचित कमजोरियो पर न तो सीता ने आवरण डालने का ही प्रयास किया और न उनकी ओर से अपनी आखे ही बन्द कीं। सीता के चरित्र की सबसे बडी विशेषता यही थी कि वे किसी दूसरे के आचार व्यवहार को देखकर उसकी प्रतिक्रियास्वरूप अपने आचार का निर्धारण नही करतीं वरन् बिना किसी की परवाह किये अपनी निष्ठा के अनुरूप ही व्यवहार करती रही। राम के विषय मे यद्यपि वे यह मानती थीं कि पर स्त्री की ओर वे देखते तक नहीं तथापि अशोक वाटिका मे रहते समय उनके मन मे यह भी सन्देह उत्पन्न हुआ था कि राम नियमानुसार पिता की आज्ञा का पालन करके अपने व्रत को पूर्ण करने के पश्चात्

1 वा रा 5 21 11 2 वा रा 2 30 3 9

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

नेत्र शुक्ल 10 म 1988 को [illegible]

जब वन से लाटग तब निर्भय एव सफल मनोरथ हो विशाल नेत्रावाली बहुत-सी सुन्दरियो के साथ सुखपूर्वक रमण करने मे लग जाएग।[1] यह सब साचने के पश्चात् भी राम के प्रति उनकी निष्ठा म कमी नहीं आयी। उन्हाने राम से कहा था कि म ता कवल आपसे ही अनुराग रखती हूँ ओर चिरकाल तक मरा हृदय आपसे ही बधा रहगा।[2]

राम के प्रति सबस अधिक तीखे वचन सीता को उस समय कहन पडे जब उनको अपन चरित्र की शुद्धता प्रमाणित करने के लिए अग्नि म प्रवेश कर परीक्षा दने के लिए विवश होना पडा था। विभीषण, सुग्रीव हनुमान, अगद तथा सभी यूथपतिया की भरी सभा म भी राम ने सीता के चरित्र पर सन्देह व्यक्त करने मे थाडा भी सकोच नहा किया था। उन्हाने यहा तक कह दिया था कि तुम-जैसी दिव्य रूप सान्दय से सुशाभित मनोरम नारी को अपन घर मे देखकर भी रावण चिरकाल तक तुमसे दूर रहन का कष्ट सहन नही कर सका हागा।[3] राम की इस प्रकार की कठोर आर अपमानजनक बाता को सीता किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकी ओर वे पूरे आक्रोश क साथ उन पर टूट पडी थी। उन्हाने कहा था कि—आप एसी कठोर अनुचित कर्णकटु ओर रूखी बात मुझसे किस प्रकार कह रहे ह। कोई नीच श्रेणी का पुरुष नीच काटि की स्त्री से जिस प्रकार की बात करता ह ठीक उसी प्रकार की बात आप भी मुझसे कह रहे हे। आप मुझ जसी समझते ह वेसी नही हूँ। मे अपने सदाचार की शपथ खाकर कहती हूँ कि म सन्देह के याग्य नही हू। नीच श्रेणी की स्त्रिया का आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री जाति पर ही सन्देह करते हे ता यह उचित नही हे। यदि आपने मुझे अच्छी तरह परख लिया हा तो यह सन्देह मन से निकाल दीजिए। लका म मुझे देखने के लिए जब आपने हनुमान को भजा था उसी समय मुझे क्या नहीं त्याग दिया? आपने निम्न कोटि के मनुष्य की भाति कवल रोष का ही अनुसरण करके मेरे शील स्वभाव का विचार छोडकर निम्न कोटि की स्त्रिया क स्वभाव को ध्यान म रखकर ही इस प्रकार की ओछी बात कही हे।[4] इस प्रकार राम को खरा उत्तर दकर ही वे अग्नि म प्रवेश कर गयी थीं।

यह एक वचित्र्य ही हे कि सीता नारी को पति के प्रति एकनिष्ठ हाकर रहने के सिद्धान्त का इस सीमा तक स्वीकार करती ह कि सास ससुर, माता पिता दवर बहिन किसी के प्रति नारी के कर्तव्या का उन्हाने सकत भी नही किया। परिवार के अन्य सदस्या का नारी स वे शायद कोई सम्बन्ध मानती ही नही। दशरथ-कोसल्या को वे भाग्य के सहारे छोडकर चली गयी थीं। लक्ष्मण ने राम के लिए अपने समस्त सुखा को आर अपने पूरे जीवन को समर्पित कर दिया था। राम के लिए पिता दशरथ का कैद कर लेने अथवा मार डालने का प्रस्ताव करने म भी उन्हाने सकोच नही

1 वा रा 5 28 14 2 वा रा 5 28 15 3 वा रा 6 115 24 4 वा रा 6 116 5 6 11 14

किया और अन्तत राम की बात को मानकर व सब-कुछ त्यागकर अपनी नव विवाहिता पत्नी उर्मिला से बिना मिले हुए ही राम के साथ वन को चले गये थे। वनवास की पूरी अवधि में लक्ष्मण ने राम का जिस श्रद्धा के साथ सहयोग दिया वह अपने आप में एक अनुपम उदाहरण है। सीता यह सब देखती रहीं किन्तु फिर भी लक्ष्मण के प्रति उनके मन में थोड़ी भी सद्भावना उत्पन्न नहीं हुई। वे शायद लक्ष्मण के समर्पण को और उनके आचार सिद्धान्तों को समझ ही नहीं सकी थीं। मारीच के कपटपूर्ण व्यवहार और राम की अजेयता के विषय में लक्ष्मण ने सीता को सभी प्रकार से समझाने का प्रयास किया था। सीता को अकेली छोड़कर न जाने के पीछे लक्ष्मण के मन में कोई दुर्भावना भी नहीं थी किन्तु फिर भी लक्ष्मण के प्रति सन्देह व्यक्त करते हुए उन्होंने अनार्य निर्दयी क्रूरकर्मा कुलांगार जैसे कटु शब्द कहते हुए कहा था कि मैं तुम्हें खूब समझती हूँ। श्रीराम किसी भारी विपत्ति में पड़ जाएँ यही तुझे प्रिय है। इसीलिए तू राम पर संकट आया हुआ देखकर भी ऐसी बात बना रहा है। तेरे जैसे क्रूर एवं छिपे हुए शत्रुओं के मन में इस तरह का पापपूर्ण विचार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तू बड़ा दुष्ट है। श्रीराम को अकेले वन में आते देख मुझे प्राप्त करने के लिए ही अपने भाव को छिपा कर तू भी उनके पीछे पीछे चला आया है।[1] सीता के इस प्रकार के विचार सुनकर ही लक्ष्मण को कहना पड़ा था कि सीता एक सामान्य नारी से अधिक नहीं।

लक्ष्मण के समान ही भरत के मन में भी राम के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं रही। उनके मन में राज्य के प्रति मोह भी नहीं था और वे राम को ही राज्य का अधिकारी मानते रहे। चित्रकूट पहुँच कर भी उन्होंने राम को लौटा लाने का भरसक प्रयत्न किया और अन्तत राम की पादुकाओं को ही सिंहासन पर रखकर वे राज्य का संचालन करते रहे। इस पर भी सीता उनको सदैव अपना और राम का शत्रु ही मानती रहीं। उनकी यह धारणा कभी बदल ही नहीं सकी कि भरत के कारण ही राम को राज्य से वंचित होना पड़ा था। उन्होंने भरत के संरक्षण में रहने से साफ शब्दों में इनकार कर दिया था।[2] उन्होंने राम से कहा था कि मुझे वनवास के कष्टों से कोई भय नहीं है। यदि इस पर भी आप मुझे अपने साथ वन में नहीं ले जाएगे तो मैं आज ही विषपान कर प्राण त्याग कर दूँगी किन्तु किसी भी अवस्था में शत्रुओं के अधीन होकर नहीं रहूँगी।[3] उनके मन में यह भी सन्देह बना रहा था कि भरत ने ही कपट भावना से राम को हानि पहुँचाने के लिए लक्ष्मण को उनके साथ वन भेज दिया है।[4] वे यह भी चाहती थी कि भरत को अपनी अक्षौहिणी सेना के द्वारा राम की सहायता कर उनको रावण के बन्धन से मुक्त कराने का प्रयत्न

---

1 वा रा 3 45 22 24 2 वा रा 2 30 9 3 वा रा 2 30 19 4 वा रा 3 45 24

करना चाहिए किन्तु इस विषय में वे केवल हनुमान से प्रश्न करके ही शान्त हो गयी थी।[1]

कैकेयी के प्रति भी सीता के मन में कटुता की जबरदस्त भावना बनी रही थी। वे यह मानती थीं कि कैकेयी की दुरभिसंधि के कारण ही राम को राज्य से वंचित होकर वनवास का जीवन बिताना पड़ा है। दण्डकारण्य के आश्रम में रावण को अपना परिचय देते समय उन्होंने उसको बताया था कि कैकेयी के कारण ही हम तीनों को राज्य से वंचित होकर इस गहन वन में चले आना पड़ा है।[2] जब रावण सीता का अपहरण कर लंका की ओर चला जा रहा था तब भी मार्ग में रोते बिलखते हुए सीता ने कहा था कि इस समय कैकेयी अपने बन्धु बान्धवों सहित सफल मनोरथ हो गयी क्योंकि धर्मप्राण यशस्वी राम की पत्नी होकर भी मैं एक राक्षस द्वारा हरी जा रही हूँ।[3] अशोक वाटिका में जब उन्होंने राम का मायारचित कटा हुआ मस्तक देखा था तब भी कैकेयी को कोसते हुए उन्होंने कहा था कि—कैकेयी अब तुम अपने को सफल मनोरथ समझो। रघुकुल को आनन्दित करनेवाले मेरे पतिदेव मारे गये। तुम स्वभाव से ही कलहकारिणी हो तुमने समस्त रघुकुल का संहार कर डाला। राम ने कैकेयी का कौन सा अपराध किया था जिससे उसने उन्हें चीर वस्त्र देकर वन में भेज दिया।[4] स्पष्ट है कि सीता के मन में कैकेयी के प्रति यह भावना तक रही थी कि वह राम का निधन चाहती थी।

सीता ने वनगमन से पूर्व अथवा वनवास की अवधि में सुमित्रा उर्मिला माण्डवी श्रुतिकीर्ति, शत्रुघ्न किसी का स्मरण भी नहीं किया। कैकेयी को गालियाँ देते समय कौसल्या के दुःखी जीवन का स्मरण उनको अवश्य हुआ किन्तु अन्य किसी को किसी भी क्षण उनको याद भी नहीं आयी। लक्ष्मण के सामने रहते हुए भी बेचारी उर्मिला के प्रति भी उन्होंने कोई सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। वनगमन के समय राम और सीता ने अपनी समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान कर दी थी। सीता के मन में वसिष्ठ-पुत्र सुयज्ञ की पत्नी के प्रति ही विशेष अनुराग दिखाई देता है। उन्होंने अपने सभी आभूषण वस्त्र, पलंग तथा घर-गृहस्थी की सभी सामग्री सुयज्ञ की पत्नी को ही दे दी थी। यह भी एक आश्चर्य का विषय है कि अपनी बहिन उर्मिला की बजाय सुयज्ञ की पत्नी के प्रति उनके मन में अनुराग की यह भावना किस कारण रही थी। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि राम के अतिरिक्त सीता के जीवन में किसी व्यक्ति का कोई स्थान नहीं था।

सीता का अपना पूरा जीवन कष्टों की जलती हुई भट्ठी में ही व्यतीत करना पड़ा था। जन्म के पश्चात् जब वह कदाचित् एक अबोध बालिका ही रही होगी, रावण ने उनको जल में फेंक दिया था। जनक द्वारा भूमि जोतने के समय ही उनको

1 वा रा 5 36 24 2 वा रा 3 47 21 22 3 वा रा 3 49 29 4 वा रा 6 32 4 5

उद्धार हो सका था। मिथिला में अपनी बाल्यावस्था में उनको कितना सुख मिला, इसका कोई उल्लेख मिलता ही नहीं। उनके विवाह के लिए जनक ने जाने-अनजाने रूप से जो शर्त निश्चित की थी वह भी ऐसी थी कि उनको जन्म भर अविवाहित भी रहना पड़ सकता था अथवा किसी भी अयोग्य और अनुपयुक्त व्यक्ति के साथ विवाह बन्धन में बँध सकती थी। उनको जब 'वीर्य शुल्का' घोषित किया गया तो अपनी इच्छा के अनुसार पति के चयन करने की उनकी स्वतन्त्रता ही समाप्त हो गयी थी। यह सब संयोग ही था कि राम-जैसे सुयोग्य महापुरुष के साथ उनका विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उनको वनवास का जीवन बिताने के लिए विवश होना पड़ा। वह जब भी दुःखों की आग से बाहर निकलती तो दूसरे ही क्षण उनको पहले से भी भयंकर आग में झोंक दिया जाता रहा। यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि उनको ये सभी कष्ट स्वयं राम के कारण ही भोगने पड़े। अशोक वाटिका में राक्षसियों उन्हें टुकड़े टुकड़े करके खाने का भय दिखाती रहीं। अपहरण का दुःख भी उनको राम के कारण ही भोगना पड़ा। लंका विजय के पश्चात् उन्होंने निश्चय ही सुखी जीवन की आशा की होगी। किन्तु राम ने भरी सभा में उनके चरित्र के प्रति सन्देह व्यक्त कर दिया और उस बेचारी को जलती हुई आग में प्रवेश कर अपनी शुद्धता प्रमाणित करनी पड़ी। अयोध्या लौटकर राजमहिषी के रूप में वे सुखी जीवन का सपना सजो ही रही थीं गर्भ धारण कर सन्तान सुख का सपना भी देख रही थीं कि राम ने विनोदी व्यक्तियों की सभा में एक सामान्य व्यक्ति 'भद्रा' के मुँह से निहायत ही फूहड़ बे सिर पर की बात सुनकर उसको इतना महत्त्व दिया कि बेचारी सीता को गर्भिणी होने की अवस्था में भी एक कुलकलंकिनी की भाँति धोखा देकर भयंकर जंगलों में असहाय भटकने और मरने के लिए छुड़वा दिया। भाग्यवशात् हो उस वाल्मीकि जैसे दयार्द्रचित्त महर्षि का सहारा मिला। कहाँ तो राजभवन में राजमहिषी के सुख की आशा और कहाँ निर्जन वन में ऋषि के आश्रम में जीवन निर्वाह। घर परिवार और परिजनों से दूर वन में अवस्थित ऋषि-आश्रम में उस बेचारी पर क्या बीती होगी इसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं। यह भी सम्भव है कि बहुत सी ऋषि-कन्याएँ और वाल्मीकि के शिष्य भी लोकापवाद को सुनकर उनके चरित्र पर सन्देह करते ही रहे हों। यह सब-कुछ सीता ने पातिव्रत धर्म के बल पर ही सहन किया था। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता के निवास पर सन्देह प्रकट करना भी किसी गम्भीर विचारवान् पुरुष के अनुरूप नहीं माना जा सकता किन्तु राम ने बिना किसी लाज संकोच के फिर से सीता के चरित्र पर सन्देह प्रकट कर ही दिया। महर्षि वाल्मीकि सभी प्रकार की सौगन्ध खाकर और प्रमाण प्रस्तुत कर सीता की शुद्धता के विषय में चीखते रहे किन्तु राम ने उस ऋषि पर भी विश्वास नहीं किया और अन्ततः सीता को पृथ्वी की शरण में जाकर अपने प्राण त्याग देने पड़े।

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 1981 को सेवढ़ा

सीता के चरित्र की महानता, उनकी पतिव्रत धर्मनिष्ठा और दृढ़ता प्रत्येक परीक्षा मे और भी उभरती चली गयी। प्रत्येक समय तपाये गये सोने की भाति उनकी कान्ति और भी निखरती ही चली गयी। राम के प्रति जितनी अधिक निष्ठा उनके मन मे रही, राम उनके चरित्र पर उतनी ही सीमा तक सन्देह करते चले गये किन्तु सीता ने सब-कुछ सहन करके भी राम के आदर्श चरित्र पर किसी भी प्रकार का कलक नहीं लगने दिया। कष्टो की तो उन्होने कभी परवाह की ही नही, राम के लिए अपने प्राणो का परित्याग करने मे भी वे गौरव ही मानती रही। जब विराध राम लक्ष्मण को पकडकर ले चला था, तब सीता ने कहा था कि तुम इन दोनो को छोड़ दो मुझे ले चलो।[1] विराध की पेट की भूख शान्त करने के लिए मरने को तैयार हो गयी। लक्ष्मण जब उनको वन मे अकेली छोडकर लौटने लगे थे तब भी उन्होने राम को कोई उलाहना नहीं दिया और एक पतिपरायणा की भाँति राम को सन्देश भेजते हुए कहलाया था कि—मैंने वनवास के दु ख मे पडकर भी उसे सहकर राम के चरणो का अनुसरण करते हुए आश्रम मे रहना पसन्द किया था। अब मै अपने प्रियजनो से रहित हो किस तरह आश्रम मे निवास करूँगी और दु ख पडने पर किससे अपना दु ख कहूँगी? यदि मुनिजन मुझसे पूछेगे कि राम ने किस अपराध के कारण तुम्हे त्याग दिया है तो मै उनको अपना कौन सा अपराध बताऊँगी। मै अपने जीवन को अभी गगा के जल मे विसर्जित कर देती किन्तु अभी ऐसा नहीं कर सकूँगी क्योकि ऐसा करने से मेरे पतिदेव का राजवश नष्ट हो जाएगा। किन्तु लक्ष्मण, तुम तो वही करो जैसी महाराज ने तुम्हे आज्ञा दी है। तुम मुझ दुखिया को यहा छोडकर महाराज की आज्ञा पालन मे ही स्थिर रहो। मेरी ओर से तुम महाराज राम से कह देना कि वास्तव मे आप तो जानते ही है कि सीता शुद्धचरित्र है। सदा ही आपके हित मे तत्पर रहती है और आपके प्रति परम प्रेम-भक्ति रखने वाली है। आपने अपयश से डरकर ही मेरा परित्याग किया है अत लोगो मे आपकी जो निन्दा हो रही है अथवा मेरे कारण जो अपवाद फैल रहा है उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है क्योकि मेरे परम आश्रय आप ही है। आप धर्मपूर्वक बडी सावधानी से रहकर पुरवासियो के साथ वैसा ही बर्ताव करे जैसा अपने भाइयो के साथ करते है। यही आपका परम धर्म है और इसी से आपको परम उत्तम यश की प्राप्ति हो सकती है। पुरवासियो के प्रति धर्मानुकूल आचरण करने से जो पुण्य प्राप्त होगा वही आपके लिए उत्तम धर्म और कीर्ति है। मुझे अपने शरीर के लिए कुछ भी चिन्ता नहीं है। जिस तरह पुरवासियो के अपवाद से बचकर रहा जा सके उसी तरह आप रहे। स्त्री के लिए तो पति ही देवता है पति ही बन्धु है पति ही गुरु है। इसलिए उसे प्राणो का परित्याग करके भी पति का प्रिय करना चाहिए।[2] अन्त मे भी राम को

---

1 वा रा 3 4 3 2 वा रा 7 48 5-9 12 18

लोकापवाद से बचाने और उनके यश की रक्षा करने के लिए ही सीता ने भूमि में प्रवेश किया था। राम जरा से लोकापवाद के भय से कांप जाते थे। वे अपनी इस दुर्बलता को सदैव सीता के सिर पर ही मढते चले गये और सीता ने अग्नि के समान शुद्ध होकर भी समस्त लांछना और कलंकों को अपने ऊपर लेकर राम के यश को कभी आंच नहीं आने दी। उन्होंने बड़े दुःख के साथ लक्ष्मण से कहा था—"लक्ष्मण! निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को केवल दुःख भोगने के लिए ही रचा है इसलिए आज सारे दुःखों का समूह मूर्तिमान होकर मुझे दर्शन दे रहा है।"[1]

सीता के समान पतिव्रता आचारनिष्ठा दृढव्रती नारी की कल्पना सचमुच ही विश्व वाङ्मय के लिए एक ऐसी अनूठी देन है जो नारी समाज के लिए युगों युगों तक प्रेरणा का आधार बनी रहेगी।

1 वा रा 7 48 3

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शक्ल 10 स 1983 → सेवढ

रामो विग्रहवान् धर्म

रामायण महाकाव्य क नायक राम क आचार दर्शन का सम्यक् आर विवादरहित विवचन वडे स-वड़े पाण्डित्याभिमानी के लिए भी सरल नहीं। यदि परवर्ती राम-काव्यो और तुलसी के प्रभाव से अलग रहकर केवल वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही राम की आस्थाआ का अध्ययन किया जाय तब भी उसम इतन अधिक अन्तर्विराध आर उलझाव दिखाइ देते ह कि किसी एक निश्चित निर्विवाद निष्कर्ष पर पहुचना कठिन हाता है। वे कभी क्षात्रधर्म का समर्थन करते ह ता कभी सनातन धर्म का। इन्हीं अन्तर्विरोधा के कारण आर ताटका वध वालि वध शूर्पणखा का अपमान सीता वियाग की व्यथा सीता परित्याग तथा अन्य ऐसी ही कथाआ का आधार लेकर उनकी कटुतम आलोचना भी कर दी जाती है। उनको मर्यादा पुरुषात्तम कहा जाता हे आर उनक द्वारा मर्यादा भग किय जाने के तक भी आलाचको द्वारा प्रस्तुत किय जाते ह। सम्भवत इन्हीं आलोचनाओ का समाधान खोजते हुए तुलसादासजी न विष्णु रूप राम के द्वारा नर लीला किये जाने का तर्क प्रस्तुत किया था। यह सव कुछ होते हुए भी राम के अपने निश्चित आचार विषयक सिद्धान्त थे उनकी निश्चित धामिक आस्थाए थी और उन्हान निष्ठापूर्वक दृढता के साथ उनका पालन किया।

राक्षसा द्वारा उत्पन्न परेशानिया के कारण देवताआ द्वारा विष्णु से अवतार ग्रहण करने की प्रार्थना अनरण्य द्वारा रावण का दिया गया शाप और दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की कथाआ का उल्लेख अनावश्यक रूप से प्रबन्ध को विस्तार देना ही हागा। इन घटनाओ का राम के आचार दर्शन से कोई सम्बन्ध ही नही। राम का वास्तविक जीवन महर्षि विश्वामित्र के साथ उनके वनगमन से ही प्रारम्भ होता ह। वे अपने भाइया मे सवसे ज्यष्ठ थे इस दृष्टि से परिजना के साथ उनके सम्वन्धा पर भी विचार किया जा सकता हे।

जन्म के पश्चात् राम की शिक्षा-दीक्षा के विषय म रामायण मे कोई उल्लेख नही मिलता। कैकेयी द्वारा राम को वनवास दिये जान का वर मॉगने पर अवश्य ही दशरथ न कहा था कि अव तक राम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वदा का अध्ययन करने आर गुरुजना की सेवा म सलग्न रह ह। जब जवकि इनके लिए

सुख भाग का समय आया ह तब ये उन मे जाकर महान् कष्ट म पड़ेगे।[1] दशरथ क इस कथन क आधार पर ही यह माना जा सकता ह कि राम ने बाल्यावस्था म विधिपूर्वक वदा का अध्ययन किया था। ऋष्यमूक पर्वत पर जब हनुमान से उनकी भट हुइ थी आर हनुमान न अपना तथा सुग्रीव का परिचय दिया था तब राम ने हनुमान की वाक् पटुता की प्रशसा करते हुए कहा था कि जिसे ऋग्वद की शिक्षा नही मिली जिसन यजुर्वेद का अध्ययन नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नही ह वह इस प्रकार की सुन्दर भाषा म वार्तालाप नही कर सकता। निश्चय ही इन्हाने समूच व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया ह क्याकि बहुत सी बाते बोले जान पर भी इनक मुह से कोई अशुद्धि नहीं निकली।[2] इसके साथ ही राम ने हनुमान की भाषा वाक्य शली उच्चारण आर शब्द प्रयोग की जिस रूप म प्रशसा की थी उससे भी ज्ञात हाता ह कि उन्होने वदा ओर व्याकरण का अवश्य ही गम्भीर अध्ययन किया हागा अन्यथा वे उनक महत्त्व को इस प्रकार स्वीकार नही करते। अशाक वाटिका म हनुमान ने भी सीता स कहा था कि राम को ब्रह्मास्त्र आर वदा का पूर्ण ज्ञान ह तथा व वदवत्ताआ म श्रेष्ठ ह।[3] राम की शिक्षा दीक्षा का सम्यक् ज्ञान उनकी स्वभावगत विशषताआ ओर आचार विषयक मान्यताआ को माध्यम मानकर ही किया जा सकता ह।

बचपन स ही राम अत्यन्त गम्भीर स्वभाव थे आर उनके मन म किसी क प्रति काइ आसक्ति नही थी। उनको विश्वामित्र के साथ भेजते समय दशरथ को माहवश कष्ट हुआ था किन्तु विश्वामित्र ने राम के विषय म कहा था कि उनके मन मे कोई आसक्ति नही ह।[1] यह कहना युक्तिसगत ही होगा कि राम को केवल अपने कर्तव्य क प्रति आसक्ति रही थी। राम के वनगमन की बात सुनकर पुरवासियो ने भी कहा था कि राम म क्रूरता का अभाव दया विद्या शील इन्द्रिय सयम आर मनानिग्रह— छह गुण स्वाभाविक रूप स विद्यमान हे।[5] लक्ष्मी अथवा राज्यलक्ष्मी को भी उन्होने कोइ महत्त्व नही दिया। लक्ष्मण न वनगमन के विराध म जब दशरथ आर ककेयी को कद कर राज्य पर अधिकार कर लेने का सुझाव दिया था तब राम ने कहा था कि लक्ष्मण लक्ष्मी के इस उलट फेर के विषय म तुम्हे चिन्ता नहीं करना चाहिए। मरे लिए राज्य आर वनवास दोना ही समान हे बल्कि विशेष विचार करने पर वनवास ही अभ्युदयकारी प्रतीत हाता हे।[6]

यद्यपि रामायण मे हास परिहास का काई स्थान नही ह किन्तु राम ने अपने स्वभाव गाम्भीर्य के कारण हसी मजाक के विषय मे कुछ सिद्धान्ता के प्रति सकेत भी किया है। दण्डकारण्य आश्रम मे शूपणखा ने जब राम के साथ विवाह का प्रस्ताव

---

1 वा रा 2 12 84 2 वा रा 4 3 28 29 3 वा रा 5 34 3 4 वा रा 1 19 17 5 वा रा 2 33 12 6 वा रा 2 22 29

किया था तब पहले तो वह स्वय को विवाहित और लक्ष्मण को अकृत दारा (अविवाहित) बतलाकर परिहास करते हुए उसे इधर से उधर घुमाते रहे किन्तु तुरन्त ही उन्होंने लक्ष्मण से कहा था कि क्रूर स्वभाववाले अनार्यो से कभी हँसी मजाक भी नहीं करना चाहिए।[1] इसके बाद ही लक्ष्मण ने शूर्पणखा को विरूपित कर भगा दिया था। आश्रमवासियों के लिए भी राम ने हास परिहास को उचित नहीं बताया। रावण द्वारा सीता के अपहरण से अवगत न रहने की दशा में वे पहले सीता के विनोदी स्वभाव का स्मरण कर उसको लुका छिपी का मजाक समझते रहे थे और उन्होंने सीता को सम्बोधित करते हुए कहा था कि यद्यपि तुम्हारा स्वभाव परिहास प्रिय है किन्तु आश्रमों में हँसी मजाक को उचित नहीं कहा गया है।[2]

अपने कर्तव्यों और आचार सिद्धान्तों पर राम की दृष्टि इस सीमा तक केन्द्रित रहा करती थी कि दूसरों के दोषों पर उनकी दृष्टि कभी जाती ही नहीं थी। यही कारण है कि उन्होंने जीवन में जो कुछ किया, कर्तव्य भावना से किया और प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ भी नहीं किया। भरत ने कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहा था कि राम किसी दूसरे के दोषों को देखते तक नहीं फिर भी उनको चीर पहनाकर वन भेजने से तुझे क्या लाभ होगा?[3] किसी के आचार व्यवहार की सत्यता को जाने समझे बिना केवल रोष के वशीभूत होकर निन्दा करने के भी राम विरोधी थे। वाली ने जब उनको बुरी प्रकार से फटकारा था तब उन्होंने कहा था कि तुमको मारने के पीछे मेरा जो अभिप्राय रहा है उसको तुमने समझा ही नहीं। केवल रोषवश तुमको मेरी निन्दा नहीं करना चाहिए।[4] विभीषण भी इस बात से अवगत रहा था कि राम ने क्रोध पर पूरी तरह विजय पा ली है और वे सम्यक् विचार के पश्चात् आवेशरहित होकर कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करते हैं। क्रोध बलवान् व्यक्ति को भी दुर्बल बना देता है और उसके विवेक को नष्ट कर देता है। जितक्रोध होने के कारण ही विभीषण राम को अजेय मानता था। रावण की मन्त्रिपरिषद् में बोलते समय विभीषण ने कहा था कि राम अप्रमत्त और जितक्रोध होने के कारण अजेय हैं अतएव उनको परास्त करना सरल नहीं।[5]

विभीषण की धारणा के विपरीत कुछ प्रसंग राम के क्रोधी स्वभाव के प्रति संकेत करते हैं। सीता की खोज करते समय जब उनको पर्वत वृक्षों और सर सरिताओं से कुछ संकेत नहीं मिला तब उन्होंने पर्वत और नदी के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए उनको भस्म करने और सुखा डालने का विचार प्रकट किया था।[6] इसी प्रकार जब वे समुद्र से मार्ग की याचना करते हुए उपासना करते रहे और फिर भी समुद्र उनके सामने उपस्थित नहीं हुआ तब उन्होंने समस्त जलचरों सहित उसको सुखा डालने

1 वा रा 3 18 19 2 वा रा 3 62 6 3 वा रा 2 73 12 4 वा रा 4 18 17 5 वा रा 6 9 10 6 वा रा 3 64 33-34

के लिए अपना धनुष उठा लिया था। उनके क्रोध को देखकर और बाणो के प्रहार से नाग सर्प मगर आदि सभी जलचर तिलमिला गये थे और वरुण के निवासभूत समुद्र म भारी खलबली मच गयी थी। उनके क्रोध को शान्त करते हुए लक्ष्मण ने कहा था कि आप जैसे महापुरुष क्रोध के अधीन नही होते और इस समुद्र को नष्ट किये बिना ही आपका कार्य सम्पन्न हो जाएगा।[1] राम के द्वारा पर्वत नदी और समुद्र जसे जड पदार्थों के प्रति इस प्रकार क्रोध व्यक्त करना सचमुच एक आश्चर्य का ही विषय ह।

वालि वध के पश्चात् किष्किन्धा का राज्य पाकर सुग्रीव सुन्दरियो के साथ विलास क्रीडाओ म मस्त रहकर जब पूर्व प्रतिज्ञा और राम के साथ हुई सन्धि की शर्तो को भूलकर सीता की खोज के अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन होकर बैठ गया था तब भी राम का आक्रोश उबल पडा था। उन्होने सुग्रीव को कृतघ्न और अधम कहकर उसे पचास गालिया दीं और लक्ष्मण के द्वारा उससे कहलाया था कि तुम भी शायद मेरे द्वारा खीचे गये कौधती हुई बिजली के समान धनुष का रूप देखना चाहते हो। सग्राम म कुपित होकर मेरे द्वारा खीची गयी प्रत्यचा की भयकर टकार को जो वज्र की गडगडाहट को भी मात करनेवाली ह अब फिर सुनने की तुम्हारी इच्छा हो रही ह। लक्ष्मण से राम ने कहा था कि सुग्रीव को मेरे रोष का स्वरूप स्पष्ट रूप से बतला दिया जाए और यह भी कह देना कि वाली मारा जाकर जिस मार्ग से गया है वह इतना सकीर्ण नही ह कि तुम उससे न जा सको। वाली तो रणक्षेत्र म अकेला ही मारा गया ह किन्तु यदि तुम सत्य से विचलित हुए तो तुम्हे बन्धु बान्धवो सहित मार डाला जाएगा।[2]

उपर्युक्त प्रसगो के आधार पर सहज ही यह धारणा बन जाती ह कि राम स्वभाव से इतने अधिक क्रोधी थे कि रोष म पडकर व पात्र-अपात्र जड चेतन का भी विवेक खो बैठते थे और एक अपराधी को दण्डित करने के लिए अनेक निरपराधियो को भी दण्डित करने म उनको कोई सकोच नही होता था। इस सम्बन्ध म दो तथ्यो पर अवश्य ही ध्यान दिया जाना चाहिए। यह तो माना ही जा सकता है कि धर्म और आचार व्यवस्था के प्रति वे सबसे अधिक सतर्क और सावधान रहे। इस तथ्य को भी ध्यान म रखना आवश्यक है कि वह एक अश म भी व्यक्तिनिष्ठ नहीं रहे और पूरे समाज समाज के व्यापक हित तथा व्यापक सामाजिक व्यवस्था पर ही उनकी दृष्टि केन्द्रित रही थी। राजकुमार अथवा राजा किसी भी रूप मे उन्होने जो कुछ किया वह पूरे समाज और लोकहित को दृष्टि म रख कर ही किया। उन्होने व्यष्टि को समष्टि म इस प्रकार विलीन कर दिया था—जसे बूद समुद्र मे मिल जाती ह। राम का पूरा जीवन अनेकान्त दृष्टि से देखा जाना चाहिए। उन्होने स्वय तो अपने

---

1 वारा 6 21 34 2 वारा 1 30 7 4 75 3 वारा 4 30 80 82

कर्तव्यो का पालन किया ही उनका यह भी प्रयत्न रहा कि छोटा-बड़ा प्रत्येक व्यक्ति निर्धारित व्यवस्था के अनुसार आचरण करता रहे ताकि समाज की व्यवस्था भग न हो और लोकहित को किसी प्रकार का आघात न पहुँच सके। इसीलिए सुग्रीव के प्रति उन्होंने जो आक्रोश प्रकट किया था उसमे सबसे पहले सत्य से अविचलित रहने का निर्देश किया गया और अन्त मे यह भी कहा गया कि तुम शाश्वत धर्म पर दृष्टि रखकर सत्य का पालन करो अन्यथा तुमको भी यमलोक मे जाकर वाली का दर्शन करना पड़ेगा।[1] राम के समग्र जीवन पर दृष्टि डालने से यह तथ्य उजागर हो जाता है कि वे केवल अपराधी को ही नहीं वरन् प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपराध मे सहायता करनेवाले को भी समान रूप से दण्डनीय मानते थे। सुग्रीव को बन्धु-बान्धवो सहित मार डालने की बात उन्होंने इसीलिए कहा थी कि वे लोग उसको अपनी विनास-क्रीडाओ मे भुलाकर कर्तव्य पालन से विमुख बना रहे थे। यदि कोई भी व्यक्ति समाज व्यवस्था भग करता था अथवा भग करने मे सहयोग देता था तो राम को सहज ही व्यवस्था बनाये रखने के अपने दायित्व का स्मरण हो आता था और उनकी उँगलियाँ तूणीर पर पहुच जाती थी। उनके क्रुद्ध और जितक्रोध होने को इसी परिप्रेक्ष्य मे यथार्थत समझा जा सकता है। राम के इन्हीं गुणो से प्रभावित होकर तारा ने वाली से कहा था कि राम साधु पुरुषो के आश्रयदाता है सकट मे पड़े हुए प्राणियो का सबसे बड़ा सहारा है। आर्त पुरुषो के आश्रय, यश के एक मात्र भाजन ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न तथा पिता की आज्ञा मे स्थिर रहनेवाले है।[2]

शास्त्र-व्यवस्था के अनुसार आचार मर्यादा को समाज मे प्रतिष्ठापित करने के लिए राम ने न तो उपदेशो के माध्यम से प्रचार को ही पर्याप्त माना और न केवल स्वय आदर्श प्रस्तुत करने मे ही उद्देश्य की परिणति समझी। इसके लिए उन्होंने राजोचित व्यवहार दण्ड विधान और शौर्य का सहारा लिया था। अन्य ऋषि महर्षियो द्वारा दी गयी व्यवस्थाओ मे आस्था रखते हुए भी उनकी भाँति वे आश्रम मे बैठकर नही रह गये बल्कि धनुष-बाण और तलवार लेकर पूरे समाज को उस मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करते रहे थे। व्यवस्था भग करने को वे अक्षम्य अपराध मानते थे और इसके लिए उन्होंने अपने-आप को भी कभी क्षमा नहीं किया। वसिष्ठ विश्वामित्र अगस्त्य वाल्मीकि भरद्वाज अत्रि सुतीक्ष्ण-जैसे महर्षि और सहस्रो अन्य ऋषि अपने आश्रमो मे बैठकर स्वय शास्त्र विधि का पालन करते हुए शिष्यो के माध्यम से धर्म प्रचार का प्रयास करते रहे थे और इसके पश्चात् भी आचार-मर्यादाओ का खुले तौर पर उल्लघन होता रहा नारियो का अपहरण होता रहा और नास्तिक लोकायत तथा अन्य आचार दर्शनो का भी व्यापक प्रचार होता रहा था। जाबालि ने तो स्पष्ट शब्दो मे भौतिकवादी नास्तिक दर्शन की उपयुक्तता का प्रतिपादन किया

1 वा रा 4 30 82 84 2 वा रा 4 15 19 20

आर राम का भी उससे सहमत होने के लिए प्रेरित किया था। यह स्थितिया राम का इस धारणा का दृढतर बनाती हा चली गयीं कि शक्ति के बिना समाज म आचार मर्यादाआ का स्थापित किया जाना सम्भव नही हे।

सीता हरण के पहले तक राम ने कभी रोप प्रकट नही किया। पिता अथवा गुरु आचार्य उनको जसी भी आज्ञा देते गय वे आख बन्द कर उसका पालन करते रहे। नारी वध को शास्त्र मयादा के प्रतिकूल मानते हुए भी विश्वामित्र के निर्देश से ताटका का वध किया आर दशरथ का सकेत पाकर ही वन के लिए प्रस्थान कर दिया। खर दूषण आदि राक्षसा का वध उन्होने तभी किया जब इन राक्षसा द्वारा उनको चुनौती दी गयी। इस समय तक उनकी आस्थाआ की वास्तविकता को लोग समझ ही नही सके। शूर्पणखा का विवेक राम की सत्यता का समझने म लॅगडा गया था आर उसने खर स कहा था कि दण्डकारण्य म आये हुए दानो तरुण पुरुष देखन म बडे ही सुकुमार रूपवान आर बलवान है। उनक विशाल नेत्र कमल के समान ह आर वल्कल वस्त्र तथा मृगचम धारण किये हुए ह। फल और मूल ही उनका भाजन हे। वे जितन्द्रिय तपस्वी आर ब्रह्मचारी ह। राजोचित लक्षणा से सम्पन्न गन्धर्वराज के समान दिखाइ देनेवाले इन दाना भाइया का बहुत सोचने विचारने पर भी म समझ ही नही पा रही कि ये देवता ह अथवा दानव ह।[1] सीता हरण की घटना को देखकर ही राम इस निष्कर्ष पर पहुच थे कि समाज मे शान्ति दया करुणा आदि लक्षणा से सम्पन्न व्यक्ति का प्राय निर्बल ही समझा जाता हे। उसके आदर्शो का दूसरे व्यक्ति अनुसरण तो करते ही नही उलटे उसी को कुण्ठा म धकेल दिया जाता ह। साता की न किसी ने रावण द्वारा अपहरण किये जाने स रक्षा ही की आर न उसका जानकारी देने का हा लाग साहस कर रह हे। इन्ही सब बाता पर विचार करते हुए उन्होन लक्ष्मण से कहा था कि समस्त लाका की सृष्टि-पालन आर सहार करनेवाले त्रिपुर विजय कार्य स सम्पन्न महेश्वर भी जब अपने करुणामय स्वभाव के कारण चुप बैठ रहते ह तब सभी प्राणी उनके ऐश्वर्य को न जानकर उनका भी तिरस्कार करने लगते ह। म लाकहित म तत्पर जितन्द्रिय तथा जीवा पर दया करनेवाला हू इसलिए इन्द्र आदि देवता भी मुझको निर्वीर्य मान बैठ ह। दयालुता आदि गुण हा मेरे दोप समझ जा रह ह। अब अपने सभी गुणा को समेटकर मुझे अपना तेज दिखाना ही पडेगा।[2] उल्लेखनीय ह कि रावण द्वारा अपहृता सीता को रोते विलखते आर रक्षा के लिए बचाओ-बचाओ चिल्लाते हुए स्वय ब्रह्मा आर दण्डकारण्य म निवास करनेवाले सकडो सहस्रो ऋषियो-महर्षियो ने अपनी आँखो देखा था। नारी-अपहरण को अधम माननेवाले ये सभी ऋषि एक राक्षस द्वारा सीता-जसी नारी के अपहरण को टुकुर टुकुर देखते रहे थे। केवल जटायु ने ही रावण

---

1 वा रा 3 19 11 16 2 वा रा 3 64 54 6

को ललकारकर रोका और युद्ध म अपन प्राण तक गवा दिये। वायु की गति रुक गयी थी आर सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी थी किन्तु इसे रावण विनाश का शुभ सकेत मानकर ब्रह्मा वस अब काम पूरा हो जाएगा' कहकर चुप हो गये थे। ऋषियो को सीता की दशा दखकर दु ख अवश्य हुआ था किन्तु व भी केवल इतना सोचकर रह गये कि अब राम अवश्य ही रावण का विनाश कर डालेगे।[1] यह एक आश्चर्य का ही विषय हे कि नारी-अपहरण का कुत्सित अधर्म माननेवाले ऋषि महर्षि सीता की रक्षा करने के लिए रावण का सामना करन का साहस क्यो नही कर सके। आश्रम म बठकर शिष्या को धर्म-व्यवस्था का उपदश दते रहना और अपनी आखो के सामने अधम घटित हात दखना ऋषियो म धर्म रक्षा के प्रति साहस की कमी का ही परिचायक ह। एस ऋषियो को यदि राक्षस अपने धर्म की स्थापना के लिए परेशान करते रह ता कोई आश्चर्य का विषय नहीं। यही सब देखकर राम का धनुष आर तलवार की शक्ति से धम व्यवस्था को प्रतिष्ठापित करने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

राम न यह अनुभव किया था कि धर्म आर आचार की विशिष्ट व्यवस्था का समाज म प्रतिष्ठापित करन क लिए भी शक्ति ओर दण्ड का सहारा आवश्यक होता हे। व्यवस्था के प्रतिकूल आचारण करनेवाले को दण्डित किया ही जाना चाहिए। इसका एक परिणाम तो यह हाता हे कि व्यवस्थापक क प्रति असम्मान की भावना उत्पन्न नही हाती आर दूसरा यह कि लोग व्यवस्था भग करने का साहस नही करते। राम क मतानुसार गुणहीन पुरुष सत्पुरुषो के गुणा को उस समय तक अपनाते ही नहीं जब तक उनको इसक लिए शक्ति के द्वारा बाध्य नही किया जाय। क्षमाशील आर सहृदय सत्पुरुष को लोग दुर्बल मानकर उसकी उपेक्षा कर देत ह। समुद्र ने राम की प्राथना अनुनय विनय, उपवास व्रत आदि किसी की परवाह नही की थी। तब राम ने लक्ष्मण से कहा था कि शान्ति क्षमा सरलता और मधुर भाषण सत्पुरुषो के गुण ह। इनका गुणहीना के प्रति प्रयोग करने पर कभी अनुकूल परिणाम नही हाता क्याकि ऐसी अवस्था म गुणवान् व्यक्ति को असमर्थ मान लिया जाता हे।[2]

लोक निन्दा से सदव बचकर रहना राम के स्वभाव की विशेषता रही है। इसक लिए वे राज्यसुख का ही नहीं अपन जीवन का परित्याग करने के लिए सदेव तैयार रहे। दशरथ की अवज्ञा करते हुए लक्ष्मण की नीति का अनुसरण कर वे निष्कासन से सहज ही बच सकते थ किन्तु इस कारण उत्पन्न अपयश को सहन करना उनके लिए सम्भव ही नही था। सीता का परित्याग भी लोकापवाद स बचने के लिए ही किया गया था। भरत क चित्रकूट पहुचने पर लक्ष्मण उनका वध करने क लिए उद्धत हो गये थ किन्तु राम ने उनको यह कहते हुए रोक दिया था कि पिता के सत्य

1 वा रा 3 52 11 12 2 वा रा 6 21 14 15

की रक्षा के लिए प्रतिज्ञा करक यदि म भरत को युद्ध म मारकर उनका राज्य छीन लूँ ता ससार म मरी कितनी निन्दा होगी और उस कलकित राज्य को लेकर भी म क्या करूँगा।[1] शूर्पणखा को विरूपित करन ताटका और वालि वध को लेकर जा कहा जाता ह कि राम ने अपयश की परवाह नहीं की सर्वथा गलत हे। इन सबके पीछे राम की विशेष आस्थाए रही ह जिनके अनुसार ही उन्हाने आचरण किया।

सीता के वियाग म व्यथित राम के प्रति रामायण मे कुछ एसे शब्दा का प्रयोग हुआ हे जिनसे भ्रम हाता हे कि काम भावना उनके स्वभाव की कमजारी रही थी। पम्पासर के देखने स ही व काम पीडा से इतने अधिक दु खी हा गये थे कि लक्ष्मण स अपनी मनोव्यथा का साफ शब्दो म कहने मे उन्हाने सकाच नही किया। वसन्त की मादकता उनके लिए असह्य हो उठी थी आर उन्होने कहा था कि सीता क वियोग से मे पहले ही दु खी हूँ, कामदेव मुझ ओर भी सन्ताप दे रहा हे।[2] जलकुक्कुटा का रतिकालीन कूजन आर नर-कोकिला का कल नाद मेरी अनग वेदना को उद्दीप्त कर रहे ह।[3] अनग वेदना से उत्पन्न शाकाग्नि वसन्त से ईधन पाकर और भी वढ रही ह।[4] मयूरिया से घिरे हुए मदमत्त मयूर भी मेरी कामपीडा को वढा रहे ह।[5] वसन्त के उद्दीपन का राम सह नहीं सके थे और वह वुरी तरह बेचेन हो उठ थे। लक्ष्मण न उनकी पीडा का अनुभव किया था ओर बडे सकोच के साथ उन्होने राम से कहा था कि आपको शोक को पीछे छोडकर कामी पुरुप-जैसा व्यवहार त्याग देना चाहिए।[6] लक्ष्मण के समझाने वुझाने पर ही राम अपन को सयत कर सके थे।

शरद् ऋतु के आगमन पर भी राम को काम वदना का अनुभव हुआ था। इस प्रसग म भी उनका काम शोकाभिपीडित कहा गया हे।[7] वे इतने अधिक विचलित हा गये थे कि शरद् के मनोरम कामोद्दीपक दृश्या को देखकर स्वय ता वेचेन होत ही थ यहा तक सोचने लगत थे कि शरद् ऋतु के गुणो स निरन्तर वृद्धि का प्राप्त होनेवाला काम सीता को भी पीडित कर रहा होगा।[8] उनके इस प्रकार के विचारा को सुनकर ही लक्ष्मण का कहना पडा था कि इस प्रकार काम के अधीन हाकर अपन पारुप का तिरस्कार करन स आपको कोइ लाभ नही होगा।[9] इस प्रकार राम की काम भावना प्राय जाग उठती थी आर लक्ष्मण द्वारा समझाय वुझाय जाने पर ही उनका हृदय शान्त हाता था। राम की मानसिक एकाग्रता क प्रति सीता के मन म भी सन्देह वना ही रहता था। अशोक वाटिका म विलाप करत हुए उन्हान कहा था कि मेरा तो यही अनुमान हे कि राम नियमानुसार पिता की आज्ञा का पालन करके अपन व्रत को पूर्ण करने क पश्चात् जव वन से लाटगे तव निर्भय एव सफल मनोरथ हो विशाल नेत्रावाली वहुत सी सुन्दरिया के साथ विवाह करके उनके साथ

1 वा रा 2 97 3 2 वा रा 4 1 23 3 वा रा 4 1 28 29 4 वा रा 4 1 3 5 वा रा 4 1 37 6 वा रा 4 1 123 8 वा रा 4 30 1 8 वा रा 4 30 12 9 वा रा 4 30 16

रमण करग।[1] साता की यह धारणा आर उपर्युक्त कतिपय प्रसग राम के आचार क सामन एक प्रश्नचिह्न अवश्य लगा दत ह किन्तु व्यवहार म न ता वह काम क वशाभूत हा दिखाई दत ह आर न सीता के अतिरिक्त किसी अन्य नारी के प्रति उनक मन म अनुराग की भावना ही रही। वालि वध क पश्चात् तारा आर रावण-वध क पश्चात् मन्दादरी एव रावण की अनेक सुन्दरिया को वह सहज ही अपने अधिकार म ले सकत थे किन्तु किसी की ओर उन्हाने काम स प्ररित हाकर दखा तक नहीं। सीता ने स्वय भी राम क मन म परस्त्री गमन की भावना का सर्वथा अभाव माना था।[2] एसा प्रतीत हाता हे कि काम आर माह का पर्याय माना गया आर राम के सीता विरह स दुखी हाने पर उनक लिए कामाभिभूत जेस शब्दा का प्रयाग कर दिया गया। यह तथ्य इस बात स भी सिद्ध हाता ह कि मिथ्या भाषण परस्त्री-गमन आर विना वर भावना क प्राणि हिसा—इन ताना दापा का काम स उत्पन्न कहन क साथ ही माह का भी इनका कारण कहा गया ह।[3]

साता क अनुसार राम क मन म विना किसी कारण आर विराध भावना के निरपराध प्राणिया का मारन की हिसा-वृत्ति उत्पन्न हा गयी थी।[4] यह उनक क्षत्रियाचित स्वभाव के कारण अथवा अजय पराक्रमी हान का परिणाम भी हा सकती ह। प्रतिपक्षी अथवा उसक किसी सहायक का उन्हान जीवित नही छोडा। ऋष्यमूक पर्वत आर समुद्र तथा जलचरा क प्रति उनकी आक्राश भावना का उल्लख किया जा चुका ह। सीता क अनुसार शस्त्रधारिया म स्वाभाविक रूप स यह दाष उत्पन्न हा ही जाता ह। जिस प्रकार अग्नि के समीप रखा हुआ इधन उसक तेज का उद्दीप्त कर दता ह उसी प्रकार यदि क्षत्रिया क हाथ म धनुप अथवा काई शस्त्र हो ता उनका वल पराक्रम भा उद्वलित हो उठता ह। राम ने दण्डकारण्य की ओर प्रस्थान करत समय ऋषिया की रक्षा आर राक्षसा का वध करन की प्रतिज्ञा की थी। उनक हाथ म धनुप आर तलवार हमेशा रहत ही थ आर लक्ष्मण के समान पराक्रमी वीर उनका सहायक भी था। राम के हाथा म धनुप वाण देखकर सीता का यह भय वना रहा था कि दण्डकारण्य म वह अपने पारुप आर धनुप के आवेश म निरपराध वनचारिया को मार डालेगे। उन्हाने राम से कहा था कि इस समय आपका दण्डकारण्य म जाना मुझे अच्छा नहीं लगता क्याकि आप धनुप वाण हाथ मे लेकर अपन भाइ क साथ वन मे जाये ह। सम्भव ह वनचारिया को देखकर आप उन पर अपन वाणा का प्रयाग कर वैठे। मन आर इन्द्रिया को वश म रखनवाल क्षत्रिय वीरा क लिए वन मे धनुप धारण करने का इतना ही प्रयोजन ह कि व सकट म पड हुए प्राणिया की रक्षा कर। कहाँ शस्त्र धारण आर कहा वनवास! कहा क्षत्रिय का

1 वारा 5 28 11 2 वारा 3 9 5 8 3 वारा 3 9 3 9 4 वारा 3 9 9 5 वारा 3 9 15

हिंसामय कठोर कर्म और कहा सब प्राणियों पर दया करना रूप तप। हमको वनवास के अनुरूप धर्म का ही पालन करना चाहिए। केवल शस्त्र का सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि कृपण पुरुषों के समान कलुषित हो जाती है। अत अयोध्या लौटकर ही क्षात्रधर्म का अनुष्ठान कीजिएगा। राज्य त्यागकर वन में आप मुनिवृत्ति से ही रहें तो इससे मेरे सास ससुर को प्रसन्नता होगी।[1]

माता पिता के प्रति देवोपम सम्मान और श्रद्धा की भावना राम के मन में प्रारम्भ से ही विद्यमान रही। कैकयी से राम के गुणों की प्रशंसा करते हुए दशरथ ने कहा था कि राम तुम्हारी भरत की अपेक्षा अधिक सेवा किया करते हैं। गुरुजनों की सेवा करने उन्हें गौरव देने उनकी बातों को मान्यता देने और उनकी आज्ञा का तुरन्त पालन करने में राम से बढ़कर कोई दूसरा नहीं। सत्य दान तप, त्याग मित्रता पवित्रता सरलता विद्या और गुरुजनों की शुश्रूषा राम के स्थिर स्वाभाविक गुण हैं।[2] तात्पर्य यह कि गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा को राम सत्पुरुषों का एक विशिष्ट गुण मानते थे। लक्ष्मण ने जब दशरथ और कैकेयी का विरोध करते हुए उनको बन्दी बनाकर राज्य पर अधिकार करने का परामर्श दिया था तब भी राम ने उनको उत्तर देते हुए कहा था कि मुझे तुम माता पिता की आज्ञा पालन में दृढ़तापूर्वक स्थित समझो। यही सत्पुरुषों का मार्ग है।[3] पिता की आज्ञा पालन को राम इतना अधिक महत्त्व देते थे कि किसी भी रूप में उसका उल्लंघन अथवा अवहेलना उनके लिए सह्य नहीं था। दशरथ ने विश्वामित्र के साथ राम को भेजते समय उन्हें उपदेश दिया था कि विश्वामित्र की आज्ञा का नि शंक होकर पालन करना और उनकी कभी अवहेलना न करना।[4] विश्वामित्र ने वन में राम को ताटका के वध करने की आज्ञा दी थी तब राम एक विचिकित्सा में उलझ गये थे। नारी वध को वे आचार मर्यादा के विरुद्ध मानते थे किन्तु जब उनको पिता दशरथ के उपदेश का स्मरण हुआ तो वे विश्वामित्र की आज्ञा से ताटका वध के लिए बिना किसी हिचकिचाहट के तैयार हो गये थे। उन्होंने विश्वामित्र से कहा था कि पिता के उपदेश का अनुसरण करके आप जैसे ब्रह्मवादी महात्मा की आज्ञा से ताटका-वध के कार्य को मैं उत्तम मानकर अवश्य पूरा करूंगा।[5] इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ताटका वध के कारण नारी हत्या का उनको व्यर्थ ही दोषी माना जाता है। वस्तुत पिता की आज्ञा पालन को सभी आचार मर्यादाओं से उन्होंने अधिक महत्त्व दिया था।

दशरथ के मन में राम के प्रति सबसे अधिक स्नेह भावना विद्यमान थी। सत्य के निर्वाह और कैकेयी को दिये गये वरदानों की अवहेलना करने के लिए भी वे

---

1 वा रा 3 9 13-14 °6 28 2 वा रा ° 12 26 30 3 वा रा 2 23 41 4 वा रा 1 26 2 3 5 वा रा 1 °6 4

तयार हो सकते थ। उनकी यह भी लालसा रही थी कि राम उनकी अवज्ञा करते हुए स्वय यदि वन जाने स इनकार कर द ता सभी प्रश्न सरलता से हल हा जाएगे। किन्तु राम पिता की आज्ञा पालन स कभी विचलित हो ही नही सकत थे यह भी दशरथ को भलीभाति ज्ञात था। उन्हाने ककेयी से कहा था यदि म राम से कह दू कि तुम वन का चले जाओ ता वे बहुत अच्छा कहकर मरी आज्ञा का स्वीकार कर लग। राम दूसरी कोई बात कहकर मुझे प्रतिकूल उत्तर नही द सकते। यदि मरे वन जाने की आज्ञा दे देने पर भी राम उसका अस्वीकार कर वन नही जाते तो यही मेरे लिए प्रिय हागा किन्तु राम एसा कभी कर ही नहीं सकते।[1]

दशरथ के आचार की समीक्षा करत समय लिखा जा चुका हे कि वे कभी सत्य के प्रति अविचलित रूप से निष्ठावान नही रह। साप मारते समय भी लाठी टूट जाने का खतरा मोल देने क लिए व तयार नहीं थे और सदव ऐसे बहाना की खोज करत रहे जिससे स्वार्थो को किचित् भी आघात पहुचाये बिना उनक सत्यनिष्ठ होने की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रह। राम की पितृ भक्ति ओर ककयी के आग्रह ने ही दशरथ क सत्य की रक्षा की थी। केकेयी क महल म पहुचकर राम ने दशरथ को अचेतावस्था म दखकर जब ककयी से ही रहस्य को उद्घाटित करने का अनुराध किया था तब उसे यह साचकर उलझन हुई थी कि यदि राम वनगमन के प्रस्ताव का अस्वीकार कर दते ह तो दशरथ की सत्यनिष्ठा धूल म मिल जाएगी। केकेयी की उलझन का समझकर ही राम ने कहा था— म महाराज के कहन से आग म कूद सकता हू, तीक्ष्ण विष का भी पान कर सकता हूँ ओर समुद्र मे भी गिर सकता हू। महाराज मेरे गुरु पिता आर हितेषी ह। उनकी आज्ञा पाकर म क्या नही कर सकता।[2] राम ने दशरथ की आज्ञा को केवल राजाज्ञा मानकर ही उसका पालन नहा किया वरन पिता की आज्ञा पालन का वे सबसे बडा धर्माचरण मानते थे। ककेयी स ही उन्हान कहा था कि पिता की सेवा आर उनकी आज्ञा का पालन करने स बढकर ससार म कोई दूसरा धर्माचरण नही हे।[3] पिता की आज्ञा का उल्लघन करने स राम को अयोध्या का राज्य प्राप्त हो सकता था किन्तु राज्य लोभ म पडकर भी उन्हाने ऐसा करना उचित नहीं समझा। चित्रकूट म भरत द्वारा मनाये जाने पर उन्हाने साफ कह दिया था कि मेरे जेसा मनुष्य राज्य के लिए पिता की आज्ञा उल्लघन रूप पाप केसे कर सकता ह।[4]

राम सेद्धान्तिक रूप स माता पिता को समान रूप से वरेण्य मानते थे। भरत ने चित्रकूट मे जब केकेयी की निन्दा की थी तब राम ने उन्ह राकते हुए कहा था कि मनुष्य की पिता म जितनी गोरव बुद्धि होती हे उतनी ही माता में भी होना

---

1 वा रा 2 12 85 86 2 वा रा 2 18 28 29 3 वा रा 2 19 22 4 वा रा 2 101 16

चाहिए।' तुम्हे अज्ञानवश भी अपनी माता की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[2] सीता को समझाते हुए उन्होंने बार बार माता पिता की आज्ञा-पालन का महत्त्व दिया। सीता से उन्होंने कहा था कि यह तो किसी भी प्रकार सभव हो नहीं कि मैं वन को न जाऊ क्योंकि पिताजी का सत्ययुक्त वचन ही मुझे वन की ओर ले जा रहा है। पिता और माता की आज्ञा के अधीन रहना पुत्र का धर्म है। इसलिए उनकी आज्ञा का उल्लघन करके मैं जीवित नहीं रह सकता। माता पिता की सेवा में लगे रहनेवाले महापुरुष देवलोक गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक गोलोक तथा अन्य लोकों को भी प्राप्त कर लेते हैं।[3] उपर्युक्त रूप से आस्थावान् होकर भी व्यावहारिक क्षेत्र में राम ने पिता को माता की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया। दशरथ और कैकेयी के निर्णय को सुनकर कौसल्या ने राम से कहा था कि जैसे गौरव के कारण राजा तुम्हारे पूज्य हैं उसी प्रकार मैं भी हूं। मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा नहीं देती अतएव तुमको वन के लिए नहीं जाना चाहिए।[4] कौसल्या ने अनेक धर्म-व्यवस्थाओं का प्रमाण देते हुए माता के महत्त्व का प्रतिपादित किया था किन्तु राम ने कण्डु मुनि सगर पुत्र और परशुराम का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए माता की अपेक्षा पिता को अधिक गौरवास्पद बताया था और कहा था कि मुझमें पिता की आज्ञा का उल्लघन करने की शक्ति नहीं है[5] पिता की आज्ञा का पालन करनेवाला कोई भी पुरुष धर्म से भ्रष्ट नहीं होता।[6]

माता पिता को देवोपम मानते हुए उनकी सेवा शुश्रूषा को राम देवाराधन की पहली और अनिवार्य सीढी मानते थे। उनके मतानुसार सृष्टि का नियन्ता देव अथवा ईश्वर अप्रत्यक्ष और माता पिता एव गुरु प्रत्यक्ष देवता हैं। प्रत्यक्ष देवताओं की सेवा शुश्रूषा करना सहज सम्भव होता है और ये सेवा के अधीन हैं। यदि मनुष्य प्रत्यक्ष देवताओं का उल्लघन करता है तो उसके लिए अप्रत्यक्ष देवता की आराधना का द्वार बन्द रहता है।[7] सीता को पितृ सेवा का महत्त्व समझाते हुए उन्होंने कहा था कि जिनकी आराधना करने पर धर्म अर्थ और काम तीनों प्राप्त होते हैं तथा तीनों लोकों की आराधना सम्पन्न हो जाती है उन माता पिता और गुरु के समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतल पर नहीं है। पिता की सेवा करना कल्याण की प्राप्ति का जैसा प्रबल साधन माना गया है वैसा न सत्य है न दान है न मान है और न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही हैं। गुरुजनों की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग धन धान्य विद्या पुत्र और सुख—कुछ भी दुर्लभ नहीं है।[8]

राम के अनुसार पिता मनुष्य के लिए देवताओं का भी देवता है। शोक सन्तप्त दशरथ को सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा था कि पिता देवताओं का भी देवता माना

1 वा रा 2 101 21 2 वा रा 2 101 17 3 वा रा 2 30 31 32 37 4 वा रा 2 21 25
5 वा रा 2 21 30 6 वा रा 21 36 8 वा रा 2 30 33 8 वा रा 2 30 34 37

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 1983 ‸ से

गया हे जत म दवाना समझकर ही आपकी आना का पालन करूगा।[1] पिता की आा पालन को राम ने सामान्य आचार मर्यादा से बहुत ऊपर माना। उन्हाने कहा ह कि सत्य आर धर्म के मार्ग पर स्थित रहनेवाले पिता मुझे जो आज्ञा द रहे हे म उसी के अनुसार वर्ताव करूगा क्याकि यह सनातन धर्म हे।[2] इस व्यवस्था के प्रति वे इतने अधिक निष्ठावान थे कि जीवन म कभी जान बूझकर अथवा अनजान म भी माता पिता की उन्हान अवमानना नहीं की।[3] पिता को देखकर दूर से ही वे उनके चरणा म प्रणाम करने के लिए झुक जाते थे। यहाँ तक कि वन से सुमन्त्र के लौटते समय उनके द्वारा दशरथ को सन्देश भेजने के लिए भी राम सुमन्त्र के सामन हाथ जोडकर ठीक उसी प्रकार खडे हो गये थे मानो वे दशरथ के सामने खडे हा।

राम की पितृ भक्ति के प्रसगा से रामायण भरी पडी हे आर उन सन्दर्भो मे ही उनकी मातृ भक्ति तथा गुरुजना के प्रति आदर भावना भी प्रतिबिम्बित है। इस समीक्षा म एक अन्य तथ्य अवश्य उभरकर ऊपर आ जाता हे जो श्रद्धालु पाठको का कुछ चाका दनवाला प्रतीत होगा। राम के पूरे जीवन स सन्दर्भ बटोरने पर भी माता पिता के अतिरिक्त किसी अन्य परिजन के प्रति उनके आचार सिद्धान्ता का व्यजक भाव मिलता ही नही। परिवार म भाई बहिन भाभी ताऊ चाचा चाची दादी बहू, भतीजे, बहुएँ आदि आर भी अनक सम्बन्धी होते ह। राम के परिवार म भी छाट भाई उनकी पत्निया भतीजे आर सातेली माताएँ थी किन्तु राम न दशरथ आर कौसल्या के अतिरिक्त किसी का किचित् भी महत्त्व नही दिया। उनके अनुसार पत्नी का व्यक्ति क जीवन म जस कोई स्थान ही नहीं। स्वय उन्हाने सीता के प्रति ठीक वेसा ही व्यवहार किया जेसा एक राजा सामान्य नागरिक के साथ करता हे। सीता हरण से हुए व्यामोहजनित विलाप क अतिरिक्त शान्त जीवन क्षणो मे सीता के प्रति उनके विशेष रागवन्ध का परिचय प्राप्त नहीं होता। उर्मिला माण्डवी ओर श्रुतिकीर्ति के प्रति उनक विशेष व्यवहार की कोई चचा नही मिलती। लक्ष्मण के प्रति उनके मन म भ्रातृ स्नह की नही वरन् ऐसी भावना दिखाई दती हे मानो वह एक विश्वसनीय सहायक आर सहयोगी हा। वाली के आरापा का उत्तर दते हुए उन्हाने पुत्री बहिन आर छाटे भाई की पत्नी के साथ काम सम्बन्ध को जघन्य पाप माना हे किन्तु इतन मात्र स इनके प्रति व्यक्ति की आचार मर्यादा पूरी नहीं हो जाती। बडे भाई पिता आर गुरु को भी राम समान रूप से पूज्य मानत थे किन्तु सुग्रीव आर विभीषण द्वारा पितृ तुल्य अग्रजा की अवमानना किये जान की उन्हाने कोई भत्सना नही की। सक्षप म यह तो कहा जा सकता हे कि राम ने माता पिता के प्रति व्यक्ति के कर्तव्या का पूरा निर्देश किया ह किन्तु अन्य परिजना के प्रति

1 वा रा २ 31.52 2 वा रा 2 30 38 3 वा रा 2 22 8

व्यक्ति की आचार व्यवस्था के विषय म वाणी और कर्म दोना स ही वह पूर्णतया मान दिखाइ दत ह।

लक्ष्मण ने पूरी निष्ठा क साथ राम का अनुगमन किया था और कोसल्या की दयनीय दशा स भी राम भली भाति अवगत थे। इन दोना को छोडकर परिवार के प्राय शेष सभी सदस्या क प्रति उनक मन म सन्देह और अविश्वास की भावना ही विद्यमान रही थी। मन्थरा को राम के मन म भरत क प्रति शत्रुता की भावना दिखाई देती थी। उसन ककेयी से कहा था कि सातला भाई हान के कारण भरत राज्य और धन से वचित हाकर राम क वश म पड़कर किस प्रकार जीवित रहगे। जब राम पृथ्वी पर अधिकार कर लग तो निश्चय ही भरत नष्ट हो जाएग।[1] ककेयी न भी मन्थरा की बात पर विश्वास किया था जिसस स्पष्ट होता ह कि छोट भाइया के प्रति राम की स्नेह भावना परिजना की दृष्टि म भी सन्दिग्ध रही थी। सुमित्रा की तो उन्हाने कभी कोई परवाह की ही नही ककेयी के प्रति भी उनक मन म सम्मान की भावना नहीं थी। वनगमन क पूर्व उन्हान कोसल्या स कहा था कि ककेयी ने दशरथ को धोखा दिया ह।[2] राम क मन म यह धारणा भी बनी रही थी कि दशरथ ने काम क वश एक स्त्री के लिए उनका परित्याग कर दिया। वन म उन्हाने लक्ष्मण स कहा था कि पिता ने जिस प्रकार मुझ त्याग दिया है उस प्रकार अत्यन्त अन हान पर भी एसा कोन पुरुष होगा जो एक स्त्री के लिए अपने आज्ञाकारी पुत्र का परित्याग कर दे।[3] राम के यह विचार पिता के प्रति उनकी सम्मान भावना को निश्चय ही किसी अश म खण्डित कर देते ह। ककेयी क प्रति राम का अविश्वास सर्वत्र दिखाइ देता ह। सुमन्त्र ने जब अयोध्या न लाटने और राम के साथ वन जाने का आग्रह किया था तब राम क मन म सबस बडी परशानी यह सोचकर हुइ थी कि यदि सुमन्त्र अयोध्या नहीं लौटे तो ककेयी का कदाचित् यह विश्वास ही नहीं होगा कि राम सचमुच वन को चले गये ह। उन्हाने सुमन्त्र से लोट जाने का अनुरोध करते हुए कहा था कि जब आप नगर को लौट जाएँगे तब आपको देखकर मेरी छोटी माता ककेयी को यह विश्वास हो जाएगा कि राम वन को चले गये ह। आपको अयोध्या लौटा देन का मरा मुख्य उद्देश्य यही है कि केकेयी आश्वस्त होकर भरत द्वारा सुरक्षित विशाल राज्य को प्राप्त कर ल।[4] ककेयी ने सीता को वल्कल वस्त्र अवश्य दिये थे किन्तु उसने सीता के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना व्यक्त नही की। फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता ह कि राम यह मानते रह थे कि ककेयी सीता क विनाश की इच्छुक रही थी। सीता हरण पर शोक व्यक्त करत हुए उन्हाने कहा था कि इस समाचार को सुनकर ककेयी सफल मनोरथ हो जाएगी।[5] इसी प्रकार

---

1 वा रा 2 8 35,39 2 वा रा 2 24 11 3 वा रा 2 53 10 4 वा रा 2 52 61 63
5 वा रा 3 b2 9 10

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र वल 1 स 1०२३ →

विराध न आक्रमण कर जब सीता को अपन अक म ल लिया तव भी राम न यही कहा था कि आज ककयी का अभीप्ट सिद्ध हो गया। वह अपन पुत्र क लिए राज्य लकर ही सन्तुप्ट नही हुई थी किन्तु सीता की इस दुरवस्था स अवश्य ही वह कृतकृत्य हा जाएगी।[1] पता नहीं राम केकेयी क प्रति इतन अधिक शकित क्या रह थ।

भरत क चित्रकूट पहुचन पर लक्ष्मण जब उनक प्रति आक्रोश प्रकट करत हुए उनका वध कर डालन क लिए सन्नद्ध हो गय थे तव राम न भरत की सदाशयता का स्वीकार करत हुए लक्ष्मण के क्रोध का शान्त किया था किन्तु रामायण म ही अन्य अनक ऐस प्रसग भी उपलब्ध हाते ह जा यह सिद्ध करत ह कि राम भरत के प्रति सन्देह से सर्वथा मुक्त (उदार) नहीं थ। राम की धारणा थी कि राजा हान पर भरत अन्य मर्यादाआ की उपक्षा कर परिजना क साथ भी केवल राजा के समान ही व्यवहार करगे। उनका कभी यह विश्वास नहीं रहा कि भरत कासल्या क प्रति मातृवत् वर्ताव करग आर यह आशका भी उनक मन म वनी रही थी कि यदि सीता को अयाध्या मे ही रहना पडे ता भरत उनक प्रति भी उदार नही हाग। वनगमन के पूर्व जब राम सीता से मिलने के लिए महल म गये थ तव उन्हान उनका समझाते हुए कहा था कि म इस समय निर्जन वन म जान के लिए प्रस्थान कर चुका हू आर तुमस मिलने के लिए यहा आया हूँ। तुम भरत के समीप कभी मेरी प्रशसा न करना क्याकि समृद्धिशाली पुरुप कभी दूसर की स्तुति सहन नहीं कर पात। इसीलिए तुम भरत के सामने कभी मर गुणा की प्रशसा न करना। तुम्ह भरत के समक्ष अपनी सखिया के साथ भी मेरी वार वार चर्चा नहीं करनी चाहिए। उनके मनोनुकूल वर्ताव करके ही तुम उनके निकट रह सकती हो। राजा न उनको सदा के लिए युवराज पद द दिया हे इसलिए तुम्ह प्रयत्नपूर्वक उन्हे प्रसन्न रखना होगा क्याकि अव व ही राजा हाग।[2] इसी प्रकार सुमन्त्र के द्वारा कासल्या का भी उन्हान यही सन्देश भेजा था कि तुम कुमार भरत के प्रति सदेव राजोचित बर्ताव करती रहना। राजा छाटी उम्र के भी हो तो भी व आदरणीय हाते हे इस राजधर्म का याद रखना।[3]

उपयुक्त उद्धरण इसी तथ्य को प्रमाणित करते ह कि राम के मतानुसार राजा का माता पिता भाइ वहिन आदि के साथ भी परिजनोचित सम्वन्धा का विच्छेद हो जाता ह आर वह केवल राजा होता ह तथा सभी परिजन अन्य नागरिको के समान उसकी प्रजा क अग की भाति रह जाते ह। राजा के विपय म आयु की मर्यादा को भी राम स्वीकार नही करत आर उसम यह स्वाभाविक दोष मानत ह कि वह गुणवान् पुरुपा की प्रशसा सुनने के लिए भी तेयार नहीं होता। यद्यपि भरत म इस प्रकार के दाप दिखाई नही दत आर न उनके व्यवहार के विपय मे भी एसा कुछ कहा

1 वा रा 3 2 19 20 2 वा रा 2 26 24 27 3 वा रा 3 58 20

जा सकता ह तथापि राम उन पर इस प्रकार के आराप लगाते हा रहे। वस्तुत राम क्षात्रधर्म के इतने जबरदस्त समर्थक थ कि अन्य आचार मर्यादाओं का उन्हान काई महत्त्व नहा दिया। साता के प्रति उनका व्यवहार भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता ह। भरत पर उनका यह सन्देह भी बराबर बना रहा कि वह कासल्या आर सुमित्रा के साथ ककेयी के समान ही सद्व्यवहार नहा करग। सुमन्त्र के द्वारा उन्हाने भरत से कहलाया था कि महाराज के प्रति जसा तुम्हारा बर्ताव ह वसा ही समान रूप स सभी माताओ के प्रति भी हाना चाहिए। तुम्हारी दृष्टि म ककेयी का जो स्थान ह वही सुमित्रा आर मेरी माता कासल्या का भी हाना उचित ह। इन सबम काई अन्तर न रखना।[1] राम के इन विचारा स प्रकट हाता ह कि वह भरत की सदाशयता के प्रति आश्वस्त नहीं रहे।

राम की नारी के प्रति व्यवहार विषयक आस्थाओ की समीक्षा आगे की गयी ह। यहा यह कहना आवश्यक ह कि सीता के प्रति राम ने जिस प्रकार अनुदारता बरती आर विभिन्न अवसरा पर उन्हाने जो विचार व्यक्त किये उनसे यही प्रकट *हाता ह कि राम के मतानुसार व्यक्ति के जीवन म पत्नी का काई विशेष स्थान नहीं।* एक पत्नीव्रत का निर्वाह करते हुए भी उनके मन म सीता के प्रति सम्मानजनक भावना का अभाव ही दिखाई देता ह। इन्द्रजित के बाणा से घायल हाकर जब राम आर लक्ष्मण दोनो अचेत हो गये थे आर पहले राम की चेतना लाटी तब उन्हाने लक्ष्मण के लिए शोक सन्तप्त हाकर कहा था कि ससार म सीता के समान आर भी नारिया मिल सकती ह किन्तु लक्ष्मण के समान भाई मिलना सम्भव नहीं।[2] तात्पर्य यह कि साता को वह एक सामान्य नारी के रूप म ही मानते रह। सीता के प्रकरण म यह लिखा ही जा चुका ह कि राम ने स्वय यह स्वीकार किया कि उन्हाने युद्ध आर लका विजय का परिश्रम सीता के उद्धार के लिए नहीं वरन् अपने यश की रक्षा के लिए ही किया था। सीता की अग्नि परीक्षा परित्याग आर अन्त म भूमि प्रवेश के लिए विवश किये जाने के प्रकरण भी यह सिद्ध करते ह कि राम अपने यश की रक्षा के लिए सीता का पूरी निर्ममता के साथ दु खा की भट्टी म धकेलते रहे। गर्भवती पत्नी का निर्जन वन म निष्कासित करने के लिए वे सहज ही तयार हो गये किन्तु जरा से लाकापवाद को सहन करने म उनकी अपनी सारी प्रतिष्ठा ढहती हुई दिखाई देती थी। राम के यश की रक्षा करने के लिए ही सीता ने कल्पनातीत कष्टो को सहन किया आर अपने प्राणा की भी बलि दे दी किन्तु राम उनके चरित्र पर सन्देह करते ही रहे। पूरे जीवन म राम ने पत्नी के प्रति पुरुष के कर्तव्यो का कहीं कोई सकेत नहीं किया बल्कि उनके अनुसार पत्नी ही पति के प्रति उत्तरदायी होती है आर पति को पत्नी के जीवन के साथ कसा भी खिलवाड

1 वा रा 5 2 31 35 2 वा रा 6 49 6

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 198१ दे

करन का पूरा अधिकार हाता ह। अपनी मान्यता का स्पष्ट करते हुए उन्हान चित्रकूट म भरत स कहा भी था कि लागा का अपनी स्त्रिया आर पुत्रा पर सदा पूर्ण अधिकार होता ह और व उनका चाहे जसी आज्ञा द सकते ह।[1] तात्पर्य यह कि राम पुत्रा आर नारिया का किसी भी प्रकार का अधिकार देन का समर्थन नहीं करत। स्वजना के सम्बन्ध म राम इतना अवश्य मानते ह कि छाटा भाई गुणवान् शिष्य आर पुत्र समान हात ह[2] आर आपत्ति म भी पुत्र को अपने पिता की अथवा भाई को अपने भाई की हत्या नही करनी चाहिए।[3]

समाज म पुरुष की महत्ता का राम इस सीमा तक स्वीकार करते ह कि नारी को कुछ भी अधिकार दिय जान का उन्हाने कही भी समर्थन नहीं किया आर पति सेवा म ही नारी-जीवन की पूर्णता मानते रह। यद्यपि उन्हाने नारिया के लिए व्रत-उपवास अग्निहोत्र आदि की व्यवस्था का भी स्वीकार किया ह किन्तु पति को देवाधिदव मानकर उनके हित चिन्तन स आगे सोचन विचारने तक का उस अधिकारी नही माना। पति क अतिरिक्त सास ससुर तथा परिवार के अन्य छोटे बडे सभी सदस्या की सेवा करत रहना ही राम के अनुसार नारी का धर्म ह। सीता को अयोध्या म ही रहने का निर्देश देते समय उन्हाने उनके कर्तव्या के विषय म समझाते हुए कहा था कि मर वन को चले जाने पर तुम्ह व्रत आर उपवास म ही सलग्न रहना चाहिए। प्रतिदिन प्रात काल उठकर देवताओ की विधिपूर्वक पूजा करके तुम्ह मेर पिता दशरथ की वन्दना करनी चाहिए। कासल्या वृद्धी ह आर दु ख सन्ताप ने उनका दुबल कर दिया हे अत धर्म क अनुसार तुमसे वह विशेष सम्मान पाने की अधिकारिणी ह। मेरी अन्य माताओ को भी तुम्हे प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। भरत आर शत्रुघ्न का भी तुम्ह अपने भाई आर पुत्र के समान ही समझना चाहिए।[4] सुमन्त्र के द्वारा उन्हाने कासल्या को भी सदव धर्म-कार्य मे सलग्न रहकर अग्निहोत्र आदि करत रहन का सन्देश भेजा था।[5]

राम के अनुसार व्रत उपवास अग्निहोत्र देवपूजा नारी धर्म की आनुषगिक व्यवस्थाए हे। नारी के लिए पति सेवा ही सनातन धर्म है। कौसल्या ने जब राम के साथ ही वन जाने का आग्रह किया था तब उन्हाने नारी धर्म की व्यवस्था समझाते हुए कहा था कि पति की सेवा करते रहना ही नारी का सनातन धर्म है। अतएव जब तक दशरथ जीवित है तुमको उनकी ही सेवा करते रहना चाहिए। स्त्री के जीवन म उसका पति ही उसके लिए देवता आर ईश्वर के समान हाता ह। व्रत-उपवास म तत्पर रहकर भी जा स्त्री पति की सेवा नही करती उसे पापिया का मिलनेवाली गति की प्राप्ति हाती हे। जा स्त्री अन्यान्य देवताओ की वन्दना आर पूजा स दूर

1 वा रा 2 101 18 2 वा रा 4 18 14 3 वा रा 2 97 16 4 वा रा 2 26 29 33
5 वा रा 2 58 18

रहती है वह भी केवल पति की सेवा से ही स्वर्गलोक की अधिकारिणी होती है। अत नारी का कर्तव्य है कि वह पति के प्रिय एव हित साधन मे तत्पर रहकर सदा उसकी सेवा करती रहे। यही स्त्री का लोक और वेदसम्मत्त नित्य धर्म है। श्रुतियो ओर स्मृतियो मे धर्म की यही व्यवस्था दी गयी है।[1]

रामायणकाल मे पुरुषो के लिए स्त्रियो को निस्सकोच भाव से देखना आचार व्यवस्था के प्रतिकूल ही माना जाता था। एसा प्रतीत होता है कि नारियो का भी पुरुष समाज मे खुलकर आना अच्छा नही समझा जाता था। वे आवरण मे ही समाज के बीच मे आ सकती थी। वस्त्रो मे लिपटी हुई घर की चहारदीवारी के भीतर रहना ही नारी जीवन की सीमा मान ली गयी थी। राम की यह भी मान्यता थी कि नारी का सर्वश्रेष्ठ आवरण उसे पति से प्राप्त सम्मान और उसका सदाचार ही हो सकता है। विभीषण वस्त्राभूषणो से अलकृता सीता को जब राम के सामने लाये थे और ऋक्षो वानरो तथा राक्षसो की भीड उन्हे देखने के लिए इकट्ठी हो गया था तब विभीषण ने उस भीड को दूर हटाने का प्रयास किया था ताकि सीता सहज रूप मे आ सके। इस अवस्था मे राम ने विभीषण को रोकते हुए कहा था कि घर वस्त्र और चहारदीवारी आदि स्त्री के लिए आवरण नही हुआ करते। पति से प्राप्त सत्कार और सदाचार ही नारी का वास्तविक आवरण होता है।[2]

लका विजय के पश्चात् राम ने सीता को अपनाने की बजाय कही भी अन्यत्र चले जाने के लिए उनको स्वतन्त्र छोड दिया था। उन्होने उनको ग्रहण करने से स्पष्ट शब्दो मे इनकार करते हुए कहा था कि कोन एसा कुलीन पुरुष होगा जो दूसरे घर मे रही हुई स्त्री को मन से भी ग्रहण कर सकेगा। रावण तुमको गोद मे उठाकर ले गया और तुम पर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है। ऐसी दशा मे मै तुमको किस प्रकार ग्रहण कर सकता हू।[3] राम के ये शब्द उनके द्वारा सीता परित्याग के ही व्यजक है। अग्नि परीक्षा के बाद ही उन्होने सीता को अपनाना स्वीकार किया था। इसके पश्चात् भी जरा से लोकापवाद को सुनकर उन्होने सीता का परित्याग कर दिया। ये प्रसग राम की इसी मान्यता को प्रमाणित करते है कि वह पुरुष को पत्नी परित्याग का अधिकार देने के समर्थक रहे है। इसके विपरीत नारी द्वारा पति परित्याग को वह एक निन्दनीय क्रूर कर्म मानते रहे। कौसल्या ने जब दशरथ को छोडकर राम के साथ वन जाने का विचार व्यक्त किया था तो राम ने कहा था कि पति का परित्याग नारी के लिए बडा ही क्रूरतापूर्ण और निन्दनीय कर्म है। तुमको मन से भी एसा विचार नहीं करना चाहिए। दशरथ जब तक जीवित है तब तक उन्ही की सेवा करो। पति सेवा ही नारी के लिए सनातन धर्म है।[4] तात्पर्य यह कि नारी को

---

1 वा रा 2 24 13 21 25 28 2 वा रा 6 114 27 3 वा रा 6 115 19 20 4 वा रा 2 24 12 13

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शक्ल 10 म १०४२ ने

किसी भी दशा म पति परित्याग का अधिकार दन का राम समर्थन नही करते आर जावन भर पति, सास ससुर तथा अन्य स्वजना की सेवा करत रहना ही व नारी का सनातन धर्म मानत थ।

राम की दृष्टि म नारी सदेव रक्षणीया ह। यद्यपि उन्हान स्मार्त ऋपिया की भाति स्पष्ट रूप स पिता रक्षति कोमार जसी बात नही कही किन्तु गगा पार करन क बाद लक्ष्मण स सीता क्री सावधानीपूर्वक रक्षा करन का उन्हाने सकत किया था।[1] सामान्यतया व नारी के प्रति सदव उदारतापूर्ण व्यवहार के समर्थक थ। शत्रुघ्न ने जब मन्थरा का वुरी तरह घसीटा था तव भरत न राम के भय स ही उनको राकत हुए क्हा था कि यदि मुझ यह भय न हाता कि राम मुझको मातृघाती समझकर मुझस घृणा करने लगग ता म दुष्टा केकयी को मार डालता। यदि राम को मन्थरा क घसाटे जान का समाचार मिल गया ता निश्चय ही वे हमसे वालना भी छाड दग।[2] नारी वध का राम सदेव आचार-धर्म क प्रतिकूल ही मानत थे। जिन परिस्थितिया म उन्हाने ताटका का वध किया था उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका ह। शूपणखा ने रावण को राम का परिचय देते हुए कहा था कि राम ने स्त्री की हत्या हो जान के भय से ही मुझे केवल अपमानित करके छाड दिया ह अन्यथा उन्हान सहज ही खरदूषण सहित चादह हजार राक्षसा का वध कर डाला ह।[3] राम के मतानुसार नारा के क्राधयुक्त वचना को सुनकर भी पुरुष के लिए आचार-मर्यादा का परित्याग उचित नहीं। मारीच वध के अवसर पर सीता के कठार वचना को लक्ष्मण सहन नही कर मक थे। उन पर यद्यपि सीता की रक्षा का पूरा दायित्व था किन्तु सीता क कटु वाक्या स उत्तेजित हाकर व उनको अकली छाडकर राम क पास चले गय थ। लक्ष्मण का यह व्यवहार राम को अच्छा नही लगा था आर उन्हान कहा था कि तुम क्राध म भरी हुइ नारी के कठार वचना को सुनकर सीता को छोडकर चल आये यह मुझ अच्छा नही लगा।[4] राम के यह विचार उनकी दृष्टि से एक आर नारी को रक्षणीया सिद्ध करते ह आर दूसरे यह भी सकत करते ह कि नारी के किसी व्यवहार से रुष्ट होकर पुरुप का विहित आचार का परित्याग करना उचित नही हाता। असहाय अवलाआ पर शूरता दिखान आर परस्त्री हरण का भी राम कापुरुपा का काम मानत थे। युद्ध स्थल म रावण को फटकारत हुए उन्हाने कहा था कि असहाय स्त्रिया पर वीरता दिखाकर आर परस्त्रा का अपहरण जसे कापुरुपाचित कर्म करके तुम अपने को शूरवीर मानते हा। धर्म की मयादा भग करके तुमने मृत्यु को निमन्त्रण दिया ह।[5]

यद्यपि सीता को सन्देह था कि वनवास की अवधि पूरी कर अयाध्या लाटन

---

1 वा रा 2 52 95 2 वा रा 2 78 22 23 3 वा रा 3 34 12 4 वा रा 3 59 23
5 वा रा 6 103 13-14

पर राम जनक सुन्दरी स्त्रियो से विवाह कर लगे किन्तु राम न कभी किसी परस्त्री की ओर कलुषपूर्ण दृष्टि से देखा तक नहीं। सभी नारियो के प्रति मातृवत् व्यवहार को वे मानव-आचार का एक महत्त्वपूर्ण अग मानते रहे। परस्त्री की ओर देखना भी उनके विचार से आचार मर्यादा का उल्लघन है। लका विजय के पश्चात् जब सीता को उनके सामने लाया गया और विभीषण तथा अन्य सेवको ने उपस्थित समुदाय को वहा से दूर हटाने का प्रयास किया था तब राम ने स्त्रियो को देखने के सम्बन्ध म अपनी मान्यता प्रकट करते हुए कहा था कि विपत्तिकाल म पीडा के अवसरो पर युद्ध मे स्वयवर मे यज्ञ मे अथवा विवाह के समय स्त्रियो को देखने म कोई दोष नही होता। सीता इस समय कष्ट म हैं इसलिए इनको देखने मे कोई दोष नही।[1] स्त्रियो को देखने के विषय मे राम का अपना सिद्धान्त रहा है जिसे स्मार्त आचार के रूप म ही माना जा सकता है। इस आचार मर्यादा को मानते हुए भी राम ने सभी स्त्रियो को मातृवत् ही स्वीकार किया। वनगमन के समय अन्त पुर की नारियो ने उनके विषय म यही कहा था कि राम जन्म से ही कौसल्या के प्रति जैसा व्यवहार करते रहे है वैसा ही दूसरी स्त्रियो के साथ किया करते थे।[2] सीता ने भी अनसूया से राम के विषय म बतलाते हुए कहा था कि राम कौसल्या के साथ जैसा बर्ताव करते है वैसा ही दशरथ की अन्य रानियो के साथ भी करते है। यदि दशरथ ने किसी स्त्री की ओर प्रेम दृष्टि से एक बार देख भी लिया हो तो उस स्त्री के प्रति भी राम माता के समान ही व्यवहार करने लगते है।[3] कन्या बहन पुत्र वधू और छोटे भाई की पत्नी को समान रूप से समादरणीया मान कर इनके प्रति कामी की भाति व्यवहार को वे एक जघन्य अपराध ही मानते थे और इसी कारण उन्होने बाली का वध कर डाला था।[4]

मनु आदि स्मृतिकारो ने नारी को रक्षणीया मानते हुए उसके स्वाभाविक गुण दोषो का विवेचन कर पुरुषो को इस बात के प्रति सावधान किया है कि कुल और परिवार की भलाई के लिए नारियो को सदैव सन्तुष्ट रखने के प्रयास किये जाने चाहिए। इसके लिए मनु ने अनेक उपायो के प्रति भी सकेत किया है। राम स्मृतिकारो की उसी आचार मर्यादा को स्वीकार करते है। स्मृतिकारो की भाति वे यह भी मानते है कि न तो स्त्रियो पर कभी विश्वास करना चाहिए और न उन्हे कोई गोपनीय बात बतलायी जानी चाहिए। चित्रकूट म भरत से अनेक प्रश्न करते हुए उन्होने यह भी पूछा था कि क्या तुम अपनी स्त्रियो को सन्तुष्ट रखते हो और क्या वे तुम्हारे द्वारा भली भाति सुरक्षित है ? इसके साथ ही उन्होने भरत से पूछा था कि तुम स्त्रियो पर विश्वास करके उनको गुप्त बात तो नहीं बतला देते ?[5] राम के अनुसार स्त्रियो पर विश्वास करना खतरे से खाली नही।

---

1 वा रा 6 114 18 29 2 वा रा 2 20 3 3 वा रा 2 118 5-6 4 वा रा 4 18 19 23
5 वा रा 2 100 49

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र 10 स 1983

यद्यपि राम ने सनातन धर्म की अनेक स्थला पर व्याख्या की हे आर उसे श्रयस्कर भी कहा हे किन्तु यह कहना अधिक सगत होगा कि क्षात्रधर्म का ही उन्होने अनुसरण किया था। कोसल्या सीता, लक्ष्मण, भरत तथा अन्य चरित्र नायका को वे सदेव स्मार्त धर्म का ही उपदेश देते रहे थे किन्तु उनके मस्तिष्क म स्वय के विषय में लगातार यह वात वनी ही रही थी कि वह एक राजकुमार आर अयोध्या क राजा है। राज्य से वचित हाकर वनवास की अवधि म भी उनको यह वात कभी भूली नही आर उन्होने राजाचित धम का ही निवाह किया। राजा क रूप म इस वात पर भी उनकी दृष्टि लगातार वनी ही रही थी कि समाज के शप वर्गो आर व्यक्तिया का धर्म आर आचार-मयादा पर स्थिर वनाये रखन का पूरा दायित्व राजा पर होता ह। खर, दूषण वाली रावण आदि पर उन्हाने विजय प्राप्त की थी तथा सुग्रीव ओर विभीषण उन्हीं की कृपा से राजा वने थे अतएव इन सवका वह अपनी प्रजा का अग ही मानत रह थे। भरत का अवश्य ही उनकी कृपा के विना राज्य प्राप्त हुआ था आर व कम से-कम चादह वर्ष तक उनको अपने अधीन भी नही कर सकते थ अतएव भरत के प्रति उनका व्यवहार सर्वथा अलग रहा था। वनवास की अवधि म वह वानप्रस्थ आश्रम धर्म का निर्वाह कर सकते थे किन्तु जेसा अन्यत्र सकेत किया जा चुका है इस अवधि म जटाजूट आर वल्कल वस्त्र धारण करक भी उन्हान शूरवीर क्षत्रिया के समान आचरण किया। यह वात निपादराज गुह क वाक्या स प्रमाणित भी हा जाती ह। भरत का राम के विषय म वतलाते हुए उसने कहा था कि मने राम के स्वागतार्थ अनक प्रकार के खाद्य पदार्थ आर फल उनके सामने प्रस्तुत किये थे किन्तु राम न क्षत्रिय धर्म का स्मरण करते हुए उनका स्वीकार नही किया।[1]

वाल्यावस्था से ही धनुप-वाण आर तलवार राम क जीवन क अभिन्न अग रहे ह। जव वह विश्वामित्र के साथ गये थे तव उनक हाथा म धनुप वाण थे कमर म तलवार लटक रही थी आर हाथो म गाध के चमडे के दस्ताने थे।[2] विशाला जनपद का राजा सुमति उनके इस वीर वेप का देखकर स्तम्भित रह गया था। वनवास की अवधि म भी उन्हाने वानप्रस्थ का जीवन विताने के स्थान पर धनुर्धर क्षत्रिय का जीवन ही व्यतीत किया था। महर्पि अगस्त्य ने अपने दिव्य धनुप वाण तूणीर ओर तलवार भट कर उनको आर भी अधिक शस्त्रसम्पन्न वना दिया था। इस प्रकार राम धमचारी के स्थान पर शस्त्रधारी के रूप मे ही दिखाई दत ह। उनक इसी आचार-व्यवहार का स्मरण कर मन्थरा ने ककेयी से कहा था कि राम क्षत्रिया के आचार के विशपज्ञ ह तथा अवसर के अनुसार ही कार्य करते ह। अत तुम्हार पुत्र क प्रति उनक व्यवहार की कल्पना स भी म काँप जाती हू।[3]

यद्यपि राम का मासभाजी कहना कठिन हे किन्तु उनक इस आचरण की ओर

---

1 वा रा 2.50 43 2 87 16 2 वा रा 1 22 9 3 वा रा 2 8 8

से ऑख फेर लेना भी उचित नही। अन्य क्षत्रिय राजकुमारो की भॉति राम को भी शिकार खलने का शोक रहा था। सरयू के तट पर शिकार खेलने म उनका बहुत आनन्द आता था। वनवास के लिए अयोध्या से दूर गामती आर स्यन्दिका नदियो को पार करते समय उनका मन इस कल्पना से दु खी हो गया था कि अब उनको सरयू तट पर शिकार खलने का अवसर सुलभ नही रहेगा। उन्हाने सुमन्त्र से कहा था कि म कब लाटकर माता पिता से मिलूँगा आर कब मृगया क लिए सरयू के तट पर भ्रमण करूँगा ? सरयू के तट पर शिकार खेलना मुझे बहुत रुचिकर प्रतीत हाता है। लोक म राजर्षिया द्वारा सम्मत यह एक अनुपम क्रीडा है। इस लाक म वन म जाकर शिकार खेलना राजर्षिया की क्रीडा के लिए प्रचलित हुआ था। अन्य धनुर्धर मनुष्या क लिए भी यह क्रीडा अभीष्ट है।[1] भरद्वाज क आश्रम स चित्रकूट तक का मार्ग भी उन्हान शिकार खेलते हुए ही तय किया था।[2] यहा उन प्रसगा का उद्धृत करन की काई आवश्यकता नही जिनके अनुसार मारीच वध क समय सीता उनकी अनेक पशुआ के मास के साथ लोटन की प्रतीक्षा करती रही थी अथवा जटायु की अन्त्यष्टि क समय अनेक पशुपक्षिया का मारकर उनका मास प्रतान्न के रूप म विखर दिया गया था। मृग-मारीच का वध करन के लिए चलने से पहले भी उन्हान लक्ष्मण स मृगया क विषय म कहा था कि राजा लाग बडे बड वना म मृगया खेलत समय मास के लिए आर शिकार का शाक पूरा करने के लिए भी धनुष हाथ म लकर मृगा का वध करत ह।[3] इसका तात्पय यही कि शिकार खलने का राम राजधर्म का एक अग ही मानते थ।

मनु आदि स्मृतिकार राजा को जिस रूप म महनीय देवापम आर अलध्य मानत ह राम भी प्राय उसी का समथन करत ह। समुद्र क प्रति राप प्रकट करन के अवसर पर राम न लक्ष्मण स अपन विचार व्यक्त करते हुए कहा ही था कि साम नीति (शान्ति) क द्वारा इस लाक म न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती हे आर न यश का प्रसार ही सम्भव हाता ह।[4] राम क इस वाक्य से दो बात स्पष्ट हाती ह। प्रथमत व बडे हा यश कामी थ आर दूसर दण्डशक्ति का ही सिद्धि का एक मात्र उपाय मानते थे। राम की यश कामना प्राय सभी प्रसगा स प्रकट होती हे आर व अपने यश का रक्षा के लिए हा सीता जेसी साध्वी को भी दुखा की भट्ठी म झाकते रह थ। धम की स्थापना क लिए राजा आर राजदण्ड ही राम क मतानुसार एकमात्र माध्यम ह। वनगमन के विषय म दशरथ की आज्ञा का उन्हाने केवल पिता की आज्ञा मानकर हा स्वीकार नहा किया था वरन् उन्ह यह भी ध्यान रहा था कि वह एक राजाज्ञा थी। उन्हाने कासल्या स कहा था कि पिता की आज्ञा का पालन करना मरा

1 वा रा 2 49 1 1 2 वा रा 2 55 32 3 वा रा 3 43 31 4 वा रा 6 21 16

र तुम्हारा दाना का कर्तव्य ह क्याकि राजा सब लागा का स्वामी गुरु, श्रेष्ठ, ईश्वर र प्रभु हाता ह।[1]

सीता का भरत की आ ा पालन करते रहन की राम ने पूरी सावधानी स शिक्षा थी। इस सन्दर्भ म व्यक्त राम क विचारा से यह आभास ही नही हाता कि उन्हाने ता का इस प्रकार का उपदश परिवार क वरिष्ठ सदस्य क प्रति आचार-मर्यादा । ध्यान म रखकर दिया था वरन् भरत का राजा का रूप ही उनके मस्तिष्क म ा आर राजा के प्रति कर्तव्या की आर ही उन्हान सीता का ध्यान आकृष्ट किया ा। राजा क शील स्वभाव के विषय म बतलात हुए साता से उन्हाने कहा था कि जा लाग अनुकूल आचरण के द्वारा प्रयत्नपूर्वक सेवा करने पर ही प्रसन्न हाते ह था विपरीत बर्ताव करने पर व कुपित हो जाते ह। राजा अहित करनेवाले अपने ारस पुत्र का भी त्याग दते ह आर आत्मीय न हाने पर सामर्थ्यवान् व्यक्तिया को अपना बना लते ह। अतएव तुमको भरत के अनुकूल बर्ताव करते हुए अयोध्या म रहना चाहिए।[2] राम के जीवन स भी यह सिद्ध होता है कि उन्हान राजा के इसी शील-स्वभाव का अपनाया था आर इसी कारण सीता को परित्याग का दण्ड भोगना पडा तथा सुग्रीव आर विभीषण जेस व्यक्ति उनक मित्र बन गये थे। राम की यह भी मान्यता थी कि राजा को ब्राह्मणा की भाँति आसनब ध होकर नही बल्कि दण्डहस्त हाकर ही अपना काम करना चाहिए। भरत उनको अयाध्या लाटने का अनुरोध करते हुए जब कुशासन बिछाकर बठ गये थे तब राम ने कहा था कि राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रिया के लिए ब्राह्मणा के समान इस प्रकार के आचरण का कोई विधान नहीं हे।[3]

राजधर्म क विषय मे पूरे विस्तार क साथ राम न अपने विचार व्यक्त किये ह। राजा के रूप मे गो ब्राह्मण आर पूरे देश के हिता पर उनका ध्यान सदेव कन्द्रित रहा। ताटका वध के अवसर पर उन्होने विश्वामित्र स कहा था कि गो ब्राह्मण ओर दश का हित करन के लिए म आपकी आ्ा का पालन करने के लिए सब प्रकार से तेयार हूँ।[4] पुरवासिया का दु खी देखना भी उन्ह सह्य नही था। तमसा के तट पर उनका लाटा ले जाने के लिए आग्रहशील पुरवासिया को वृक्षा की जड़ो स सटकर साते हुए देखकर उन्हाने लक्ष्मण से कहा था कि लोगो को दु ख से मुक्त करना ही राजकुमारो का कर्तव्य ह।[5] दो सन्दर्भ ऐसे भी रामायण मे प्राप्त होते हे जिनके आधार पर राम के राजधर्म का उद्देश्य अत्यन्त सीमित दिखाई देता हे। सुमन्त्र का अयोध्या के लिए लाटाते समय राम ने उनसे कहा था कि उन्हे अयोध्या लोटकर एसे प्रयास करने चाहिए जिनसे दशरथ को किसी प्रकार का कष्ट न हो। इसी सन्दर्भ

1 वा रा 2 24 16 21 2 वा रा 2 26 34 37 3 वा रा 2 111 17 4 वा रा 1 26 5
5 वा रा 2 46 23

म राम ने कहा था कि राजा लोग इसीलिए राज्य का पालन करते ह कि किसी भी कार्य म उनकी इच्छापूर्ति मे विघ्न न डाला जाय।[1] इसी प्रकार चित्रकूट मे जब लक्ष्मण भरत का वध कर डालने के लिए तैयार हो गये थ तब राम ने उनको रोकते हुए कहा था कि म भाइया के सग्रह और सुख के लिए ही राज्य की इच्छा करता हूँ। यदि भरत शत्रुघ्न आर तुमको छोडकर मुझे कोई सुख मिलता हो तो अग्निदेव मुझको जलाकर भस्म कर डाले।[2] इस अवसर पर निश्चय ही राम ने बन्धु बान्धवो और मित्रा के हित की कामना भी की है और अधर्म से राज्य प्राप्ति का विरोध किया किन्तु उनके विचारा म व्यापक लोकहित की कामना स्पष्ट नही हो सकी।

राजा के कर्तव्य के विषय मे राम के विचार पूर्णतया स्पष्ट ह। उन्होने राजा की दण्डशक्ति का सर्वत्र समर्थन किया हे ओर ऐसा प्रतीत होता हे मानो राम के अनुसार राजा को अपराधिया ओर प्रतिपक्षिया के प्रति किंचित् भी दया अथवा उदारतापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। उन्होने कभी किसी को क्षमा नहीं किया आर न क्षमादान का समर्थन ही किया। उनकी दृष्टि म जो भी व्यक्ति अपराधी रहा उसे अपने प्राणा से ही हाथ धोना पडा। वाली से उन्होने कहा था कि जो व्यक्ति लोकाचार से भ्रष्ट होकर लोक विरुद्ध आचरण करता हे उसे रोकने के लिए म दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नही देखता। क्षत्रिय-कुल म उत्पन्न होकर भी म तुम्हारे पापा को क्षमा नही कर सकता।[3] राजधर्म के विषय मे राम मनु को ही प्रमाण मानते थ। वाली के प्रश्ना का उत्तर देते समय उन्होने मनु के सिद्धान्तो का प्रमाण दते हुए कहा था कि यदि राजा पापी को उचित दण्ड नहीं देता हे तो उसे स्वय उसके पाप का फल भोगना पडता हे। दण्ड देने म प्रमाद करने से राजा को दूसरो के किये हुए पापा का परिणाम भागना पडता हे और जब वे प्रायश्चित्त करते हे तभी उनका दाष दूर होता हे।[4] जो दण्डनीय पुरुष को दण्ड देता हे वह व्यक्ति दण्ड देकर आर दण्डनीय पुरुष दण्ड भाग कर ही कृतार्थ होत ह।[5] लका म पहुचकर जब राम न अगद का रावण क पास सन्देश लेकर भेजा था तब भी उन्होने रावण से कहलाया था कि म अपराधिया को दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने मेरी पत्नी का अपहरण किया ह उस अपराध का दण्ड देने क लिए ही म लका के द्वार पर आकर खड़ा हू।[6] राम क द्वारा किसी को भी क्षमादान का एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। उनक इसी उग्र रूप को देखकर वालि वध के समय वानरों ने तारा से कहा था कि राम का रूप धारण करके स्वय यमराज आ पहुचा हे आर वाली को मारकर अपने साथ लिये जा रहा ह।[7] तारा ने भी इन्हीं शब्दा का दुहराते हुए कहा

---

1 वा रा 2 52 25 2 वा रा 2 97 6,8 3. वा रा 4 18 21 22 4 वा रा 4 18 32 34
5 वा रा 4 18 61 6 वा रा 6 41 64 7 वा रा 4 19 11

था कि राम के रूप म काल तुमको खींचकर लिये जा रहा ह।[1] य सभी प्रसग राम के क्षमारहित हाकर दण्ड देने के आचार को ही प्रमाणित करत ह।

सुग्रीव आदि सेनानायको के विरोध के वावजूद राम न शरणागत को अभयदान का जवरदस्त समथन किया है। इस सम्वन्ध म व महर्षि कण्व और उनके पुत्र कण्डु द्वारा दी गयी आचार-व्यवस्थाओ के अनुयायी रह। विभीपण जव रावण से लड़ झगड़कर राम की शरण म आया था तव सुग्रीव न उसे शरण दिय जाने का जबरदस्त विरोध किया था। उन्हान उसे कद कर मरवा डालन का प्रस्ताव किया था। राम न सुग्रीव क प्रस्ताव का अस्वीकार करत हुए कण्डु की व्यवस्थाओ का प्रमाण दत हुए कहा था कि यदि शत्रु भी शरण म आये और दीन भाव से हाथ जाडकर दया की याचना करे ता उम पर प्रहार नही करना चाहिए। शत्रु दु खी हो या अभिमानी हा यदि वह शरण म आय ता सत्पुरुप को अपने प्राणा की परवाह न करके भी उसकी रक्षा करनी चाहिए। यदि वह भय मोह अथवा किसी अन्य कारण से न्यायानुसार यथाशक्ति उसकी रक्षा नही करता तो उसक उस पापकर्म की लाक म बड़ी निन्दा हाती ह। यदि शरणागत पुरुप सरक्षण न पाकर रक्षक के दखत दखत नष्ट हा जाय तो वह उसके सभी पुण्या को अपने साथ ले जाता ह। शरणागत का त्याग स्वर्ग ओर सुयश की प्राप्ति का मिटा देता आर वल वीर्य का नाश कर देता ह। इस प्रकार के विचारा को व्यक्त कर राम ने सुग्रीव से कह दिया था कि म महर्षि कण्डु के वचना का ही पालन करूँगा। शरणागत को अभय देना उनका व्रत रहा ह आर इसी का पालन करते हुए उन्हान विभीपण को अभयदान देकर अपना लिया था।[2] यद्यपि इसके पहले राम ने यह विश्वास भी प्रकट किया था कि विभीपण उनका कुछ भी अहित नहीं कर सकता ओर ससार के सभी राक्षसा पिशाचा दानवा को मारने की उनम सामर्थ्य भी थी तथापि महर्षि कण्डु की व्यवस्थाओ के प्रति उन्हाने जा निष्ठा प्रकट की हे उससे शरणागत को अभय देने के उनके आचार क प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता।

राम के क्रोध के विपय म पहले ही लिखा जा चुका हे। सिद्धान्त रूप से व यह मानत थे कि किसा एक व्यक्ति के अपराध के कारण पूरी जाति को दण्ड दना अनुचित हे। इन्द्रजित ने अपने पराक्रम स जब युद्धभूमि को वानरा आर सेनानायको की लाशा स पाट दिया था तव लक्ष्मण न क्रोधपूवक समस्त राक्षसो के सहार के लिए ब्रह्मास्त्र प्रयोग करने का विचार किया था। राम न लक्ष्मण को रोकते हुए कहा था कि एक के कारण पृथ्वी के समस्त राक्षसो का वध करना उचित नहीं।[3] राम का यह सिद्धान्त उनके क्रिया-व्यापार म पूरी तरह चरितार्थ हुआ दिखाई नहीं देता। यह पहल ही लिखा जा चुका हे कि पर्वत आर समुद्र के प्रति राप प्रकट करते हुए

---

1 वा रा 4 25 43 2 वा रा 6 18 26 34 3 वा रा 6 80 38

उन्होंने समस्त वनचरो और जलचरो को भी मार डालने के लिए धनुष हाथ म उठाया था। रावण के विषय म जिज्ञासा प्रकट करते समय उन्होंने साफ कहा था कि केवल रावण के अपराध क कारण हा म समस्त राक्षसा का विनाश कर डालूगा।[1]

राम की सेना के द्वारा रावण क दूत बचारे शुक आर शार्दूल के पीटे जाने की घटना भी विचित्र ही हे। राम के समुद्र-तट पर पहुँचने पर शुक रावण की ओर स सुग्रीव को यह सन्देश दने आया था कि चूकि रावण न तुम्हारा कोई अहित नहीं किया हे अतएव तुमको किष्किन्धापुरी लोट जाना चाहिए। सुग्रीव और उनक सहयोगी वानरो ने बेचारे शुक को पकडकर उसकी पूरी दुर्दशा कर डाली थी। उसके सार पख नाच लिये गय थे ओर उसका शरीर खून से लथपथ हा गया था। वह करुणा भरे स्वर मे चिल्लाता ही रहा कि दूत को पीटना धर्म-मर्यादा का उल्लघन ह किन्तु उसकी किसी न परवाह नही की। राम दूत के इस तरह पीटे जाने को देखते रहे थे और उन्होंने वानरों का उस छाड ?ने का निर्देश भी दिया था फिर भी उसका तब तक बन्दी ही बनाये रखा गया जब तक उन्होंने समुद्र पर पुल का निर्माण कर उसे पार कर लका मे पहुचकर सेना को युद्ध क निमित्त यथास्थान नियुक्त नही कर दिया। यह सब काम पूरा हो जाने क बाद ही राम ने शुक को मुक्त किया था। इसी प्रकार शार्दूल को भी वानरो द्वारा बुरी प्रकार पीट दिया गया था। दूत को पीटकर वानरा ने धम मर्यादा का जा उल्लघन किया उसक प्रति राम ने किचित् भी रोष प्रकट नही किया।

क्षात्रधर्म का अनुसरण करते हुए राम न जिस प्रकार का व्यवहार किया उसका विवचन करने के पहले उनके सिद्धान्तो की समीक्षा ही अधिक सगत होगी। राज्य की सुरक्षा को कठिन कार्य मानते हुए राजा को सदव सावधान रहने की आवश्यकता पर राम न बराबर बल दिया हे। निषादराज गुह और सुग्रीव को उन्होंने सेना कोष दुग आर पूरे जनपद के विषय मे निरन्तर सावधानी बरतन क लिए सचेत किया था।[2] अभिषेक क पश्चात् सुग्रीव विलास-क्रीडाओ म इस प्रकार रम गया था कि वह सीता की खोज के विषय म अपनी प्रतिज्ञा को भी भूल बैठा था। हनुमान द्वारा समझाये जाने पर और लक्ष्मण द्वारा क्रोध प्रकट करने पर ही उसे अपने कर्तव्य का स्मरण हुआ था। उसको निरन्तर तारा और रुमा क साथ क्रीडारत देखकर ही राम ने उससे कहा था कि श्रेष्ठ राजा को धर्म अर्थ और काम के लिए समय का विभाग करके उचित समय पर ही उनका सेवन करना चाहिए। जो धर्म अर्थ का परित्याग कर केवल काम का ही सेवन करता हे वह राजा वृक्ष की शाखा के अग्र भाग पर सोये हुए मनुष्य के समान होता है जो गिर पडने के बाद ही होश मे आता ह। जो राजा शत्रुओ के वध और मित्रो के सग्रह म सलग्न रहकर उचित समय पर ही

1 वा रा 4 6 25 2 वा रा 2 52 72

अम्वा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 1983 को

धर्म अर्थ और काम का सवन करता ह उसी का धर्म-फल का लाभ मिलता है।[1]
शत्रुओं से युद्ध करते समय राम इस बात क प्रति भी पूरी सावधानी वरतत थ कि शत्रुओ की कमजारी की उनका पूरी जानकारी रह आर स्वय उनकी कमजारियाँ विपक्षिया के लिए सर्वथा अज्ञात ही रह। लक्ष्मण जव रावण स युद्ध करन के लिए चल थ तव राम न उनको समझाते हुए कहा था कि तीना लाका के लिए अजय रावण का परास्त करन क लिए यह आवश्यक ह कि तुम उसक छिद्रा को भली भाति दखना तथा अपने छिद्रा को भी देखते हुए सावधानीपूर्वक धनुष की सहायता से अपना रक्षा करत रहना।[2] इसी सिद्धान्त का स्मरण करत हुए राम न विभीषण का सवस पहला निर्देश यही दिया था कि तुम मुझे राक्षसों की शक्ति आर उनकी कमजारिया का ठीक ठीक परिचय दो। राम की बात सुनकर ही विभीषण न राक्षसा की शक्ति क विषय म आर उन पर विजय प्राप्त करने की तरकीवा के वारे म सव-कुछ उगल दिया था।[3]

शत्रुओ के छिद्रा क अध्ययन की विधि का भी राम भली भाति जानते थे। सुग्रीव न जव विभीषण का शरण दिय जान का विराध किया था तो राम ने सुग्रीव की सलाह मानन स इनकार किया था। इसे यद्यपि राम की शरणागत का अभय दिय जान की नीति का प्रमाण माना जाता ह किन्तु स्वय राम के शब्दा म इसका वास्तविक रहस्य कुछ दूसरा ही रहा था। सुग्रीव क अनुसार विभीषण अपने सकटग्रस्त भाई का छाडकर चला आया था आर इस प्रकार वह अपन स्वभाव के अनुसार राम का भी धाखा द सकता था। सुग्रीव के विचारा स कोई भी व्यक्ति सहमत हा सकता ह किन्तु राम की राजनीतिक सूझवूझ आश्चर्यजनक आर अत्यन्त विलक्षण रही ह। उन्हाने सुग्रीव स कहा था कि विभीषण का अपना लेने म मुझे अत्यन्त सूक्ष्म अथ दिखाइ दता ह। अपने आशय को स्पष्ट करत हुए उन्हान आगे कहा था कि राजा क कुल म उत्पन्न भाई वन्धु तथा पड़ोसी देशा क राजा ही उसके शत्रु हात ह आर यही लाग राजा के सकटग्रस्त हाने पर उस पर आक्रमण कर वैठत ह। राजा लाग प्राय अपन कुल म उत्पन्न भाई-वन्धुआ का अपना हितैषी मानत ह जवकि वास्तविकता यह ह कि यही भाई-वन्धु सन्देहास्पद हुआ करते ह। विभीषण से स्वय उसके कुल—रावण को ही भय हो सकता ह। यह राज्य प्राप्ति का आकाक्षी भी ह इसलिए इसस हम लोगा को भयभीत होन की आवश्यकता नही। विभीषण का अपना लेन से राक्षसा म फूट भी पड़ जाएगी जिसके कारण ये नष्ट हा जाएग।[4]

राजनीति के उपयुक्त सूक्ष्म सिद्धान्ता के अनुसार ही राम ने विभीषण को शरण दी थी। उन्हान रावण-वध क पश्चात् उस लका के राज्य पर अभिषिक्त करने का आश्वासन ही नहीं दिया वल्कि लक्ष्मण द्वारा समुद्र स जल मगाकर उसका अभिषेक

---

1 वा रा 4 38 20 23 2 वा रा 6 59 50 3 वा रा 6 19 7 4 वा रा 6 18 9 14

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 1983 को सेवढा

ी उत्तम कार्यो म नियुक्ति के पात्र होते ह। यद्यपि राजा के लिए दण्डशक्ति का प्रयोग करना ही पड़ता हे तथापि कठोर दण्ड-व्यवस्था के कारण प्रजा म विद्रोह की भावना उत्पन्न नहीं हाने देना चाहिए। यदि प्रजा से कठोरतापूर्वक अधिक कर वसूल किया जाता हे ता वह राजा का उसी प्रकार तिरस्कार करन लगती है जिस प्रकार पवित्र याजक पतित यजमान का अथवा स्त्रिया कामचारी पुरुष का। राजा को चाहिए कि उपायकुशल भृत्या में विद्रोह की आग भडकानेवाले ऐश्वर्यकामी शूरवीर पुरुष को मरवा डाले। यदि इसमे असावधानी बरती गयी तो वह पुरुष राजा का नाश कर डालता हे।

सेना के विपय म भी राम की विशिष्ट नीति रही हे। उनके अनुसार शूरवीर धयवान बुद्धिमान पवित्र कुलीन चतुर आर राजा के प्रति अनुराग रखनेवाले दक्ष व्यक्ति को ही सेनापति के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। आपत्तिया म भी साथ देनेवाले वलवान युद्ध विशारद, पराक्रमी पुरुयो को ही सेना के अन्य प्रमुख पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए आर राजा उनका सदेव सम्मान करता रहे। सनिका को नियत वेतन आदि के भुगतान म विलम्ब करना घातक हो सकता हे। भुगतान मे विलम्ब होने पर सेनिको म क्रोध भडक उठता है आर उससे बडे भारी जनर्थ की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।

अपने देश का निवासी विद्वान्, प्रतिभाशाली ओर आवश्यकता के अनुरूप बात करनेवाला व्यक्ति ही दूत अथवा राजदूत के रूप म सफल रो सकता हे। राजा को तीन अप्रकट गुप्तचरा के द्वारा—शत्रुपक्ष के मन्त्री पुरोहित युवराज सेनापति आदि के विपय म पूरी जानकारी एकत्र करते रहना चाहिए। इसी प्रकार अपने पक्ष के विपय म भी पूरी जानकारी गुप्तचरा के माध्यम से रखना आवश्यक है। राज्य से निष्कासित शत्रु यदि लोटकर आ जाते हे तो उनको दुर्वल समझकर उनकी उपेक्षा करना घातक हो सकता ह।

राज्य आर नगरा की सुरक्षा-व्यवस्था राजा का प्रमुख दायित्व होता हे। कृषि ओर व्यापार ही समृद्धि के मूल ह अतएव राजा का कर्तव्य हे कि वह कृपि और व्यापार मे सलग्न व्यक्तिया के हिता का पूरा ध्यान रखे। राजा को अपनी स्त्रियो को पूर्णतया सन्तुष्ट रखने के सभी उपाय करने चाहिए किन्तु उन पर विश्वास करते हुए अपनी गोपनीय वात वतला देना उचित नही। वना ओर वन्य पशुआ की सुरक्षा भी राजा का कर्तव्य ह। प्रतिदिन पूर्वाह्नकाल म नगरवासिया स मिलना भी राजा के लिए आवश्यक हे। कर्मचारिया के साथ मध्यम स्थिति का अवलम्बन ही हितकर होता ह अतएव राजा का उनके प्रति इस प्रकार का व्यवहार होना चाहिए कि न तो उनके मन मे भय की भावना ही उत्पन्न हो और न निर्भीक होकर राजा के निकट ही आते रहे। राज्य की आय अधिक और व्यय कम होना चाहिए तथा राज्य का धन अपात्रा के हाथा म नहीं जाना चाहिए। राज्य की सम्पत्ति देवता पितर ब्राह्मण

अतिथि याद्धाओ और मित्रो पर ही व्यय होना चाहिए। ऐसी स्थिति राज्य म उत्पन्न ही नहीं होनी चाहिए कि निर्दोष व्यक्ति को दण्ड भोगना पड़े और अपराध सिद्ध होने पर भी अपराधी को मुक्त कर दिया जाय। गरीबो को समुचित न्याय मिलने की व्यवस्था आवश्यक है। निरपराध व्यक्तियो को राज्य के मन्त्री धन-लाभ के कारण यदि दण्डित करते है तो उनके आसू राज्य का नाश कर डालते है। नास्तिकता असत्य भाषण क्रोध प्रमाद दीर्घसूत्रता विद्वानो का सग न करना आलस्य इन्द्रियो के वश म रहना राजकार्यो के विषय म अकेले ही विचार करना मूर्खो से सलाह लेना निश्चित कार्यो को प्रारम्भ न करना मन्त्रणा को गुप्त न रखना मागलिक कार्यो का न करना तथा सभी शत्रुओ पर एक साथ चढाई कर देना राजा के दोष होते है। इन पर विजय पाकर ही राजा सफल हो सकता है।

सीता और कौसल्या को परामर्श देते समय राम ने उनसे भरत के प्रति राजोचित व्यवहार करते रहने की बात कही ही थी। वाली ने जब कठोर वाणी में राम को फटकारा था तब भी राम ने यही कहा था कि राजा के प्रति प्रत्येक व्यक्ति का सम्मानपूर्ण व्यवहार ही करना चाहिए। न तो राजा की निन्दा ही की जानी चाहिए और न उससे अप्रिय बात कही जानी चाहिए।[1] इससे यह भी व्यजित होता है कि राम वनवास की अवधि म भी अपने को राजा ही मानते थे। राजा के रूप म राम यह भी मानते थे कि शूरवीर योद्धा को पलायमान शत्रु पर प्रहार नहीं करना चाहिए। मेघनाद के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए जब लक्ष्मण ने समस्त राक्षसो का सहार कर डालने की बात कही थी तब राम ने अपनी युद्ध-नीतियो को स्पष्ट करते हुए कहा था कि न तो एक के अपराध के कारण समस्त राक्षसो का वध करना ही उचित है और न युद्ध से विमुख होकर भागते हुए को, प्राण रक्षा के लिए छिपे हुए को शरण में आये हुए को और विक्षिप्त को मारना ही कर्तव्य है।[2]

राजा के लिए दूत के महत्त्व को भी राम ने स्वीकार किया है। हनुमान के दूत-कर्म की उन्होने अनेक प्रकार से प्रशसा की है। ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान से बातचीत करने के पश्चात् उन्होने लक्ष्मण से कहा था कि जिस राजा के पास हनुमान के समान दूत न हो उसके कार्य की सिद्धि सन्दिग्ध ही रहती है। जिसके पास इनके समान उत्तम गुणो से युक्त कार्यसाधक दूत होते है उसके सभी कार्य बातचीत से ही सिद्ध हो जाते है।[3]

क्षात्रधर्म के प्रति राम की आस्थाओ की उपर्युक्त समीक्षा पाठको म यह विश्वास उत्पन्न कर सकती है कि वे एकान्तत क्षात्रधर्म के ही समर्थक थे। यह कहना आवश्यक है कि स्मार्त ऋषियो ने जब अपनी आचार व्यवस्थाओ को पूरी दृढता के साथ स्थापित करने का प्रयत्न किया था तब उन्होने राजधर्म को अपनी व्यवस्था

---

1 वा रा 4 18 42 2 वा रा 6 80.39 40 3. वा रा 4 3.34 35

अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

चैत्र शुक्ल 10 स 1983 को मव

का ही एक अविभाज्य अग मान लिया था। मनु आर यानवल्क्य आदि ऋपिया न राजा के कर्तव्यों का जिस प्रकार निर्देश किया हे उसस स्पष्ट हे कि क्षात्रधर्म भी सनातन धर्म का एक अग वन गया था। राजा के ऊपर दुहरी जिम्मदारी रहा करती थी। एक तो उसकी अपने वेयक्तिक जीवन म धर्म-व्यवस्थाआ का पालन करना था ओर दूसरे यह भी उसकी जिम्मदारी थी कि प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति विहित मर्यादाआ का अनुसरण करता रह। यदि कोई व्यक्ति उन व्यवस्थाआ को भग करता था अथवा किसी दूसर को इसके लिए प्रेरित या मजवूर करता था तो वे दोना ही राजा की दृष्टि म अपराधी ओर दण्डनीय होते थे। अपराधी को दण्ड न देना भी राजधर्म का उल्लघन था क्याकि ऐसी स्थिति मे प्रजा के अन्य वर्गो की व्यवस्था भग होने का भय उत्पन्न हो जाता था। राम ने इन दोना दायित्वा को पूरी तरह वहन किया। वनवास की अवधि म भी उन्हाने स्वय को राजधर्म के निर्वहण के दायित्व स कभी मुक्त नही माना। ककेयी के द्वारा दिय गये वल्कल वस्त्रो ने उनको क्षात्रधर्म के पालन से मुक्त नहा कर दिया था। स्मार्त ऋपिया न पुरुप के व्यक्तिगत जीवन के लिए जो व्यवस्थाएँ निधारित की थी राम ने उनका भी पूरी निप्ठा के साथ पालन किया था।

दा प्रसग ऐसे भी मिलते हे जिनके अनुसार राम न केवल क्षात्रधर्म का वकार वतलाते हुए धर्म का अनुसरणीय कहा। राम के निर्वासन क विषय म दशरथ केकेयी क निर्णय से क्रुद्ध लक्ष्मण ने जव धनुप वाण के सहारे दशरथ को कद कर लेने आर वलपूर्वक अयोध्या के राज्य पर अधिकार कर लेन की वात कही तव उनको शान्त करते हुए राम ने कहा था कि कोसल्या को सत्य आर मेरा अभिप्राय न जानने के कारण ही दु ख हो रहा ह। ससार मे धम ही सवस श्रेष्ठ हे। धर्म म ही सत्य की प्रतिप्ठा ह। धर्म के आश्रित हाने के कारण पिता का दिया हुआ निर्देश भी उत्तम ह। धर्म का आश्रय लेकर रहनेवाले पुरुप को पिता माता अथवा ब्राह्मण के वचना की अवहेलना नही करनी चाहिए। इसलिए तुम केवल क्षात्रधर्म का आश्रय लेनेवाली इस हेय वुद्धि का परित्याग करा आर धर्म का आश्रय लेकर मेरे विचारो के अनुसार ही आचरण करो।[1] महर्पि जावालि को कठोर शब्दा मे उत्तर देत हुए उन्हाने यहाँ तक कह दिया था कि नीच क्रूर लोभी आर पापाचारी पुरुपा द्वारा सवित क्षात्रधर्म का म निश्चय ही परित्याग कर दूँगा क्याकि यह वास्तव मे धर्म के रूप म दिखाई दनेवाला अधर्म ही ह।[2] वस्तुत जावालि को दिया गया राम का उत्तर क्षात्रधर्म का तीव्र खण्डन ही हे।

इन प्रसगा से यह भी प्रतीत हाता ह कि रामायणकाल क पहले अथवा रामायणकाल म ही क्षात्रधर्म आर स्मार्त ऋपिया के धर्म की दा अलग-अलग

1 वा रा 2 21 40-44 2 वा रा 2 109 20

समानान्तर व्यवस्थाएं रही होगी। एक वर्ग ऐसा रहा होगा जो पिता की आज्ञा पालन सत्य का निर्वाह जैसी अन्य आचार-व्यवस्थाओं को अस्वीकार कर केवल तलवार के बल से राज्य प्राप्त कर शासन करने को ही क्षत्रियों का धर्म मानता रहा होगा। दूसरे वर्ग के ऋषियों ने अन्य वर्गों के साथ राजाओं और क्षत्रियों के लिए भी विशिष्ट आचार मर्यादा निश्चित कर दी थी जो उनके व्यक्तिगत और राजोचित सार्वजनिक जीवन के लिए निर्धारित की गयी थी। इसी को 'धर्म' कहा गया है। राम ने दूसरी व्यवस्था को ही स्वीकार किया था और इसीलिए उन्होंने धर्म को क्षात्रधर्म की अपेक्षा श्रेयस्कर कहा।

राम को क्षात्रधर्म का विशेषज्ञ तो कहा गया है किन्तु उनको केवल राजधर्मरत नहीं माना गया। उनके लिए अनेक स्थलों पर धर्मज्ञ, गुणवान[1] धर्मे कृतात्मन्[2] धर्मात्मा[3] धर्मवान्,[4] धर्मस्थित[5] धर्मभृतांवर[6] जैसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है। शुक ने भी रावण को राम का परिचय देते हुए कहा था कि धर्म उनसे कभी अलग नहीं होता। वे धर्म का कभी उल्लंघन नहीं करते तथा ब्रह्मास्त्र और वेद दोनों के ज्ञाता है।[7] कैकेयी ने जब उनको अविलम्ब वन चले जाने का निर्देश दिया तब राम को कदाचित् यह भ्रम हुआ था कि कैकेयी के मन में यह सन्देह है कि शायद राम वनगमन से बचने का कोई उपाय खोज लें। उसकी आशंका को दूर करते हुए राम ने स्वयं कहा था कि मैं धन का उपासक होकर संसार में नहीं रहना चाहता। मैंने ऋषियों की भांति धर्म का आश्रय ले रखा है।[8] वन में दशरथ और कौसल्या के दुःखों का स्मरण होने पर भी उनका पराक्रम जाग्रत हुआ था किन्तु स्वयं अपने आवेश को शान्त करते हुए उन्होंने लक्ष्मण से कहा था कि यदि मैं कुपित हो जाऊं तो अकेला ही अपने बाणों द्वारा अयोध्या तथा समस्त पृथ्वी पर अधिकार कर सकता हूं किन्तु केवल पराक्रम अभीष्ट सिद्धि में कारण नहीं होता। मैं अधर्म से डरता हूं। मुझे परलोक बिगड़ जाने का भय है इसीलिए अयोध्या के राज्य पर आज अपना अभिषेक नहीं करा रहा।[9] भरद्वाज से भी राम ने कहा था कि हम तीनों तपोवन में रहकर फल मूल का आहार करते हुए केवल धर्म का ही आचरण करेंगे।[10] सीता भी यही मानती थी कि राम ने धर्म के लिए ही प्राणों का मोह शरीर का सुख तथा अर्थ वैभव का परित्याग किया है।[11] उनके अनुसार राम की धर्मनिष्ठा इतनी सुदृढ़ थी कि वे धर्म के लिए पत्नी का भी परित्याग कर सकते थे।[12]

ऊपर प्रस्तुत विवेचन के अनुसार जिस प्रकार राम ने क्षात्रधर्म की सभी मर्यादाओं को समझाया है उसी प्रकार विविध प्रसंगों के व्याज से उन्होंने धर्म

1 वा रा 2 8 14 2 वा रा 2 12 23 3 वा रा 2 21 19 4 वा रा 2 21 41 5 वा रा 2 21 55 6 वा रा 2 24 15 8 वा रा 6 28 19 8 वा रा 2 19 20 9 वा रा 2 53 25 26 10 वा रा 2 54 16 11 वा रा 3 49 25 12 वा रा 5 26 40

(सनातन धर्म) की परिभाषा देते हुए उसके लक्षणो एव आचार व्यवस्थाओ की विस्तारपूर्वक व्याख्या की हे। उन्होने ऋषियो द्वारा प्रवर्तित धर्म को ही स्वीकार किया था और स्वय किसी नये धर्म की स्थापना नहीं की। पिता की आज्ञा के पालन का धर्म का महत्त्वपूर्ण अग बतलाते हुए उन्होने कौसल्या से कहा था कि मै तुम्हारी मान्यताओ के प्रतिकूल किसी नये धर्म का प्रवर्तन नही कर रहा बल्कि पूर्व पुरुषो का जो अभीष्ट मार्ग रहा हे उसी का अनुसरण कर रहा हू।[1] श्रुति और स्मृतियो द्वारा प्रतिपादित धर्म-व्यवस्थाओ के प्रति ही वे आस्थावान थे और दूसरो को उसी के अनुसरण का निर्देश किया। वाली के प्रश्नो का उत्तर देते समय उन्होने मनु की व्यवस्थाओ का उल्लेख किया था और मनु के ही दो श्लोकों को उद्धृत भी कर दिया था।[2] इन अवतरणो से यही प्रमाणित होता ह कि वह स्मार्त धर्म के कट्टर समर्थक थे।

राम के द्वारा यद्यपि अग्निष्टोम पौण्डरीक अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये गये थे किन्तु वैदिक यज्ञ यागादि के प्रति वे अधिक निष्ठावान नही थे। यज्ञ-कार्यो में अवरोध उत्पन्न करने के कारण उन्होने राक्षसो का वध भी किया था किन्तु स्वय किसी को यज्ञ करने के लिए प्रेरित नहीं किया। यही कारण हे कि उन्होने श्रुति धर्म के स्थान पर स्पष्ट शब्दो मे सनातन धर्म के अनुसरण का ही निर्देश दिया। कौसल्या से उन्होने कहा था कि तुमको मुझको सीता को लक्ष्मण को और माता सुमित्रा को पिताजी की आज्ञा मे ही रहना चाहिए, यही सनातन धर्म हे।[3] यहा यह स्पष्ट नही हे कि दशरथ को किस रूप मे मानकर उनकी आज्ञा-पालन को सनातन धर्म कहा गया ह। वे कौसल्या सुमित्रा के पति राम-लक्ष्मण के पिता और सीता के श्वशुर होने के साथ एक वृद्ध पुरुष और अयोध्या के राजा थे। अलग-अलग प्रसगो में राम ने साफ कहा ह कि नारी को पति की पुत्रो को पिता की और सभी व्यक्तियो को वृद्धों तथा राजा की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। स्मृतिकारो ने भी इसी व्यवस्था का धर्म के रूप मे निर्देश किया हे। कैकेयी से विदा लेते समय उन्होने कहा था कि सनातन धर्म की मर्यादा के अनुसार तुमको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे भरत राज्य का पालन करते हुए पिताजी की सेवा करते रहे।[4] इसी प्रकार उन्होने सीता से भी कहा था कि सत्य और धर्म के मार्ग पर स्थित पिताजी मुझे जैसी आज्ञा दे रहे है मै वैसा ही वर्ताव करना चाहता हू क्योकि यही सनातन धर्म हे।[5]

लक्ष्मण ने पिता अथवा गुरुजनो की आज्ञा के औचित्य एव अनौचित्य के विषय मे विचार करने का समर्थन करते हुए कहा था कि गुरु-जनो की नीति प्रतिकूल आज्ञा

---

1 वा रा 2 21 36 2 वा रा 4 18.30 32 3. वा रा 2 21 49 4 वा रा 2 19 26
5 वा रा 2 30 38

का पालन करना उचित नही। इसके विपरीत राम की मान्यता थी कि गुरुजनो को अपने पुत्रो और शिष्यो को उचित अथवा अनुचित कैसा भी आज्ञा देने का पूर्ण अधिकार होता है और धर्म-व्यवस्था के अनुसार उसका पालन किया ही जाना चाहिए। उन्होने लक्ष्मण से कहा था कि दशरथ हम लोगो के गुरु राजा और पिता होने के साथ साथ वृद्ध भी है। वे क्रोध से हर्ष से अथवा काम से प्रेरित होकर भी यदि किसी कार्य के लिए आज्ञा दे तो भी हम धर्म समझकर उसका पालन करना ही चाहिए।[1]

पिता और गुरुजनो की आज्ञापालन के अतिरिक्त आचार की अन्य व्यवस्थाओ के प्रति भी राम ने सकेत किया है। ब्राह्मणो और भिक्षुओ को दान देने के प्रति उनके मन मे असीम आस्था थी। वनगमन के पूर्व उन्होने सीता को अपने सभी रत्नाभूषण बहुमूल्य वस्त्राभूषण मनोरजन सामग्री और सभी वस्तुए ब्राह्मणो को दान करने तथा भिक्षुओ को भोजन कराने की आज्ञा दी थी।[2] सत्य और प्रतिज्ञा पालन को धर्म मानकर ही वे उसके प्रति आग्रहशील थे। सुग्रीव को आश्वस्त करते हुए उन्होने कहा था कि बहुत समय से अनेक कष्टो को सहने पर भी मैने झूठ नही बोला। मेरे मन मे धर्म का लोभ है इसलिए मै कभी झूठ नही बोल सकता।[3] सत्य की शपथ खाकर ही उन्होने कभी झूठ न बोलने की प्रतिज्ञा की थी।[4] मित्र का उपकार करने को भी राम ने धर्म ही माना है। वाली ने राम के आचरण व्यवहार को धर्म के प्रतिकूल मान कर उनको कठोर शब्दो मे फटकार दिया था। राम की सुग्रीव के साथ मित्रता और मैत्री धर्म के नियमो का उसको ध्यान ही नहीं रहा। अतएव राम को ही मैत्री धर्म की आचार मर्यादाओ को स्पष्ट करना पडा था। उन्होने कहा था कि सुग्रीव से मेरी मित्रता हो चुकी है। धर्म पर दृष्टि रखनेवाले मनुष्य के लिए मित्र का उपकार करना ही धर्म है। तुमको जो दण्ड दिया गया है वह धर्म के अनुकूल ही है।[5] प्रस्रवणगिरि पर लक्ष्मण से भी राम ने कहा था कि जो वीर पुरुष किसी के उपकार से उपकृत होता है वह प्रत्युपकार करके उसका बदला अवश्य चुकाता है और यदि कोई व्यक्ति उपकार को भुलाकर प्रत्युपकार नही करता तो वह सभी सत्पुरुषो को ठेस पहुचाता है।[6] सीता के अनुसार राम दया को भी धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अग मानते थे।[7]

अन्यत्र सकेत किया जा चुका है कि वर्ण और आश्रम व्यवस्था रामायणकाल मे अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे ही रही है। कदाचित् यही कारण है कि राम अथवा किसी भी पात्र के माध्यम से ब्रह्मचर्य आश्रम की आचार मर्यादाओ की स्पष्ट और विस्तृत व्यवस्था रामायण मे उपलब्ध नही होती। राम ने गृहस्थ आश्रम की

---

1 वा रा 2 21 59 2 वा रा 2 30 43-45 3 वा रा 4 14 14 15 4 वा रा 4 7 22
5 वा रा 4 18 29 6 वा रा 4 27 45 7 वा रा 5 38 39

व्यवस्थाओं पर पूरा प्रकाश डाला है। सन्ध्या तर्पण भिक्षुओं को दान अतिथि सत्कार पंच महायज्ञ ब्राह्मणों का सम्मान, माता पिता की सेवा नारी धर्म आदि सबकी ओर संकेत किया गया है। इसके अतिरिक्त राम ने वानप्रस्थ आश्रम अथवा वनवासियों के आचार धर्म को भी स्पष्ट किया है। सीता ने जब उनके साथ वन चलने का आग्रह किया था तब अरण्य धर्म अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम की मर्यादाओं को बतलाते हुए राम ने कहा था कि वन में निवास करनेवालों को अपने मन को वश में रखकर वृक्षों से स्वतः गिरे हुए फलों के आहार पर ही सन्तोष करना चाहिए। यथाशक्ति उपवास करना जटा रखना और वल्कल वस्त्र पहनना ही उनका कर्तव्य है। देवताओं और पितरों का तथा अतिथियों का विधिपूर्वक पूजन करना नियमपूर्वक प्रतिदिन तीन बार स्नान करना अपने द्वारा लाये हुए फलों से विधिपूर्वक देवी देवताओं की पूजा करना क्रोध और लोभ का परित्याग कर तपस्या में रत रहना ही वनवासियों के प्रमुख कर्तव्य हैं।[1] इस स्थल पर राम ने यद्यपि वानप्रस्थ आश्रम को कष्टपूर्ण कहा है किन्तु उनसे कभी विचलित होने का परामर्श नहीं दिया। उनके अनुसार यदि व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार कर वनों में निवास करता है तो उपर्युक्त आचार मर्यादाओं का पालन करना भी उसके लिए आवश्यक है। उन्होंने स्वयं भी इसी विधि का अनुसरण किया था। निषादराज गुह के द्वारा वट का दूध मंगाकर उन्होंने अपनी जटाएं बांध ली थीं और कहा था कि वनवास की अवधि में मुझको आश्रम के अनुरूप विधिपूर्वक कर्तव्य का पालन करना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने लक्ष्मण सहित वानप्रस्थ आश्रम का व्रत ग्रहण कर लिया था।[2]

रामायण के अन्य प्रसंगों से यह प्रमाणित होता है कि आश्रम व्यवस्था के साथ साथ वर्ण व्यवस्था और वर्ण धर्म के प्रति भी राम की दृढ़ आस्था रही है। लंका में सीता ने अपने को आश्वस्त करने के लिए जब हनुमान से राम के विषय में प्रश्न किये थे तब हनुमान ने उत्तर देते हुए कहा था कि राम क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुए स्वजनों की ओर पूरे जीवलोक की रक्षा करते हैं तथा शत्रुओं को सन्ताप देते हुए अपने सदाचार और धर्म की भी रक्षा करते हैं।[3] वे स्वयं तो वर्ण धर्मों का अनुसरण करते ही हैं चारों वर्ण के व्यक्तियों को व्यवस्था के अनुसार मर्यादा को पालन करने के लिए प्रेरित भी करते हैं।[4] राजनीति में पूर्ण दक्ष हैं और ब्राह्मणों के प्रति सावधान हैं।[5] राम की राज्य व्यवस्था के वर्णन में इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि उनके शासनकाल में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र—चारों वर्णों के लोग लोभरहित होकर वर्ण धर्म के अनुसार अपने कर्मों को करते हुए सन्तुष्ट थे।[6]

---

1 वा रा 2 28 12 16 24 2 वा रा 2.52 66 71 3 वा रा 5 35 10 4 वा रा 5 35 11
5 वा रा 5.35 13 6 वा रा 6 128 104

वृहस्पति ओर चार्वाक् द्वारा स्थापित लोकायत सम्प्रदाय ने ईश्वर की सत्ता को उखाड फकने ओर वदिक धर्म को निरा पाखण्ड सिद्ध करने का जो प्रयत्न किया था उसके कारण आस्तिकता आर धर्म की दीवारे हिल गयी थीं। इन आचार्यो ओर लोकायत सम्प्रदाय के विषय म जो विखरे हुए सन्दर्भ आज उपलब्ध होते ह उनसे नात होता ह कि इनके तर्को से सहमत होकर ब्राह्मणा का एक वहुत वडा समुदाय इस सम्प्रदाय का अनुयायी वन गया था। इन्हाने वद शास्त्र आर ईश्वरवादी धर्म व्यवस्थाआ का जवरदस्त विरोध किया था आर सभी आचार-मयादाओ को फिजूल की वकवास अथवा पाखण्ड कहा था। यह इत्तन व्यक्तिवादी रहे ह कि स्वय अपने सुख के लिए सामाजिक व्यवस्थाआ को भग कर देना इनकी दृष्टि मे सवथा उचित माना गया। राम लोकायत सम्प्रदाय के जवरदस्त विरोधी रह ह। चित्रकूट म भरत से उन्हाने खुल शब्दा मे प्रश्न किया था कि तुम लाकायत सम्प्रदाय के अनुयायी ब्राह्मणो की सगति म ता नहीं पड गये ? इसके आग लोकायतिको की कडे शब्दों मे निन्दा करते हुए उन्हाने कहा था कि ये लाग मूर्ख होते हुए भी अपने-आपको पण्डित मानते ह आर अनर्थ करने-करान म ही कुशल होते ह। धर्मशास्त्रा के प्रति उनकी वुद्धि दूषित हाती ह आर वुद्धि तथा तर्क का सहारा लेकर व्यर्थ की वकवास किया करते ह।[1]

महर्षि जावालि ने राम से अयोध्या लोट चलने का आग्रह करते समय लोकायत सम्प्रदाय द्वारा मान्य तर्क ही प्रस्तुत किये थे। अपने तर्को म उन्हाने माता पिता के सम्वन्धो को भी व्यर्थ का ढकोसला कहा था। उनके मतानुसार वीर्य ओर रज के सयोग से ही प्राणी का जन्म होता हे। इसके लिए पिता को महत्त्व दना पागलपन हे। अर्थ का परित्याग कर धर्म का अनुसरण करन का परिणाम दु ख के अतिरिक्त कुछ भी नही हाता। न तो परलाक की कोई सत्ता ही हे आर न श्राद्धादिको स मरे हुए पितरा को कुछ लाभ हाता हे। यज्ञ देवताओ का पूजन दान तपस्या आदि के विधान केवल लोगो को मूर्ख वनाकर ठगने के लिए वनाये गय हे। जावालि के इस प्रकार के विचारो को सुनकर राम की आखा म खून उतर आया था। उन्हाने जावालि को कठार शब्दों म उत्तर दने म सकोच नही किया ओर यहा तक कह दिया कि पिता दशरथ ने आप जस व्यक्ति को अपना याजक वना लिया इसकी म निन्दा करता हू। जावालि के तर्को का उत्तर देत समय राम ने नास्तिक आर अनीश्वरवादी सम्प्रदायो पर तीखे प्रहार किय ह। उन्होने कहा था

मर्यादा का उल्लघन करनवाला व्यक्ति पापाचार म प्रवृत्त हो जाता ह। व्यक्ति का चरित्र ही उसके कुलीन अथवा अकुलीन हाने का प्रमाणित करता है। धर्माचरण का पाखण्ड करत हुए धर्म विरुद्ध आचरण करने स ही लाक म सकरता का जन्म

1 वा रा 2 100 38 39

होता है। कर्तव्य-अकर्तव्य का समझनेवाले व्यक्ति शास्त्रमर्यादा के विपरीत आचरण करनेवाले पुरुष का कभी सम्मान नहीं करते और उस दुराचारी ही मानते हैं। राजाओं द्वारा यदि स्वेच्छाचारिता का मार्ग अपना लिया जाय तो प्रजा में भी स्वभावतया वह दोष उत्पन्न हो जाता है। सत्य का पालन ही राजाओं का सनातन आचार है। झूठ बोलनेवाला व्यक्ति साँप के समान ही डरावना होता है। सत्य ही ईश्वर है और सत्य ही धर्माचरण का आधार है। दान यज्ञ होम, तपस्या और वेद इन सबका आधार भी सत्य ही है। मैं सत्य धर्म का ही समस्त प्राणियों के लिए हितकर मानता हूँ। इस कर्मभूमि को पाकर शुभ कर्मों का ही अनुष्ठान करना चाहिए। सत्पुरुषों के अनुसार सत्य धर्म पराक्रम प्राणियों पर दया प्रिय बोलना देवताओं अतिथियों और ब्राह्मणों की पूजा करना ही स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग है। वेद विरुद्ध नास्तिक बुद्धि का आश्रय लेना किसी भी दशा में श्रेयस्कर नहीं।[1]

इसी प्रसंग में राम ने बौद्ध धर्म तथा अन्य नास्तिक सम्प्रदायों की भी निन्दा की है। इस स्थल पर बुद्ध और तथागत शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। उन्होंने कहा था

> *यथा हि चोरः स तथाहि बुद्ध*
> *स्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।*
> *तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां*
> *स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्।* —वा रा 2 109 34

—जिस प्रकार चोर होता है उसी प्रकार बुद्ध भी है। तथागत और नास्तिकों को भी इसी कोटि में समझना चाहिए। अतएव यदि सम्भव हो तो नास्तिक पुरुष का कभी मुँह भी नहीं देखना चाहिए।

राम के मन में यजुर्वेदीय तैत्तिरीय और कठ शाखा के आचार सिद्धान्तों के प्रति गहरी आस्था विद्यमान थी। तैत्तिरीय शाखा का सम्बन्ध आचार मर्यादा से और कठ का सम्बन्ध अध्ययन मनन और चिन्तन से रहा है। राम इन शाखाओं के अनुयायी ब्राह्मणों का विशेष सम्मान करते थे। वनगमन के पूर्व उन्होंने लक्ष्मण को निर्देश दिया था कि तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी वेदवेत्ता ब्राह्मणों का और कठ शाखा के अनुगामी नित्य स्वाध्यायरत ब्रह्मचारियों को बहुमूल्य रत्न वस्त्र और सम्मान देकर सन्तुष्ट करो।[2] इस सन्दर्भ से यह भी ज्ञात होता है कि राम की दृष्टि यज्ञ आदि कर्मकाण्ड की अपेक्षा चरित्र और आचार पर ही विशेष रूप से केन्द्रित थी। चित्रकूट में भरत से बातचीत करते समय उन्होंने जो कुछ कहा उससे यह भी स्पष्ट है कि जीवन की नश्वरता को ध्यान में रखकर शास्त्रविहित मर्यादाओं का पालन करने पर ही

---

1 वा रा 2 109 पूरा सर्ग 2 वा रा 2 32 15 18

है। सभी प्राणिया पर शासन करना दव के लिए कोई वडी वात नही।[1] इसी प्रकार वाली की मृत्यु से दु खी सुग्रीव तारा आर अगद को समझाते हुए उन्हाने कहा था कि जगत् म नियति ही सवका कारण ह। वही समस्त कर्मो का साधन हे आर नियति हा समस्त प्राणियो को विभिन्न कर्मो मे नियुक्त करने म कारण होती है। काई भी पुरुप न तो स्वतन्त्रतापूर्वक किसी काम को कर सकता हे ओर न किसी दूसरे को किसी काम म लगा सकता हे। यह सारा जगत् स्वभाव के अधीन रहकर ही काम करता ह। कोइ भी व्यक्ति काल का अतिक्रमण नही कर सकता। धर्म अर्थ ओर काम भी कालक्रम स ही प्राप्त हाते ह।[2] इन्द्रजित ने अपने वाणो के प्रहार से राम आर लक्ष्मण दाना को वेहोश कर दिया था। कुछ समय पश्चात् जव राम की चेतना लाटी तो लक्ष्मण को वहाश देखकर वे इतने अधिक निराश हो गय थे कि स्वय प्राण-त्याग करने का विचार कर सुग्रीव सहित सभी वानरा को वापस लोट जाने के लिए कह दिया था।[3] इस समय उन्हाने दु खी होकर सुग्रीव स कहा था कि मनुष्यो के लिए दव के विधान को लाघना सवथा असम्भव हे।[4] देव को इस प्रकार अनुल्लघनीय मानते हुए भी राम ने एक स्थल पर पुरुपार्थ की प्रशसा की ह। लका विजय के पश्चात् जव सीता उनक सामने उपस्थित हुई तव राम न स्वय अपने पराक्रम की प्रशसा करत हुए कहा था कि आज सवने मेरा पराक्रम देख लिया ह। मरा परिश्रम भी सफल हा गया। जव तुम आश्रम म अकेली थी तव उस राक्षस न तुम्हारा अपहरण किया था। मुझ पर देववश ही यह दोप लग गया था। अपने मानव साध्य पुरुपार्थ क द्वारा मन उसे दूर कर दिया हे। जो व्यक्ति अपने वल स अपमान का वदला नही लेता उसका पारुप व्यर्थ ही हे।[5] राम का यह विचार देव क प्रति उनक विश्वासा से कुछ भिन्न अवश्य ह किन्तु यह समझा जा सकता ह कि देव की सत्ता आर शक्ति को स्वीकार करते हुए पुरुपार्थ करते रहने के प्रति ही उन्हाने सकत किया हे।

यह लिखा जा चुका है कि रामायणकाल म वर्ण व्यवस्था अपनी प्रारम्भिक अवस्था म ही थी ओर वश्यो तथा शूद्रा के लिए पूरी तरह आचार-मयादाआ का विधान नही किया जा सका था। कदाचित् इसी कारण रामायण म राम ने वश्यो आर शूद्रा के कतव्या क प्रति कहीं कोई सकेत नहीं किया। ब्राह्मणा क प्रति अवश्य ही राम के मन म अपार श्रद्धा रही। उन्हाने ब्राह्मणा के प्रति जिस प्रकार सकेत किया ह उसस यह प्रतीत ही नही होता कि ब्राह्मणा क लिए वेदन हाने की शर्त का भी वह स्वीकार करते थे। उन्ह स्पष्ट शब्दा में ब्राह्मण प्रति पूजक[6] कहा गया है। वनगमन क पहले लक्ष्मण को समझात हुए उन्हाने कहा था कि धर्म का अनुसरण

1 वा रा 3 69 48-49 2 वा रा 4 25 4 8 3 वा रा 6 19 7 17 21 4 वा रा 6 19 28 5 वा रा 6 115 4-6 6 वा रा 2 1 15

करनेवाले पुरुष को कभी पिता माता अथवा ब्राह्मण के वचनो का पालन करने की प्रतिज्ञा करके उससे मुकरना नही चाहिए।[1]

अयोध्या जनपद के सभी ब्राह्मण राम को अपना हितैषी मानते थे।[2] इसी मोहवश सभी ब्राह्मण वन प्रस्थान के समय राम के पीछे पीछे तमसा के तट तक गये थे। यद्यपि वृद्धावस्था के कारण इन लोगो का सिर कॉप रहा था तथापि वे राम के पीछे चलते हुए उनको लौट चलने के लिए बराबर मनाते रहे। यह ठीक है कि अन्य पुरवासियो ने भी राम का अनुसरण किया था किन्तु राम के मन मे ब्राह्मणो के प्रति अपार श्रद्धा थी इसलिए इस प्रसग मे उनका ही विस्तार से उल्लेख किया गया है। कौसल्या से भी उन्होने यही कहा था कि तुम्हे मेरी मगल कामना से अग्निहोत्र के अवसरो पर देवताओ और ब्राह्मणो का पूजन करते रहना चाहिए।[3] राज्याभिषेक के समय पर भी उन्होने ब्राह्मणो को एक लाख घोडे गाय तीस करोड स्वर्ण मुद्राए तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण दान दिये थे।[4] *वनगमन के विषय मे अन्तिम निर्णय के* पहले जब राम केकेयी के महल की ओर दशरथ से भेट करने के लिए जा रहे थे तब अवश्य उन्हे उनकी चारो वर्णो के प्रति अवस्था-क्रम के अनुसार दया भाव से युक्त कहा गया है।[5] फिर भी उपर्युक्त प्रसग इसी तथ्य को प्रमाणित करते है कि ब्राह्मणो के प्रति उनके मन मे विशेष सम्मान की भावना थी।

गगा को राम वन्दनीया ही मानते थे। सबसे पहले गगा की पवित्रता के विषय मे विश्वामित्र से ही उनको ज्ञान हुआ था और महर्षि के निर्देश से ही उन्होने उसको *और सरयू को प्रणाम किया था।*[6] *निषादराज गुह के साथ गगा को पार करते समय* भी पहले उन्होने मन्त्र-जप के साथ शास्त्रविधि के अनुसार आचमन किया था और उसके साथ ही सीता सहित श्रद्धापूर्वक गगा को प्रणाम किया था।[7]

सन्ध्या-वन्दन होमतर्पण गायत्री जप अग्निहोत्र आदि नित्यकर्मो का राम नियमित रूप से पालन करते थे। इसका उपदेश भी उनको विश्वामित्र के द्वारा ही दिया गया था। महर्षि के साथ अयोध्या से चल कर सबसे पहली रात उन्होने सरयू के तट पर बितायी थी। सुबह होने पर विश्वामित्र की आज्ञा से स्नान करके देवताओ को तर्पण करने के बाद वह मन्त्र-जप के लिए बैठ गये थे। सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म को पूरा करके विश्वामित्र को अभिवादन करने के बाद ही वे आगे चले थे।[8] इसके पश्चात् भी राम महर्षि के इस उपदेश का सदैव पालन करते रहे। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम मे रहते हुए जब भी रात बीतती और सुबह होती थी तब वह स्नान आदि से पवित्र होकर प्रातःकालीन सन्ध्योपासना और मन्त्र का जप करने के लिए बैठ जाते थे। जप पूरा होने पर नियमित रूप से वे गुरुचरणो मे प्रणाम

---

1 वा रा 1 42 2 वा रा 2 45 21 3 वा रा 2 21 29 4 वा रा 6 128 73-74
5 वा रा 2 17 15 6 वा रा 1 14 11 7 वा रा 2 52 78 79 8 वा रा 1 23 2-4

करत थे।[1] विश्वामित्र का यज्ञ पूरा होने के पश्चात् भी राम-लक्ष्मण दोना ने सन्ध्या-उपासना की विधि सम्पन्न की थी।[2] मिथिला का प्रस्थान करने के पहले भी राम ने सन्ध्या वन्दन की विधि पूरी की थी[3] आर माग मे भी शोणभद्र ओर गगा के तट पर उन्हाने देवताआ आर पितरा का तर्पण करते हुए अग्निहोत्र की विधि सम्पन्न की थी।[4]

दशरथ ने जव राम को युवराज पद पर अभिपक करने का निर्णय लिया था तब भी वसिष्ठ द्वारा दीक्षित होने पर पूर्व रात्रि म उपवास विधि के अनुसार कुश की चटाई पर ही उन्हाने रात वितायी थी आर एक प्रहर रात्रि शेप रह जाने पर जागकर वह नित्य की भाँति सन्ध्या-उपासना ओर जप करने म लग गय थे।[5] वनवास की अवधि म भी राम न अपने इस नियम को कभी भग नही हान दिया। प्रतिदिन प्रात आर सायकाल की सन्ध्या-उपासना मन्त्र-जप उनके नित्य कर्म का एक अभिन्न अग रहा ह।[6] गुह न भी भरत से उनके इस नित्य नियम के विषय म वतलाते हुए कहा था कि जब राम वहाँ ठहरे थे तब भी उन्होने मोन रहकर स्वस्थ चित्त होकर सन्ध्यापासना की थी।[7] सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम म निवास करते हुए भी सायकाल ओर प्रात काल दोनो समय की सन्ध्या-उपासना उन्होने पूरी की थी[8] ओर अगस्त्य के भाई के आश्रम मे बात करते-करते जब सूर्यास्त का समय हुआ तो वह तुरन्त ही सायकालीन उपासना के लिए बेठ गये थ।[9]

अग्निहोत्र सन्ध्या-उपासना आर हवन आदि के प्रति राम की आस्था अत्यन्त ही सुदृढ रही है। शास्त्रविधि के अनुसार वेदी का निमाण करके वे नित्य अग्निहात्र करत थे। भरत जब चित्रकूट मे उनसे मिलने के लिए पहुच तो उन्हाने भी राम के आश्रम मे विधिपूवक वनाई गयी विशाल यनवेदी देखी थी, जिस पर हवन की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी।[10] भरत स प्रश्न करते हुए उन्होने पूछा भी था कि तुम्हारे द्वारा अग्निहात्र कार्य के लिए नियुक्त ब्राह्मण ठीक समय पर हवन आदि का कार्य करते ह अथवा नहीं?[11] वन के लिए चलते समय वे कौसल्या स भी नित्य अग्निहोत्र करते रहने के लिए कह आये थे।[12] राम की यह मान्यता भी थी कि पवित्र जल से स्नान कर पितरा का तर्पण करने से अशुभ नष्ट हो जाते ह आर कल्याण-मार्ग प्रशस्त हाता है। शवरी के आश्रम म उन्होने लक्ष्मण से विश्वास के साथ कहा था कि यहा साता समुद्रा के जल से भरे हुए तीर्थ म स्नान करने आर तर्पण करने से हमारे सभी अशुभ नष्ट हा गय ह।[13]

---

1 वा रा 1 29 31 32 2 वा रा 1 30 26 3 वा रा 1 31 1 4 वा रा 1 35 2 9 10 5 वा रा 2 6 5-6 6 वा रा 2 49 2 2 50 48 2 53 1 7 वा रा 2 87 19 8 वा रा 3 7 22 3 8 2 3 9 वा रा 3 11 68 69 10 वा रा 2 99 24 11 वा रा 2 100 12 12 वा रा 2 24 28 13. वा रा 3 75 4 5

श्राद्ध आर प्रेत कार्यो म भी राम की आस्था कम नहीं रही। चित्रकूट म जब उनको पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार मिला था तब उन्हाने भरत के सोभाग्य की प्रशसा करते हुए कहा था कि तुम आर शत्रुघ्न को पिता के सभी प्रत कार्य करने का अवसर मिला है। अतएव तुम लोग निश्चय की भाग्यवान हो।[1] इसके पश्चात् ही उत्तरीय पहनकर इगुदी का फल हाथ मे लेकर उन्होन दशरथ को जलाजलि दी थी।[2] जटायु का विधिपूर्वक दाह सस्कार सम्पन्न करन के बाद भी राम न उन सभी विधि क्रियाआ को पूरा किया था जिनकी ब्राह्मणो द्वारा प्रेतात्मा के कल्याण क लिए व्यवस्था की गयी ह।[3] स्मार्त व्यवस्था के अनुसार कुल मे उत्पन्न व्यक्तियो को अपने पितरो का प्रेत कर्म करने का जो विधान निश्चित ह उसी को राम स्वीकार करते थे। वाली की मृत्यु के बाद उनके द्वारा सुग्रीव को विधिपूर्वक प्रेत कार्य सम्पन्न कराने की आज्ञा दी गयी थी[4] और उनकी देख रेख मे अगद ने ही अपने पिता का दाह सस्कार किया था। रावण की मृत्यु पर उन्होने विभीषण को उसका दाह सस्कार करने के लिए कहा था। पहल विभीषण ने रावण क दोषो का स्मरण करके उसक प्रत कार्य करन से इनकार कर दिया था किन्तु राम ने उसे समझाते हुए कहा था कि धर्म के अनुसार रावण का अन्तिम सस्कार तुम्हारे द्वारा ही किया जाना चाहिए। एसा करने से तुम यश के भागी बनोगे। इस प्रकार राम न ही विभीषण क द्वारा रावण क प्रेत कार्य सम्पन्न कराये थ।[5]

वाली से बात करते समय राम न स्वय को पितामहो के अर्थात् अपने कुलधर्म का अनुयायी कहा है।[6] किन्तु यह कहा जा सकता है कि दशरथ की आस्था यज्ञ आदि कर्मकाण्ड क प्रति अधिक रही थी आर राम की दृष्टि आचार-मर्यादा पर ही केन्द्रित रही। इसक अतिरिक्त उनके आचार व्यवहार मे एक आर भी नवीनता जुड गयी थी। इक्ष्वाकुवश क वरिष्ठ पुरोहित वसिष्ठ यद्यपि यज्ञ विधि के ज्ञाता थे किन्तु उनको जपतावर अथात् जप करनेवाला में श्रेष्ठ कहा गया ह। वसिष्ठ के अतिरिक्त महर्षि अगस्त्य से भी राम प्रभावित थ। सम्भवत इन्हीं के प्रभाव क कारण भक्ति की आर भी उनका झुकाव हो गया था। उन्हाने विष्णु अथवा नारायण को आराध्य दवता के रूप म मानकर उनकी उपासना का मार्ग स्वीकार किया था। रामायण म कवल राम को ही विष्णु—नारायण का उपासक कहा गया ह। दशरथ के निर्णय से युवराज पद पर अभिषक की तयारी म पूर्व रात्रि को उन्हाने नारायण का ध्यान किया था आर विष्णु नारायण के मन्दिर म ही कुश की चटाई बिछाकर सो गये थ।[7] दूसरे दिन प्रातःकालीन सन्ध्या-उपासना करने के बाद उन्हाने मधुसूदन को प्रणाम किया[8] आर इसके पश्चात् ही अन्य कर्मो म प्रवृत्त हुए थ। नारायण का ध्यान ओर मधुसूदन

---

1 वा रा 2 103.10 2 वा रा 2 103 20 29 3 वा रा 3 68.34 36 4 वा रा 4 25 13
5 वा रा 6 111 101 102 6 वा रा 4 18 45 7 वा रा 2 6 1,3-4 8 वा रा 2 6 7

का प्रणाम करने का तात्पर्य यही हो सकता है कि वैष्णव अथवा नारायणी सम्प्रदाय का प्रारम्भ हो चुका था और राम उसके अनुयायी रहे हैं। भक्ति-परम्परा की प्रतिष्ठा को भी इससे बल मिला था।

राम रावण का युद्ध देखने के लिए अनेक ऋषि-महर्षि युद्धस्थल में एकत्र हो गये थे। महर्षि अगस्त्य भी युद्ध देखने के लिए पहुंचे थे। जब रावण युद्धभूमि में राम के सामने आकर खड़ा हो गया तब अगस्त्य को राम की विजय के लिए चिन्ता हुई थी। इस अवसर पर उन्होंने राम को विजय प्राप्ति के उद्देश्य से 'आदित्य हृदय स्तोत्र' के पाठ करने का उपदेश दिया था और कहा था कि इसके जप से तुम युद्ध में अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे। अगस्त्य के उपदेश को स्वीकार करके ही राम ने आचमन करके तीन बार इस स्तोत्र का पाठ किया था।[1] इसके पश्चात् ही रावण से युद्ध करके उन्होंने उस पर विजय पायी थी।

राम की सन्ध्या-उपासना, नारायण भक्ति और स्तोत्र पाठ ने व्यक्ति की जीवन प्रणाली को एक नयी दिशा में मोड़ दिया। भक्ति और उपासना के विकास में इसने इतना जबरदस्त योग दिया कि धीरे धीरे वैदिक कर्मकाण्ड का स्थान ही भक्ति ने ले लिया। मन्त्र और जप का विधान पहले से चला आ रहा था किन्तु स्तोत्र पाठ के द्वारा सिद्धि प्राप्ति का मार्ग सम्भवतः सबसे पहले राम के द्वारा ही प्रशस्त हुआ है।

धर्म और आचार का पालन मन, वाणी तथा कर्म तीनों के द्वारा ही किया जाना चाहिए। इनमें एकरूपता की कमी मिथ्याचार को जन्म देती है। व्यक्ति का यह भी दायित्व है कि वह अपने को समाज की एक इकाई मानकर व्यवहार का ऐसा मार्ग अपनाये जिससे किसी व्यवस्था को आघात न पहुँचे और न किसी दूसरे को ही मर्यादा भंग करने के लिए मजबूर होना पड़े। सनातन धर्म और आचार मर्यादाएँ वृहत्तर मानव समाज की सामूहिक व्यवस्थाएँ हैं। जिस प्रकार एक ईंट खिसकने से पूरी दीवार हिल जाती है उसी प्रकार किसी एक व्यक्ति के द्वारा व्यवस्था भंग किये जाने का प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है। अहिंसा, अस्तेय, क्षमा, सत्य, धृति, शम, दम आदि वैयक्तिक नहीं, सर्वथा सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं जिनको भारतीय आचार्यों ने धर्म की संज्ञा दी है। हिंसा, चोरी, परस्त्रीगमन, असत्य आदि का सम्बन्ध केवल एक व्यक्ति अथवा कर्ता से ही नहीं होता बल्कि समाज की दूसरी इकाइयाँ अनिवार्यतः उससे प्रभावित होती हैं। यदि तर्क के द्वारा किसी कार्य का औचित्य प्रतिपादित करते हुए उसे एक अथवा गिने चुने व्यक्तियों के लिए लाभप्रद सिद्ध भी कर दिया जाय और यदि उससे पूरे समाज की व्यवस्था भंग होती हो तथा अनेक व्यक्तियों को हानि होती हो तो किसी भी दशा में उसको उचित नहीं कहा जा

सकता। चोरी डकती से भी आखिर चोरा डाकुआ को सम्पत्ति का लाभ होता ही किन्तु इसस समाज की व्यवस्था भग होती हे तथा अनक लोगा का कष्ट होता इसीलिए यह अपराध हे ओर कर्तव्य की सीमा के बाहर हे।

महर्षि जावालि ने अनेक तर्कों का सहारा लेकर राम के अयाध्या लौट चल का आचित्य सिद्ध किया था। उन्होने पिता माता के महत्त्व को नकारते हुए *आचार व्यवहार की सभी मर्यादाओ को व्यर्थ कहा था।* यदि राम उनकी बात प स्वीकार कर लते तो समाज की सभी व्यवस्थाए टुकडा म विभक्त होकर विख जाती। इसीलिए जावालि को उत्तर दते हुए राम ने कहा था कि आपने जा कुछ कहा हे वह तर्क के आधार पर कर्तव्य के समान प्रतिभासित हाते हुए भी कर्तव्य नही हे।[1] आपका उपदश धर्म के वेष मे अधर्म ही है। यदि म इसका अनुसरण कर लगू तो मुझ ससार दुराचारी ही मानेगा आर समाज पर इसका अनुकूल प्रभाव नहीं पडेगा।[2] तर्क क द्वारा किसी भी कर्म को उपयुक्त आचार के रूप मे सिद्ध कर उसका अनुसरण करने स ही व्यक्ति स्वेच्छाचारी बन जाता हे। यह मार्ग व्यक्ति अथवा समाज किसी के लिए भी हितकर नहीं।

राम न सत्य के पालन ओर आचार की पवित्रता पर सबसे अधिक जार दिया हे। उनका निरन्तर यही प्रयास रहा हे कि कोई भी व्यक्ति न तो स्वय सत्य से विचलित हा आर न किसी अन्य को पथभ्रष्ट होने क लिए विवश ही करे। दशरथ के सत्य की रक्षा भी उन्हाने इसी उद्देश्य स की थी। कवल वाणी का सत्य ही राम की दृष्टि म पूर्ण सत्य नहीं है वरन् *मन वाणी और कर्म की एकरूपता ही सत्य* का सही अर्थ म अनुसरण ह। पाप अथवा अनाचार कवल कर्म स ही नहीं हाता वल्कि मनुष्य जो कुछ पाप करता हे उसका पहले मन म निश्चय किया जाता हे फिर वाणी क द्वारा उसे प्रकट करता ह और अन्त म शरीर की सहायता से उसे पूरा किया जाता ह।[3] व्यक्ति के बाह्य क्रिया व्यापार उसक मनाभावा के ही स्थूल रूप ह। इसीलिए राम न जावालि से कहा था कि आचार ही यह बताता ह कि कोन सा व्यक्ति कुलीन आर कान अकुलीन ह कान पवित्र हे ओर किसका हदय कलुषित विचारो से भरा हुआ हे।[4] जा पुरुष मर्यादा का परित्याग कर देता हे वही पाप-कर्मो म प्रवृत्त हाता हैं। उसके विचार-आचार दाना ही भ्रष्ट हो जात ह ओर वह सत्पुरुषा म कभी सम्मान का पात्र नहीं हाता।[5]

राम क आचार सिद्धान्ता का रामायण म बड़े विस्तार स उल्लेख किया गया ह। वाल्मीकि न अनक स्थला पर उनक जिन गुणा की प्रशसा की है कथावस्तु के

1 वा रा 2 109 2 2 वा रा 2 109 6 7 3 वा रा 2 109 21 4 वा रा 2 109 4
5 वा रा 2 109 3

आधार पर उनकी बराबर पुष्टि भी होती जाती है। राम किसी के दोषों पर दृष्टि नहीं डालते थे।[1] शान्तचित्त तथा मृदुभाषी थे। यदि उनसे कोई कटु वाक्य कह भी देता था तो भी उसका उत्तर नहीं देते थे।[2] उनके मन में कृतज्ञता की इतनी जबरदस्त भावना थी कि किसी के अपकारों पर उनकी दृष्टि पड़ती ही नहीं थी।[3] शील ज्ञान और वयोवृद्ध पुरुषों को देख-सुनकर वे उनके सद्गुणों को अपनाने के प्रति वे सदैव सावधान थे।[4] वृद्ध पुरुषों का सम्मान करना उनके व्यवहार का आवश्यक अंग था।[5] दयालुता क्रोध पर विजय, दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति निषिद्ध कर्मों से बचना देशकाल का ज्ञान प्रमादहीनता, निरालस्य राम के सहज स्वाभाविक गुण थे।[6] यदि आम आदमी को किसी प्रकार का कष्ट होता था राम उसके प्रति सहानुभूति के कारण तड़प जाते थे और लोगों को सुखी देखकर उनको भी उसी प्रकार की प्रसन्नता होती थी जैसे पिता अपने हँसते किलकते पुत्रों को देखकर सुखी होता है।[7] कैकेयी ने भी राम के जिस आचार की प्रशंसा की है उसके अनुसार वे किसी ब्राह्मण के धन का अपहरण नहीं करते थे किसी निरपराध धनी अथवा दरिद्र के प्रति अनुदार नहीं हुए और न उन्होंने कभी किसी पर-स्त्री की ओर आँख उठाकर देखा ही था।[8] यदि उन पर मिथ्या दोषारोपण भी किया गया तब भी उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी और ऐसी कोई भी बात मुँह से निकालते ही नहीं थे जो दूसरों के मन में क्रोध की भावना उत्पन्न करे।[9]

राम के जीवन के सम्यक् अध्ययन से यह बात साफ हो जाती है कि उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्त तत्त्व चिन्तन और यज्ञ आदि कर्मकाण्ड को महत्त्वपूर्ण न मानकर आचार तथा मर्यादानुकूल व्यवहार पर ही जोर दिया है। उपनिषदों के ऋषियों की भाषा से वे कोसों दूर रहे और धर्म के नाम पर ब्राह्मणों पुरोहितों के ढकोसलों को भी अस्वीकार किया। उनके द्वारा व्यक्ति और समाज को ऐसी व्यवस्था देने का ही प्रयास किया गया था जो वैयक्तिक पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से श्रेयस्कर हो। स्वर्ग नरक परलोक पाप पुण्य जैसी शब्दावली का प्रयोग बहुत ही कम किया गया और प्रत्यक्ष जीवन की सफलता पर ही उनकी दृष्टि केन्द्रित रही। सामाजिक व्यवस्था और आचार-व्यवहार को ही उन्होंने राष्ट्रीय अभ्युत्थान तथा व्यक्ति के श्रेय और प्रेय सबका कारण माना।

दैव के प्रति उनका विश्वास उस इन्द्रियातीत शक्ति का ही व्यंजक है जो विश्व व्यापार और मनुष्य के जीवन को नियन्त्रित करती है। इसी को कालचक्र भी कहा गया है। इसके पश्चात् भी पराक्रम और पुरुषार्थ की महत्ता का उन्होंने खण्डित नहीं किया। अज्ञात शक्ति पर विश्वास रखते हुए भी दुर्गम बीहड़ों में वे स्वयं अपना

---

1 वा रा 2 1 9 2 वा रा 2 1 10 3 वा रा 2 1 11 4 वा रा 2 1 12 5 वा रा 2 1 14
6 वा रा 2 2 31 32 7 वा रा 2 2 40 41 8 वा रा 2 72 48 9 वा रा 2 41 3

अयाध्या आर नन्दिग्राम दोना क्षेत्र राम के अधिकार म आ गये थ।

विवाह के बाद मिथिला स लोटन पर वहुए डोली से उतरी ही थी कि दशरथ ने भरत आर शत्रुघ्न को मामा के घर भेज दिया था। मामा के घर रहत हुए भरत के पूरे बारह वर्ष बीत चुके थे। इतनी लम्बी अवधि म दशरथ ने एक बार भी उनको अयोध्या बुलाने का विचार नही किया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ कारण शायद ऐसे रहे हाग़े जिनकी वजह से राम ओर भरत को बारी बारी से मामा के घर भेजने का निश्चय किया गया हागा। इस प्रवास की अवधि बारह या चोदह वर्ष की रही हागी। इस सन्दर्भ म सुमन्त्र का एक वाक्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हे जिसके कारण ही उपर्युक्त आशका होती हे। राम को वन म भजकर अयोध्या लोटते समय उन्हाने राम से कहा था कि यदि म महारानी कोसल्या से जाकर कहूँ कि मने आपके बेटे को मामा के घर पहुँचा दिया हे तो यह बात असत्य होगी

अह कि चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया।
नीतोऽसो मातुल-कुल सन्ताप मा कृथा इति ॥
असत्यमपि नेवाह ब्रूया वचनमीदृशम्।
कथमप्रियमेवाह ब्रूया सत्यमिद वच ॥ –वा रा 2 52 45-46

कथावस्तु के अनुसार सुमन्त्र राम को वन म भेजने के लिए ही गय थे मामा के घर नहीं। इस स्थिति म सुमन्त्र के इस वाक्य का आशय अस्पष्ट ही रह जाता ह।

सुग्राव आर विभीषण से मेत्री सम्बन्ध स्थापित करते हुए राम ने वाली ओर रावण का वध भले ही किया हो किन्तु आचार की दृष्टि से सुग्रीव आर विभीषण कहीं टिकते ही नहीं। यह एक सयोग ही था कि राम की सधि वाली की बजाय सुग्रीव के साथ हुई थी। दाना की एक समान परिस्थितिया ही इस सन्धि का कारण रही। रामायण के अनुसार राम ने अपनी सहायता ओर सीता की खोज के लिए एक दीन आर असहाय की भाति सुग्रीव की शरण ली थी। ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान का अपना आर राम का परिचय देत समय लक्ष्मण न जो कुछ कहा था वह इस सन्दर्भ म विशेष रूप से उल्लेखनीय हे। उन्हाने कहा था

आपके प्रश्न के उत्तर म मने सब-कुछ बतला दिया हे। मे आर राम दोना ही सुग्रीव का शरण म आय ह। पहले अत्यधिक दान दकर यश अर्जित करके जो समस्त ससार के स्वामी थे वही आज सुग्रीव को अपना स्वामी बनाने के इच्छुक ह। दशरथ सदव शरणागता के रक्षक रहे ह। उन्हीं के पुत्र राम आज सुग्रीव की शरण म ह। मर बड भाई जो स्वय ही पहले समस्त लाका का शरण देने म समर्थ थ अब सुग्रीव की शरण मे आय ह। जिनकी प्रसन्नता स सारी प्रजा खिल उठती थी वही राम आज सुग्रीव की प्रसन्नता चाहते ह। राम शोक से अभिभूत आर आर्त

अयोध्या और नन्दिग्राम दोनो क्षेत्र राम के अधिकार म आ गये थे।

विवाह के बाद मिथिला से लाटने पर बहुए डोली से उतरी ही थीं कि दशरथ ने भरत और शत्रुघ्न को मामा के घर भज दिया था। मामा के घर रहते हुए भरत क पूर बारह वर्ष बीत चुक थे। इतनी लम्बी अवधि म दशरथ ने एक बार भी उनको अयोध्या बुलाने का विचार नही किया। ऐसा प्रतीत होता हे कि कुछ कारण शायद ऐसे रहे होगे जिनकी वजह स राम और भरत का बारी-बारी से मामा के घर भजने का निश्चय किया गया होगा। इस प्रवास की अवधि बारह या चादह वर्ष की रही होगी। इस सन्दर्भ म सुमन्त्र का एक वाक्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हे जिसके कारण ही उपर्युक्त आशका होती हैं। राम को वन म भेजकर अयोध्या लौटते समय उन्होने राम से कहा था कि यदि म महारानी कौसल्या से जाकर कहू कि मेने आपके बेटे को मामा के घर पहुचा दिया ह तो यह बात असत्य होगी

अह कि चापि वक्ष्यामि देवी तव सुतो मया।
नीतोऽसो मातुल-कुल सन्ताप मा कृथा इति ॥
असत्यमपि नेवाह ब्रूया वचनमीदृशम्।
कथमप्रियमेवाह ब्रूया सत्यमिद वच ॥ —वा रा 2 59 45 46

कथावस्तु के अनुसार सुमन्त्र राम को वन मे भेजन के लिए ही गये थे मामा के घर नही। इस स्थिति म सुमन्त्र के इस वाक्य का आशय अस्पष्ट ही रह जाता हे।

सुग्रीव और विभीषण से मेत्री सम्बन्ध स्थापित करते हुए राम ने वाली और रावण का वध भले ही किया हो किन्तु आचार की दृष्टि से सुग्रीव और विभीषण कहीं टिकते ही नही। यह एक सयोग ही था कि राम की सन्धि वाली की बजाय सुग्रीव के साथ हुई थी। दोनो की एक समान परिस्थितिया ही इस सधि का कारण रही। रामायण के अनुसार राम ने अपनी सहायता और सीता की खोज के लिए एक दीन और असहाय की भाति सुग्रीव की शरण ली थी। ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान को अपना और राम का परिचय देते समय लक्ष्मण न जो कुछ कहा था वह इस सन्दर्भ म विशेष रूप से उल्लेखनीय हे। उन्होने कहा था

आपके प्रश्न क उत्तर म मने सब-कुछ बतला दिया हे। मै और राम दोनो ही सुग्रीव की शरण में आये ह। पहले अत्यधिक दान देकर यश अर्जित करके जो समस्त ससार क स्वामी थे वही आज सुग्रीव को अपना स्वामी बनाने के इच्छुक ह। दशरथ सदेव शरणागतो के रक्षक रहे ह। उन्ही के पुत्र राम आज सुग्रीव की शरण मे ह। मेरे बडे भाई जो स्वय ही पहले समस्त लोको का शरण देने म समर्थ थे अब सुग्रीव की शरण म आये हे। जिनकी प्रसन्नता से सारी प्रजा खिल उठती थी वही राम आज सुग्रीव की प्रसन्नता चाहते हे। राम शोक से अभिभूत और आर्त्त

होकर शरण म आय ह। इसलिए सुग्रीव को इन पर कृपा करना चाहिए।[1]

राम आर सुग्रीव के बीच मैत्री नही वल्कि एक ऐसी सन्धि हुई थी जिनके अनुसार राम न वाली का मारकर सुग्रीव का किष्किन्धा के राज्य पर अभिषिक्त करन की शर्त स्वीकार की थी ओर इसके वदले मं सुग्रीव न सीता की खाज करने आर रावण के विरुद्ध युद्ध म सैन्य सहायता का वचन दिया था। वालि वध क पश्चात् राम न सुग्रीव स कहा भी था कि कार्तिक आने पर तुम रावण वध के लिए प्रयत्न करना, यही हम लोगा की शर्त हे। हनुमान ने भी रावण को राम सुग्रीव क बीच हुइ इस सन्धि की जानकारी दी थी।[2] विभीषण जिन परिस्थितिया म रावण से लड झगडकर राम के पास चला आया था उसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका ह। यह कहा जा सकता ह कि सुग्रीव आर विभीषण का आज भल ही राम भक्ता की काटि म मान लिया जाय किन्तु इन दोना के राम से सहतुक आर परिस्थितिजनित सम्वन्ध ही स्थापित हुए थे।

पालस्त्य-वध' काव्य म यदि प्रक्षिप्त अशा का समावेश कर वर्तमान रामायण' की रचना की गयी हे तो इन अशो के खाजने का प्रयास हाना भी आवश्यक हे। समीक्षा क क्षेत्र की यह भी एक विडम्वना ही है कि इस विलक्षण महाकाव्य की कथावस्तु ही समीक्षका की आखा म ऐसी चकाचोध उत्पन्न कर दती ह कि उनकी दृष्टि इसकी काव्यगत विशेपताआ की ओर जाती ही नहीं। भापा छन्द अलकार रस रचना विधान आदि की दृष्टि से रामायण का अध्ययन अभी भी शेप हे। इसम सन्देह नहीं इसक अनक अश काव्य की दृष्टि से इतन वजोड़ ह कि उनकी तुलना नहीं की जा सकती। वाल्मीकि क पहल भी काव्य ग्रन्था की रचना हाती रही होगी किन्तु इस आदि महाकाव्य कहे जाने का कारण भी मेरे विचार से यही हे कि इसने अपनी विलक्षणता से पूर्ववर्ती सभी काव्यो को समय क सुपुर्द कर दिया।

□□□